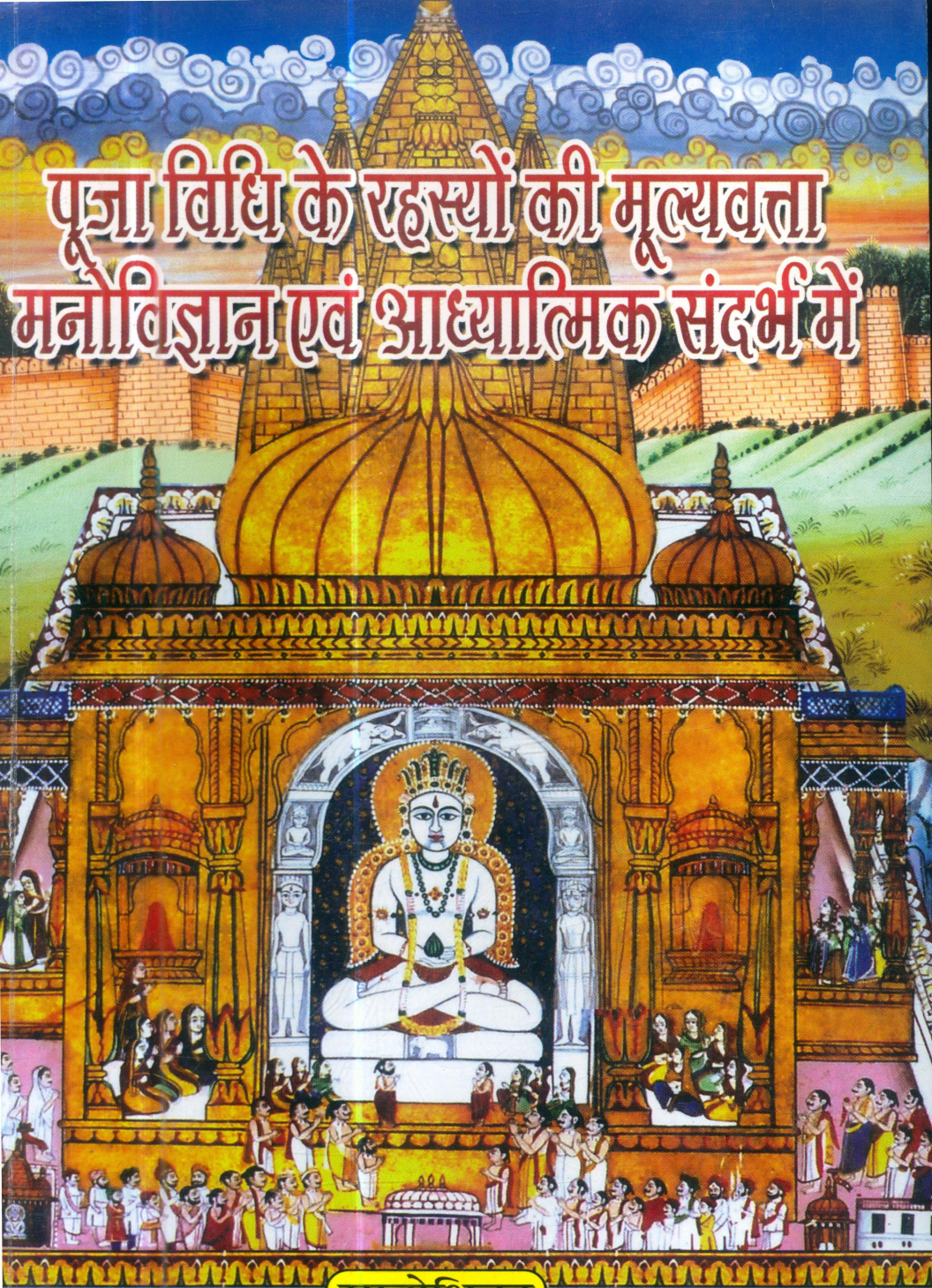
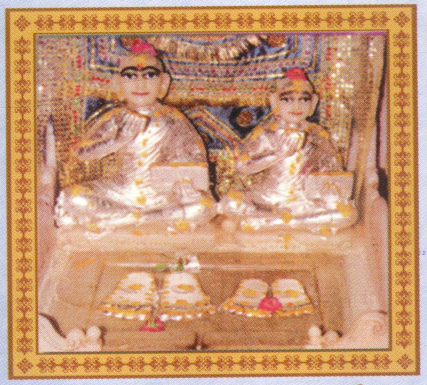
पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता मनोविज्ञान एवं आध्यात्मिक संदर्भ में



सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.





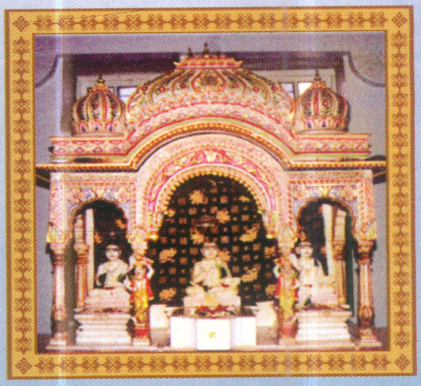
श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी



श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)



श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)



श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

पूजाविधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता

मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के सन्दर्भ में

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-13

2012-13

R.J. 241 / 2007



शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

पूजाविधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता

मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के सन्दर्भ में

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-13



स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

पूजाविधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता

मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के सन्दर्भ में

कृपा वर्धक : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मंगल वर्धक : उपाध्याय प्रवर पूज्य गुरुदेव श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

आनन्द वर्धक : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

प्रेरणा वर्धक : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

वात्सल्य वर्धक : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

स्नेह वर्धक : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणा श्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014

प्रतियाँ : 1000

सहयोग राशि : ₹ 150.00

(पुनः प्रकाशनार्थ)

कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

मुद्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XIII)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री कान्तिलाल मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/ए, कोलकाता-7
मो. 9830014736

2. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला
तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848253701

3. श्री भाईसा. साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPi
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी
वाराणसी-221005 (यू.पी.)

5. डॉ. सागरमल जी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
शाजापुर-465001 (म.प्र.)

6. श्री कैवल्यधाम जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, पोस्ट- कुम्हारी-490042
जिला- दुर्ग (छ.ग.)
मो. 9827144296

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936, 25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड,
पोस्ट- मालेगाँव,
जिला- नासिक (महा.)
मो. : 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पोस्ट- रायपुर (छ.ग.)
फोन : 9425206183

10. श्री पदमचन्द चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का
रास्ता, जौहरी बाजार
पो.- जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमार मुणोत..... 9331032777
श्री रिखबचन्द झाड़चूर..... 9820022641
श्रीमती प्रीति अजित पारख..... 8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद..... 9835564040
श्री पन्नाचन्द दूगड़..... 9831105908

भावार्पण

मैं एक अनगढ़ पत्थर थी
तुमने मेरा उद्धार किया।
ज्ञान हथोड़ा संयम छेनी से
मुझको एक आकार दिया।।

अपने हाथ बिछा धरती पर
मुश्किल घड़ियों में आधार दिया।
जीवन के प्रत्येक मोड़ पर
अविचल रहने का सद्बोध दिया।।

मोह माया बंधन से मुक्त कर
उन्मुक्त गगन का आस्वाद दिया।
सद्ज्ञानामृत का अभिसिञ्चन कर
मुक्ति रमणी का वरदान दिया।।

स्मृति लहरे उठती हरपल
मुझ मन आंगन गीला करती।
तेरा तुझको अर्पण करके
अश्रुवीणा चरणे धरती।।

ऐसी आत्मानन्दी, सजग प्रहरी, शास्त्र मर्मज्ञा,
कलिकाल में चतुर्थ आरे की प्रतिमूर्त्ति
प्रवर्त्तिनी महोदया पूज्य गुरुवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के
अनन्त आस्थामय पाणि युग्मों में
सर्वात्मना समर्पित

सज्जन मनस् प्रार्थना

Luxurious Lifestyle की चाह में
भोगवाद से भ्रमित हुए
सदाचार से पतित हुए
भक्ति मार्ग से विचलित हुए
जन मानस में
परमात्म भक्ति की अलख जगाने
आस्था के उज्ज्वल दीप जलाने
सद्गुण चंदन से जीवन महकाने
हेतु जरूरी है
जिन दर्शन का सम्मोहन,
जिन वंदन का नित्य नियम एवं
जिन पूजन का आलंबन
अप्पा सो परमप्पा की सिद्धि में
मार्गदर्शक बने
इसी शुभाशंसा के साथ...

हार्दिक अनुमोदन



पीपाड़ (राज॰) हॉल बनारस निवासी **श्रावकरत्न**

पिता स्व. श्री बलवंतराजजी–मातु स्व. श्री कनकलता देवी

की अमिट स्मृति निमित्ते

सुपुत्र

सिद्धराज–प्रमिला, मृगेन्द्रराज–पूर्णिमा

ललितराज–संगीता

सुपौत्र

राहुल–श्रुति, ऋषभ–नेहा, नीतिन–पूजा

सुपौत्री

नेहा–अंकुर, श्रुति, श्रेया, श्रद्धा

भंसाली परिवार

ज्ञान गंगोत्री के संवाहक
श्री भंसाली परिवार, वाराणसी

भारत की आर्य भूमि आध्यात्मिक आचार-विचारों की प्रसव भूमि रही है। इसी आचार एवं विचारधारा के आधार पर अनेक लोग महास्तंभ बनकर समाज को प्रकाशमान करते हैं। वह जब स्वार्थ के साथ परमार्थ की यात्रा पर निकल जाते हैं तो समाज के लिए वरदान साबित हो जाते हैं। समाज के प्रति उनका समर्पण भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत बन जाता है। बनारस निवासी भंसाली परिवार अपने कर्तृत्त्व द्वारा समाज को 'कर्मण्येवाधि कारेषु' का मूक संदेश देता है।

'कार्य कहने से नहीं करने से पूर्ण होगा' इसी लक्ष्य से श्री मनमोहनजी भंसाली ने पीपाड़ से बनारस स्थानांतरण किया। श्रीमद् रायचंदजी के जीवन चरित्र से प्रभावित होकर गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी समस्त सांसारिक मोह माया का त्याग कर दिया था। अपना कारोबार भाई बलवंतराजजी भंसाली को सौंपकर आप लच्छवाड के जंगलों में ध्यानस्थ हो गए। आप ही की फुलवारी आज बनारस के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। आपके सुपुत्र श्री धनपतराज भंसाली तथा भतीजे मृगेन्द्रराज एवं ललितराज भंसाली काशी में आपकी प्रतिष्ठा को बढ़ा रहे हैं।

श्री ललितराज भंसाली का जीवन बनारस समाज के लिए किसी कोहिनूर रत्न से कम नहीं है। यद्यपि आपका जीवन अनेक संघर्षों से युक्त रहा फिर भी धर्म क्षेत्र में आपने कभी ढ़िलाई नहीं आने दी। जाप, सामायिक, प्रभु दर्शन आदि नियमों का पालन आप दृढ़ता के साथ करते हैं। तीर्थ यात्रा एवं परमात्म भक्ति हेतु आप सदा लालायित रहते हैं। चढ़ावे लेकर अष्टप्रकारी पूजा करना, सोने के तिलक, छत्र आदि चढ़ाना आपकी अतुल परमात्म भक्ति का ही सूचक है।

बनारस खरतरगच्छ संघ की पेढ़ी में आप अध्यक्ष पद पर हैं। भेलूपुर मन्दिर के दोष निवारण एवं चंद्रावती आदि कल्याणक भूमियों के जीर्णोद्धार के लिए आप विशेष रूप से प्रयासरत हैं। आपके आंतरिक प्रयासों एवं कार्य सिद्धि के विश्वास को देखते हुए यही कह सकते हैं–

भाग्य तुम्हारा नभ के ग्रह नक्षत्रों के पास नहीं।
जो चाहो तुम पा सकते हो, हो मन में यदि विश्वास सही।।

ज्ञान विदुषी साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी के बनारस अध्ययन काल के दौरान आपने हर प्रकार की सेवाएँ देकर उनकी अध्ययन यात्रा को निर्विघ्न बनाने में सहयोग दिया। बनारस से चंद्रावती प्रथम पैदल संघ का लाभ आपके परिवार द्वारा भी लिया गया था। उसी संघ के दौरान जिनपूजा, मन्दिर आदि आवश्यक विषयों पर सूक्ष्म एवं मार्मिक चर्चाएँ हुई। जन सामान्य के लिए इनकी उपयोगिता देखते हुए आपने जिनपूजा सम्बन्धी पुस्तक प्रकाशन करवाने की इच्छा अभिव्यक्त की। आज आपकी मनोभावनाएँ कल्पनाओं के गगन से साकार रूप ले रही है।

इस मंगल अवसर पर सज्जनमणि ग्रंथमाला प्रकाशन पार्श्वनाथ दादा के चरणों में यही प्रार्थना करता है कि आप सतत धर्म मार्ग पर इसी प्रकार गतिमान रहें एवं आत्मलक्ष्य को प्राप्त करें।

●

सम्पादकीय

जिन मंदिर आर्य प्रजा का प्रतीक है। शास्त्रों के अनुसार आर्यजन स्वभावत: ऐसे स्थानों पर रहना पसंद करते हैं जहाँ सत्संस्कारों को पल्लवित करने हेतु सकारात्मक ऊर्जा निरंतर प्राप्त होती रहे। जिनालय ऊर्जा प्राप्ति के मुख्य केन्द्र हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति में आराधना स्थानों का प्राधान्य है।

प्रत्येक जीव का लक्ष्य है सांसारिक दु:खों एवं परिभ्रमण से मुक्ति प्राप्त कर शाश्वत सुख को उपलब्ध करना। वर्तमान कलिकाल में जब साक्षात परमात्मा का अभाव है तब मात्र परमात्म भक्ति और उनकी वाणी पर श्रद्धा ही हमारे मुक्ति का आधार बन सकती है।

मोक्ष प्राप्ति के लिए मानव जन्म और आध्यात्मिक साधना दोनों ही होना परमावश्यक है।प्रबल पुण्य का उदय होने पर ही दुर्लभ मानव जन्म के साथ जिनधर्म एवं सद्गुरु की प्राप्ति होती है। परंतु भौतिकता के चक्रव्यूह में व्यक्ति इस उपहार की मौलिकता को समझ नहीं पाता और इसी कारण मोक्ष मार्ग की साधना पर आगे नहीं बढ़ पाता।

जैनाचार्यों ने मोक्ष की साधना का सरल एवं सुलभ मार्ग जिनेश्वर परमात्मा का दर्शन-पूजन एवं भाव पूर्ण भक्ति बताया है। परमात्मा की पूजा भक्ति एवं उससे होती आंतरिक अनुभूति मानव जीवन की अमूल्य पूजा है क्योंकि यही समृद्धि एक दिन सर्वोच्च स्थान प्राप्ति में हेतुभूत बनती है।

वस्तुत: तो पूजनीय के गुण ग्रहण को ही पूजा का सम्यक अर्थ माना जा सकता है। योगीराज आनन्दघनजी ने कहा भी है–

अज कुलगत केसरी लहे रे, निज पद सिंह निहाल ।
तिम प्रभु भक्ति भवि लहे रे, आतम शक्ति संभाल ।।

इस प्रकार जैन परम्परा में जिन पूजा के जो विविध रूप बताए गए हैं उन सबका मुख्य लक्ष्य इतना ही है कि व्यक्ति अपने में निहित परमात्म तत्त्व को पहचाने।

परमात्मा की भक्ति, स्तुति और स्तवना के द्वारा वातावरण में कंपन उत्पन्न होना विज्ञान के लिए शोध का विषय है। इसके पीछे छिपा मनोवैज्ञानिक सत्य जैनाचार्यों के सूक्ष्म ज्ञान का विषय है। चैत्यवंदन विधि में आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि यौगिक साधनाओं की मुख्य भूमिका है जो शारीरिक स्वस्थता एवं मानसिक स्थिरता में हेतुभूत बनती है। शास्त्रीय एवं प्राचीन रागों में परमात्मा

के गुणों का स्मरण, स्तवन, कीर्तन करने से मन मस्तिष्क में अपूर्व आनंद एवं अचिन्त्य शक्ति की अनुभूति होती है। मनोविकार निर्मल हो जाते हैं। तनाव एवं उदासीनता से मुक्ति मिलती है।

जिनपूजा प्राचीनकाल से ही एक चर्चित विषय रहा है। आगमों में जिनपूजा विषयक दृष्टांत अनेक स्थानों पर वर्णित है। परमात्मा का जन्माभिषेक एक प्रकार से साक्षात परमात्मा की द्रव्य एवं भाव पूजा है। शाश्वत तीर्थों का उल्लेख जिनपूजा की अनादि निघनता को स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है। ज्ञातासूत्र एवं राजप्रश्नीयसूत्र में सूर्याभ देवता द्वारा एवं द्रौपदी द्वारा की गई पूजा का वर्णन तथा भगवतीसूत्र में तुंगिया नगरी के जिन मन्दिरों का वर्णन एवं जिनपूजा की प्राचीनता के अकाट्य प्रमाण हैं।

जिन पूजा के स्वरूप में अब तक कई परिवर्तन आए हैं। यदि जैन धर्म की सभी परम्पराओं के सन्दर्भ में सोचा जाए तो अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय केवल स्तुति-स्तोत्र आदि के माध्यम से भाव पूजा को ही महत्त्व देता है यद्यपि भाव पूजा की यह परम्परा श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के सभी पक्षों को स्वीकार है किन्तु द्रव्य पूजा को लेकर उनमें मतभेद देखे जाते हैं।

दिगम्बर परम्परा की तेरापंथ शाखा जल आदि के माध्यम से जिन प्रतिमा के अभिषेक आदि को अंग पूजा के रूप में स्वीकार करती है शेष चंदन आदि का निषेध करती हैं जबकि श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा जल, चंदन, पुष्प अर्चन आदि को स्वीकार करती है।

दिगम्बर परम्परा की बीसपंथी शाखा जिन प्रतिमा के पादांगुष्ठ पर चंदन, केसर, पुष्प आदि चढ़ाना मान्य करती है। ये दोनों ही परम्पराएँ चाहे पूजनीय द्रव्यों को लेकर मतभेद रखती हों किन्तु अग्रपूजा के विषय में एक मत हैं।

दिगम्बर परम्परा के तारणपंथी सम्प्रदाय में मात्र भाव पूजा को ही महत्त्व दिया जाता है वे द्रव्य पूजा का निषेध करते हैं।

कई बार जैन धर्म के अनुयायियों को अन्य धर्म की तरफ आकृष्ट होने से रोकने के लिए कुछ अतिरिक्त क्रियाओं का प्रवेश भी करवाया गया जो कालान्तर में परम्परा ही बन गई। इसी कारण कुछ आडम्बरों का प्रवेश भी विधि-विधानों में हुआ। यही विरोध अमूर्तिपूजक संप्रदाय के उद्भव में हेतुभूत बना। आडंबर का विरोध कालान्तर में मूर्ति पूजा के विरोध में परिवर्तित हो गया। परन्तु वस्तुत: जिनपूजा एक प्रामाणिक तथ्य है जिसे नकारा नहीं जा सकता।

जिनपूजा मनुष्य जन्म को सुकृत करने का श्रेष्ठ माध्यम है। इसके द्वारा व्यक्ति का धर्म रूपी जड़ों से जुड़ाव बना रहता है। परन्तु आज अपूर्ण जानकारी के कारण अनेक अविधियाँ जिनपूजा में प्रविष्ट हो चुकी हैं। वर्तमान प्रासंगिक कई पूर्वकालीन नियम आज लुप्त हो चुके है। कई अनावश्यक विधान भी प्रविष्ट हो चुके हैं। साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने ऐसे ही कई विषयों पर ध्यान आकर्षित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इन्होंने जिनपूजा का ऐतिहासिक अनुशीलन करते हुए अब तक की विकास यात्रा का सुंदर एवं प्रमाण युक्त वर्णन किया है।

जिनपूजा वर्तमान में सर्वाधिक आचरित विधान है। इस विषय पर अनेकश: पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। परंतु यह विवरण विकीर्ण रूप से अलग-अलग स्थानों पर प्राप्त होता है। साध्वीजी ने आधुनिक संदर्भों में उन विषयों की उपादेयता को सिद्ध करते हुए आज की जीवन शैली की अपेक्षा से संशोधित एवं प्रामाणिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। आजकल बिना समझे हो रहे परम्पराओं के अनुकरण में साध्वीजी का प्रयास दिशाबोधक यंत्रवत होगा। मैं साध्वीजी के कठिन प्रयासों के लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ एवं आशा करता हूँ वे इसी प्रकार दैनिक आराधना उपयोगी विषयों पर अपना चिंतन एवं आगमों का मंथन प्रस्तुत कर समाज को लाभान्वित करती रहेंगी।

चार भागों में प्रस्तुत शोध खण्ड का यह मात्र एक विषय है। साध्वीजी ने ऐसे अनेक विषयों पर कार्य किया है जो जिज्ञासु वर्ग के लिए पठनीय एवं आचरणीय है। मेरे अनुसार अब तक का सबसे विशद शोध प्रबन्ध सौम्यगुणा श्रीजी ने ही प्रस्तुत किया है। यद्यपि विधि-विधान स्वयं एक विस्तृत विषय है परंतु ऐसे विषयों पर कार्य करने हेतु धैर्य एवं दीर्घ दृष्टि का होना भी आवश्यक है। साध्वीजी ने तीव्र बुद्धि के साथ गांभीर्य गुण का परिचय देते हुए अपने शोध कार्य को शिखर तक पहुँचाया है। शोध पिपासुओं के लिए विधि-विधान सम्बन्धी मार्ग पर आगे बढ़ने हेतु इन्होंने मात्र नींव ही नहीं अपितु पूरा ढांचा ही तैयार कर दिया है जिस पर अब बड़ी से बड़ी बिल्डिंग का निर्माण हो सकता है।

साध्वीजी ऐसे ही संरचनात्मक कार्य करते हुए समाज को लाभान्वित करती रहें यही अभिलाषा है।

डॉ. सागरमल जैन

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

आज मन अत्यन्त आनंदित है। जिनशासन की बगिया को महकाने एवं उसे विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुरभित करने का जो स्वप्न हर आचार्य देखा करता है आज वह स्वप्न पूर्णाहुति की सीमा पर पहुँच गया है। खरतरगच्छ की छोटी सी फुलवारी का एक सुविकसित सुयोग्य पुष्प है साध्वी सौम्यगुणाजी, जिसकी महक से आज सम्पूर्ण जगत सुगन्धित हो रहा है।

साध्वीजी के कृतित्व ने साध्वी समाज के योगदान को चिरस्मृत कर दिया है। आर्या चन्दनबाला से लेकर अब तक महावीर के शासन को प्रगतिशील रखने में साध्वी समुदाय का विशेष सहयोग रहा है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी की अध्ययन रसिकता, ज्ञान प्रौढ़ता एवं श्रुत तल्लीनता से जैन समाज अक्षरशः परिचित है। आज वर्षों का दीर्घ परिश्रम जैन समाज के समक्ष 23 खण्डों के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

साध्वीजी ने जैन विधि-विधान के विविध पक्षों को भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उद्घाटित कर इसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को सुसिद्ध किया है। इन्होंने श्रावक एवं साधु के लिए आचरणीय अनेक विधि-विधानों का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निष्पक्ष दृष्टि से विविध परम्पराओं में प्राप्त इसके स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

साध्वीजी इसी प्रकार जैन श्रुत साहित्य को अपनी कृतियों से रोशन करती रहे एवं अपने ज्ञान गांभीर्य का रसास्वादन सम्पूर्ण जैन समाज को करवाती रहे, यही कामना करता हूँ। अन्य साध्वी मण्डल इनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अतुल क्षमता से संघ-समाज को लाभान्वित करें एवं जैन साहित्य की अनुद्घाटित परतों को खोलने का प्रयत्न करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ी जैनागमों के रहस्यों का रसास्वादन कर पाएं। इसी के साथ धर्म से विमुख एवं विश्रृंखलित होता जैन समाज विधि-विधानों के महत्त्व को समझ पाए तथा वर्तमान में फैल रही भ्रान्त

मान्यताएँ एवं आडंबर सम्यक दिशा को प्राप्त कर सकें। पुनश्च मैं साध्वीजी को उनके प्रयासों के लिए साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार साहित्य उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहें एवं साहित्यान्वेषियों की प्रेरणा बनें।

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

हर क्रिया की अपनी एक विधि होती है। विधि की उपस्थिति व्यक्ति को मर्यादा भी देती है और उस क्रिया के प्रति संकल्प-बद्ध रहते हुए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी। यही कारण है कि जिन शासन में हर क्रिया की अपनी एक स्वतंत्र विधि है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है कि भरत महाराजा ने हर श्रावक के गले में सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप त्रिरत्नों की जनोई धारण करवाई थी। कालान्तर में जैन श्रावकों में यह परम्परा विलुप्त हो गई। दिगम्बर श्रावकों में आज भी यह परम्परा गतिमान है।

जिस प्रकार ब्राह्मणों में सौलह संस्कारों की विधि प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार जैन ग्रन्थों में भी सौलह संस्कारों की विधि का उल्लेख है। आचार्य श्री वर्धमानसूरि खरतरगच्छ की रूद्रपल्लीय शाखा में हुए पन्द्रहवीं-सौलहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य थे। आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में इन सौलह संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। हालांकि गहन अध्ययन करने पर मालूम होता है कि आचार्य श्री वर्धमानसूरि पर तत्कालीन ब्राह्मण विधियों का पर्याप्त प्रभाव था, किन्तु स्वतंत्र विधि-ग्रन्थ के हिसाब से उनका यह ग्रन्थ अद्भुत एवं मौलिक है।

साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन गृहस्थ के व्रत ग्रहण संबंधी विधि विधानों पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ साबित होगा, इसमें कोई शंका नहीं है। साध्वी सौम्यगुणाजी सामाजिक दायित्वों में व्यस्त होने पर भी चिंतनशील एवं पुरुषार्थशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व मैं

विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर अपनी विद्वत्ता की अनूठी छाप समाज पर छोड़ चुकी हैं।

मैं हार्दिक भावना करता हूँ कि साध्वीजी की अध्ययनशीलता लगातार बढ़ती रहे और वे शासन एवं गच्छ की सेवा में ऐसे रत्न उपस्थित करती रहें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

किसी भी धर्म दर्शन में उपासनाओं का विधान अवश्यमेव होता है। विविध भारतीय धर्म-दर्शनों में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु अनेक प्रकार से उपासनाएँ बतलाई गई हैं। जीव मात्र के कल्याण की शुभ कामना करने वाले हमारे पूज्य ऋषि मुनियों द्वारा शील-तप-जप आदि अनेक धर्म आराधनाओं का विधान किया गया है।

प्रत्येक उपासना का विधि-क्रम अलग-अलग होता है। साध्वीजी ने जैन विधि विधानों का इतिहास और तत्सम्बन्धी वैविध्यपूर्ण जानकारियाँ इस ग्रन्थ में दी है। ज्ञान उपासिका साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी ने खूब मेहनत करके इसका सुन्दर संयोजन किया है।

भव्य जीवों को अपने योग्य विधि-विधानों के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मैं ज्ञान निमग्ना साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने चतुर्विध संघ के लिए उपयोगी सामग्री से युक्त ग्रन्थों का संपादन किया है।

मैं कामना करता हूँ कि इसके माध्यम से अनेक ज्ञानपिपासु अपना इच्छित लाभ प्राप्त करेंगे।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती।

कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और भीड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. धार्मिक विधि-विधान– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों की नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु
तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।

साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।

शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

अमृत नाद

पूजा, अध्यात्म उपासना का विशिष्ट चरण है। विविधताओं से परिपूर्ण भारतीय परम्परा की कोई भी शाखा हो वहाँ इष्ट देव की आराधना-साधना हेतु किसी न किसी प्रकार की उपासना पद्धति का वर्णन है। परमात्मा के प्रति यही सत्कार एवं सम्मान की भावना पूजा कहलाती है।

जैन परम्परा में जिन पूजा का महत्त्व आगम काल से परिलक्षित होता है। जैनाचार्यों ने अपने चिंतन बल एवं जिनवाणी के आधार पर इसकी महिमा का कीर्तिमान अनेकशः स्थानों पर किया है। विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में इसके भिन्न-भिन्न उद्देश्य हैं परंतु सभी का केन्द्र बिन्दु एक मात्र परमोच्च सुख या आत्मानन्द की प्राप्ति है। जिनपूजा के द्वारा व्यक्ति स्वयं में रहना सीख जाता है।

कवि सम्राट् आचार्य कवीन्द्रसागर सूरीश्वरजी म.सा. कहते हैं–

प्रभु पुजा करो प्रभु पूजा करो, आया विघन मिट जाएगा।

जिनपूजा का एक नाम ही विघ्न विनाशिनी है। जिनेश्वर परमात्मा को कल्पतरू, कामघट या कामधेनु से भी अधिक प्रभावी माना है क्योंकि यह इच्छापूर्ति नहीं अपितु इच्छा समाप्ति या इच्छा विजय का मार्ग बताते हैं। जिन पूजन-दर्शन आदि का मुख्य लक्ष्य जीव को प्रतिपल स्वयं के सच्चे स्वरूप की प्रतीति करवाना है। जिनेश्वर परमात्मा जीवन को एक लक्ष्य प्रदान करते हैं। पूज्यतम पुरुषों की आराधना करने से व्यक्ति को नैतिकता एवं सदाचार के मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

सामान्यतः व्यक्ति को जिस क्षेत्र में अग्रसर होना हो वह उस क्षेत्र के शिखरस्थ व्यक्तियों को अपना लक्ष्य बनाता है। तद्रूप या उनसे भी अधिक ऊँचाईयों को प्राप्त करने का स्वप्न देखता है। वीतराग परमात्मा भी सन्मार्गगामी पथिकों के लिए आदर्श पुरुष हैं। जिनपूजा के माध्यम से व्यक्ति को अपने आदर्श का प्रतिपल स्मरण बना रहता है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी अध्ययननिष्ठ होने के साथ-साथ क्रियानिष्ठ एवं भक्तिनिष्ठ भी है। इसलिए आगमोक्त रहस्यों को प्रकट करने में आंतरिक

समवाय का भी आभास हो रहा है। वर्तमान समय की बदलती परिस्थितियों एवं युवा मन में उठती शंकाओं का समाधान करने में साध्वीजी ने अपनी वैचारिक श्रेष्ठता, अनुभव प्रौढ़ता आदि का स्तुत्य परिचय दिया है जिससे स्वाध्यायी वर्ग को विशेष सहायता प्राप्त होगी।

सौम्याजी की यह कृति भव्य जीवों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति करवाने में सहायक बने तथा 'अप्पा सो परमप्पा' के पद को सार्थक करते हुए परमोच्च पद पर स्थापित करें यही मंगल कामना हम सभी के लिए।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

●

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा. एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क,

अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकश: वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो नि:सन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णत: सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति

आप सदैव सचेष्ट रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के अमिट पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकश: बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने

का यह एक स्वर्णिम अवसर था अत: सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अत: पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुन: कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुन: कलकत्ता नगरी

में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास

के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा।

मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था।

साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुन: कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना

पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अत: दो माह तक अध्ययन की गति पर पुन: ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अत: वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुन: कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु

अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता

का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी

म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर–शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी

के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक बधाई

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रात:कालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्षे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

अनुभूति की रश्मियाँ

वर्तमान भौतिक परिवेश एवं प्रगति के दौर ने मानव जगत को व्यावहारिक विकास के चरम शिखर पर लाकर खड़ा कर दिया है। परंतु आध्यात्मिक उत्थान की तलहटी हमारे चरणों के नीचे से खिसकती जा रही है। साधन और सुविधाएँ जितनी बढ़ रही हैं, असंतोष एवं अशांति के बादल उतने ही अधिक लहरा रहे हैं। भौतिक चकाचौंध में लिपटा हुआ आज का संसार एक सुंदर डिब्बे में बंद Atom bomb की तरह ही है। जिसकी सुंदरता देखकर पथिक उसे मार्ग से उठा तो लेता है परन्तु उसकी आंतरिक विनाश शक्ति पथिक के जीवन को ही नष्ट कर देती है। जगत के इसी बाह्य Wrapper को हटाने का और आन्तरिक दूषित वृत्तियों को प्रकट करने का कार्य जिनवाणी एवं जिन स्थापना करती है।

आर्य संस्कृति में मन्दिरों को आत्म शान्ति प्राप्त करने का Power house माना है। आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ने के लिए All Clear National Highway है। मन्दिर में विराजित जिनप्रतिमा जीव को सत्य का साक्षात्कार करवाने में दिव्य दर्पण के समान हैं। ऐसे परम विशुद्ध स्थल में जिनबिम्ब परम आनंद की अनुभूति करवाता है। शुद्ध भाव एवं विरक्ति पूर्वक की गई प्रत्येक क्रिया प्रगाढ़ कर्मों की निर्जरा में हेतुभूत बनती है। इसीलिए पंडित कपूरचंदजी कहते हैं–

श्रीजिनवरजी की सेवा सारे, सो भव भय दूख दूर निवारे।

यही बात आचार्य मानतुंगसूरि ने भक्तामर स्तोत्र में कही है–

सम्यक् प्रणम्य जिनपाद युगं युगादा।
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्।।

इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए देवचंद्रजी महाराज संभवनाथ भगवान के स्तवन में कहते हैं–

जन्म कृतारथ तेहनो रे, दिवस सफल पण तास।
जगत शरण जिन चरण ने रे, वंदे धरिय उल्लास।।

इन सभी कथनों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा को किया गया वही वंदन-पूजन आदि सफल हैं जो सम्यक प्रकार से अर्थात विधिपूर्वक एवं आन्तरिक

भावोल्लास के साथ किए गए हों। अन्यथा वंदन-पूजन आदि की क्रियाएँ मात्र एक गड़रिया प्रवाह रूप बनकर रह जाती है।

यदि आज की जीवन शैली एवं आधुनिक विचारधारा की अपेक्षा से सोचा जाए तो अधिकांश वर्ग को यह क्रियाएँ अनावश्यक एवं सारहीन प्रतीत होती है। एक वर्ग ऐसा भी है जो मात्र परम्परा निर्वाह या प्रवाह के अनुकरण रूप यह सभी क्रियाएँ करता है। उसके पीछे रहे सुपरिणाम या उनके तथ्यों से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें छोटी-छोटी बात का logic चाहिए। तो कुछ ऐसे भी हैं जो अपने विचारों के आग्रह या रुढ़िवादिता को छोड़ना ही नहीं चाहते। बहुत कम ऐसे लोग दिखाई देते हैं जो प्रत्येक विधि एवं क्रिया का आशय समझते हुए उसे शुद्ध रीति से करना चाहते हैं। वर्तमान में अधिकांश लोग हर क्रिया का Short cut और Easy Way चाहते हैं। वे धर्म के अनुसार ढ़लना नहीं चाहते अपितु धर्म को अपने अनुसार ढ़ालना चाहते हैं। परंतु इस प्रकार अपवाद मार्गों को धारण करने से कभी भी लक्ष्य की संसिद्धि नहीं हो सकती। यदि मंजिल को पाना है तो कठिन मार्ग पर तो चलना ही होगा, मार्ग में आ रही बाधाओं को पार करना ही होगा।

यदि जैन समाज की वर्तमान परिस्थितियों का अन्वेषण करें तो आज का अधिकांश युवा वर्ग धर्म क्रियाओं को Boring, Impractical, Unintresting और Outdated मानता है। No time busy life का वाक्य तो प्राय: सभी के रटा हुआ है। कई भ्रान्त मान्यताएँ एवं परम्पराएँ भी जिनपूजा विधि में प्रविष्ट हो चुकी हैं। कुछ क्रियाएँ अति में बढ़ गई है तो कई मूल विधियाँ प्राय: विलुप्त होने की कगार पर है।

इन भयावह परिस्थितियों में जिनपूजा के प्रति जागरूक होना एवं तद्विषयक मर्मों को हृदयंगम करना परम आवश्यक है। आज शास्त्रोक्त त्रिकालपूजा का प्रचलन नहीवत रह गया है, वहीं श्रावक वर्ग ने अपनी सुविधा हेतु सूर्योदय से पूर्व प्रक्षाल, कृत्रिम (Artificial) द्रव्यों के प्रयोग, Lighting आदि को बढ़ावा दिया है जो मंदिरों के वातावरण एवं प्रतिमाओं के प्रभाव को दूषित एवं निस्तेज कर रहा है। पूजा सम्बन्धी द्रव्य एकत्रित करने की विधि से भी प्राय: श्रावक वर्ग अनभिज्ञ हैं। आंगी आदि का प्रचलन भी अति में बढ़ गया है।

भाग-दौड़ की जिंदगी में स्वाध्याय, शास्त्र निरीक्षण, गुरु भगवन्तों से सम्यक ज्ञानार्जन का समय श्रावक समुदाय के पास नहीं है। प्राचीन काल से अब तक आए परिवर्तन एवं तात्कालीन परिस्थितियों की जानकारी का अभाव भी कई भ्रान्तियों का कारण है। अत: जन समुदाय को प्राचीन एवं अर्वाचीन विधि-नियमों से परिचित करवाना आवश्यक है।

इस पुस्तक में श्रावक वर्ग को जिनपूजा सम्बन्धी विविध पक्षों से अवगत करवाते हुए तद्विषयक आवश्यक जानकारी संक्षिप्त रूप में देने का लघु प्रयास किया जा रहा है।

जिनपूजा सम्बन्धी विविध चरणों को पहली बार जानने पर कोई भी उसे एक जटिल या अति नियमबद्ध प्रक्रिया समझ सकता है। परंतु यदि सम्यक रूप से इस क्रिया को एक या दो बार सम्पन्न किया जाए तो जिनपूजा एक सरल, Best managed एवं आनंददायक क्रिया अनुभूत होगी। कई लोग जिनपूजा के क्रम में अपनी सुविधा अनुसार परिवर्तन करते हैं परन्तु किसी भी क्रिया का एक यथोचित क्रम होने पर उसे करने में आसानी होती है। विविध स्तरों पर उसकी एकरूपता बनी रहती है। इसी कारण जैनाचार्यों ने जिनपूजा का एक सुंदर क्रम निरूपित किया है। इस पुस्तक में दर्शनार्थी एवं पूजार्थी वर्ग की अपेक्षा उस क्रम को अथ से इति तक बताया गया है।

द्रव्य पूजा एवं भावपूजा सम्बन्धी अनेकश: शंकाओं का समाधान करते हुए उन्हें कब, कहाँ, किस रूप में सम्पन्न किया जाए? उन्हें करते हुए क्या भावना की जाए एवं किन सावधानियों को रखा जाए? किस प्रकार अविधि से बचा जाए? आदि विविध पहलुओं का निरूपण इसमें किया गया है। जिनपूजा में प्रयुक्त विविध उपकरणों का संक्षिप्त परिचय एवं उनका ऐतिहासिक विकास क्रम भी बताया गया है।

आगम युग से अब तक जिनपूजा के अनेक प्रकार देखे जाते हैं। उन सभी का सप्रमाण वर्णन एवं भिन्न-भिन्न कालों में उनका स्वरूप यहाँ बताया गया है। वर्तमान युगीन समस्याओं में जिनपूजा एक आशा की किरण बनकर आतंक, कषाय एवं Tension आदि के घोर अंधकार को दूर कर मैत्री, सम्यक्त्व एवं संतोष के प्रकाश प्रस्फुटित कर सकती है। आज के प्रतिस्पर्धामय युग में जिनपूजा जीवन को संतुलित करने तथा अध्यात्म एवं व्यवहार जगत में

सामंजस्य बैठाने की कला है। Time management, Group Management, Place management की शिक्षा इसके माध्यम से स्वत: प्राप्त हो जाती है। आज की पदार्थ विलासी जीवन शैली के प्रभुत्व में जिनपूजा स्वयं की ओर बढ़ने का राजमार्ग है। इस कृति में जिनपूजा विषयक विविध पक्षों को ग्यारह अध्यायों में बाँटा गया है–

पहले अध्याय में पूजा के स्वरूप एवं प्रकारों की चर्चा करते हुए आगम काल से अब तक प्रवर्त्तित समस्त प्रकारों की चर्चा शास्त्रोक्त आधार पर की गई है।

दूसरे अध्याय में पूजा में अपेक्षित विविध नियमों की चर्चा की गई है जैसे कि सात शुद्धि, पाँच अभिगम, दसत्रिक आदि। इसी के साथ इसमें त्रिकाल पूजा का क्रम एवं जिनमन्दिर सम्बन्धी विविध अनुष्ठानों (क्रियाओं) की विधि भी बताई गई है।

तीसरा अध्याय द्रव्य पूजा में समाहित अष्टप्रकारी पूजा के विविध पहलुओं से सम्बन्धित है। इसमें जल, चन्दन आदि द्रव्य पूजाओं का स्वरूप, उद्देश्य एवं विधि बतलाते हुए तद्विषयक जनमान्यता आदि पर प्रकाश डाला गया है।

अष्टप्रकारी पूजा करते समय क्या सावधानी रखी जाए एवं उन्हें सम्पन्न करते समय किस प्रकार के भावों से अपने आपको भावित किया जाए आदि का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। जिससे श्रावक वर्ग इन क्रियाओं को सम्यक रीति से एवं भावयुक्त होकर सम्पन्न कर सके।

इस कृति का **चौथा अध्याय** 'भावे भावना भाविए' जिनपूजा का प्रमुख भेद भावपूजा से सम्बन्धित है। इस अध्याय में भावपूजा रूप चैत्यवंदन के विविध पहलुओं को स्पष्ट करते हुए चैत्यवंदन की विविध कोटियाँ, उनमें उपयोगी सूत्र एवं तद्योग्य मुद्राएँ, चैत्यवंदन विधि एक लाभप्रद अनुष्ठान कैसे, चैत्यवंदन विधि की पारमार्थिक उपादेयता, आर्य संस्कृति में इसकी महत्ता एवं उपादेयता आदि विषयक वर्णन किया गया है। इसी के साथ इसमें स्तवन के शास्त्रोक्त लक्षण, उसकी प्राचीनता आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।

पांचवाँ अध्याय पूजार्थी एवं दर्शनार्थी वर्ग के लिए विशेष उपयोगी है। जिनपूजा का मुख्य ध्येय है कर्म विघटन। अत: चर्चित अध्याय में जिनमंदिर में

कर्म बन्धन के मुख्य कारण रूप आशातनाओं के स्वरूप एवं विविध प्रकारों का उल्लेख किया है। साथ ही श्रावक वर्ग द्वारा सावधानी रखने योग्य मुख्य स्थानों का भी वर्णन किया है।

छठवां अध्याय जिनपूजा में उपयोगी उपकरणों के स्वरूप का परिचय करवाते हुए आगमकाल से अब तक हुए विकास एवं ह्रास की चर्चा करता है।

इस खण्ड के **सातवें अध्याय** में जिनपूजा विधि की त्रैकालिक आवश्यकता को सिद्ध करते हुए उसके अनुभूतिजन्य रहस्यों को उजागर किया है। इसके अन्तर्गत जिनपूजा के आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक प्रभावों का वर्णन है। इसी के साथ इस अध्याय में जिनपूजा सम्बन्धी विविध चरण जैसे– निसीहि, प्रदक्षिणा, तिलक आदि की रहस्यभूत चर्चा की गई है। जिन मंदिर की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक तात्त्विकता को उजागर करते हुए कुछ मौलिक विषय जैसे कि गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर सिंह की मुखाकृति क्यों? घंटनाद, शंखनाद, आरती आदि का प्राकृतिक प्रभाव, प्रार्थना के प्रभाव इत्यादि का स्वरूप वर्णन किया है। इस अध्याय में त्रिकाल पूजा का महत्त्व एवं विविध पक्षीय अध्ययन करते हुए उसकी प्रासंगिकता को सिद्ध किया है। साथ ही अष्टमंगल के महत्त्व का भी वर्णन किया है।

आठवें अध्याय में जिनपूजा की प्रामाणिकता को ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय संदर्भों के आधार पर सिद्ध किया है। यह अध्याय आलम्बन के स्वरूप एवं महत्त्व को दर्शाते हुए जिनप्रतिमा को सर्वश्रेष्ठ आलम्बन रूप सिद्ध करता है। इस अध्याय में आगम युग से अब तक प्राप्त जिन पूजा के प्रामाणिक संदर्भ प्रस्तुत किए गए हैं।

नौवां अध्याय सात क्षेत्रों का समीक्षात्मक एवं सारगर्भित विवेचन करता है। इसमें सात क्षेत्रों का सामान्य परिचय देते हुए तद्विषयक विविध शंकाओं का समाधान किया गया है। विशेषत: इसमें सात क्षेत्र विषयक विविध चढ़ावों को सारणी रूप में प्रस्तुत करते हुए उस राशि का उपयोग किस क्षेत्र में कर सकते हैं? इसका प्रामाणिक विवेचन किया है। इस सम्बन्ध में तपागच्छ परम्परावर्ती आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी म.सा. एवं खरतरगच्छ परम्परावर्ती में उपाध्यायश्री मणिप्रभसागरजी एवं मुनि श्री पीयूषसागरजी म.सा. के मन्तव्य को प्रस्तुत किया है।

I... पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता – मनोविज्ञान एवं अध्यात्म...

दसवाँ अध्याय जिनपूजा विषयक विविध शंकाओं का समाधान करता है। काल सापेक्ष अनेकविध परिवर्त्तन प्रत्येक क्रिया में होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के कारण अनेक प्रकार की शंकाएँ एवं भ्रान्त मान्यताएँ मन-मस्तिष्क में स्थापित हो जाती है। इस अध्याय में उन्हीं के निवारण का प्रयास किया है जैसे– अधिष्ठायक देवों की स्थापना मन्दिर में कहाँ करना? परमात्मा के समक्ष गुरु को वंदन करना या नहीं? कुर्ता-पायजामा पहनकर पूजा कर सकते हैं या नहीं? मन्दिर में चढ़ाए गए बादाम आदि खरीदने में क्या दोष? आदि विभिन्न प्रश्नों का शास्त्रोक्त समाधान किया गया है।

इस कृति का अन्तिम **ग्यारहवाँ अध्याय** जिनपूजा विषयक विविध पक्षों की तुलना करते हुए उनका सारभूत वर्णन प्रस्तुत करता है। भिन्न-भिन्न समय में आए परिवर्त्तनों का सामाजिक स्तर पर क्या प्रभाव रहा एवं उनसे किस प्रकार के परिणाम उत्पन्न हुए उनका भी वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

जिनपूजा सम्बन्धी इस कृति का मुख्य लक्ष्य परमात्म प्रीति के नाजुक रेशमी बंधन को मजबूत करना एवं उस सम्बन्ध को विश्वास एवं समर्पण रूपी कुंकुम और अक्षतों से सजाना है। जिनपूजा श्रमण एवं श्रावक वर्ग के आवश्यक कर्त्तव्यों में से एक है। श्रावक वर्ग इससे पूर्ण रूप से परिचित होते हुए निजत्व से जिनत्व, जीवत्व से शिवत्व, ममत्व से समत्व के मार्ग पर अग्रसर हो पाएं यही शुभाकांक्षा है।

इस कृति के लेखन में अल्प बुद्धि के कारण जिनाज्ञा के विरुद्ध कुछ भी लिखा हो अथवा अपने अभिप्राय को सही रूप से अभिव्यक्त न कर पाने के कारण किसी को पीड़ा पहुँची हो तो उसके लिए त्रियोग पूर्वक मिच्छामि दुक्कडम् करती हूँ। इस शोध अध्ययन से विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा रचित पुस्तकों का विशेष आलम्बन मिला, उन सभी की मैं अन्तरमन से आभारी हूँ।

●

वन्दना की झंकार

जैन विधि-विधानों से सम्बन्धित एक बृहद्स्तरीय अन्वेषण आज पूर्णाहुति की प्रतीक्षित अरूणिम वेला पर है। जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबल इस विराट् विषय के प्रतिपादन में आधार स्तंभ बना उन सभी उपकारी जनों की अभिवन्दना-अनुमोदना करने के लिए मन तरंगित हो रहा है। यद्यपि उन्हें पूर्णत: अभिव्यक्ति देना असंभव है फिर भी सामर्थ्य जुटाती हुई करबद्ध होकर सर्वप्रथम, जिनके दिव्य ज्ञान के आलोक ने भव्य जीवों के हृदयान्धकार को दूर किया, जिनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी ने जीव जगत का उद्धार किया, जिनके रोम-रोम से निर्झरित करूणा भाव ने समस्त जीवराशि को अभयदान दिया तथा मोक्ष मार्ग पर आरोहण करने हेतु सम्यक चारित्र का महादान दिया, ऐसे भवो भव उपकारी सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा के चरण सरोजों में अनन्त-अनन्त वंदना करती हूँ।

जिनके स्मरण मात्र से दु:साध्य कार्य सरल हो जाता है ऐसे साधना सहायक, सिद्धि प्रदायक श्री सिद्धचक्र को आत्मस्थ वंदन।

चिन्तामणि रत्न की भाँति हर चिन्तित स्वप्न को साकार करने वाले, कामधेनु की भाँति हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले एवं जिनकी वरद छाँह में जिनशासन देदीप्यमान हो रहा है ऐसे क्रान्ति और शान्ति के प्रतीक चारों दादा गुरूदेव तथा सकल श्रुतधर आचार्यों के चरणारविन्द में भावभीनी वन्दना।

प्रबल पुण्य के स्वामी, सरलहृदयी, शासन उद्धारक, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पवित्र चरणों में श्रद्धा भरी वंदना। जिन्होंने सदा अपनी कृपावृष्टि एवं प्रेरणादृष्टि से इस शोध यात्रा को लक्ष्य तक पहुँचाने हेतु प्रोत्साहित किया।

जिनके प्रज्ञाशील व्यक्तित्व एवं सृजनशील कर्तृत्व ने जैन समाज में अभिनव चेतना का पल्लवन किया, जिनकी अन्तस् भावना ने मेरी अध्ययन रुचि को जीवन्त रखा ऐसे उपाध्याय भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के चरण नलिनों में कोटिश: वन्दन।

iii... पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता – मनोविज्ञान एवं अध्यात्म...

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी, गुण गरिमा से मंडित प.पू. आचार्य पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. की, जिन्होंने कोबा लाइब्रेरी के माध्यम से दुष्प्राप्य ग्रन्थों को उपलब्ध करवाया तथा सहृदयता एवं उदारता के साथ मेरी शंकाओं का समाधान कर प्रगति पाथेय प्रदान किया। उन्हीं के निश्रावर्ती मनोज्ञ स्वभावी, गणिवर्य्य श्री प्रशांतसागरजी म.सा. की भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने निस्वार्थ भाव से सदा सहयोग करते हुए मुझे उत्साहित रखा।

मैं कृतज्ञ हूँ सरस्वती साधना पथ प्रदीप, प.पू. ज्येष्ठ भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने इस शोध कार्य की मूल्यवत्ता का आकलन करते हुए मेरी अंतश्चेतना को जागृत रखा।

मैं सदैव उपकृत रहूंगी प्रवचन प्रभावक, शास्त्र वेत्ता, सन्मार्ग प्रणेता प.पू. आचार्य श्री कीर्तियश सूरीश्वरजी म.सा एवं आगम मर्मज्ञ, संयमोत्कर्षी प.पू. रत्नयश विजयजी म.सा के प्रति, जिन्होंने नवीन ग्रन्थों की जानकारी देने के साथ-साथ शोध कार्य का प्रणयन करते हुए इसे विबुध जन ग्राह्य बनाकर पूर्णता प्रदान की।

मैं आस्था प्रणत हूँ जगवल्लभ प.पू. आचार्य श्री राजयश सूरीश्वरजी म.सा एवं वात्सल्य मूर्ति प.पू. बहन महाराज वाचंयमा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने समय-समय पर अपने अनुभव ज्ञान द्वारा मेरी दुविधाओं का निवारण कर इस कार्य को भव्यता प्रदान की।

मैं नतमस्तक हूँ समन्वय साधक, भक्त सम्मोहक, साहित्य उद्धारक, अचल गच्छाधिपति प.पू. आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से मेरी जिज्ञासाओं का समाधान करके मेरे कार्य को आगे बढ़ाया।

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के प्रेरणा पुरुष, अनेक ग्रन्थों के सृजनहार, कुशल अनुशास्ता, साहित्य मनीषी आचार्य श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के चरणों में, जिनके सृजनात्मक कार्यों ने इस साफल्य में आधार भूमि प्रदान की।

इसी श्रृंखला में श्रद्धानत हूँ त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति, पुण्यपुंज प.पू. आचार्य श्री जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर संभव स्व सामाचारी विषयक तथ्यों से अवगत करवाते हुए इस शोध को सुलभ बनाया।

मैं श्रद्धावनत हूँ विश्व प्रसिद्ध, प्रवचन प्रभावक, क्रान्तिकारी सन्त प्रवर श्री तरुणसागरजी म.सा के प्रति, जिन्होंने यथोचित सुझाव देकर रहस्य अन्वेषण में सहायता प्रदान की।

मैं आभारी हूँ मृदुल स्वभावी प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं गूढ़ स्वाध्यायी प. पू. सम्यक्रत्नसागरजी म.सा. की जिन्होंने सदैव मेरा उत्साह वर्धन किया।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में अन्तर्हृदय से उपकृत हूँ महत्तरा पद विभूषिता पू. विनीता श्रीजी म.सा., प्रवर्त्तिनी प्रवरा पू. चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पू. चन्द्रकला श्रीजी म.सा., मरूधर ज्योति पू. मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पू. हेमप्रभा श्रीजी म.सा. एवं अन्य सभी समादृत साध्वी मंडल के प्रति, जिनके अन्तर मन की मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाया तथा आत्मीयता प्रदान कर सम्यक् ज्ञान के अर्जन को प्रवर्द्धमान रखा।

जिनकी मृदुता, दृढ़ता, गंभीरता, क्रियानिष्ठता एवं अनुभव प्रौढ़ता ने सुज्ञजनों को सन्मार्ग प्रदान किया, जिनका निश्छल व्यवहार **'जहा अंतो तहा बहिं'** का जीवन्त उदाहरण था, जो पंचम आरे में चौथे आरे की साक्षात प्रतिमूर्ति थी, ऐसी श्रद्धालोक की देवता, वात्सल्य वारिधि, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा के पावन पद्मों में सर्वात्मना वंदन करती हूँ।

मैं उऋण भावों से कृतज्ञ हूँ जप एवं ध्यान की निर्मल ज्योति से प्रकाशमान तथा चारित्र एवं तप की साधना से दीप्तिमान सज्जनमणि प.पू. गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने मुझ जैसे अनघड़ पत्थर को साकार रूप प्रदान किया।

मैं अन्तर्हृदय से आभारी हूँ मेरे शोध कार्य की प्रारंभकर्त्ता, अनन्य गुरू समर्पिता, ज्येष्ठ गुरू भगिनी पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा. तथा सेवाभावी पू. दिव्य दर्शना श्रीजी म.सा., स्वनिमग्ना पू. तत्त्वदर्शना श्रीजी म.सा., दृढ़ मनोबली पू. सम्यग्दर्शना श्रीजी म.सा., स्मित वदना पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., मितभाषी पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., समन्वय स्वभावी पू. शीलगुणाजी मृदु भाषिणी साध्वी कनकप्रभाजी, कोमल हृदयी श्रुतदर्शनाजी, प्रसन्न स्वभावी साध्वी संयमप्रज्ञाजी आदि समस्त गुरु भगिनि मण्डल की, जिन्होंने सामाजिक दायित्त्वों से निवृत्त रखते हुए सद्भावों की सुगन्ध से मेरे मन को तरोताजा रखा।

मेरी शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर पहुँचाने में अनन्य सहयोगिनी, सहज स्वभावी **स्थितप्रज्ञा जी** एवं विनम्रशीला **संवेगप्रज्ञा जी** तथा इसी के साथ अल्प भाषिणी **सुश्री मोनिका बैराठी** एवं शान्त स्वभावी **सुश्री सीमा छाजेड़** को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ।

मैं अन्तस्थ भावों से उपकृत हूँ श्रुत समाज के गौरव पुरुष, ज्ञान पिपासुओं के लिए सद्ज्ञान प्रपा के समान, आदरणीय डॉ. सागरमलजी के प्रति, जिनका सफल निर्देशन इस शोध कार्य का मूलाधार है।

इस बृहद् शोध के कार्य काल में हर तरह की सेवाओं के लिए तत्पर, उदारहृदयी श्रीमती मंजुजी सुनीलजी बोथरा (रायपुर) के भक्तिभाव की अनुशंसा करती हूँ।

जिन्होंने दूरस्थ रहकर भी इस ज्ञान यज्ञ को निर्बाध रूप से प्रवाहमान बनाए रखने में यथोचित सेवाएँ प्रदान की, ऐसी श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मरण की इस श्रृंखला में मैं ऋणी हूँ कोलकाता निवासी, अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी शकुंतलाजी मुणोत की, जिन्होंने ढ़ाई साल के कोलकाता प्रवास में भ्रातातुल्य स्नेह एवं सहयोग प्रदान करते हुए अपनी सेवाएँ अनवरत प्रदान की। श्री खेमचंदजी किरणजी बांठिया की अविस्मरणीय सेवाएँ भी इस शोध यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहयोगी बनी।

सहयोग की इस श्रृंखला में मैं आभारी हूँ, टाटा निवासी श्री जिनेन्द्रजी नीलमजी बैद की, जिनके अथक प्रयासों से मुद्राओं का रेखांकन संभव हो पाया।

अनुमोदना की इस कड़ी में कोलकाता निवासी श्री कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, कमलचंदजी धांधिया, विमलचन्दजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा, अजयजी बोथरा, महेन्द्रजी नाहटा, पन्नालाल दूगड़, निर्मलजी कोचर आदि की सेवाओं को विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

बनारस निवासी श्री अश्विनभाई शाह, ललितजी भंसाली, कीर्ति भाई ध्रुव दिव्येशजी शाह, राहुलजी गांधी आदि भी साधुवाद के अधिकारी हैं जिन्होंने अपनी आत्मियता एवं नि:स्वार्थ सेवाएँ बनारस प्रवास के बाद भी बनाए रखी।

इसी कड़ी में बनारस सेन्ट्रल लाइब्रेरी के मुख्य लाइब्रेरियन श्री संजयजी सर्राफ एवं श्री विवेकानन्दजी जैन की भी मैं अत्यंत आभारी हूँ कि उन्होंने

पुस्तकें उपलब्ध करवाने में अपना अनन्य सहयोग दिया।

इसी श्रृंखला में श्री कोलकाता संघ, मुंबई संघ, जयपुर संघ, मालेगाँव संघ, अहमदाबाद संघ, बनारस संघ, शाजापुर संघ, टाटा संघ के पदाधिकारियों एवं धर्म समर्पित सदस्यों ने स्थानीय सेवाएँ प्रदान कर इस शोध यात्रा को सरल एवं सुगम बनाया अत: उन सभी को साधुवाद देती हूँ।

इस शोध कार्य को प्रामाणिक बनाने में कोबा लाइब्रेरी (अहमदाबाद) एवं वहाँ के सदस्यगण मनोज भाई, केतन भाई, अरूणजी आदि, एल. डी. इन्स्टीट्यूट (अहमदाबाद), प्राच्य विद्यापीठ (शाजापुर), पार्श्वनाथ शोध संस्थान (वाराणसी) एवं लाइब्रेरियन ओमप्रकाश सिंह तथा संस्थान अधिकारियों ने यथेच्छित पुस्तकों के आदान-प्रदान में जो सहयोग दिया, उसके लिए मैं उनकी सदैव आभारी रहूंगी।

प्रस्तुत कार्य को जन समुदाय के लिए उपयोगी बनाने में जिनकी पुण्यराशि संबल बनी है उन समस्त श्रुतप्रेमी लाभार्थी परिवार की उन्मुक्त कण्ठ से अनुमोदना करती हूँ।

इन शोध कृतियों को कम्प्यूटराईज्ड, संशोधन एवं सेटिंग करने में अनन्य सहयोगी विमलचन्द्र मिश्रा (वाराणसी) का अत्यन्त आभार मानती हूँ। आपके विनम्र, सुशील एवं सज्जन स्वभाव ने मुझे अनेक बार के प्रूफ संशोधन की चिन्ताओं से सदैव मुक्त रखा। स्वयं के कारोबार को संभालते हुए आपने इस बृहद् कार्य को जिस निष्ठा के साथ पूर्ण किया है यह सामान्य व्यक्ति के लिए नामुमकिन है।

इसी श्रृंखला में शांत स्वभावी श्री रंजनजी, रोहितजी कोठारी (कोलकाता) भी धन्यवाद के पात्र हैं। सम्पूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन एवं कॅवर डिजाइनिंग में अप्रमत्त होकर अंतरमन से सहयोग दिया। शोध प्रबंध की सम्पूर्ण कॉपी बनाने का लाभ लेकर आप श्रुत संवर्धन में भी परम हेतुभूत बने हैं।

23 खण्डों को आकर्षक एवं चित्तरंजक कॅवर से नयनरम्य बनाने के लिए कॅवर डिजाईनर शंभु भट्टाचार्य की भी मैं तहेदिल से आभारी हूँ।

इसे संयोग कहूँ या विधि की विचित्रता? मेरी प्रथम शोध यात्रा की संकल्पना लगभग 17 वर्ष पूर्व जहाँ से प्रारम्भ हुई वहीं पर उसकी चरम पूर्णाहुति भी हो रही है। श्री जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) अध्ययन योग्य सर्वश्रेष्ठ

स्थान है। यहाँ के शान्त-प्रशान्त परमाणु मनोयोग को अध्ययन के प्रति जोड़ने में अत्यन्त सहायक बने हैं। इसी के साथ मैं साधुवाद देती हूँ श्रीजिनरंगसूरि पौशाल, कोलकाता के ट्रस्टी श्री कमलचंदजी धांधिया, कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, मणिलालजी दूसाज आदि समस्त भूतपूर्व एवं वर्तमान ट्रस्टियों को, जिन्होंने अध्ययन एवं स्थान की महत्त्वपूर्ण सुविधा के साथ कम्पोजिंग में भी पूर्ण रूप से अर्थ सहयोग दिया। इन्हीं की पितृवत छत्र-छाया में यह शोध कार्य शिखर तक पहुँच पाया है। इस अवधि के दौरान ग्रन्थ आदि की आवश्यक सुविधाओं हेतु शाजापुर, बनारस आदि शोध संस्थानों में प्रवास रहा। उन दिनों से ही जौहरी संघ के पदाधिकारीगण कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, विमलचन्दजी महमवाल आदि बार-बार निवेदन करते रहे कि आप पूर्वी क्षेत्र की तरफ एक बार फिर से पधारिए। हम आपके अध्ययन की पूर्ण व्यवस्था करेंगे। उन्हीं की सद्भावनाओं के फलस्वरूप शायद इस कार्य का अंतिम प्रणयन यहाँ हो रहा है। इसी के साथ शोध प्रतियों के मुद्रण कार्य में भी श्री जिनरंगसूरि पौशाल ट्रस्टियों का हार्दिक सहयोग रहा है।

अन्ततः यही कहूँगी–

प्रभु वीर वाणी उद्यान की, सौरभ से महकी जो कृति।
जड़ वक्र बुद्धि से जो मैंने, की हो इसकी विकृति।
अविनय, अवज्ञा, आशातना, यदि हुई हो श्रुत की वंचना।
मिच्छामि दुक्कडम् देती हूँ, स्वीकार हो मुझ प्रार्थना।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी–

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

विषयानुक्रमणिका

अध्याय–1 : जिन पूजा का सैद्धान्तिक स्वरूप एवं उसके प्रकार 1-33

• पूजा शब्द का अर्थ विमर्श • पूजा की शास्त्रीय परिभाषाएँ • पूजा के विभिन्न प्रकार–

* एक प्रकारी पूजा * द्विविध प्रकारी पूजा * त्रिविध प्रकारी पूजा * चतुर्विध प्रकारी पूजा * पंचविध प्रकारी पूजा * षड्विध प्रकारी पूजा * अष्टविध प्रकारी पूजा * सत्रह भेदी पूजा * इक्कीस प्रकारी पूजा * 108 प्रकारी पूजा * 1008 प्रकारी पूजा।

अध्याय–2 : जिन पूजा एक क्रमिक एवं वैज्ञानिक अनुष्ठान 34-90

• प्रात:कालीन दर्शन का शास्त्रोक्त विधिक्रम • मध्याह्नकालीन पूजा का मार्मिक अनुक्रम • संध्याकालीन पूजा का क्रमिक वर्णन • आत्मशुद्धि के सोपान रूप सात शुद्धियाँ • मर्यादा पालन के प्रेरक पाँच अभिगम • पूजा विधि के महत्त्वपूर्ण चरण दस त्रिक • जिनपूजा सम्बन्धी विधियों का संक्षिप्त परिचय–

* स्नान करने की विधि * पूजा के वस्त्र पहनने की विधि * पैर धोने की विधि * मुखकोश बाँधने की विधि * चंदन घिसने की विधि * तिलक करने की विधि * अभिषेक (प्रक्षाल) जल तैयार करने की विधि * मन्दिर में प्रवेश करने की विधि * घंटनाद करने की विधि * प्रदक्षिणा देने की विधि * स्तुति बोलने की विधि * मूल गर्भगृह में प्रवेश करने की विधि * निर्माल्य उतारने की विधि * अभिषेक करने की विधि * अंगलुंछन करने की विधि * विलेपन करने की विधि * केशर पूजा की विधि * पुष्प पूजा करने की विधि * धूप पूजा की विधि * दीपक पूजा की विधि * नृत्य पूजा (चामर ढुलाने) की विधि * दर्पण दर्शन एवं पंखी बिंझने की विधि * अक्षत पूजा की विधि * नैवेद्य चढ़ाने की विधि * फल पूजा की विधि * खमासमण देने की विधि * चैत्यवंदन करने की विधि * कायोत्सर्ग करने की विधि *परमात्मा को बधाने की विधि * मन्दिर से

बाहर निकलने की विधि * न्हवण जल लगाने की विधि * चबूतरे पर बैठने की विधि।

अध्याय–3 : अष्ट प्रकारी पूजा का बहुपक्षीय अनुशीलन 91-171

• अष्ट प्रकारी पूजा विधि एवं दोहों का सार्थ विवरण • अष्ट प्रकारी पूजा के सारगर्भित पहलू–

* **जल पूजा** का अभिप्राय और उसके कारण * जलपूजा में उपयोगी जल का स्वरूप * जिनेश्वर परमात्मा का अभिषेक कैसे करें? * निर्माल्य किसे कहते हैं? तथा प्रक्षाल आदि निर्माल्य द्रव्यों का क्या करना चाहिए? * अभिषेक पूजा का माहात्म्य एवं विशिष्ट घटनाएँ * जल पूजा सम्बन्धी जन धारणाएँ * जल पूजा आत्मशुद्धि का प्रतीक कैसे?

* **चंदन पूजा** का अर्थ और उसके प्रयोग * चंदन पूजा की पूर्व तैयारी * चंदन पूजा करने की शास्त्रोक्त विधि * नव अंग पूजा के मौलिक तथ्य * चंदन पूजा के विषय में जन धारणाएँ * चंदन पूजा के लाभ एवं वैशिष्ट्य * चंदन पूजा का संदेशात्मक रूप।

* **पुष्प पूजा** का शास्त्रोक्त स्वरूप एवं प्रयोजन * पुष्प पूजा के विविध पक्ष * पुष्प पूजा का ऐतिहासिक महत्त्व * पुष्प पूजा के सकारात्मक पहलू * पुष्प पूजा का प्रतीकात्मक रूप * अंग, अग्र एवं भावपूजा में मुख्य अंतर।

* **धूप पूजा** का मौलिक स्वरूप * धूप पूजा की प्रचलित विधि * धूप पूजा विषयक जन मान्यता * धूप पूजा का प्रेरणास्पद स्वरूप एवं उसके लाभ।

* **दीपक पूजा** का तात्त्विक स्वरूप * दीपक पूजा सम्बन्धी आम धारणा * दीपक पूजा की विशेषताएँ एवं लाभ।

* **अक्षत पूजा** का लाक्षणिक स्वरूप * अक्षत पूजा सम्बन्धी जन अवधारणाएँ * अक्षत पूजा का वैशिष्ट्य एवं फायदे।

* **नैवेद्य पूजा** का आध्यात्मिक स्वरूप * नैवेद्य पूजा सम्बन्धी जन मान्यता * नैवेद्य पूजा की महत्ता।

* **फल पूजा** का पारमार्थिक स्वरूप * फल पूजा सम्बन्धी जन धारणा * फल पूजा का माहात्म्य एवं लाभ।

• अष्ट प्रकारी पूजा संबंधी सावधानियाँ–

* जल पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ * चन्दन पूजा संबंधी सावधानियाँ

* पुष्प पूजा संबंधी सावधानियाँ * धूप पूजा संबंधी सावधानियाँ * दीपक पूजा संबंधी सावधानियाँ * अक्षत पूजा संबंधी सावधानियाँ * नैवेद्य पूजा संबंधी सावधानियाँ * फल पूजा संबंधी सावधानियाँ * चामर पूजा संबंधी सावधानियाँ * दर्पण पूजा संबंधी सावधानियाँ * वस्त्र पूजा संबंधी सावधानियाँ * आरती-मंगल दीपक में रखने योग्य सावधानियाँ।

• भावों की वीणा पर बजाएं मुक्ति की सरगम–

* जल पूजा से करें अंतर मल का शोधन * चंदन पूजा से करें तन-मन को शीतल * पुष्प पूजा से महकाएँ आत्म सुमन * धूप पूजा से पाएं शील सुगन्ध * दीपक पूजा से जलाएं अध्यात्म दीप * अक्षत पूजा से प्रकटे आत्मा का अक्षय स्वरूप * नैवेद्य पूजा से प्राप्त हो अणाहारी स्वरूप * फल पूजा से प्रकटाएँ गुण सौन्दर्य * चामर पूजा से करें भव नृत्य का नाश * दर्पण पूजा से निहारें स्वयं का जिन रूप * वस्त्र पूजा से तोड़ें आसक्ति का बंधन * आरती और मंगल दीपक से पाएं मुक्ति की मंजिल।

अध्याय–4 : भावे भावना भाविए 172-191

• भाव पूजा के मननीय पहलू • चैत्यवंदन की विविध कोटियाँ • भाव पूजा में उपयोगी विभिन्न सूत्र एवं मुद्राएँ • चैत्यवंदन विधि एक लाभप्रद अनुष्ठान • भाव पूजा का प्रारंभ इरियावहियं सूत्र से ही क्यों? • चैत्यवंदन विधि की पारमार्थिक उपादेयता • आर्य संस्कृति में भाव पूजा का महत्त्व • भाव पूजा में रखने योग्य विवेक • चैत्यवंदन विधि में उपयोग • परमात्मा की स्तुति एवं स्तवन क्यों? • स्तवन के शास्त्रोक्त लक्षण • सौ वर्ष प्राचीन स्तवन की महत्ता क्यों? स्तवन बोलने में रखने योग्य विवेक • स्तवन, मानसिक शान्ति का अचूक उपाय।

अध्याय–5 : मन्दिर जाने से पहले सावधान 192-205

• जैन वांगमय में आशातना का स्वरूप • चैत्यवंदन महाभाष्य में वर्णित पाँच आशातनाएँ • जिन मन्दिर संबंधी उत्कृष्ट 84 आशातनाएँ • सावधानी रखने योग्य मुख्य स्थान–

* साधर्मिक वर्ग के साथ व्यावहारिक मर्यादाएँ * कर्मचारी वर्ग से कैसा व्यवहार करें? * पदाधिकारियों द्वारा रखने योग्य विवेक।

• जिन पूजा में वरख का प्रयोग करना चाहिए या नहीं?

अध्याय–6 : पूजा उपकरणों का संक्षिप्त परिचय एवं ऐतिहासिक विकास क्रम 206-219

• पूजा उपकरणों का स्वरूप एवं उनका प्रयोजन • जिन पूजा के उपकरण आगम काल से अब तक • जिन पूजा सम्बन्धी उपकरण एवं उपादान सूची

अध्याय–7 : जिन पूजा विधि की त्रैकालिक आवश्यकता एवं अनुभूतिजन्य रहस्य 220-290

• जिन पूजा की पारमार्थिक महत्ता • सर्वांगीण विकास का महत्त्वपूर्ण चरण जिन पूजा • शारीरिक स्वस्थता एवं तनाव मुक्ति का अनुभूत प्रयोग जिनपूजा • आध्यात्मिक उत्कर्ष में जिनपूजा की सदाशयता • जिन दर्शन के विविध चरण एवं उनकी श्रेयस परम्परा • जिन पूजा एक रहस्यमय अभियान–

* निसीहि त्रिक मर्यादा बोध का अनुपम उपाय कैसे? * प्रदक्षिणा तीन ही क्यों? * लौकिक परिप्रेक्ष्य में तिलक की महत्ता * तिलक क्यों करना चाहिए? * तिलक कहाँ और किसलिए किया जाता है? * तिलक का ऐतिहासिक माहात्म्य * गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर शेर की मुखाकृतियाँ क्यों? * पूजा करते समय मुखकोश क्यों और कैसा बांधना चाहिए? * मुखकोश कब बांधना चाहिए? * मुखकोश बांधने की विधि * पौषध आदि में कंदोरा बांधा जाता है तब पूजा करते समय कंदोरा बांधना चाहिए या नहीं? * जिन पूजा अनामिका अंगुली से क्यों करनी चाहिए? * परमात्मा की पूजा हेतु सफेद वस्त्रों का विधान क्यों? * पूजा के लिए वस्त्र रेशमी हो या सूती?

• घंटानाद-शंखनाद आदि का प्राकृतिक स्वरूप एवं कारण • आरती एवं मंगल दीपक के लौकिक एवं लोकोत्तर लाभ • प्रार्थना का अलौकिक स्वरूप और उसके लाभ • प्रार्थना, परमात्मा के समक्ष क्यों करनी चाहिए? • परमात्मा के शीतल चरणों में क्या कामना करें?

• जिन दर्शन एक लाभ पूर्ण अनुष्ठान • भक्ति वृद्धि का राजमार्ग त्रिकाल पूजा • त्रिकाल पूजा की समय सारणी–

* प्रात: कालीन पूजा का स्वरूप एवं वासक्षेप पूजा के विचारणीय तथ्य * प्रात:कालीन पूजा वासक्षेप से ही क्यों? * मध्याह्नकालीन पूजा के सारभूत

तथ्य * संध्याकालीन पूजा में आरती की महत्ता * त्रिकाल पूजा के बहुपक्षीय लाभ * वर्तमान समय में त्रिकाल पूजा एक समीक्षात्मक चिंतन।

• दर्शन किसका और किसलिए? • परमात्मा का दर्शन बार-बार क्यों करना चाहिए? • कैसे जाएं परमात्मा के दरबार में * राजा कैसे जाएँ? * नगर सेठ एवं श्रीमंत श्रेष्ठी किस प्रकार जाएँ? * सामान्य श्रावक किस प्रकार दर्शन करने जाएँ?

• प्रतिमा पूजन का उद्देश्य विविध परिप्रेक्ष्य में • चंचल मन का वशीकरण मंत्र, जिनपूजा • मानव सभ्यता और जिनपूजा • जिन दर्शन, निज दर्शन करने का National Highway • चैत्यवंदन, भाव पूजा का महत्त्वपूर्ण चरण • पंचामृत अभिषेक के वैज्ञानिक तथ्य • जिनपूजा में विधि एवं क्रमिकता की आवश्यकता क्यों? • जीवन उत्कर्ष का मुख्य आधार नित्य पूजा • जिन पूजा में नियम-मर्यादाओं का विधान कितना सार्थक? • पूजा कब करनी चाहिए? • जिन पूजा में प्रयुक्त मुद्राओं के हेतु एवं लाभ।

• अष्टमंगल का वैश्विक स्वरूप • परमात्मा के प्राकृतिक स्वागत कर्त्ता– अष्टमंगल • अष्टमंगल की रचना कब और कैसे? • अष्टमंगल पूजनीय है या नहीं • विविध परम्पराओं में अष्टमंगल की मान्यता • अष्टमंगल का प्रतीकात्मक स्वरूप एवं उनके रहस्य–

* जैन धर्म में स्वस्तिक का स्थान * अन्य संप्रदायों में स्वस्तिक की महत्ता * विश्व प्रेम का पावन प्रतीक श्रीवत्स * देव विन्यास का सूचक नंद्यावर्त्त * वृद्धि का प्रेरक वर्धमानक * पूर्णता का मंगल उद्‌बोधक मंगल कलश * पवित्रता का पुंज भद्रासन * प्रगति का प्रेरणा स्रोत मीन युगल * आत्म स्वरूप का दर्शक दर्पण * अष्टमंगल मानव जगत को एक ईश्वरीय वरदान * जीवन निर्माण का प्रमुख सूत्र-अष्टमंगल।

अध्याय–8 : जिन पूजा की प्रामाणिकता; ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय संदर्भों में 291-334

• साकार आलम्बन का बदलता स्वरूप • आलम्बन का अर्थ एवं उसकी आवश्यकता • जिन प्रतिमा एक सर्वश्रेष्ठ आलंबन कैसे? • प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में जिनपूजा • आगम साहित्य के आलोक में जिन पूजा • मध्यकालीन साहित्य और जिनपूजा • अर्वाचीन साहित्य में जिनपूजा का बदलता

स्वरूप • दिगम्बर साहित्य में जिन पूजा का महत्त्व • इतिहास के दर्पण में जिन पूजा • जैन मूर्तिकला का गौरवपूर्ण इतिहास • जिन शासन के कीर्तिधर महापुरुष।

अध्याय–9 : सात क्षेत्र विषयक विविध पक्षों का समीक्षात्मक अनुशीलन 335-370

अध्याय–10 : श्रुतसागर से निकले समाधान के मोती 371-388

अध्याय–11 : जिनपूजा सम्बन्धी विषयों की विविध पक्षीय तुलना एवं उनका सारांश 389-398

सहायक ग्रन्थ सूची 399-405

●

अध्याय-1

जिनपूजा का सैद्धान्तिक स्वरूप एवं उसके प्रकार

परमात्म भक्ति मानव जीवन की महानतम पूंजी है। जीवन को साधना से समृद्ध करने का यह अनुपम माध्यम है। मुक्ति फल प्राप्त करने हेतु कल्पवृक्ष के समान वांछापूरक है। भक्ति का एक प्रमुख घटक है– जिनपूजा। धर्मरूपी महल में प्रवेश करने के चार मुख्य द्वारों में प्रथम द्वार जिनपूजा बताया गया है। इसके द्वारा दुष्कर से दुष्कर कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं। पूर्वाचार्यों ने 'पूज्यमाने जिनेश्वरे' पद के आधार पर जिनपूजा का फल बताते हुए कहा है कि परमात्मा की पूजा से समस्त उपसर्गों का क्षय हो जाता है, विघ्न रूपी वलय का छेदन हो जाता है तथा मन विषाद रहित होकर अद्भुत प्रसन्नता की अनुभूति करता है।

मन्दिर दिव्य शक्तियों का संग्रहालय है तथा जिन प्रतिमा उन शक्तियों का Origin point अर्थात मुख्य ऊर्जा स्रोत है। इस तरह जिनपूजा दिव्य शक्तियों को जीवन में अनुप्राणित करने की विशिष्ट प्रक्रिया (Procedure) है। जीवन रूपी उपवन को जिनवाणी रूपी सौरभ से महकाने के लिए जिनपूजा के मूल स्वरूप को जानना, समझना एवं उसे जीवन में अनुप्राणित करना अत्यावश्यक है।

पूजा शब्द का अर्थ विमर्श

पूजा– यह एक प्रसिद्ध शब्द है। सामान्यतया इस शब्द का प्रयोग आराधना, सम्मान, यज्ञ, सत्कार आदि के रूप में होता है। 'पूजा' शब्द की उत्पत्ति 'पूज्' धातु में 'अग्र' विकिरण एवं 'ताप्' प्रत्यय के संयोग से हुई है। 'पूज' धातु पूजार्थक है और ताप् प्रत्यय स्त्रीलिंग के अर्थ में लगता है अतः पूजन करना पूजा है। संस्कृत कोश के अनुसार पूजा, सम्मान, आराधना, आदर, श्रद्धांजलि आदि करना पूजा है।[1] प्राकृत कोश में पूजन, अर्चा, सेवा आदि शब्द पूजा के लिए प्रयुक्त हैं।[2] पंचाशक प्रकरण के अनुसार पूज्यजनों का

सत्कार करना पूजा है इसलिए पूजा शब्द का प्रयोग सत्कार अर्थ में हुआ है।[3]

महापुराण में याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख और मह आदि शब्दों का उल्लेख पूजा के पर्यायवाची के रूप में किया गया है।।[4] सामान्यतया पूज्य जनों का आदर-सम्मान, सत्कार आदि करना पूजा है।

पूजा की शास्त्रीय परिभाषाएँ

विभिन्न आचार्यों एवं ग्रन्थकारों ने पूजा की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ बताई हैं। स्थानांगसूत्र में पुष्प आदि से अर्चना करने को पूजा कहा गया है।[5] आवश्यक निर्युक्ति में मन, वचन, काया की प्रशस्त चेष्टा पूर्वक पूजा करने को पूजन कहा गया है।[6] षोड़शक प्रकरण के अन्तर्गत बताया गया है कि स्व वैभव के अनुसार प्रतिदिन नियत समय पर स्नान, विलेपन, सुगन्धी पुष्प, धूप आदि के द्वारा मोक्षदायक, देवेन्द्र पूजित एवं हितकामियों के लिए पूज्य ऐसे वीतरागी परमात्मा का भक्ति भावों से युत होकर पूजन करना पूजा है।[7] पंचाशक प्रकरण के अनुसार शास्त्रोक्त काल में पवित्र होकर विशिष्ट पुष्प आदि एवं उत्तम स्तोत्र आदि से जिनेश्वर का सत्कार करना पूजा है।[8] कुछ आचार्यों के अनुसार गायत्री आदि पाठपूर्वक सन्ध्या अर्चना करना पूजा है।[9] अष्टाध्यायी में गन्ध, माला, वस्त्र, पात्र, अन्न, पान आदि के प्रदान पूर्वक किए जाने वाले सत्कार को पूजा कहा गया है।[10] प्रवचनसारोद्धार की टीका में भी यथोचित पुष्प, फल, आहार, वस्त्र आदि के द्वारा उपचार करने को पूजा कहा है।[11]

यदि सार रूप में कहें तो पूज्य जनों का आदर-सत्कार करना, उन्हें उत्तम द्रव्य अर्पित करना, उनके उपकारों का स्मरण करना पूजा है।

पूजा के विभिन्न प्रकार

आगमकाल से अब तक उपलब्ध जिनपूजा सम्बन्धी उल्लेखों एवं परिवर्तनों के आधार पर जिनपूजा के अनेक भेद-प्रभेद परिलक्षित होते हैं। शास्त्रकारों ने विविध अपेक्षाओं से जिनपूजा के एक, दो, तीन, चार-पाँच, छः, आठ, चौदह, सत्तरह, इक्कीस, एक सौ आठ, एक हजार आठ आदि अनेक भेदों की चर्चा की है। यहाँ संक्षिप्त में उनका सारभूत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

एक प्रकारी पूजा

जिनपूजा विधि संग्रह के अनुसार अधिक सामग्री के अभाव में केवल अक्षतों से स्वस्तिक करना एक प्रकार की जिनपूजा है।[12]

द्विविध प्रकारी पूजा

विंशतिविंशिका[13], धर्मरत्न करंडक[14], आनंदघन चौवीसी[15], भगवती आराधना[16] आदि में पूजा के दो भेदों की चर्चा की गई है। इन सभी के अनुसार जिनपूजा के द्रव्यपूजा और भावपूजा ऐसे दो भेद किए गए हैं।

1. द्रव्यपूजा– जो पूजा द्रव्य के आश्रित है, वह द्रव्यपूजा कहलाती है। पंचाशक प्रकरण के अनुसार भावस्तव के लिए अनुरागपूर्वक जिन मन्दिर या जिनप्रतिमा का निर्माण करना द्रव्यस्तव है।[17] भगवती आराधना में अरिहंत आदि के उद्देश्य से गंध, पुष्प, धूप, अक्षत आदि का समर्पण करना द्रव्यपूजा है तथा उठकर खड़े होना, तीन प्रदक्षिणा देना, नमस्कार करना आदि शारीरिक क्रियाएँ तथा वचनों से अरिहंत आदि के गुणों की स्तवना करना भी द्रव्य पूजा है।[18] वसुनन्दि श्रावकाचार के अनुसार जल आदि द्रव्यों से प्रतिमा आदि की जो पूजा की जाती है उसे द्रव्यपूजा जानना चाहिए।[19]

समाहारत: द्रव्य अर्पण करके की जाने वाली पूजा द्रव्यपूजा है।

2. भावपूजा– स्तुति-स्तोत्र आदि, जो भावों के आश्रित हैं, उसे भावपूजा कहते हैं।[20] पंचाशक प्रकरण के अनुसार मन, वचन, काय से विरक्त रहना या मनोभावों की शुद्धि रखना भावस्तव है।[21] भगवती आराधना में अरिहंत आदि के गुणों का चिन्तन करने को भावपूजा बतलाया है।[22] वसुनन्दि श्रावकाचार के मतानुसार परम भक्ति के साथ जिनेन्द्र भगवान के अनंत चतुष्टय आदि गुणों का कीर्तन करके जो त्रिकाल वंदना की जाती है उसे भावपूजा जानना चाहिए अथवा पंच नमोकार पदों के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार जाप करने एवं जिनेश्वर परमात्मा जिनेन्द्र के गुणगान को भावपूजन जानना चाहिए। चार प्रकार का ध्यान भी भावपूजा है।[23]

सार रूप में यह कह सकते हैं कि मनोभावों की शुद्धि ही भावपूजा है तथा द्रव्यपूजा ही भावपूजा में हेतुभूत बनती है। जिनाज्ञा के विरुद्ध भौतिक सुखों की अपेक्षा से किये गए अनुष्ठान द्रव्यपूजा और भावपूजा दोनों में ही कारणभूत नहीं बनते।

पंचाशक प्रकरण के अनुसार आप्तवचन के अंशमात्र भी विपरीत प्रतीत होने वाले अनुष्ठानों को यदि द्रव्यस्तव कहा जाए तो अतिव्याप्ति दोष लगता है।[24]

शंका– जिनाज्ञा के विरुद्ध होने वाले अनुष्ठान भी द्रव्यस्तव में परिगणित होंगे या नहीं?

समाधान– यदि ऐसा माने कि वीतराग परमात्मा से सम्बन्ध मात्र होने के कारण कोइ भी अनुष्ठान द्रव्यस्तव हो जाएगा तो परमात्मा की निंदा करना या गाली देना भी द्रव्यस्तव कहलाएगा क्योंकि यह भी तो वीतराग से सम्बन्धित है। यदि ऐसा कहें कि गाली एक अनुचित क्रिया या व्यवहार विरुद्ध क्रिया होने से द्रव्यस्तव नहीं हो सकती। जिनवाणी त्रिकाल सापेक्ष है, अत: वीतराग द्वारा निषिद्ध कार्य द्रव्यस्तव या भावस्तव हो ही नहीं सकते। दूसरा तथ्य यह है कि वीतराग सम्बन्धी विपरीत अनुष्ठान लोक व्यवहार के विरुद्ध हो यह जरूरी नहीं। परन्तु जिनाज्ञा के अनुसार बहुमानपूर्वक उचित कार्य करना ही द्रव्यस्तव है और वही कार्य भावस्तव का हेतु है। आप्तवचन के विरुद्ध कार्य कभी उचित हो ही नहीं सकते।

पंचाशक प्रकरण में यह भी कहा गया है कि जो अनुष्ठान औचित्य के साथ आदर भाव से सर्वथा शून्य हो, ऐसा अनुष्ठान जिनेन्द्र देव से सम्बन्धित होने पर भी द्रव्यस्तव नहीं होता क्योंकि आस्थाशून्य अनुष्ठान कभी भी भावस्तव का हेतु नहीं बन सकता। जो अनुष्ठान भावस्तव का कारण नहीं बने वह द्रव्यस्तव नहीं कहला सकता क्योंकि शास्त्रों में द्रव्य शब्द लगभग किसी तरह की औपचारिकता के बिना योग्यता के अर्थ में रूढ़ है अर्थात जिसमें भावरूप में परिणत होने की योग्यता हो उसे ही द्रव्य शब्द से सम्बोधित किया गया है।[25]

त्रिविध प्रकारी पूजा

जैनाचार्यों ने अनेक प्रकार से त्रिविध पूजाओं का उल्लेख किया है।

आचार्य हरिभद्रसूरि षोडशक प्रकरण में कहते हैं कि कई आगमज्ञाता काय योग आदि की प्रधानता के आधार पर त्रिविध पूजा का वर्णन करते हैं। तदनुसार काया आदि की शुद्धि से युक्त एवं अतिचार रहित पूजा ही श्रेष्ठ है।[26]

प्रथम प्रकार– काय योग आदि की दृष्टि से जिनपूजा के निम्न तीन प्रकार हैं–[27] 1. काययोग प्रधान 2. वचनयोग प्रधान और 3. मनोयोग प्रधान।

1. काययोग प्रधान पूजा– जिनपूजा में जब काया प्रधान बने तब उसे काययोग प्रधान पूजा कहा जाता है। यह पूजा विघ्न की शान्ति के लिए की जाती है। इस पूजा में श्रेष्ठ पुष्प, सुगन्धित माला आदि जिन प्रतिमा के ऊपर चढ़ाए जाते हैं।

2. वचनयोग प्रधान पूजा– पूजा में जब वचन प्रधान हो तो उसे वचन प्रधान पूजा कहा जाता है। यह पूजा अभ्युदय में हेतुभूत बनती है। इस पूजा में वचन के द्वारा अन्य क्षेत्रों से श्रेष्ठ पुष्प आदि सामग्री मंगवाई जाती है।

3. मनोयोग प्रधान पूजा– जब पूजा करते हुए मन की प्रधानता हो तो उसे मनोयोग प्रधान पूजा कहा जाता है। यह पूजा निर्वाण प्राप्ति में निमित्त बनती है। इस पूजा में श्रेष्ठ कुसुम आदि समस्त सामग्री मन से ही संग्रहित की जाती है।

शंका– अधिकांश लोग शंका करते हैं कि जिनपूजा हेतु स्नान आदि करने में जीव विराधना होती है तो फिर वह दोषपूर्ण क्यों नहीं है?

समाधान– स्नान आदि कार्यों में होने वाली जीव विराधना से लगने वाले दोषों की अपेक्षा जिनपूजा के समय उत्पन्न होने वाले परिणाम या शुभ अध्यवसाय अधिक लाभकारी होते हैं। यह अनुभवसिद्ध है।

कई तर्क बुद्धि वाले लोगों का कहना है कि स्नान आदि कार्यों में जीव विराधना होती है। इसके द्वारा भगवान पर कोई उपकार नहीं होता और वे कृतकृत्य भी नहीं होते, अतः ऐसी पूजा करना व्यर्थ है।

आचार्य हरिभद्रसूरि पंचाशक प्रकरण में इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि पूजा करने से हम भगवान के ऊपर किसी भी प्रकार का उपकार आदि नहीं करते फिर भी वह मंत्र आदि के समान लाभकारी है। भगवान के कृतकृत्य होने से नहीं अपितु गुणप्रकर्ष के द्वारा उनकी पूजा सार्थक होती है। इसी कारण संसार में आरंभ करने वाले जीवों के लिए जिनपूजा निष्प्रयोजन नहीं है। इस संबंध में कूप दृष्टांत का वर्णन है। कुँआ खोदते समय अथक परिश्रम, कीचड़ आदि से मलिन होने, थकान आदि अनेक कष्टों को सहन करने के बाद तृषाशमन, मल आदि से निवृत्ति, दीर्घ सुख की प्राप्ति इस तरह अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।[28]

शंका– यहाँ कई लोग तर्क करते हैं कि यदि जिनपूजा हेतु स्नान आदि क्रियाएँ दोषकारी नहीं हैं तो फिर साधु को भी द्रव्यपूजा का अधिकारी मानना चाहिए?

समाधान– साधु के लिए स्नान आदि क्रियाओं का निषेध शरीर विभूषा आदि के कारण किया गया है। जिनपूजा एक धार्मिक आराधना है, अत: उसके निमित्त साधु को स्नान आदि का निषेध किया गया हो, यह शक्य नहीं है। अन्यथा गृहस्थ के लिए भी जिनपूजा आदि के निमित्त हिंसा करने का निषेध होता। गृहस्थ कुटुम्ब परिवार आदि से युक्त होने के कारण अधिकांश समय उसे आरंभ-समारंभ आदि की क्रियाएँ करनी पड़ती है। अत: जिनपूजा के निमित्त से गृहस्थ को स्नान करने का अधिकार है परंतु साधु-साध्वी आरंभ-समारंभ की क्रियाओं से पूर्णत: निवृत्त हैं तथा द्रव्य रहित होने से द्रव्यपूजा के भी त्यागी हैं, इस कारण जिनपूजा निमित्त उन्हें स्नान आदि का अधिकार नहीं है।

गृहस्थ को जिनपूजा निमित्त स्नान आदि करते हुए तथा पुष्प आदि चढ़ाते हुए स्वरूप हिंसा का दोष व्यवहारत: लगता है परन्तु सम्यक्दर्शन की शुद्धि, पुण्यानुबंधी पुण्य का अर्जन और कर्म निर्जरा आदि कई विशिष्ट लाभ भी होते हैं।[29]

द्वितीय प्रकार– षोडशक प्रकरण, द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, चैत्यवंदन महाभाष्य, सम्बोध प्रकरण आदि में फल प्राप्ति के आधार पर त्रिविध पूजा का उल्लेख करते हुए उसके निम्न तीन भेद बताए गए हैं–[30] 1. विघ्नोपशमनी 2. अभ्युदय प्रसाधनी और 3. निर्वाण साधनी।

ये तीनों भेद पूर्ववर्णित तीन भेदों के ही पर्यायवाची नाम हैं। काययोगप्रधान आदि भेद योग की अपेक्षा से है वहीं विघ्नोपशमनी आदि नाम फल की अपेक्षा से है।

1. विघ्नोपशमनी पूजा– जो पूजा विघ्नों का उपशमन करे वह विघ्नोपशमनी पूजा है। सहयोग वंचक नामक काययोग प्रधान विघ्नोपशमनी पूजा सम्यग्दृष्टि श्रावक के द्वारा की जाती है।

2. अभ्युदय प्रसाधनी पूजा– यह पूजा अभ्युदय को प्रकृष्ट रूप से साधती है, अत: इसे अभ्युदय प्रसाधनी पूजा कहा गया है। क्रिया वंचक नामक द्वितीय योग से उत्तरगुणधारी श्रावक वचनयोग प्रधान विघ्नोपशमनी पूजा के अधिकारी माने जाते हैं।

3. निर्वाणसाधनी पूजा– मनोयोग प्रधान यह पूजा मोक्ष प्राप्ति में साधक बनती है, अत: इसे निर्वाणसाधनी पूजा कहा गया है। फल वंचक नामक तृतीय

योग से परम श्रावक निर्वाणसाधनी पूजा का अधिकारी बनता है।

तृतीय प्रकार– त्रिविध पूजा का वर्णन करते हुए विंशति विंशिका में साधन भेद के आधार पर 1. समन्तभद्रा 2. सर्वमंगला और 3. सर्वासिद्धिफला नामक तीन भेद किए गए हैं।[31]

1. समन्तभद्रा पूजा– जिस पूजा में अपनी उत्तम वस्तु देकर या अर्पण करके स्वयं को संतुष्टि करने का भाव मुख्य होता है तथा जिसमें काय योग की प्रधानता रहती है, वह समन्तभद्रा पूजा है। बंधक एवं सम्यग्दृष्टि श्रावक इसके अधिकारी होते हैं। लोक में सर्वाधिक संख्या इन्हीं की देखी जाती है।

2. सर्वमंगला पूजा– प्रथम पूजा में अर्पण की हुई वस्तुओं के औचित्य का विचार करते हुए उन्हें दूसरों से मंगवाकर प्रयोग करना सर्वमंगला पूजा है। यह पूजा वचन क्रिया प्रधान है तथा उत्तरगुणधारी श्रावक इसके अधिकारी होते हैं।

3. सर्वसिद्धिफल पूजा– तीसरी पूजा परमतत्त्व विषयक है। पूजा योग्य उत्तम पदार्थों की गवेषणा से मन को जोड़ना सर्वसिद्धिफला पूजा है। इस पूजा में मनोयोग की प्रधानता रहती है। यह पूजा सर्व प्रकार की सिद्धियों को फल रूप में देती है। अबन्धक योग के परम श्रावक के लिए यह पूजा बताई गई है।

इन पूजाओं के अधिकारी श्रावकों की संख्या उत्तरोत्तर घटती जाती है अर्थात प्रथम समन्त भद्रा पूजा की अपेक्षा सर्वमंगला पूजा करने योग्य श्रावक कम हैं तथा तृतीय वर्ग के आराधक और भी कम हैं। पर श्रावकों की Quality या गुणवत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। संक्षिप्त में कहें तो 'As Quality increases Quantity decreases.'

अब तक वर्णित तीनों प्रकार की पूजाओं का नामकरण मात्र विविध अपेक्षाओं से किया गया है। तीनों का वर्णन एवं इनके अधिकारी प्राय: समान हैं।

चतुर्थ प्रकार– धर्मरत्न करंडक, योगशास्त्र एवं चैत्यवंदन भाष्य में पुष्प, आहार एवं स्तुतिपूर्वक जिनपूजा करने का वर्णन है।[32] यह अंग, अग्र एवं भावपूजा का ही प्रकारान्तर है। पुष्पपूजा के द्वारा अंगपूजा, आहार या नैवेद्य द्वारा अग्रपूजा एवं स्तुति द्वारा भावपूजा की जाती है। कहीं-कहीं पर पुष्प, अक्षत और स्तुति का भी वर्णन मिलता है।[33]

पंचम प्रकार– प्रवचनसारोद्धार, चैत्यवंदन भाष्य आदि में अंग, अग्र एवं भावपूजा के भेद से तीन प्रकार की पूजा बताई गई है।[34]

1. अंग पूजा– परमात्मा के अंग पर चढ़ाने योग्य द्रव्यों को जिन प्रतिमा पर चढ़ाना अंगपूजा है। पूर्व काल में नित्यस्नान न होने से अंगपूजा के रूप में मात्र पुष्प पूजा ही की जाती थी। अत: कहीं-कहीं पर अंगपूजा को पुष्पपूजा भी कहा है। प्रवचनसारोद्धार में उल्लिखित 'पुष्पादि' में आदि शब्द अनुपम रत्न, सुवर्ण, मोती आदि के आभूषणों से प्रतिमा को अलंकृत करने, पवित्र वस्त्रों से परमात्मा की शोभा बढ़ाने एवं गोरोचन कस्तूरी आदि सुगन्धि द्रव्यों से विलेपन करने का सूचक है। वर्तमान में जल, चन्दन एवं पुष्पपूजा को अंगपूजा कहा जाता है।

2. अग्रपूजा– अग्र अर्थात आगे। जिस पूजा में परमात्मा के सामने द्रव्य चढ़ाए जाते हैं, वह द्रव्य पूजा अग्र पूजा कहलाती है। कहीं-कहीं पर अग्र पूजा के लिए आहार, अक्षत या नैवेद्य शब्द का भी प्रयोग हुआ है। अग्र पूजा परमात्मा के मूल गर्भगृह के बाहर करनी चाहिए। वर्तमान प्रचलित अष्टप्रकारी पूजा में धूप, दीपक, अक्षत, नैवेद्य एवं फल पूजा को अग्रपूजा में समाहित किया गया है।

जिनेश्वर देव की पूजा करते समय उत्तम भावों की वृद्धि के लिए उत्तम द्रव्यों द्वारा अंग एवं अग्र पूजा करनी चाहिए। ये दोनों पूजाएँ द्रव्य पूजा के अन्तर्गत आती हैं।

3. भावपूजा– परमात्मा के समक्ष चैत्यवंदन, नमुत्थुणं, स्तुति, स्तोत्र, नृत्य, ध्यान आदि के द्वारा शुभ एवं शुद्ध भाव करना भाव पूजा है। परमात्मा के शारीरिक गुणों के सूचक, गंभीर विधि वर्ण संयुक्त, भाव विशुद्धि में सहायक संवेग परायण, स्वकृत पाप निवेदन से युक्त, प्रणिधान पुरस्सर, अस्खलित गुण से संयुक्त, महान बुद्धिशाली कवियों द्वारा रचित, उत्तम भावों से गुंफित स्तुति-स्तोत्रों के द्वारा परमात्मा की भावपूजा करनी चाहिए।

षष्ठम प्रकार– षोडशक प्रकरण, चैत्यवंदन भाष्य आदि में पूजा के अन्य प्रकारों के आधार पर 1. पंचोपचारी, 2. अष्टोपचारी एवं 3. सर्वोपचारी – ये तीन भेद किए गए हैं। इनका विस्तृत वर्णन आगे करेंगे।[35]

विवेचित त्रिविध पूजाओं में से वर्तमान में अंग, अग्र एवं भाव पूजा

प्रचलित है। यह अष्टप्रकारी पूजा के रूप में की जाती है। अन्य भेदों का प्रचलन वर्तमान में परिलक्षित नहीं होता।

त्रिविध प्रकारी पूजा के समान ही शास्त्रों में चार प्रकार की पूजा का उल्लेख भी मिलता है।

चतुर्विध प्रकारी पूजा

चार प्रकार की पूजा का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र, ललित विस्तरा, वसुदेव हिंडिका, संबोध प्रकरण आदि में प्राप्त होता है। उत्तराध्ययनसूत्र की टीका में चौथी प्रतिपत्ति पूजा ग्यारहवें, बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थानक वाले जीवों के लिए बताई गई है।[36] आनंदघनजी महाराज रचित नौवें सुविधिनाथ भगवान के स्तवन में यह वर्णन आता है।[37] प्रतिपत्ति अर्थात आज्ञा पालन। परमात्मा की पूर्ण आज्ञा का पालन इन्हीं तीन गुणस्थानों में होता है क्योंकि ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का पूर्णतः उपशम हो जाता है तथा बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थान में उसका सम्पूर्ण क्षय ही हो जाता है। मोहनीय कर्म के अभाव में यह जीव सत्य का सम्पूर्ण आचरण कर सकता है।

देवचंद्रजी महाराज द्वारा रचित आठवें स्तवन के अनुसार नैगम नय की अपेक्षा चौथे गुणस्थान से ही अंशतः प्रतिपत्ति पूजा का प्रारंभ हो जाता है तथा ग्यारहवें, बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थानक में इसका पालन भूत नय की अपेक्षा से जानना चाहिए।[38] ललित विस्तरा, वसुदेव हिंडिका, संबोध प्रकरण आदि में पुष्प, नैवेद्य, स्तोत्र और प्रतिपत्ति पूजा इन चार भेदों का वर्णन करते हुए चारों को उत्तरोत्तर प्रधान माना है।[39] इन्हें अंग, अंग्र, भाव एवं प्रतिपत्ति पूजा भी कहीं-कहीं पर कहा गया है।

ललित विस्तरा[40] में नैवेद्य या आहार के लिए 'आमिष' शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्तमान में आमिष शब्द का जनप्रचलित अर्थ मांस आदि प्राणिज भोजन पदार्थ (non-veg food) होता है। मूलतः आमिष शब्द अनेकार्थक है। जैसे कि मांस, भोज्य वस्तु, रोचक वर्ण आदि का लाभ, संचय का लाभ, रोचक रूप, रोचक शब्द, नृत्य आदि इन्द्रिय विषय, भोजन इत्यादि। यहाँ पर उचित एवं यथासंभव अर्थों का योजन करना चाहिए। तदनुसार प्रस्तुत अधिकार में आमिष का अभिप्राय मांस आदि अभक्ष्य वस्तुएँ नहीं हैं। दूसरा तथ्य यह है कि श्रावक वही पदार्थ मंदिर में चढ़ाता है जो वह स्वयं उपयोग में ले सकता है।

मांस आदि पदार्थ तो श्रावक के लिए ही सर्वथा निषिद्ध है तो फिर वह परमात्मा के समक्ष यह सब पदार्थ कैसे चढ़ा सकता है? अत: यहाँ पर मांस आदि को छोड़कर शेष साधनों से आमिष पूजा समझनी चाहिए। पूर्व वर्णित पुष्प, आहार एवं स्तोत्र पूजा में प्रतिपत्ति पूजा मिलाने पर चार प्रकार की पूजा निष्पन्न होती है। देशविरति श्रावक को इन चारो प्रकार की पूजा करनी चाहिए तथा सर्वविरति साधु स्तोत्र और प्रतिपत्ति पूजा कर सकते हैं।

इसमें मुख्य रूप से स्तोत्र पूजा एवं प्रतिपत्ति पूजा का महत्त्व रहा हुआ है।

स्तोत्र पूजा– 1008 लक्षणों से युक्त भगवान के शरीर, उपसर्ग एवं परिषह जय के लिए प्रभु के आचरण, श्रद्धा, ज्ञान, विरति आदि परिणामों तथा केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि गुणों का वर्णन करने वाले गंभीर स्तोत्रों को प्रणिधान पूर्वक बोलना स्तोत्र पूजा है।

राग-द्वेष या मोह के कारण हुई गलतियों एवं दोषों का स्तुति आदि के माध्यम से परमात्मा के समक्ष आलोचन या प्रायश्चित्त करना भी एक प्रकार की स्तोत्र पूजा है। इन सभी को परमात्मा के समक्ष चित्त की एकाग्रता एवं अहोभाव पूर्वक बोलना चाहिए।[41]

स्तोत्र पूजा विधि का वर्णन आचारांग सूत्र[42] एवं ललित विस्तरा[43] में प्राप्त होता है।

प्रतिपत्ति पूजा– प्रतिपत्ति पूजा का अर्थ है आप्त पुरुष या सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन। जिनाज्ञा का उत्कृष्ट पालन वीतराग अवस्था में ही होता है। उपशान्त मोह, क्षीणमोह एवं केवलज्ञानी या सयोगी केवली इन तीन प्रकार की आत्माओं को उत्कृष्ट प्रतिपत्ति पूजा इन गुणस्थानकों के साथ ही प्राप्त होती है क्योंकि उनमें वैराग्य, तत्त्वरुचि विरति, अनासक्ति, सर्वथा आत्मशुद्धि इत्यादि रूप सर्वज्ञ की आज्ञा पूर्ण रूप से आत्मसात हो चुकी है। इसी कारण वे उत्कृष्ट प्रतिपत्तिपूजा रूप भावपूजा के श्रेष्ठ आराधक हैं।[44]

दिगम्बर ग्रन्थों में भी पूजा के चार प्रकारों का उल्लेख है। महापुराण में 1. सदार्चन (नित्यमह) 2. चतुर्मुख (सर्वतोभद्र) 3. कल्पद्रुम और 4. अष्टाह्निक इन चार पूजाओं का वर्णन है।[45]

1. सदार्चन (नित्यमह) पूजा– प्रतिदिन गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि स्व सामग्री के द्वारा जिनेन्द्रदेव की पूजा करना सदार्चन अथवा नित्यमह पूजा

कहलाता है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार भक्तिपूर्वक अर्हन्तदेव की प्रतिमा और मन्दिर का निर्माण करना तथा दानपत्र लिखकर गाँव, क्षेत्र आदि का दान देना भी सदार्चन कहलाता है। अपनी शक्ति के अनुसार मुनियों को नित्यदान देते हुए जो पूजा की जाती है वह नित्यमह कहलाती है।

2. चतुर्मुख (सर्वतोभद्र) पूजा– महामुकुट बद्ध राजाओं के द्वारा किया गया यज्ञ चतुर्मुख यज्ञ या सर्वतोभद्र पूजा कहलाता है।

3. कल्पद्रुम पूजा– जो पूजा चक्रवर्तियों के द्वारा किमिच्छक दान देकर की जाती है तथा जिससे जगत के सर्व जीवों की आशा पूर्ण होती है वह कल्पद्रुम पूजा कहलाती है।

4. अष्टाह्निक पूजा– जगत में अत्यंत प्रसिद्ध सभी के द्वारा की जाने वाली पूजा अष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

इन चारों पूजाओं में पूजा के स्थान पर यज्ञ शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु यहाँ यज्ञ का अर्थ प्रसंगोपेत पूजा ही लेना चाहिए।

यद्यपि वर्तमान में चतुर्विध प्रकारी पूजाओं का अनुपालन नहीं किया जाता है परन्तु ललित विस्तरा में वर्णित पूजा करना संभव है। प्रतिपत्ति पूजा का जघन्य पालन तो किया जा ही सकता है। साधुओं द्वारा इसका पालन अवश्य किया जाता है। अत: पूर्णत: इनका लोप हो गया है, ऐसा नहीं कह सकते।

पंचविध प्रकारी पूजा

पाँच प्रकार की पूजाओं से युक्त पूजा को शास्त्रीय भाषा में पंचोपचारी पूजा कहा जाता है। सामान्यतया जो पूजा पाँच प्रकार के उपचारों से युक्त है वह पंचोपचारी पूजा है।

भगवती सूत्र में आगम प्रसिद्ध पाँच प्रकार के विनय स्थान से युक्त होकर पूजा करने को पंचोपचारी पूजा कहा गया है।[46] यहाँ विनय स्थान से तात्पर्य पाँच प्रकार के अभिगम रूप आचार से है। पाँच अभिगम के नाम निम्न हैं– 1. सचित्त का त्याग, 2. अचित्त द्रव्य का अत्याग, 3. एक पट्ट का उत्तरासंग, 4. अंजलिबद्ध नमस्कार और 5. प्रणिधान (मन की एकाग्रता)।

चैत्यवंदन भाष्य एवं दर्शनशुद्धि प्रकरण में पूर्व वर्णित पंचोपचारी पूजा के साथ राजा आदि शासन अधिकारियों के द्वारा 1. छत्र, 2. वाण, 3. मुकुट, 4. खड्ग और 5. चामर इन पाँच राज चिह्नों के त्याग करने को भी पंचोपचारी

पूजा कहा है।[47] राजा आदि के द्वारा स्व-सम्मान सूचक राजचिह्नों का त्याग किया जाना परमात्मा के समक्ष उनकी लघुता को प्रकट करता है।

षोडशक प्रकरण एवं द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका के अनुसार दोनों हाथ, दोनों घुटने एवं मस्तक इन पाँच अंगों से भगवान को नमस्कार करना पंचोपचारी पूजा है।[48] भगवती सूत्र में उल्लेखित पंचोपचारी पूजा का भी इसमें समर्थन किया गया है।

उपदेश तरंगिणी के अनुसार गन्ध, माल्याधिवास, संस्कार विशेष, धूप एवं दीपक के द्वारा अथवा पुष्प, अक्षत, गन्ध, धूप, दीप के द्वारा जो पूजा की जाती है, वह पंचोपचारी पूजा है।[49]

चैत्यवंदन महाभाष्य, श्राद्धविधि प्रकरण, सम्बोध प्रकरण में भी उपदेश तरंगिणी में वर्णित पुष्प, अक्षत, गन्ध, धूप एवं दीपक से युक्त पंचोपचारी पूजा का समर्थन किया गया है।[50] योगिराज आनंदघनजी महाराज सुविधिनाथ भगवान के स्तवन में भी पंचोपचारी पूजा का उल्लेख करते हैं।

कुसुम अक्षत वर वास सुगन्धि धूप दीप मन साखी रे,
अंगपूजा पणभेद सुणी ने गुरु मुख आगम भाखी रे ।।

दिगम्बर परम्परा में वर्णित चतुर्विध प्रकारी पूजाओं में ऐन्द्रध्वज महायज्ञ जो कि इन्द्रों द्वारा किया जाता है, उसे मिलाकर पूजा के पाँच भेद भी माने गए हैं। सागार धर्मामृत एवं चारित्रसार में भी इन्हीं पाँच प्रकार की पूजाओं का उल्लेख किया गया है।[51]

षड्विध प्रकारी पूजा

वसुनन्दि श्रावकाचार में निक्षेपों के आधार पर पूजा के छः प्रकार बताए गए हैं– 1. नाम, 2. स्थापना, 3. द्रव्य, 4. क्षेत्र, 5. काल और 6. भाव।[52] इन छः भेदों की अपेक्षा जिन पूजा छः प्रकार से की जा सकती है।

1. नाम पूजा– अरिहन्त आदि का नाम उच्चारण करके विशुद्ध प्रदेशों से जो पुष्पक्षेपण किये जाते हैं, उसे नाम पूजा जानना चाहिए।

2. स्थापना पूजा– जिनेश्वर भगवान की सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना ऐसे दो प्रकार की स्थापना पूजा बताई गई है। आकारवान वस्तु में अरिहन्त आदि के गुणों का आरोपण करना सद्भाव स्थापना पूजा है। अक्षत, वराटक आदि में अपनी बुद्धि से अमुक देवता का आरोपण करना असद्भाव

स्थापना पूजा है।

3. द्रव्यपूजा– अरिहन्त परमात्मा के उद्देश्य से गंध, पुष्प, धूप, अक्षत आदि समर्पण करना द्रव्य पूजा है। इसी प्रकार उठकर खड़े होना, तीन प्रदक्षिणा देना, नमस्कार आदि शारीरिक क्रिया करना, वचनों से अरिहन्त आदि के गुणों की स्तवना करना भी द्रव्य पूजा है। जल आदि द्रव्य से प्रतिमा आदि की जो पूजा की जाती है वह भी द्रव्य पूजा है।

4. क्षेत्रपूजा– तीर्थंकर परमात्मा की कल्याणक भूमियों अथवा अतिशय स्थली आदि में पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करना क्षेत्र पूजा है।

5. काल पूजा– कल्याणक तिथियों के दिन भगवान का अभिषेक करना तथा नन्दीश्वर पर्व एवं अन्य पर्वों में जो महिमा गाई जाती है उसे काल पूजा जानना चाहिए। क्योंकि उक्त काल की संकल्पना करके यह द्रव्यपूजा की जाती है।

6. भावपूजा– अर्हन्त आदि के गुणों का चिन्तन करना भावपूजा है। भगवान के अनंत चतुष्ट्य आदि गुणों का कीर्तन करना, त्रिकाल वंदना, पाँच नमस्कार पदों अथवा स्तोत्र आदि के द्वारा गुणगान करना भावपूजा है।

षड्विध प्रकारी पूजा का उल्लेख यद्यपि श्वेताम्बर परम्परावर्ती आगमों में नहीं है। परन्तु निक्षेपों को वहाँ भी इसी रूप में माना है अतः यह पूजा वहाँ भी स्वीकृत होनी चाहिए। वर्तमान में षड्विध प्रकारी पूजा का आचरण संभव है।

अष्टविध प्रकारी पूजा

जैन वाङ्मय में अष्टोपचारी पूजा का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। वर्तमान प्रचलित अष्टप्रकारी पूजा एवं अष्टोपचारी पूजा भिन्न-भिन्न है यद्यपि दोनों में कुछ समानताएँ भी परिलक्षित होती हैं। अष्टोपचारी के अन्तर्गत भी अनेक भेद देखे जाते हैं।

अष्टोपचारी पूजा– आठ अंगों द्वारा जिस पूजा में उपचार किया जाए वह अष्टोपचारी पूजा कहलाती है। मस्तक, छाती, पेट, पीठ, दो हाथ और दो साथल–इनके द्वारा साष्टांग प्रणाम करना अष्टोपचारी पूजा है।[53]

द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका आदि के अनुसार उपलक्षण से गन्ध माल्यादि के द्वारा पूजा करना भी अष्टोपचारी पूजा जानना चाहिए। इसी के साथ दो पैर, दो घुटने, हृदय, मस्तक मन और वचन आदि आठ अंगों से युक्त प्रणाम को भी

अष्टोपचारी पूजा कहा गया है।[54]

पूजा प्रकरण में उमास्वाति ने वास, धूप, अक्षत, दीपक, बलि, जल और फल इन उत्तम द्रव्यों से भगवान की अष्टप्रकारी पूजा करने को अष्टोपचारी पूजा कहा है।[55]

सम्बोध सप्तति में पुष्प, गन्ध, धूप, अक्षत, दीपक, फल, जल और नैवेद्य के विधान से जिनपूजा आठ प्रकार की बताई गई है।[56]

सम्बोध प्रकरण, चैत्यवंदन महाभाष्य, श्री चन्द्र महत्तरजी कृत अष्टोपचारी पूजा, उपदेश माला की 'दो घट्टी' टीका आदि में इन्हीं आठ प्रकारों से पूजा करने को अष्टोपचारी पूजा कहा गया है परंतु क्रम में अंतर परिलक्षित होता है। वास पूजा के स्थान पर कहीं-कहीं पर गन्ध पूजा का उल्लेख है।[57]

दर्शन शुद्धि प्रकरण में कुसुम, अक्षत, धूप, दीपक, वास ,फल, घृत एवं जल के द्वारा अष्टोपचारी पूजा करने का वर्णन है।[58]

आचारोपदेश में सबसे पहली बार अष्टोपचारी पूजा के अंतर्गत चंदन पूजा का उल्लेख किया गया है। यहाँ वास या गंध पूजा के स्थान पर चंदन पूजा का निर्देश है। इसमें अष्टोपचारी पूजा के क्रम में प्रथम स्थान पर चंदन पूजा एवं अन्तिम स्थान पर जलपूजा का उल्लेख है।[59]

धर्मरत्न करण्डक में आचार्य वर्धमानसूरि ने त्रिविध एवं चतुर्विध पूजा के साथ-साथ अष्टविध पूजा का भी वर्णन किया है। इसमें सुगन्धि पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, अक्षत, फल, घृत एवं जल इस क्रम से अष्टप्रकारी पूजा का उल्लेख है। इसी प्रकरण में अष्टपुष्पी पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मस्तक, हृदय, उदर (पेट), पीठ, दो बाहु और दो पैर इन आठ अंगों पर एक-एक पुष्प चढ़ाना अष्टपुष्पी पूजा कही जाती है। यह पूजा अष्टकर्मों का क्षय करने वाली कही गई है।[60]

अष्टपुष्पी पूजा का वर्णन आचार्य हरिभद्रसूरि रचित पूजाष्टक में भी मिलता है। शुद्धिपूर्वक लाए गए जाई आदि आठ प्रकार के पुष्पों को अष्ट कर्मों से मुक्त, गुणसमृद्ध देवाधिदेव को चढ़ाना शुद्ध अष्टपुष्पी पूजा है। पुण्य बंध में हेतुभूत होने से इस पूजा को स्वर्ग साधिनी भी कहा गया है।[61]

अन्य परम्पराओं में अष्टांग प्रणिपात को ही अष्टोपचारी पूजा मानी गई है, किन्तु यह पूजा न तो शास्त्रों में देखी जाती है और न ही जिन धर्म में

आचीर्ण है।[62]

दिगम्बर परम्परा में भी अष्टप्रकारी पूजा का उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।

लघु अभिषेक पाठ के अनुसार पवित्र जल, सुगन्धित चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीपक, धूप और फल से जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिए।[63]

श्रीपाल चरित्र में मयणा सुंदरी के द्वारा आठ दिनों तक जल, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य और फल आदि आठ प्रकार की पूजा करने का वर्णन है।[64]

वर्तमान प्रचलित श्वेताम्बर परम्परा में नित्यपूजा के रूप में अष्टप्रकारी पूजा का ही प्रचलन देखा जाता है। अष्टप्रकारी पूजा का उद्भव अष्टोपचारी पूजा से ही हुआ है क्योंकि अष्टप्रकारी एवं अष्टोपचारी पूजा में मुख्य भेद स्नपन पूजा को लेकर ही है। वर्तमान में प्रक्षाल को भी पूजा के अन्तर्गत ही समाहित कर लिया गया है जबकि पूर्व काल में आठवीं पूजा के रूप में कलश को जल से भरकर रखने का विधान था। आजकल कलश को भरकर रखने का विधान तो प्रायः लुप्त हो चुका है और उसके स्थान पर प्रथम पूजा के रूप में स्नपन पूजा की जाती है। शेष पूजाएँ समान ही हैं।

सर्वोपचारी पूजा– दशार्णभद्र के समान ठाठ-बाट से भक्ति करते हुए स्वयं की सर्वोत्कृष्ट संपत्ति के द्वारा प्रभुभक्ति करना सर्वोपचारी पूजा है।

औपपातिक सूत्र के अनुसार सर्व ऋद्धि, सर्व भक्ति, सर्व बल, सर्व समुदाय सर्व सम्मान, सर्व विभूति, सर्व विभूषा, सभी प्रकार के पुष्प, गंध, वास, माल्य, अलंकार, सभी प्रकार के वाद्य निनाद से पूजा करनी चाहिए। यह सर्वोपचारी पूजा का एक प्रकार है।[65]

आवश्यक भाष्य के जिनपूजा अधिकार में कहा गया है कि कपूर, चन्दन, कस्तूरी, केसर आदि द्रव्यों से जिनबिम्ब का शक्तिपूर्वक विलेपन करके वैभव के अनुसार उनकी पूजा करना, सुगन्धित पुष्प, सुवर्ण, मौक्तिक, रत्न आदि विविध प्रकार की मालाओं से, सरसों, दही, अक्षत, खाजे, उत्तम लड्डू आदि द्रव्यों से तथा आम आदि सुपक्व फलों सहित संविग्न भावयुक्त होकर नैवेद्य चढ़ाना सर्वोपचारी पूजा है।[66]

राजप्रश्नीयसूत्र एवं ज्ञाताधर्मकथासूत्र में सूर्याभदेव एवं द्रौपदी के द्वारा

अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ विविध द्रव्यों से जिनपूजा करने का उल्लेख है। जिसे सर्वोपचारी पूजा माना गया है।[67]

षोडशक प्रकरण एवं द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका के अनुसार दशार्णभद्र की कीर्ति एवं सर्व ऋद्धि से युक्त पूजा के समान स्वयं की विशिष्ट संपत्ति के अनुरूप की जाने वाली पूजा सर्वोपचारी पूजा कहलाती है।[68]

पंचाशक प्रकरण के अनुसार उत्तम सुगन्धित पुष्प, धूप, सर्वौषधि आदि से युक्त जलों के द्वारा जिन प्रतिमा का न्हवण करना चाहिए। सुगन्धित चन्दन आदि का विलेपन करना चाहिए। नैवेद्य, दीपक, सरसों, दही, अक्षत, गोरोचन तथा अन्य मंगलभूत वस्तुएँ तथा सोना, मोती, मणि आदि की विविध मालाओं से अपनी समृद्धि के अनुसार पूजा करना चाहिए।[69] यह सर्वोपचारी पूजा कहलाती है।

आचार्य जीवदेवसूरि रचित जिनस्नात्रविधि सर्वोपचारी पूजा पर ही आधारित है।

चैत्यवंदन महाभाष्य के अनुसार ऋद्धिवंत गृहस्थ के द्वारा सर्वोपचार से युक्त होकर स्नानाभिषेक, अर्चन, नृत्य-गीत पूर्वक सर्वोपचारी पूजा पर्व दिवसों में अथवा प्रतिदिन की जानी चाहिए। घी, दूध, दही एवं गंधोदक के द्वारा यह स्नान अधिक प्रभावशाली बनता है। पर्व दिनों में गीत, वाजिंत्र आदि के द्वारा सर्वोपचारी पूजा करनी चाहिए।[70]

पद्मचरित और कथारत्नकोश में दूध, दही, घी आदि से अभिषेक करके सर्वोपचारी पूजा करने का वर्णन है।[71]

पूजा प्रकाश में सर्वोपचारी पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रावकों को विधि पूर्वक एवं जयणापूर्वक स्नान आदि क्रिया सम्पन्न करते हुए तथा जिनबिम्ब का सुगन्धित जल से अभिषेक करते हुए गोशीर्ष चंदन से विलेपन पूजा करना चाहिए। इसी के साथ सुगन्धित पुष्प, धूप, दीपक, अक्षत, विविध प्रकार के फल और जलपूरित पात्रों से विशेष पूजा करनी चाहिए।[72] संबोध प्रकरण में स्नान, अर्चन, आभूषण, वस्त्र, फल, बलि, दीपक, नृत्य, गीत, आरती आदि के द्वारा सर्वोपचारी पूजा करने का उल्लेख है।[73]

ब्रह्मसिद्धहस्त समुच्चय में बाह्य सामग्री के न होने पर जाप आदि के द्वारा सर्वोपचारी पूजा करने का वर्णन है। आचार्य हरिभद्रसूरि भी इसका समर्थन करते हैं।[74]

वस्त्र की अपेक्षा सर्वोपचारी पूजा को स्पष्ट करते हुए षोडशक प्रकरण एवं द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका में निर्दिष्ट है कि भक्ति युक्त श्रावक को न्यायोपार्जित धन द्वारा विशुद्ध और उज्ज्वल श्वेत अथवा शुभ (लाल-पीला) वस्त्र पहनकर एवं भावों में वृद्धि करते हुए आशंसा रहित होकर पूजा करनी चाहिए।[75]

यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सर्वोपचारी पूजा के संदर्भ में चिंतन करें तो दैनिक पूजा विधि में तो इसका पालन नहीं होता परन्तु श्रावकों द्वारा कृत महापूजन आदि का समावेश सर्वोपचारी पूजा में ही होता है, क्योंकि महापूजन आदि में अष्टप्रकारी पूजा के साथ-साथ आभरण आदि भी चढ़ाए जाते हैं। इसी प्रकार स्नात्र पूजा का समावेश भी सर्वोपचारी पूजा में होना चाहिए।

सत्रहभेदी पूजा

सत्रह प्रकार के भेदों से युक्त जिनपूजा सत्रहभेदी पूजा कहलाती है। यह पूजा आगमोक्त मानी जाती है। यद्यपि राजप्रश्नीय सूत्र आदि आगमों में पूजा के चौदह प्रकार ही वर्णित हैं परन्तु मध्यकाल में यही भेद चौदह से आगे बढ़कर सत्रह हो गए। सर्वोपचारी पूजा का ही विकसित रूप सत्रहभेदी पूजा है।[76]

आवश्यक चूर्णि में प्राप्त वर्णन के आधार पर ही विभिन्न सत्रहभेदी पूजाओं की रचना की गई है। इन पूजाओं में कुछ-कुछ भेद भी परिलक्षित होता है।[77] मुख्यरूप से बारहवीं शती में अचलगच्छ की स्थापना के बाद यह पूजा प्रचलन में आई।

उपदेशतरंगिणी में सत्रहभेदी पूजा का वर्णन करते हुए स्नपन, विलेपन, चक्षुयुगल (वस्त्रयुगल), वासपूजा, पुष्पारोहण, मालारोहण, वर्णकारोहण (वर्णक-पीठी), चूर्णारोहण, आभरणारोहण, पुष्पगृह, आरती, मंगलदीपक, दीपक, धूपोत्क्षेप, नैवेद्य, श्रेष्ठफल, गीत, नृत्य एवं वाजिंत्र इन सत्रह प्रकारों का निर्देश किया गया है यद्यपि इसमें वर्णित नामों के अनुसार 20 भेद होते हैं।[78]

संबोध प्रकरण में स्नपन, अर्चन, देवदुष्य स्थापन, वासचूर्ण आरोहण, पुष्पारोहण, पंचवर्ण कुसुम वृष्टि, पुष्पगृह, कर्पूर आदि गंध आरोहण, आभरणारोहण, इन्द्रध्वजा से चारों दिशाओं में शोभा करना, अष्टमंगल आलेखन, दीपक आदि अग्निकर्म, आरती के साथ मंगलदीपक, गीत, नृत्य, 108 स्तुतियों के द्वारा परमात्मा का गुण स्तवन ऐसे सत्रह प्रकार की पूजाएँ बताई गई हैं।[79]

जिनलाभसूरिकृत आत्मप्रबोध में स्नपन, विलेपन, वस्त्रयुगल, गंधारोहण, पुष्पारोहण, मालारोहण, वर्णकारोहण, चूर्णारोहण, पताका (ध्वजा) आभरणारोहण, माल्यकलापगृहाकार, पुष्प प्रकट, अष्टमंगल, धूपोत्क्षेप, गीत, नृत्य और वाजिंत्र इन सत्रह प्रकार की पूजाओं का वर्णन है।[80]

अचलगच्छीय मुनि मेघराजजी ने भी इन्हीं सत्रह भेदों का उल्लेख किया है। केवल सप्तमी पूजा में उन्होंने वर्णकारोहण के स्थान पर पंचवर्णी पुष्पों से पूजा करने का उल्लेख किया है।[81]

उपरोक्त वर्णित सत्रहभेदी पूजाओं का नामोल्लेख करने वाले ग्रन्थों में संख्या को लेकर साम्य-वैषम्य देखा जाता है। जैसे कि उपदेशतरंगिणी में सत्रह पूजाएँ कही गई है परन्तु वर्णित पूजाएँ बीस हैं तथा संबोध प्रकरण में सोलह पूजाओं के ही नाम स्पष्ट होते हैं। जिनलाभसूरि कृत सत्रहभेदी पूजा एवं मुनि मेघराज कृत सत्रहभेदी पूजा का निर्माण आगम सूत्रों के आधार पर किया हुआ प्रतीत होता है क्योंकि आगमों का अनुकरण करते हुए उन्होंने भी दीपक, नैवेद्य, फल, आरती एवं मंगलदीपक आदि पूजाओं का समावेश सत्रहभेदी पूजा में नहीं किया है।

इक्कीस प्रकारी पूजा

पूजा के इक्कीस भेदों का सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य उमास्वाति ने पूजा प्रकरण में किया है। तदनन्तर विंशतिस्थानक विचार संग्रह, श्राद्धविधि कौमुदी, आचारोपदेश आदि में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है।

उपदेशतरंगिणी[82] के अनुसार भक्तजनों को अपनी भावना के आधार पर स्नान, विलेपन, आभरण, पुष्प, वास, धूप, दीप, फल, अक्षत, पान, सुपारी, नैवेद्य, जल, वस्त्र, चामर, छत्र, वाजिंत्र, गीत, नाटक, स्तुति, स्तवन एवं कोशवृद्धि (भंडार में यथाशक्ति जेवर, धन आदि रखना) इस तरह इक्कीस प्रकार की पूजाएँ करनी चाहिए।

आचारोपदेश में स्नान, चन्दन, दीप, धूप, पुष्प, नैवेद्य, जल, ध्वजा, वासचूर्ण, अक्षत, सुपारी, पान, कोशवृद्धि, फल, वाजिंत्र, ध्वनि, गीत, नृत्य, छत्र, चामर और आभूषण इन इक्कीस द्रव्यों से पूजा करने का वर्णन है।[83]

सकलचंद्रजी ने पूजा प्रकरण के आधार पर ही इक्कीस प्रकारी पूजा का निर्माण किया है। वह पूजाएँ निम्नोक्त हैं–

स्नपन, वस्त्र, चन्दन, पुष्प, वास, चूआ चूर्ण, पुष्पमाला, अष्टमंगल आलेखन, दीप, धूप, अक्षत, ध्वज, चामर, छत्र, मुकुट, दर्पण, नैवेद्य, फल, नृत्य एवं वाजिंत्र।[84]

आचारोपदेश एवं पूजा प्रकरण में क्रमान्तर अवश्य है फिर भी एक दो पूजाओं को छोड़कर शेष पूजाएँ समान है। पूजा प्रकरण में वर्णित वस्त्र एवं स्तुति पूजा के स्थान पर इसमें ध्वज एवं ध्वनि पूजा का वर्णन है।

सकलचंद्रजी एवं उमास्वाति वर्णित पूजाओं में काफी मतभेद दृष्टिगत होते हैं। सकलचंद्रजी ने पत्र, पूग, वारि, स्तुति और कोशवृद्धि पूजा का वर्णन नहीं किया है। इसी के साथ क्रम में भी भेद है।

वर्तमान समय में इक्कीस प्रकारी पूजा के रूप में तो इसका प्रचलन नहीं देखा जाता यद्यपि संकलचंद्रजी द्वारा वर्णित अधिकांश पूजाओं का सेवन नित्य पूजा में किया जाता है।

108 प्रकारी पूजा

आगम साहित्य का यदि अवलोकन करें तो वहाँ 108 प्रकार से प्रभु पूजा करने का भी वर्णन प्राप्त होता है।

ज्ञाताधर्मकथासूत्र में स्वर्ग में स्थित मणिपीठिका के 'देवच्छन्दक' पर स्थापित शाश्वत प्रतिमाओं के आगे विविध सामग्रियों को 108...108 की संख्या में रखने का विधान है। इनमें 108 घंट, चंदन, कलश, भृंगार (नाली वाले) कलश, दर्पण, थाल, कटोरियाँ, प्रतिष्ठक, मन गुटिका, वातकरणडक, हयकंठ से वृषभ कंठ तक के आभूषण, फूल की छाब मोरपंख से बनी हुई छाब (लोमहस्तक चंगेरी), पुष्पपटलक (छाब के ढक्कन) तैल समुद्गक (तेल की डिब्बी) से लेकर धूपदान आदि तक की समस्त सामग्री 108-108 रखी जाती है।[85]

जिन पूजा विधि संग्रह में उल्लेखित संग्रहणी गाथाओं में भी इन्हीं पदार्थों का नाम निर्देश किया गया है। जैसे– चंदनकलश, भृंगारक, दर्पण, थाल, कटोरा, सुप्रतिष्ठक, मनगुटिका, वातकरक, चित्ररत्न करंडक (विचित्र रत्नयुक्त मंजूषा), हयकंठक, गजकंठक, नरकंठक, चंगेरी पटलक (छाब का ढक्कन), सिंहासन, छत्र, चामर, समुद्गक आदि सब पदार्थ मूर्तियों के आगे रखते हैं।[86]

यहाँ 108-108 विविध प्रकार के पदार्थों से पूजा करने के कारण इसे 108 प्रकारी पूजा कहा गया है।

वर्तमान अपेक्षा से यदि चिंतन करें तो इसमें उल्लिखित अधिकांश पदार्थों का वर्तमान में प्रयोग ही नहीं किया जाता। यह पूजा वर्तमान में प्रचलित भी नहीं है परन्तु महापूजनों में आयोजित 108 पार्श्व पद्मावती पूजन आदि में 108 बार पूजा होने से उसे एक प्रकार की 108 प्रकारी पूजा कह सकते हैं।

1008 प्रकारी पूजा

भगवान ऋषभदेव के जन्माभिषेक का वर्णन करते हुए जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति में इन्द्र आदि देवताओं द्वारा मनाए गए भव्य जन्मोत्सव का वर्णन है।[87] उस समय इन्द्र आदि देवी-देवताओं के द्वारा अष्टोत्तरसहस्र अर्थात 1008 की संख्या में समस्त सामग्री प्रयुक्त की जाती है। तदनुसार 1008 स्वर्ण कलश, चाँदी के कलश, मणियुक्त कलश, सोने-चाँदी के कलश, मणियुक्त स्वर्ण कलश, मणियुक्त चाँदी के कलश, सोने-चाँदी के मणिमय कलश, मिट्टी के कलश, चंदन के कलश, भृंगार (नाली वाले) कलश, आदर्श (दर्पण), थाल, पात्रि (कटोरी), सुप्रतिष्ठक, विचित्र रत्नों के करण्डक (पेटी या मंजूषा), करंडक, पुष्पचंगेरी (फूल छाब) आदि। इसी के साथ सूर्याभदेवता द्वारा की गई पूजा में सर्व चंगेरी (समस्त पूजा सामग्री रखने का पात्र), सर्वपटलक (पूजा सामग्री ढकने का ढक्कन), सिंहासन छत्र, चामर, तैलसमुद्गक (तैल का दीपक या पात्र) सर्वपक्षसमुद्गक, पंखी, धूपदानी, क्षीरोद, समुद्र से उत्पन्न, पद्म, पत्र कमल आदि 1008 की संख्या में ग्रहण किए जाते हैं। इसी प्रकार विविध नदियों, समुद्रों, वनों से विविध सामग्री जैसे– तुअरे पदार्थ, सर्वोषधि, सिद्धार्थक, जल, गंध, माल्य आदि ग्रहण करते हैं। इस तरह अनेक प्रकार की सामग्री 1008-1008 की संख्या में एकत्रित कर परमात्मा का जन्माभिषेक किया जाता है। इसी को 1008 प्रकारी पूजा कहा गया है।

उक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि जैन ग्रन्थों में विविध स्थानों पर विविध प्रकार की पूजाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें से कई पूजाएँ ऐसी हैं जो सभी में Common (समान) हैं या जिनका समावेश हर पूजा में अवश्य रूप से होता है। जैसेकि पुष्प पूजा या अक्षत पूजा आदि, तो कई आचार्यों ने कुछ नई-नई पूजाओं का भी समावेश किया है। यह समस्त परिवर्तन अधिकांशत: देश-काल-परिस्थिति के अनुसार हुए होंगे ऐसा प्रतीत होता है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि पूजा करते समय 108 प्रकार की सामग्री का

प्रयोग किया तो 108 प्रकारी पूजा हो गई और 1008 प्रकार की सामग्री का उपयोग किया तो 1008 प्रकारी। ऐसी स्थिति में वर्तमान प्रचलित विविध पूजन-महापूजन आदि में 6 प्रकार, 8 प्रकार, 11 प्रकार, 17 प्रकार, बीस प्रकार अथवा पदों की पूजाएँ की जाती है तो फिर क्या उन्हें भी अलग-अलग प्रकारी पूजा में गिनेंगे?

वर्तमान प्रचलित पूजन-महापूजन आदि में मुख्य प्रधानता तो अष्टप्रकारी पूजा की ही होती है। इसके अतिरिक्त पद या यंत्र के विभिन्न पदों की उनके भेदों के अनुसार पूजा होती है, अत: यह पूजा के भेद नहीं होकर पूजा योग्य पदों के भेद हैं। इसी कारण इन्हें पूजा के प्रकारों में नहीं गिना गया है। वैसे तो पूजन के नाम से ही इनका पूजा रूप होना स्पष्ट हो जाता है।

इन पूजा भेदों को उल्लिखित करने का मुख्य कारण है आगम काल से अब तक प्रचलित विविध पूजाओं के विषय में हमारी सम्यक जानकारी हो। इसी के साथ किस समय कौन सी पूजा करनी चाहिए तथा किन परिस्थितियों में किस पूजा का सेवन किया जा सकता है और किसे अपवाद रूप में छोड़ा जा सकता है, इसका भी ज्ञान हो जाता है। इसी तरह पूर्वकाल में प्रयुक्त सामग्री एवं वर्तमानकालीन सामग्री का अन्तर भी स्पष्ट होता है। यह अध्याय जिनपूजा की शाश्वतता एवं विविधता को सिद्ध करते हुए उसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को प्रमाणित करता है। इसके माध्यम से जिनपूजा के विषय में प्रसरित विभिन्न भ्रान्तियों एवं शंकाओं का निवारण हो सकेगा तथा आराधक वर्ग नि:शंक होकर जिनपूजा मार्ग पर प्रवृत्त हो सकेगा।

संदर्भ-सूची

1. *संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 628*
2. *पाइअसद्दमहण्णवो, पृ. 611*
3. *पूआ सक्कारो, पंचाशक प्रकरण, पृ. 6/30*
4. *यागो यज्ञ: क्रतु: पूजा सपर्येज्याध्वो मख:। मह इत्यापि पर्यायवचनान्यर्चनाविधे:। महापुराण, 67/193*
5. *पुष्पाऽदिभिरर्चने, स्नानांगसूत्र, स्थान-3, उद्देश-3, उद्धृत अभिधान राजेन्द्र कोश, भा. 5, 1073*
6. *इत्यप्रत्ययान्तस्य पूजनं पूजा। प्रशस्तमनोवाक्कायचेष्टेत्यर्थ:। आवश्यक निर्युक्ति:, भा. 2, पृ. 14*

7. स्नान विलेपन, सुसुगन्धिपुष्प, धूपादिभिः शुभैः कान्तम्।
विभवानुसारतो यत्काले, नियतं विधानेन॥
अनुपकृत परहितरतः, शिवदस्त्रिदशेश पूजितो भगवान्।
पूज्योहितकामानामिति, भक्त्या पूजनं पूजा॥
षोडशक प्रकरण, भा-2, 9/1-2

8. काले सुइभूएणं, विसिट्ठपुप्फाइ एहिं विहिणा उ।
सारथुई थोत्तगरूई, जिणपूजा होइ कायव्वा॥
पंचाशक प्रकरण, 4/3

9. गायत्र्यादिपाठपूर्वके सन्ध्याऽर्चने। उद्धृत– अभिधान राजेन्द्र कोश, भा.5, पृ. 1073

10. गन्धमाल्यवस्त्रपात्रान्नपानप्रदानाऽऽदिसत्कारे।
वही

11. यथौचित्येन पुष्पफलाऽऽहारवस्त्राऽऽदिभिरूपचारे।
प्रवचनसारोद्धार, 10वें द्वार की टीका

12. श्री जिनपूजा विधि संग्रह, पं. कल्याणविजयजी, पृ. 68

13. पूया देवस्स दुहा विन्नेया, दव्वभाव भेएणं।
विंशति विंशिका, 8/1

14. द्रव्यतो भावश्चैव, द्विविधम् देवतार्चनम्।
द्रव्यतो जिनवेशमादि, स्तुतिस्तोत्रादि भावतः॥
धर्मरत्नकरंडक, गा. 45

15. द्रव्य भाव शुचि भाव धरिने, हरखे देहरे जइये रे।
श्री सुविधिनाथ स्तवन, आनंदघन चौबीसी

16. पूजा द्विप्रकारा द्रव्यपूजा भावपूजा चेति
भगवती आराधना 47/159/20

17. द्रव्ये भावे च स्तवो द्रव्ये, भावस्तव रागतः सम्यक।
पंचाशक प्रकरण, 7/2

18. गन्ध पुष्प धूपाक्षतादि दानं अर्हदाद्युद्दिश्य द्रव्य पूजा।
अभ्युत्थान प्रदक्षिणा करण प्रणमनादिका काय क्रिया च वाचा गुणस्तवनं च॥
भगवती आराधना, 47/159/21

19. दव्वेण य दव्वस्स य जा पूजा जाण दव्वपूजा सा।
वसुनन्दि श्रावकाचार, 448

20. स्तुति स्तोत्रादि भावतो भावमाश्रित्य भावपूजेत्यर्थः ।
धर्मरत्नकरण्डक, गा. 45 की टीका

21. भावस्तवः चरणप्रतिपात्ति । पंचाशक प्रकरण, 6/2 की टीका

22. भावपूजा मनसा तद्गुणानुस्मरण। भगवती आराधना, 47/159/22

23. काऊणाणं तचउट्ठयाइ गुणकित्तणं जिणाईणं।
जं वंदणं तियालं किरइ, भावच्चणं तं खु ।।
पंचणमोक्कारयएहिं अहवा जाप कुणिज्ज सत्तीए।
अहवा जिदथोत्तं, वियाणं भावच्चणं णिंत पि ।।
...जं झाइज्जई झाणं भावमहं तं विणिदिट्ठं ।।
वसुनन्दि श्रावकाचार, गा. 456-458

24. यद् वीतरागगामी अथ तत् गर्हितमापि खलु स एवम् ।
स्याद् उचितमेव यत्तत् आज्ञाराधना एवम् ।।
पंचाशक प्रकरण, 6/7 की टीका

25. पंचाशक प्रकरण, 6/7-10

26. कायादि योगसारा त्रिविधा, तच्छुद्धयुपात्तवित्तेन ।
या तदतिचारहिता, सा परमऽन्ये तु समयविदः ।।
षोडशक प्रकरण 9/9

27. षोडशक प्रकरण 9/9-12

28. (क) पंचाशक प्रकरण, 4/10
(ख) न च स्नानादिना कायवधादत्राऽस्ति दुष्टता, दोषदधिक भावस्य तत्राऽऽनुभविकत्वतः। द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, भा-2, 5/27

29. पंचाशक प्रकरण 4/41-42

30. (क) विघ्नोपशमन्याद्या, गीताऽभ्युदयप्रसाधनी चान्या ।
निर्वाणसाधनी च फलदा, तु यथार्थ संज्ञाभिः ।।
षोडशक प्रकरण 9/10

(ख) अन्ये त्वाहुस्त्रिधा योग सारा सा शुद्धिचित्ततः (वित्तशुद्धितः)
अतिचारोज्झिता विघ्नशमाऽभ्युदय मोक्षदा ।।
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, भा. 2, 5/25

(ग) विग्घोवसामिगेगा, अभ्युदयपसाहिणी भवे बीया ।
निव्वुइकरणी तइया, फलयाओ जहत्थनामेहिं।।
चैत्यवंदन महाभाष्य, गा. 213

(घ) सम्बोधप्रकरण, गा. 194

(च) उपदेशतरंगिणी, पृ. 175

31. सव्वगुणसहिगविशाया, नियमुत्तमवत्थुदाणपरिओसा।
कायकिरियापहाणा, समंतभद्दा पढमपूया ।।
बीया उ सव्वमंगलनामा वायकिरिया पहाणेसा।
पुव्वुत्तविसय वत्थुसु, ओचित्ताणयणभेएण ।।
तइया परतत्तगया, सव्वुत्तम वत्थुमाणसनिओगा।
सुद्धमणजोगसारा, विन्नेया सव्व सिद्धिफला ।।

विंशतिविंशिका, 8/3-5

32. विधिना शुचिभूतेन, काले सत्कुसुमादिभिः।
स्तुति-स्तोत्रैश्च गंभीरैः, कर्त्तव्यं जिनपूजनम्।।
चारू-पुष्पा-मिषस्तोत्रै, स्त्रिविधा जिन पूजना।
पुष्पगन्धादिभिश्चान्यै, रष्टधेयं निगद्यते ।।

(क) धर्मरत्न करण्डक, गा. 48-49

शुचिः पुष्पामिष स्तोत्रैर्देवमभ्यर्च्य वेश्मनि।
प्रत्याखानं यथाशक्ति कृत्वा 'देवगृहं' व्रजेत् ।।

योगशास्त्र गा. 122

अंगग्गभावभेया, पुप्फाहारथुइहिं पूयतिगं।
पंचुवयारा अट्ठोवयारा, सव्वोवयारा वा।।

चैत्यवंदन भाष्य, गा. 10

33. पुप्फवत्थथुईहिं, तिविहा पूया मुणेयव्वा।

प्रवचनसारोद्धार द्वा. 1, गा. 69 की टीका

34. (क) वही, प्रवचन सारोद्धार, 1 / 69

(ख) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 10

35. (क) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 10

पंचोपचारयुक्ता काचिच्चाष्टोपचारयुक्ता स्यात्।
ऋद्धिविशेषादन्या, प्रोक्ता सर्वोपचारेति ।।

(ख) षोडशक प्रकरण, 9/3

सा च पंचोपचारा, काचिदष्टोपचारिका।
अपि सर्वोपचारा च, निजसम्पद्विशेषतः ।।

(ग) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/22

36. उत्तराध्ययन सूत्र की शान्त्याचार्य टीका
37. तुरिय भेद पडिवत्ती पूजा, उपशम खीण सयोगी रे।
चउहा पूजा इम उत्तराझयणे, भाखी केवल भोगी रे॥
आनंदघन चौबीसी, सुविधिनाथ स्तवन, गा. 6
38. श्रीचंद्रप्रभ जिन स्तवन, देवचंद्र चौबीसी
39. (क) पुप्फाऽऽमिषस्तोत्र-प्रतिपत्तिपूजानां यथोत्तरं प्राधान्यम्।
ललित विस्तरा
(ख) पूयं वि पुप्फाऽऽमिस थुइ-पडिवत्ति भेयओ चउविहंपि।
जह सत्तिए कुज्जत्ति, इत्येवं चतुर्विधा पूजोक्ता॥
वसुदेवहिंडीका, भा-2
(ग) पुप्फामिसथुइ पडिवत्ति भेएहिं भासिया चउहा।
जहसत्तिए कुज्जा पूया, पूया पूयापसब्भावा॥
सम्बोध प्रकरण 190
40. तत्र 'आमिष' शब्देन मांसभोज्य वस्तुरुचिर वर्णादि लाभ-संचयलाभ रुचिररुपादि शब्द नृत्यादिकामगुण-भोजनादयोऽर्थाः यथासम्भवं प्रकृतभावे योज्याः। देशविरतौ चतुर्विधाऽपि, सरागसर्व विरतौ तु स्तोत्र प्रतिपत्ति द्वे पूजे समुचिते।
ललित विस्तरा टीका, पृ. 45-46
41. (क) पिण्डक्रियागुणगतैर्गम्भीरै र्विविधवर्ण संयुक्तैः।
आशयविशुद्धि जनकेः संवेगपरायणैः पुष्यैः॥
पापानिवेदगर्भैः प्रणिधान पुरस्सरैर्विचित्रार्थैः।
अस्खलितावि्गुण युतैः, स्तोत्रैश्च महामति ग्रथिते॥
(ख) षोडशक प्रकरण, 9/6-7
(ख) पिण्ड क्रिया-गुणोदरैरेषा, स्तोत्रैश्च संगता।
पापागर्हापरेः सम्यक प्रणिधान पुरःसरैः॥
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, भा-2, 5/24
42. आचारांग सूत्र, 1/5/6
43. ललितविस्तरा टीका, पृ. 45
44. ललितविस्तरा टीका, पृ. 47
45. प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्था सदार्चनम्।
चतुर्मुख महः कल्प द्रुमाश्चाष्टाह्निकोऽपि॥
महापुराण, 38/26

46. 1. सच्चित्ताणं दक्कणं विउसरणयाए, 2. अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए,
3. एगसाडिएणं उत्तरासंग करणेणं, 4. चक्खुफ्फासे अंजलिप्पगहेणं,
5. मणसो एगत्तीकरणेणं इत्येवं पंचविध विनयोपदर्शनं कृतम् ।
भगवती सूत्र 2/5/109

47. (क) चैत्यवंदनभाष्य, गा. 20-21
दव्वाण सचित्ताणं, विउसरणमचित्त दव्वपरिभोगो ।
एगएगत्तीकरणं, अंजलिबंद्धो अ दिट्ठिपहे ।।
तह एगसाडएणं, उत्तरसंगेण जिणहरपवेसो ।
पंचविहाऽऽभिगमो, इय अहवा वि य अन्नवा एस।।
अवहट्टु रायककुहाइं, पंचवररायकुहरूवाइं ।
खग्गं छत्तोवाणह, मउडं तह चामराउ य ।।
(ख) दर्शनशुद्धि प्रकरण, गा. 31-33

48. (क) एका पंचोपचारयुक्ता पंचभिः जानुद्वय-करद्वयोत्तमांगलक्षणै-रपचारैर्युवतेति कृत्वा पंचभिः उपचारै अभिगमैः युवतेति वा कृत्वा।
षोडशक प्रकरण, 9/3
(ख) पंचोपचारा जानु-करद्वयोत्तमांगैरुपचारयुक्ता, आगमप्रसिद्धैः पंचभिर्विनयस्थानैर्वा। द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/22

49. पंचोपचारपूजा-गन्धमाल्याधिवासगन्धमाल्यादिसंस्कार विशेष धूपप्रदीपैः अथवा पुष्पाक्षतगन्धधूप दीपैर्वा भवति । उपदेशतरंगिणी, पृ. 175

50. तहियं पंचुवयारा, कुसुमक्खय गंध-धूप-दीवेहिं ।
(क) चैत्यवंदन महाभाष्य, गा. 210
(ख) श्राद्धविधि प्रकरण, पृ. 132
(ग) संबोधप्रकरण, गा. 187

51. (क) सागार धर्मामृत, 1/18, 2/25-29
(ख) चारित्रसार, 43/1
(ग) महापुराण 38/32-33

52. णाम-ठवणा-दव्वे-खित्ते, काले वियाणाभावे य।
छव्विहपूया भणिया, समासओ जिणवरिंदेहिं ।।
उच्चारिऊण णामं, अरुहाईणं विसुद्धदंसम्मि ।
पुप्फाणि जं खिविज्जंति, वण्णिया णामपूया सा ।।

सब्भावासब्भावा दुविहा ठवणा जिणोहि पण्णत्ता।
सायारवंतवत्थुम्मि, जं गुणारोवणं पढमा॥
अक्खय वराऽओ वा अमुगो, एसो त्ति णियबुद्धीए।
संकाप्पिऊण वयणं, एसा विइया असब्भावा॥
दव्वेण य दव्वस्स य, जा पूजा जाण दव्वपूजा सा।
जिणजम्मण-णिक्खमणे, णाणुप्पत्तीए तित्थचिण्हेसु।
णिसिहीसु खेत्तपूजा, पुव्वविहाणेण कायव्वा॥
गब्भावयार जम्माहिसेय, णिक्खमण णाण निव्वाणं।
जम्हि दिणे संजादं, जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा॥
णंदीसरट्ठदिवसेसु, तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु।
जं कीरइ जिणमहिमा, विण्णेया कालपूजा सा॥
काऊणाणं त चउट्ठयाइ, गुणकित्तणं जिणाईणं।
जं वंदणं तियालं, कीरइ भावच्चणं तं खु॥
पंचणमोक्कारएहिं, अहवा जावं कुणिज्ज सत्तीए।
अहवा जिणिंदथोत्तं, वियाण भावच्चणं तं पि॥

(क) वसुनन्दि श्रावकाचार, 381-384; 448, 452-458
(ख) गुणभद्र श्रावकाचार, 212-215, 222-224

53. *अष्टभिरंगैः शीर्षोरउदरपृष्ठबाहुद्वयोरूद्वयलक्षणै-रुपचारोऽस्यामिति हेतोः।*
षोडशक प्रकरण, 9/3

54. *अष्टभिरंगैरुपचारो यस्यां भवति, तानि चामुनि सीसमुरोउदरपिट्ठी दो बाहु उरुआ य अट्ठंगा।*
(क) आवश्यक भाष्य, 160
(ख) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/22

55. *गन्ध धूपाऽक्षतैः स्त्रिग्भिः, प्रदीपैर्बलिवारिभिः।*
प्रधानैश्च फलैः पूजा, विधेया श्रीजिनेशितुः॥
पूजा प्रकरण, 14

56. *वरपुप्फ-गंध-अक्खय-पईव-फल-धूव-नीरपत्तेहि।*
नेविज्जविहाणेहि य, जिणपूया अट्ठहा भणिया॥
(क) पुष्पमाला, 467
(ख) संबोध सप्तति, 71

57. तहियं पंचुवयारा, कुसुमक्खय गंध धूव दीवेहिं।
नेविज्जजलफलेहिं, जुत्ता अट्ठोवयारा वि॥

(क) सम्बोध प्रकरण, 187

तहियं पंचुवयारा कुसुमऽक्खय-गंध-धूव-दीवेहिं।
फल जल नेविज्जेहिं, सहऽट्ठरुवा भवे सा उ॥

(ख) चैत्यवंदन महाभाष्य, 210

वर गंध धूव चुक्ख-क्खएहिं, कुसुमेहिं पवरदीवेहि।
नेविज्ज-फल-जलेहिं य, जिणपूआ अट्ठहा होइ॥

(ग) विजयचन्द केवलि चरित्रे, जिनपूजा विधि-40

पुप्फामिसत्थुईहिं, तिहाऽहवा 'पूयमट्ठहा' कुज्जा।
फल-जल-धूव-क्खय-वास, कुसुम-नेविज्ज दीवेहिं॥

(घ) उपदेशमाला, दोघट्टी टीका, पत्र 417

गन्धैर्माल्यैर्विनिर्यद्बहल परिमलै, रक्षतैर्धूवदीपैः,
सान्नाज्यैः प्राज्यभेदैश्चरुभिरुपहतैः पाकपूतैः फलैश्च।
अम्भः संपूर्णपात्रैरिति हि जिनपतेरर्चनामष्टभेदां,
कुर्वाणा वेश्मभाजः परमपदसुखस्तोममाराल्लभन्ते॥

(च) योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका, 3/120

वर-कुसुम-गंध-अक्खय, फल-जल-नेविज्ज-धूव-दीवेहिं।
अट्ठविह कम्महणाणी, जिण-पूआ अट्ठहा होइ॥

(छ) कुमारपाल प्रतिबोध, पृ. 129

कुसुमक्खय-फल-जल-धूव, दीव-नेविज्ज वास निम्माया।
पूया जिणेसराणं, सा अट्ठविहा णिद्दिट्ठा॥

(ज) अनंतनाथ चरित्र, 8

वर-गंध-धूव-वक्ख-क्खएहिं, कुसुमेहिं पवरदीवेहिं।
नेवेज्ज-फल-जलेहि य, जिणपूया अट्ठहा भणिया॥

(झ) विचारसार प्रकरण, 43

कुसुमक्खय-गंध-पईव-धूव-नैवेज्ज-फल-जलेहिं पुणो।
अट्ठविह कम्महणणीं अट्ठवयारा हवइ पूआ॥

(ल) श्राद्धविधि प्रकरण, पृ. 132

58. कुसुमक्खयधूवेहिं, दीवयवासेहिं सुंदरफलेहिं।
पूआ घय सलिलेहिं अट्ठविहा तस्स कायव्वा ॥
दर्शन शुद्धिप्रकरण, 24

59. आचारोपदेश, गा. 14-27 उद्धृत–जिन पूजा विधि संग्रह, पृ. 63

60. धर्मरत्न करंडक, गा. 49-61

61. अष्टपुष्पी समाख्याता, स्वर्गमोक्षप्रसाधिनी।
अशुद्धेतरभेदेन, द्विधा तत्वार्थदर्शिभिः ॥
शुद्धागमैर्यथालाभं, प्रत्यग्रैः शुचिभाजनैः।
स्तोकैर्वा बहुभिर्वापि, पुष्पैर्जात्यादिसम्भवैः ॥
अष्टापाय विनिर्मुक्त-तदुत्थगुणभूतये।
दीयते देवदेवाय, या सा शुद्धेत्युदाह्यता ॥
संकीर्णैषा स्वरूपेण, द्रप्याद् भावप्रसक्तितः।
पुण्यबन्धनिमित्तत्वाद्, विज्ञेया स्वर्ग साधनी ॥
अष्टक प्रकरण, 3/1-4

62. अन्ने अट्ठुवयारं, भणंति अट्ठंगमेव पणिवायं।
सो गुण सुए न दीसइ, न य आइन्नो जिणमयम्मि ॥
चैत्यवंदन महाभाष्य, 211

63. आभिः पुण्याभिरद्भिः, परिमल-बहूले, नामुना चंदनेन।
श्री दृक्येयैरमिभिः शुचि-सदक चयैरूदगमैरेभिरुदद्यैः ॥
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्भख भवनमिमैर्दीपदद्भिः प्रदीपैः।
धूपैः प्रयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥
लघु अभिषेक पाठ, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 18-19

64. तत्राष्टकपर्यंत प्रपूजय निरंतरं।
पूजा द्रव्यैर्जगत्सारैष्टभेदै जलादिकैः ॥
तच्चंदन सुगन्ध्यंब्रुस्त्रजो व्याधिहराः स्फुटम।
प्रत्यहं त्वपतेर्भक्त्या, प्रयच्छ रोगहानये ॥
श्रीपाल चरित्र, 1-2

65. सव्विड्ढिए सव्वजुत्तिए सव्वबलेणं, सव्वसमुदएणं, सव्वादरेणं, सव्वविभूईए, सव्वविभूसाए, सव्वसंभमेणं, सव्वपुप्फगंध वासमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय सद्दसण्णिणाएणं। औपपातिक सूत्र, 52

66. कप्पूरमलयजेहिं, कत्थूरिय, कुंकुमाइदव्वेहिं।
जिणबिम्बसमालभणं, करेज्ज भत्तीए परमाए ।।
विहवाणुसारि जो पूण, पूयं विरएज्ज सुरहिकुसुमेहिं।
कंचण मोत्तिय-रयणाइ, दामएहिं च विविहेहिं ।।
सिद्धत्थय दहियक्खय-खज्जग-वरलड्डुग्गाइदव्वेहिं।
अंबगमाइकलेहि य, विरएज्ज बलिं सुसंविग्गो ।।
आवश्यक भाष्य, 161, 163, 97

67. (क) राजप्रश्नीयसूत्र, 198
(ख) ज्ञाताधर्मकथासूत्र, 16/119

68. अन्या ऋद्धिविशेषात् दशार्णभद्रादि न्यायेन सर्वोपचारा
ऋद्धिविशेषादन्या प्रोक्ता सर्वोपचारेति।
(क) षोडशक प्रकरण, 9/3
...अपि सर्वोपचारा च निजसम्पद्विशेषात्।
(ख) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/22

69. गंधवरधूवसव्वोसहीहिं, उदगाइएहिं चित्तेहिं।
सुरहिविलेवण-वरकुसुम, दामबलिदीवएहिं च ।।
सिद्धत्थयदहिअक्खयगोरोयण, माइएहिं जहलाभं।
कंचणमोत्तियरयणाइ, दामएहिं च विविहेहिं ।।
पंचाशक प्रकरण, 4/14-15

70. सव्वोवयारजुत्ता, ण्हाण-ऽच्चण-नट्ट-गीयमाईहिं।
पव्वाइएसु कीरइ, निच्चं वा इड्ढिमंतेहिं ।।
घय दुद्ध दहिय-गंधोदयाई, ण्हाणं पभावणाजणगं
सइ गीइ वाइयाई संजोगे कुणइ पव्वेसु।।
चैत्यवंदन महाभाष्य, 212, 202

71. (क) पद्म चरित्त, 159
(ख) कथारत्नकोष, उद्धृत– जिनपूजा विधि संग्रह, पृ. 36, 41

72. तसाइजीवरहिए, भूमिभागे विसुद्धए।
फासुएणं तु नीरेणं, इअरेणं गालिएण उ ।।
काउणं विहिणा ण्हाणं, सेयवत्थ नियंसणो।
मुहकोस तु काऊणं, गिही बिंबाणि पमज्जए ।।

गंधोदएण ण्हावत्ता, जिणे तेल्लोक बंधवे।
गोसीस चंदणाईहिं, विलिपित्ता य पूयए॥
पुप्फेहिं गंधेहिं सुगंधहिं, धूवेहिं दीवेहिं य अक्खएहिं।
नाणाफलेहिं य धणेहिं निच्चं, पाणीयपुन्नेहिं य भावणेहिं॥

पूजाप्रकाश, 23-26

73. *सव्वोवयारपूया न्हवणच्चणभूसणत्थवाईहिं।*
फलबलिदीवाइनट्ठ, गीयआरत्तियाईहिं॥

संबोध प्रकरण, 188

74. *पूजा सर्वोपचाराऽत्र, यथाशक्त्युपपादनात्।*
पुष्पादेस्तदभावे तु, जपशुद्धा परा मता॥

(क) ब्रह्मसिद्धान्त समुच्चय, 250

बाह्यसामग्री विरहे, जपकरणेनाऽपि सा सम्भवति।

(ख) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, (पृ) 5/22

75. *शुचिनाऽऽत्मसंयमपरं, शुभवस्त्रेण वचनसारेण।*
आशंसारहितेन च, तथा तथा भाववृद्धयो चैः॥

षोडशक प्रकरण, 9/5

इयं न्यायोत्थवित्तेन, कार्या भक्तिमता सता।
विशुद्धोज्ज्वलवस्त्रेण, शुचिना संयतात्मना॥

द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/23

76. *राजप्रश्नीयसूत्र, सू. 198*
77. *आवश्यकचूर्णि, उद्धृत– जिनपूजा विधि संग्रह, पृ. 76*
78. *न्हवणविलेवण अंगम्मि, चक्खुजुअलं च वास पूआए।*
पुप्फारूहणं मालारूहणं च, तहेय वन्नयारूहणं॥
चुन्नारूहणं जिणपुंगवाण, आहरणरोहणं चेव।
पुप्फगिहपुप्फगरो, आरत्तिय मंगलपईवो॥
दीवो धूवुक्खेवं, नेवेज्जं सुहफलाण ढोअणयं।
गीअं नट्टं वज्जं, पूआभेआ इमे सत्तर॥

उपदेशतरंगिणी, पृ. 175

79. *सत्तरसभेयभिण्णा न्हवण-च्चण देवदूसठवणं वा।*
तह वासचुण्णरोहण, पुप्फारोहण सुमल्लाणं॥

पणवण्ण-कुसुमवुट्ठी, वग्घारियमल्लदामपुप्फगिहं।
कप्पूरपभिइ गंधच्चण, माहरणाविहियं जं॥
इंदद्धयस्स सोहा करणं, चउसु वि दिसासु जह सत्ती।
अडमंगलाण भरणं, जिणपुरओ दाहिणे वा वि॥
दीवाइ अग्गिकम्मकरणं, मंगल पइव संजुत्तं।
गीयं नट्टं वज्जं, अट्ठाहियसयथुइकरणं॥

संबोध प्रकरण, 46-49

80. ण्हवण विलेवण वत्थजुगं गंधारुहणं च पुप्फरोहणयं।
मालारूहणं वन्नय, चुन्न पडागाण आभरणी॥
मालकलासुयवंसघरं पुप्फप्पगरं च अट्ठमंगलयं।
धूवक्खेवो गीयं, नट्टं वज्जं तहा भणियं॥

आत्मप्रबोध, 27-28

81. अचलगच्छीय सत्रह भेदी पूजा, रचित मेघराजजी

82. स्नानं विलेपन विभूषण पुष्पवास धूप प्रदीपफलतन्दुलपत्रपूगैः।
नैवेद्यवारिवसनैश्चभरातपत्रैर्वादित्रगीतनटनस्तुतिकोशवृद्धया॥
इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा ख्याता सुरासुरनरैश्च कृता सदैव।
खण्डीकृता कुमतिभिः कलिकालयोगाद् यद् यत् प्रियं तदिह भाववशेन योज्यम्॥

उपदेशतरंगिणी, पृ. 175-176

83. स्नात्रैश्चन्दन-दीप-धूप-कुसुमैर्नैवेद्य नीर-ध्वजैर्वासैरक्षत पूग-पत्र सहितैः।
सत्कोशवृद्धया फलैः॥
वादित्र-ध्वनि-गीत-नृत्य-नुत्तिभिश्छत्रैर्वरैश्चामरैर्भूषामिश्च किलैकविंशति विधा पूजा भवेदर्हतः॥ आचारोपदेश, 2/35

84. स्नपन-वस्त्र-चन्दन-पुष्प-वास-चूआ-चूर्ण पुष्पमाला-अष्टमंगलालेखन।
दीप-धूप-अक्षत-ध्वज-चामर-छत्र-मुकुट-दर्पण-नैवेद्य-फल नृत्य वाजिंत्र॥

सकलचंद्रजी कृत इक्कीस प्रकारी पूजा, (उद्धृत– जिनपूजा विधि संग्रह, पृ. 86)

85. (क) ...तासिं णं जिणपडिमाणं पुरतो अट्ठसतं घंटाणं, अट्ठसत्तं चन्दणकलसाणं, एवं अट्ठसतं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं, थालाणं पातीणं, सुपतिट्ठकाणं, मणमुलियाणं वातकरगाणं, चित्ताणं रयवाकरंडगाणं हयकठगाणं, जाव उसभकंठगाणं, पुप्फचंगेरिणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं, पुप्फपडलगाणं, अट्ठसयं जाव तेल्लसमुग्गाणं धूवगडुच्छुयाणं सणिखित्तं

चिट्ठत्ति। तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलज्झया, छत्तातिछत्ता, उत्तमागारा सोलस विहेहिं रयणोहिं उवसोभिया, तंजहा-रयणोहिं जाव रिट्ठेहिं। *जीवाजीवाभिगमसूत्र, सू. 139*

86. *चंदणकलसा भिंगरगा य, आयंसगा य थाला य।*
पाईओ सुपइट्ठा, मणगुलिया वायकरगा य॥
चित्ता रयणकरंडा, हय गय नरकंठगा य चंगेरी।
पडला सिंहासण छत्त-चामरा समुग्गय जुया य॥

जीवाजीवाभिगम सूत्र, सू. 139

87. *तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइरत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ, महग्घं महारिहं, विउलं तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेह तअे णं ते अभिओगा देवा हट्ठ तुट्ठ जाव पडिसुणित्ता, उत्तर पुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमन्ति रत्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं जाव समोणिता अट्ठसहस्सं सोवण्णि अकलसाणं एवं रूप्पमयाणं, मणिमयाणं सुवण्णरूप्पमयाणं, सुवण्णमणिमयाणं, रूप्पमणिमयाणं, सुवण्णरूप्पमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चंदणकलसाणं, एवं भिंगाराणं, आयंसाणं थालाणं, पाईणं, सुपइट्ठगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं, वायकरंडगाणं, पुप्फचंगेरीणं एवं जहा सुरिआभस्स सव्व चंगेरीओ, सव्वपडलगाइं विसेसिअतराइं भाणिअव्वाइं सीहासण-छत्त-चामर-तेल्लसमुग्ग जाव सरिसवसमुग्गा तालिअंटा जाव अट्ठसहस्सं कुडुच्छुगाणं विउव्वंति विउवित्ता साहाविअे विउव्विअे अ..... मलयासुगन्धे य गिण्हंति रत्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छन्ति रत्ता महत्थं जाव तित्थयराभिसेअ उवट्ठवेंति त्ति।''*

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू. 154

●

अध्याय-2

जिनपूजा एक क्रमिक एवं वैज्ञानिक अनुष्ठान

जिनपूजा एक क्रमिक अनुष्ठान है। किसी भी कार्य को करने के लिए उसके विषय में आवश्यक जानकारी रखना उसे करने का तरीका समझना उसके विधि-नियम जानना एवं उनका परिपालन करना अत्यावश्यक होता है। इनमें से किसी एक पक्ष को भी गौण करने पर कार्य में यथोचित सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। लौकिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में तो इस नियम का पूर्ण पालन भी करते हैं। परन्तु जब धार्मिक या आध्यात्मिक क्षेत्र की बात आती है तो सब नियम विस्मृत कर दिए जाते हैं।

कार्य छोटा हो या बड़ा किन्तु विधिपूर्वक करने पर ही वह पूर्णता को प्राप्त होता है। रोटी बनाने जैसा सामान्य कार्य हो, या डॉक्टर द्वारा की जा रही शल्य क्रिया (Operation) या फिर कम्प्यूटर में Software installing सभी को चरणबद्ध ही करना पड़ता है। यदि आप चाहें कि बीच की प्रक्रिया को छोड़ दें तो वह संभव नहीं है। इसी प्रकार जिनदर्शन एवं जिनपूजन सम्बन्धी विधि-नियमों का भी क्रमिक वर्णन जैनाचार्यों ने किया है।

यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जिनदर्शन जिनपूजन सम्बन्धी चर्चा करते हैं तो अधिकांश लोग इसके सही क्रम से अनभिज्ञ हैं। जिन्हें थोड़ी बहुत जानकारी है वे अपनी व्यस्तता, व्यापार आदि का बहाना देकर उसे जैसे-तैसे निपटाना चाहते हैं। किन्तु गहराई से विचारना चाहिए कि रोटी बनाना जो कि एक दैनिक आवश्यक क्रिया है, उसमें यदि रोटी बनाने की विधि का सम्यक रूप से पालन नहीं किया जाए तो क्या होगा? यदि नमक या पानी थोड़ा सा ज्यादा हो जाए, रोटी कम या अधिक सिक जाए, उसे ठीक से बेला न जाए तो वह खाने योग्य नहीं रहती, तो फिर पूजा विधि-क्रम में मनचाहा फेर बदल करने से वह समुचित परिणाम कैसे दे सकती है?

इसी पहलू को ध्यान में रखकर शास्त्रकारों ने जिनदर्शन एवं जिनपूजन का एक सम्यक क्रम निर्धारित किया है, जिससे साधक आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त

कर सकता है। क्रमानुसार क्रिया करने से विधि का सिंचन होता है। इससे मन का तल्लीनता भी अधिक जुड़ती है। क्रिया करते समय यह प्रश्न नहीं उठता कि आगे क्या करना है? नया व्यक्ति भी उसे सहजता से सम्पन्न कर सकता है।

शास्त्रकारों ने परमात्मा के त्रिकाल दर्शन का विधान किया है। यद्यपि आज के Nine to five की जीवनशैली में त्रिकाल दर्शन के क्रम से पूजन करने वाले श्रावक नहीवत रह गए हैं, परंतु सही विधि का ज्ञान होना जरूरी है, ताकि जब संभव हो हम उसका भी परिपालन कर सकें। विशेषरूप से रविवार, छुट्टी के दिन, तीर्थ यात्रा या पर्व आदि के दिनों में। इस हेतु को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में त्रिकाल जिनदर्शन की विधि का निरूपण किया जा रहा है।

जैसा कि त्रिकालदर्शन शब्द से ही ज्ञात होता है तीन तीन बार दर्शन करना। त्रिकाल दर्शन में प्रातःकालीन दर्शन, मध्याह्नकालीन दर्शन एवं संन्ध्याकालीन दर्शन करने का वर्णन है।

प्रातःकालीन दर्शन का शास्त्रोक्त विधि क्रम

जैनाचार्यों ने त्रिकाल पूजा का निरूपण करते हुए उसमें सर्वप्रथम प्रातःकालीन पूजा का निर्देश किया है। उसका विधिक्रम इस प्रकार है–

- सर्वप्रथम प्रमाद का त्याग कर मन को परमात्म दर्शन के भावों से भावित करें। तत्पश्चात शारीरिक आवश्यक क्रियाओं को निपटाकर शुद्ध एवं उचित वस्त्र धारण करें। फिर मन्दिर उपयोगी सामग्री तैयार करें।
- चमड़ें, प्लास्टिक आदि से निर्मित अशुद्ध वस्तुओं का उपयोग नहीं करें।
- जूते-चप्पल आदि पहने बिना नंगे पैर जिन मन्दिर जाना चाहिए। वाहन आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि दूरी आदि का कारण हो तो श्रावकवर्ग अपना विवेक रखें।
- घर से निकलते ही मौन ग्रहण कर लें। सांसारिक विचारों का त्याग करते हुए मन को शुभ भावों से युक्त रखें।
- मार्ग में नीचे दृष्टि रखते हुए जयणापूर्वक मन्दिर की ओर गमन करें।
- शिखर या ध्वजा के दर्शन होते ही हाथ जोड़कर 'नमो जिणाणं' कहें।
- मन्दिर परिसर में प्रवेश करते ही समस्त सांसारिक कनेक्शन को कट-ऑफ करने के लिए प्रथम निसीहि का उच्चारण करें।

• जिनमन्दिर की सीढ़ियों पर प्रथम दाहिने पैर को रखें।

• जिनेश्वर परमात्मा के मुख दर्शन होते ही अंजलिबद्ध प्रणामपूर्वक 'नमो जिणाणं' कहें।

• पुरुषवर्ग परमात्मा की दायीं तरफ और महिलाएँ परमात्मा की बायीं तरफ खड़ी रहें। वहीं से परमात्मा का भाववाही स्तुतियों से गुणगान करें।

• फिर दोहा बोलते हुए परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा दें।

• उसके बाद दूसरी निसीहि का उच्चारण करते हुए मूल गर्भगृह में प्रवेश करें। फिर निर्माल्य द्रव्य को दूर करके, वासक्षेप पूजा करें।

• फिर गंभारे से बाहर आकर धूप, दीप, चामर, दर्पण, अक्षत, नैवेद्य एवं फल पूजा के द्वारा परमात्मा की द्रव्य पूजा करें।

• द्रव्य पूजा पूर्ण होने के पश्चात तीसरी निसीहि का उच्चारण करते हुए भावपूजा रूप चैत्यवंदन करें।

• उसके बाद सामर्थ्य अनुसार नवकारसी आदि का प्रत्याख्यान ग्रहण करें।

• शक्ति अनुसार भंडार भरें।

• परमात्म दर्शन का आनंद अभिव्यक्त करने हेतु घंटनाद करते हुए इस प्रकार जिनालय से बाहर निकलें जिससे कि परमात्मा की ओर पीठ न हो।

• शुभ भावों को स्थिर करने हेतु कुछ समय के लिए शुभ चिंतन करते हुए जिनालय के बाहर बैठें।

• तदनन्तर पुन: आने की भावना करते हुए तीन बार आवस्सही कहकर घर की ओर प्रयाण करें।

मध्याह्नकालीन पूजा का मार्मिक अनुक्रम

त्रिकालपूजा के अन्तर्गत दूसरे क्रम पर मध्याह्नकालीन पूजा का वर्णन है। आजकल प्रात: वेला में जो अष्टप्रकारी पूजा सम्पन्न की जाती है उसका शास्त्रोक्त समय मध्याह्नकाल ही है। मध्याह्नकालीन पूजा का विधिक्रम निम्न प्रकार है–[2]

• सर्वप्रथम अपने घर में अथवा मन्दिर परिसर में स्नान करके देह शुद्धि करें। यहाँ पूर्व दिशा की ओर मुख करके जयणापूर्वक कम से कम पानी में देहशुद्धि करनी चाहिए तथा संभव हो तो परात आदि में बैठकर शुद्धि करनी चाहिए। उस जल को खुली छत आदि पर परठना (डालना) चाहिए।

• स्नान हेतु Bath tub, shower, Swimming pool, Geyser, Shampoo आदि का प्रयोग यथासंभव नहीं करें।

• फिर योग्य दिशा की ओर मुख करके एवं उचित स्थान पर खड़े होकर शुद्ध, अखंड एवं उत्तम मूल्यवाले पूजा के वस्त्रों का परिधान करें। यथासंभव दूसरों के पहने हुए वस्त्र या मंदिर में रखे हुए वस्त्र नहीं पहनें।

• फिर मन को सुंदर भावों से भावित कर जिनेश्वर परमात्मा के गुणों का चिंतन करें।

• उसके बात न्याय-नीति से प्राप्त अष्टप्रकारी पूजा की सामग्री को अहोभाव पूर्वक हाथ में लेकर परमात्मा के दरबार में जाएं। मार्ग में ईर्यासमिति का पालन करें एवं किसी से बातचीत न करें।

• जिनालय की ध्वजा, शिखर आदि का दर्शन होते ही मस्तक झुकाकर एवं दोनों हाथ जोड़ कर "नमो जिणाणं" कहें।

• फिर जहाँ पर भी पैर धोने की व्यवस्था हो वहाँ पर जयणापूर्वक पैर धोकर और पोंछकर जिनमन्दिर में प्रवेश करें।

• जिनमन्दिर के मुख्यद्वार में प्रवेश करते समय मन्दिर की दहलिज का हाथ से स्पर्श कर उसे ललाट पर लगाते हुए प्रथम निसीहि कहकर समस्त सांसारिक गतिविधियों का त्याग करें।

• फिर मूलनायक परमात्मा के दर्शन होने पर "नमोजिणाणं" कहकर अंजलिबद्ध प्रणाम करें।

• तदनन्तर दाहिनी तरफ से परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा दें। प्रदक्षिणा देते समय मन्दिर का सम्यक निरीक्षण करें।

• प्रदक्षिणा देते हुए मन्दिर में कहीं जाला, कचरा आदि दिख जाए तो पहले उसे साफ करें। उसके बाद मन्दिर सम्बन्धी अन्य कोई कार्य हो तो उसे पूर्ण करें। इसी के साथ पेढ़ी आदि की व्यवस्था देखकर आवश्यकता हो तो उसे सुव्यवस्थित करें। फिर पूजा की तैयारी करें।

• चन्दन आदि घिसने हेतु मुख पर आठ पट्ट का मुखकोश बांधें। यहाँ महिलाएँ अलग से रूमाल रखें तथा पुरुष वर्ग खैस (दुपट्टा) से ही मुखकोश बनाएँ।

• यदि प्रक्षाल करना हो तो शुद्ध बरतन में कुए आदि का शुद्ध छना हुआ

जल लेकर पंचामृत अथवा दूध-पानी का मिश्रण तैयार करें।

• चंदन घिसने की शिला (ओरसिया) के आस-पास के क्षेत्र का जयणापूर्वक निरीक्षण एवं प्रमार्जन करें। फिर चन्दन की लकड़ी को धोकर एवं विलेपन हेतु बरास, केशर आदि सुगंधित द्रव्यों को मिलाकर उन्हें तैयार करें। पूजा के लिए अलग रस को कटोरी में निकालें।

• सुगन्धित कोमल पुष्पों को अच्छी तरह उनमें देखकर जीव आदि हों तो उन्हें दूर करें। फिर विवेकपूर्वक उन्हें पुष्प चंगेरी (फूलों की टोकरी) में रखें।

• इसी क्रम में धूप, दीपक, अक्षत आदि समस्त द्रव्य तैयार करें।

• जिनाज्ञा को शिरोधार्य करने हेतु जैन धर्म की प्राप्ति का गौरव करते हुए तिलक लगाएँ। तिलक लगाने हेतु पद्मासन मुद्रा में चौकी पर बैठें एवं ऐसी जगह पर तिलक लगाएं जहाँ परमात्मा की दृष्टि नहीं आती हो। यहाँ पुरुष वर्ग बादाम के आकार का एवं महिलाएँ बिन्दी लगाएं।

• फिर पूजा की सामग्री को लेकर गंभारे के समीप जाएं।

• मधुर एवं गंभीर स्वर में परमात्मा की भावपूर्ण स्तुति करें।

• समस्त सामग्री को धूप के ऊपर फिराएं।

• अंगपूजा सम्बन्धी सामग्री को लेकर मूल गंभारे में दूसरी निसीहि का उच्चारण करते हुए प्रवेश करें। यहाँ पर मन्दिर सम्बन्धी कार्यों का भी त्याग हो जाता है।

• जयणापूर्वक प्रतिमाजी पर रहे हुए निर्माल्य पुष्प, अलंकार, मुकुट कुंडल आदि निकालें।

• मोरपिंछी से जिनप्रतिमा एवं वेदी की प्रमार्जना करें।

पबासन के प्रमार्जन हेतु पूंजणी एवं फर्श की प्रमार्जना हेतु कोमल बुहारी (झाड़ू) का प्रयोग करें।

• शुद्ध जल में भिगाए हुए गीले वस्त्र से प्रतिमाजी पर रही हुई बासी केशर आदि को उतारें। तत्पश्चात विशेष शुद्धि के लिए आवश्यकता अनुसार खसकुंची (वालाकुंची) का प्रयोग अत्यंत कोमलता एवं जयणापूर्वक करें।

• तदनन्तर जलपूजा हेतु समर्पण मुद्रा में पानी के कलश को धारण करें तथा मंत्रोच्चार, दोहे एवं घंटनाद पूर्वक परमात्मा का न्हवण करें। पंचामृत आदि से अभिषेक कर शुद्ध जल से प्रतिमाजी की शुद्धि करें।

कोमलतापूर्वक शुद्ध मुलायम वस्त्र से धीरे-धीरे तीन बार प्रतिमाजी का अंगुलंछन करें।

पबासन को सुखाने के लिए अलग से नेपकिन का प्रयोग करें।

• प्रतिमाजी को अच्छी तरह से पौंछ लेने के बाद पबासन एवं जमीन को सुखा दें ताकि उस पर किसी का पैर नहीं आए।

• प्रक्षाल क्रिया सम्पन्न होने के बाद दोहे बोलते हुए अनामिका अंगुली (ring finger) से प्रभु के नव अंगों की चंदन से पूजा करें। यदि आंगी करनी हो तो बरास, इत्र आदि लगाएँ।

• पूजा करते हुए परमात्मा के नव अंगों की विशेषता एवं रहस्यों का ध्यान करें।

• फिर अरिहंत परमात्मा के अतिशयों का चिंतन करते हुए अर्धखुली अंजली मुद्रा में पुष्पों को ग्रहण कर उन्हें मंत्रपूर्वक परमात्मा पर चढ़ाएँ।

• पूजा करते समय पहले मूलनायक परमात्मा की पूजा करें उसके बाद क्रमशः अन्य जिन प्रतिमाओं की पूजा करें। फिर सिद्धचक्रजी गट्टा, बीशस्थानक यंत्र, गुरुमूर्ति, देवमूर्ति आदि की पूजा करें।

• अंगपूजा सम्पन्न करने के बाद मुखकोश खोल दें तथा गर्भगृह के बाहर आकर अग्रपूजा करें।

• यहाँ अग्रपूजा के अन्तर्गत दोहा बोलते हुए क्रमशः धूप एवं दीपक पूजा करें।

• फिर अक्षत पूजा हेतु शुद्ध, अखंड एवं उत्तम किस्म के चावलों से चौकी पर ढेरी बनाएं तथा तर्जनी अंगुली से स्वस्तिक, सिद्धशिला आदि बनाएँ।

• फिर संपुट मुद्रा में नैवेद्य (मिठाई) धारण कर उसे स्वस्तिक पर चढ़ाएँ।

• फिर समर्पण मुद्रा में फल को ग्रहण हुए मोक्ष प्राप्ति की भावना से सिद्धशिला पर चढ़ाएँ।

• इस तरह अष्टप्रकारी पूजा सम्पन्न कर नृत्य पूजा के रूप में चामर पूजा करें।

• परमात्मा को हृदय में स्थापित करने के भावों से दर्पण पूजा करें।

• आत्मकल्याण के भावों से आरती एवं मंगलदीपक करें।

• द्रव्यपूजा पूर्ण होने के बाद इरियावहियं पूर्वक जाने-अनजाने में लगे हुए दोषों का प्रायश्चित्त करें।

• तदनन्तर तीन खमासमण पूर्वक 'तीसरी निसीहि' बोलकर भावपूजा रूप परमात्मा का चैत्यवंदन करें।

• चैत्यवंदन विधि पूर्ण होने के बाद शुभ संकल्प के रूप में शक्ति अनुसार प्रत्याख्यान ग्रहण करें।

• फिर हर्ष की अभिव्यक्ति हेतु परमात्मा को मोती-अक्षत आदि से बधाएँ एवं घंटनाद करें।

• तत्पश्चात प्रभु मूरत को निहारते हुए परमात्मा की तीनों अवस्थाओं का चिंतन करें। फिर धीरे-धीरे उल्टे कदमों से बाहर निकलें।

• यदि व्यवस्था हो तो बाहर ओटले (चौकी) पर बैठकर पूजा से प्राप्त आनंद की अनुभूति करते हुए मन को शुभभावों में स्थिर करें।

• उसके बाद तीन बार 'आवस्सही' कहकर पुन: आने की भावना के साथ शुभ भावों से घर की ओर प्रयाण करें।

• यदि पूजा के वस्त्रों को अधिक समय तक पहनकर रखा हो या गर्मी आदि के कारण पसीना आया हो तो उन्हें पानी से निकाल देना चाहिए। प्रभुदर्शन करने वालों को अंगपूजा सम्बन्धी विधि छोड़कर शेष विधि का यथावत पालन करना चाहिए। जहाँ पर सुबह में ही प्रक्षाल हो जाता है वहाँ पर प्रात:काल में भी पूर्व वर्णित क्रम से पूजा करनी चाहिए।

संध्याकालीन पूजा का क्रमिक वर्णन

त्रिकालदर्शन की विधि में अन्तिम क्रम संध्याकालीन पूजा का है। परमात्मा के संध्याकालीन दर्शन का शास्त्रोक्त समय सूर्यास्त से 48 मिनट पूर्व है। प्रात:कालीन दर्शन क्रम के समान ही संध्याकालीन दर्शन का क्रम जानना चाहिए। यहाँ प्रदक्षिणा तक का क्रम समान है।[3] इस समय अंग पूजा अर्थात नवांगी पूजा, पुष्प पूजा, जल पूजा आदि नहीं होती है। तत्पश्चात धूप, दीप, चामर आदि से पूजा कर चैत्यवंदन करें। चैत्यवंदन के पश्चात चौविहार, तिविहार आदि का पच्चक्खाण करें। संध्याकालीन दर्शन में मुख्य रूप से आरती उतारी जाती है।

आरती के बाद शुभ भाव करते हुए पूर्व विधि के समान ही जिनमन्दिर से बाहर होना चाहिए।

सूर्यास्त के समय मन्दिर मंगल कर देना चाहिए।

यदि हम पूजा विधिक्रम का आद्यन्त अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि इसमें अनेक प्रकार की मर्यादाओं एवं उपमर्यादाओं का पालन किया जाता है। जब छोटी-छोटी मर्यादाएँ मिलकर एक विराट रूप लेती हैं तो वही हमारे लक्ष्य के रूप में संसिद्धि बन जाती है। विविध चरणों के रूप से निबद्ध ये आवश्यक क्रियाएँ मात्र पूजन विधि के चरण नहीं अपितु मुक्ति महल तक पहुँचाने के सोपान हैं। जो आवश्यकता एवं महत्ता प्रथम सोपान की होती है वही अन्तिम की भी क्योंकि एक सोपान की भी अनुपस्थिति गति में बाधक बन जाती है। जैनाचार्यों ने जिनपूजन-दर्शन का जो सुनियोजित विधिक्रम बतलाया है उसकी जानकारी एवं परिपालना प्रभु भक्ति के समय त्रियोग एकीकरण में सहायक बनती है।

घर से लेकर मन्दिर तक पालन करने योग्य विविध मर्यादाओं की मुख्य विधियाँ निम्न हैं–

1. सात शुद्धियाँ 2. पाँच अभिगम और 3. दस त्रिक।

आत्म शुद्धि के सोपान रूप सात शुद्धियाँ

परमात्मा के दर्शन हेतु जाने से पूर्व सात प्रकार की शुद्धि का पालन करना आवश्यक माना गया है। ये शुद्धियाँ मन, वचन, काया तीनों की शुद्धि करते हुए पूजार्थी को पूजा के योग्य बनाती है। शरीर आदि शुद्ध होने पर मन आदि की तल्लीनता भी बढ़ती है। इसी कारण जैन शास्त्रकारों ने पूजार्थी के लिए सर्वप्रथम इन सात प्रकार की शुद्धियों का निरूपण किया है जो निम्न हैं– 1. अंग शुद्धि 2. वस्त्र शुद्धि 3. मन शुद्धि 4. भूमि शुद्धि 5. उपकरण शुद्धि 6. द्रव्यशुद्धि और 7. विधि शुद्धि।[4]

1. अंग शुद्धि– परमात्मा का दर्शन-पूजन करने से पूर्व जयणापूर्वक कम से कम पानी में शास्त्रोक्त रीति से स्नान करना अंग शुद्धि है। मानव-शरीर मल-मूत्र, श्लेष्म, पसीना आदि अनेक कारणों से प्रति समय अशुद्ध होता रहता है। वहीं परमात्मा की प्रतिमा जो कि पवित्र पदार्थों से निर्मित है तथा अंजनशलाका, प्रतिष्ठा आदि मंत्रयुत विधानों से गुजरने के कारण विशिष्ट परमाणुओं से युक्त हो चुकी है, उसे स्पर्श करने के लिए दैहिक शुद्धता परमावश्यक है। इसी कारण शरीर से जब पीव आदि रिसती हो या शरीर में किसी प्रकार की अशुद्धि हो तो

जिनपूजा का निषेध किया जाता है। इसी के साथ जिनपूजा के लिए जा रहा व्यक्ति यदि गंदा हो या मलिन वस्त्रों से युक्त हो तो अन्य लोगों के मन में उसे देखकर हीन भाव उत्पन्न हो सकते हैं, इससे जिनशासन की हिलना होती है। अत: पूजा करने वालों को इस नियम का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

अंगशुद्धि हेतु स्नानविधि बताते हुए शास्त्रकार भगवंत कहते हैं–

• पूजा हेतु श्रावक Swimming Pool, Bath tub, Shower, नल आदि के नीचे स्नान न करें। स्नान के लिए कुआं, तालाब, हैंडपंप आदि का शुद्ध जल छानकर प्रयोग में लेना चाहिए।

• सुविधा हो तो बाथरूम की अपेक्षा छत आदि खुले स्थान में स्नान करना चाहिए जिससे पानी नाली आदि में न जाए।

• बाथरूम में नहाना हो तो परात में नहाकर पानी को छत, रोड आदि पर परठना चाहिए क्योंकि नाली में पानी जाने से असंख्य समूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति प्रतिक्षण होती रहती है। अत: नाली में पानी न जाए इसकी पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

• स्नान करते समय पूर्व दिशा की तरफ मुख करके प्रमाणोपेत जल एवं शुद्ध द्रव्यों से निर्मित साबुन आदि द्वारा शुद्धि करनी चाहिए।

• Shampoo, Conditioner चर्बीयुक्त साबुन आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• स्नान करते हुए मौन रहना चाहिए, फिल्मी गाने गुनगुनाते हुए नहीं नहाना चाहिए।

• कम से कम एक वस्त्र पहनकर नहाना चाहिए।

• भोजन करने के बाद, बाहर से आने के बाद, अलंकार आदि पहनकर बाथरूम की समस्त खिड़कियाँ आदि बंद करके अथवा पूर्ण नग्न होकर कदापि नहीं नहाना चाहिए।

• गरम एवं ठंडे पानी का मिश्रण करके नहीं नहाना चाहिए।

• उल्टी होने के बाद, कुस्वप्न आने के बाद, हजामत करने के बाद, मैथुन सेवन करने के बाद, श्मशान से आने के बाद अवश्य नहाना चाहिए।

• सूर्योदय से पूर्व या सूर्यास्त के बाद नहीं नहाना चाहिए।

जैनाचार्यों ने अंगशुद्धि के अंतर्गत मुखशुद्धि का नियम भी बनाया है। यहाँ

प्रश्न हो सकता है कि आजकल साधु-साध्वी तो यह कहते हैं कि परमात्मा का दर्शन-पूजन किए बिना मुँह में पानी भी नहीं डालना चाहिए, तो फिर शास्त्रकारों ने मुखशुद्धि करने का वर्णन क्यों किया? आजकल अनेक श्रावक तो परमात्मा की पूजा करके ही मुँह में पानी डालते हैं। वस्तुत: यहाँ मुखशुद्धि का विधान त्रिकाल पूजा के अन्तर्गत मध्याह्नकालीन पूजा की अपेक्षा किया गया है। पूर्वकाल में अष्टप्रकारी पूजा मध्याह्न वेला में सम्पन्न की जाती थी तब तक गृहस्थ की नवकारसी आदि हो जाती थी। आजकल त्रिकालपूजा का विधान नहीवत रह गया है। इस कारण प्रात:काल में पूजा करने वालों के लिए मुखशुद्धि का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। परन्तु जो लोग नाश्ता करके पूजा करने जाते है उन्हें पूजा से पूर्व मुखशुद्धि अवश्य करनी चाहिए। मुखशुद्धि हेतु टूथपेस्ट आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शुद्ध अहिंसक अनेक वस्तुएँ मार्केट में उपलब्ध हैं उनका प्रयोग मुखशुद्धि हेतु हो सकता है।

2. वस्त्र शुद्धि– प्रत्येक कार्य में वस्त्रों का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। School, College, Office सभी का अपना-अपना Uniform होता है। इसी प्रकार Homeguard, Military, Doctor, Police, Advocate सभी का एक विशिष्ट Dresscode होता है। उस Dresscode के कारण कोई भी उन्हें दूर से ही पहचान सकता है। इसी प्रकार जैन आचार ग्रन्थों में श्रावक-श्राविकाओं के लिए एक निश्चित Dress है और उसी को पहनकर श्रावकों को पूजा करनी चाहिए। आजकल पूजा हेतु प्रयुक्त कुर्ता-पायजामा, सीली हुई धोती आदि पहनने योग्य नहीं है। पूजा के लिए अंट-शंट या मन मुताबिक Dress पहनने से सामान्य व्यक्ति एवं पूजार्थी में कोई अंतर ही नजर नहीं आता। दूसरी बात एक Fix Dress होने से मन में जो भावधारा बनती है वह भिन्न-भिन्न Dress पहनने पर नहीं बनती। अत: वस्त्र परिधान करते हुए निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए–

- अंगशुद्धि के बाद वस्त्र पहनने से पूर्व शरीर को तौलिए (Tower) से पोंछकर सुखा देना चाहिए। तदनन्तर गिला तौलिया बदलकर फिर पूजा के वस्त्र पहनने चाहिए।
- पूजा के वस्त्र उत्तर दिशा की ओर मुख करके पहनने चाहिए।
- पूजा में पहनने योग्य वस्त्र, शुद्ध, अखंड, पवित्र एवं धुले हुए होने

चाहिए। फटे हुए, जले हुए, सांधे हुए, सिले हुए या किसी अन्य के द्वारा प्रयोग में लिए गए वस्त्र पूजा में नहीं पहनने चाहिए।

• श्रावकों को पूजा के लिए दो वस्त्र-धोती एवं दुपट्टा तथा श्राविकाओं को तीन वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

• श्रावकों को अलग से रूमाल नहीं बांधना चाहिए। धोती और दुपट्टे की किनारियां ओटी हुई नहीं होनी चाहिए। दुपट्टे की किनारी पर रेशम के फुंदे होने चाहिए जिससे कि प्रमार्जना आदि कार्य अच्छे से हो सकें।

• पूजा के वस्त्र सामायिक अथवा अन्य गृह कार्य हेतु प्रयुक्त नहीं करने चाहिए।

• पूजा के वस्त्र रेशमी अथवा सूती होने चाहिए। सूती वस्त्र रोज पानी से निकालने चाहिए।

• शौच, मैथुन सेवन आदि क्रियाओं में पहने हुए वस्त्रों को पूजा हेतु उपयोग में नहीं लेना चाहिए।

• वस्त्रों को इस प्रकार पहनना चाहिए कि वे अन्यों के लिए विकार, ईर्ष्या या द्वेष के कारण न बनें और न ही उन्हें देखकर किसी के मन में हीन भाव उत्पन्न हो।

• पूजा के वस्त्रों के साथ घड़ी Wallet, Hand bag आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए। Lipstick, Cream, Powder आदि सौंदर्य प्रसाधन भी पूजा के वस्त्रों में नहीं लगाने चाहिए। केश आदि संवारने का काम पूजा के वस्त्र पहनने से पहले ही कर लेना चाहिए।

• बाथरूम में पूजा के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए।

• मुखकोश के आठ पट्ट बनाकर ही उसे बाँधना चाहिए।

• दर्शनार्थी शुद्ध धुले हुए वस्त्र पहनकर मन्दिर आ सकते हैं। उन्हें भी उत्तरासंग अवश्य धारण करना चाहिए।

• महिलाओं को सिर ढंके बिना पूजा नहीं करनी चाहिए।

• पूजा के वस्त्र पहनकर चप्पल, स्लीपर आदि नहीं पहनने चाहिए।

• पूजा के वस्त्रों में पानी आदि नहीं पीना चाहिए। यदि किसी विशेष कारण से पीना पड़े तो उन्हें धोने के बाद ही दुबारा पूजा हेतु प्रयोग में लेना चाहिए।

• पूजा के वस्त्रों में बनियान, स्वेटर आदि नहीं पहनने चाहिए। सर्दी के समय यदि शॉल आदि उपयोग में लेते हों तो पूजा के लिए अलग शॉल रखनी चाहिए। पूजा करते समय उसे भी उतारकर रख देना चाहिए।

• उत्तरासंग इस प्रकार पहनना चाहिए कि दाहिना कंधा खुला रहे।

• पूजा के वस्त्र पहनने के बाद कोई घर सम्बन्धी या व्यापार सम्बन्धी कार्य नहीं करना चाहिए।

• पूजा होने के बाद पूजा के वस्त्र शीघ्र उतार देने चाहिए।

• पूजा के वस्त्रों से पसीना आदि नहीं पोंछना चाहिए।

• पूजा के वस्त्रों में सब्जी मार्केट आदि नहीं जाना चाहिए। इस तरह वस्त्र शुद्धि का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

3. मन शुद्धि–पूजा करते समय राग-द्वेष से मुक्त रहते हुए निर्मल भावों से प्रभु की पूजा करना मन शुद्धि है। परमात्म भक्ति करते हुए मन में किसी भी प्रकार के मलिन विचार, ईर्ष्या-द्वेष आदि के विचार नहीं लाना चाहिए। ऐसा सूत्रकार भगवंत कहते हैं। जैन धर्म में क्रिया से अधिक महत्त्व भावों को दिया गया है। मन के आधार पर ही भावों का निर्माण होता है। अत: मनशुद्धि जिनपूजा का एक मुख्य घटक है। पूजा करते हुए मन शुद्धि के संबंध में निम्न बिन्दुओं पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए–

• मन्दिर जाते समय किसी के भी प्रति द्वेष आदि के भाव नहीं रखना चाहिए।

• परमात्मा के प्रति आदि अहोभाव, भक्तिभाव, पूज्यभाव आदि रखना चाहिए।

• क्रोधादि कषायों, विषय वासनाओं, संकल्प, विकल्प आदि का त्याग करके जिन मन्दिर जाना चाहिए।

• मन्दिर में अन्य लोगों के वस्त्र, सामग्री आदि के बारे में चिंतन नहीं करना चाहिए।

• मन को नियन्त्रित रखने के लिए दृष्टि को नियंत्रण में रखना चाहिए।

• मन्दिर के प्रांगण में सांसारिक या अन्य विकार युक्त बातें नहीं करनी चाहिए जिससे मन के परिणाम विकृत हों। "सवि जीव करूं शासन रसी" की भावना के साथ जिन दर्शन एवं पूजन करना चाहिए।

4. भूमि शुद्धि– जिनमन्दिर के अन्दर-बाहर एवं आस-पास की भूमि की पवित्रता और शुद्धता का ध्यान रखना भूमिशुद्धि है। सभी धर्मों में भूमि का अचिन्त्य प्रभाव माना गया है। अशुद्ध भूमि अशुद्ध विचारों एवं भावों में हेतुभूत बनती है, वहीं शुद्ध एवं पवित्र भूमि शुभ भावों में निमित्त बनती है। जिनमन्दिर जाने वालों को जिनालय सम्बन्धी भूमि की शुद्धता के विषय में निम्न पहलुओं का ध्यान अवश्य रखना चाहिए–

• मन्दिर की साफ-सफाई का पूर्ण निरीक्षण करना चाहिए। कहीं जाले लगे हुए न हो, कचरा आदि कहीं इकट्ठा न हो रहा हो इसका पूर्ण अवलोकन करना चाहिए।

• मूल गंभारा , पबासन, श्रृंगार चौकी, केसर घिसने का स्थान आदि को सूक्ष्मता से देखना चाहिए तथा कोई सूक्ष्म जीव दृष्टिगत हो जाए तो पूंजनी आदि से जयणापूर्वक उसे दूर करना चाहिए।

• मन्दिर परिसर में नाक का मल, श्लेष्म, थूंक, शरीर का मैल आदि नहीं डालना चाहिए।

• गोबर, मल-मूत्र, जीवों के मृत कलेवर आदि कहीं भी दिख जाए तो उसे तुरंत साफ करवाना चाहिए।

• पशु-पक्षिओं को उस क्षेत्र में बंधन युक्त नहीं रखना चाहिए क्योंकि उनके आक्रंदन आदि से वातावरण करुण एवं रौद्र बन जाता है।

• परमात्मा का निर्माल्य द्रव्य निर्जीव भूमि पर रखना चाहिए।

• प्रात:काल में मन्दिर खोलने के पश्चात सर्वप्रथम कोमल बुहारी के द्वारा भूमि शुद्धि करनी चाहिए।

• जिनमन्दिर निर्माण से पूर्व भी भूमि की शुद्धता एवं उसे शल्य रहित करने का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

अत: यह स्पष्ट है कि भूमिशुद्धि का जिनपूजा में महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भूमि शुद्ध होने पर ही आराधकों का मन आराधना में जुड़ता है और भूमि की अपवित्रता मन में कलह-क्लेश आदि का वातावरण निर्मित करती है।

5. उपकरण शुद्धि– प्रभु पूजन में उपयोगी उपकरणों की शुद्धता एवं गुणवत्ता का ध्यान रखते हुए श्रेष्ठ उपकरण एवं सामग्री का प्रयोग करना उपकरण शुद्धि है। जिनपूजा में उपयोगी कलश, कटोरी, थाली, केसर, चंदन,

पुष्प आदि शुद्ध एवं पवित्र होने चाहिए।

पूजा उपकरणों की शुद्धि के विषय में निम्न तथ्य मननीय हैं–

• जिनपूजा हेतु उपयोगी सामग्री उत्तम Quality वाली एवं स्वद्रव्य से अर्जित होनी चाहिए।

• घर से ले जाने योग्य सामग्री भी शुद्ध रीति से जयणापूर्वक निर्मित एवं पूर्ण शुद्धता के साथ तैयार करनी चाहिए।

• पूजन में उपयोगी कलश, थाली, कटोरी आदि स्वसामर्थ्य अनुसार सोने-चाँदी आदि के बनवाने चाहिए।

• पूजा में उपयोगी पानी जीवजंतु रहित, पवित्र भूमि से निकाला हुआ, विश्वसनीय व्यक्ति द्वारा लाया हुआ एवं छाना हुआ होना चाहिए।

• उत्तम Quality का सुगन्धित चंदन एवं केसर आदि प्रयोग करना चाहिए। Synthetic केसर या हल्की-भारी Quality का मिश्रण नहीं करना चाहिए।

• परमात्मा को चढ़ाने हेतु लाए गए पुष्प शुद्ध, ताजे, ऋतुबद्ध एवं जीव-जंतु रहित होने चाहिए।

• धूप पूजा करने हेतु सुगंधित पदार्थों से निर्मित दशांग धूप आदि का प्रयोग करना चाहिए। लकड़ी वाली अगरबत्ती का उपयोग नहीं करना चाहिए।

• प्रक्षाल हेतु गाय, भैंस आदि का शुद्ध दूध एवं उनका शुद्ध घी दीपक जलाने हेतु उपयोग में लेना चाहिए।

• *इसी प्रकार फल-फूल आदि भी उत्तम कोटि के दाग आदि से रहित होने* चाहिए।

• नैवेद्य आदि का निर्माण घर के बने हुए शुद्ध घी से करना चाहिए।

• बाजार आदि से लाए अशुद्ध या बासी द्रव्य का उपयोग जिनपूजा में नहीं करना चाहिए।

• मन्दिर के बर्तनों की सफाई, गिनती आदि का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

इस प्रकार मन्दिर एवं जिनपूजा सम्बन्धी उपकरणों की शुद्धता का भी उत्कृष्ट पूजा में परम स्थान है क्योंकि उपकरण एवं सामग्री जितने अच्छे होते हैं, परमात्मा भक्ति के भाव उतने ही उत्कृष्ट आते हैं।

6. द्रव्य शुद्धि– न्यायोपार्जित धन के द्वारा परमात्म भक्ति करना एवं देवद्रव्य की वृद्धि करना द्रव्यशुद्धि है। धर्मकार्यों में प्रयुक्त धन नैतिकता एवं ईमानदारीपूर्वक अर्जित किया हुआ होना चाहिए। शुद्ध द्रव्य के प्रयोग से भावविशुद्धि भी बनी रहती है। अन्याय एवं अनीति द्वारा उपार्जित धन का प्रयोग करने पर अन्य लोगों के अशुभ एवं दीनभाव भी उससे जुड़े हुए होते हैं जिससे साधक का मन पूजा विधि से जुड़ ही नहीं सकता। श्रावक के लिए न्याय-नीति सम्पन्न वैभव से युक्त होना एक प्रमुख गुण है। अत: श्रावक द्वारा न्याय नीतियुक्त द्रव्य का प्रयोग जिनपूजा का एक अभिन्न अंग है।

7. विधि शुद्धि– शास्त्रों के निर्देशानुसार जिनेश्वर परमात्मा की पूजा, भक्ति, चैत्यवंदन आदि करना विधि शुद्धि है। परमात्म दर्शन हेतु जाने वाले श्रावकों को अप्रमत भाव से चित्त की एकाग्रता पूर्वक प्रभु के गुणों का स्मरण-चिंतन आदि करना चाहिए। शास्त्रों में कथित एवं पूर्वाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट विधि का पालन जागरूकता एवं मनोयोग से करना चाहिए। यहाँ विधि पालन करने के निम्न हेतु हैं–

- विधि का पालन करने से परमात्मा एवं आगमवाणी का सम्मान होता है।
- शुद्ध रूप से किया गया विधिपालन शुभ भावों का आविर्भाव करता है।
- गीतार्थ विधि का पालन करने से शुद्ध विधि की परम्परा का निर्वाह होता है।
- शुद्ध रीति पूर्वक विधि करने से अन्य देखने वालों को भी उचित मार्ग का ज्ञान प्राप्त होता है।
- सम्यक विधि पूर्वक कार्य करने से मन में प्रसन्नता होती है तथा यथोचित फल की भी प्राप्ति होती है।

समाहारत: इन सात प्रकार की शुद्धियों का पालन विधि युत किया जाए तो द्रव्यशुद्धि के साथ-साथ भावों की भी विशुद्धि होती है। अध्यात्म मार्ग पर गमन करने का मुख्य उद्देश्य भावों की विशुद्धता ही है तथा सात प्रकार की शुद्धि रूप सात मर्यादाओं के पालन से शुद्धता पूर्वक जिनेश्वर परमात्मा की आराधना होती है। शुद्ध रीति से की गई आराधना शुद्धि के मार्ग पर अग्रसर करती है। शरीर एवं वस्त्रों की शुद्धता तन और मन को प्रसन्न रखती है तथा मन की शुद्धता जीवन के आचार पक्ष को सुदृढ़ करती है और अन्य मर्यादाओं के पालन के लिए समुचित मनोभूमि का निर्माण करती है।

मर्यादा पालन के प्रेरक पाँच अभिगम

अभिगम, जैन दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। इसका सामान्य अर्थ है– विनय। परमात्मा के दर्शन हेतु जिनालय जाते समय कुछ आवश्यक मर्यादाओं का पालन करना नितान्त जरूरी है। इसे जैनाचार्यों ने पाँच अभिगम के नाम से उल्लेखित किया है। प्रत्येक क्षेत्र में तत्सम्बन्धी मर्यादाओं एवं विवेक का पालन करना अपेक्षित होता है। यदि वे मर्यादाएँ विनयगुण से समन्वित हों तो और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। जीवन के हर क्षेत्र में विनयगुण की व्यापकता है। चाहे स्कूल हो या ऑफिस, लोकसभा हो या आमसभा, न्यायालय हो या चिकित्सालय सभी जगह तद्योग्य विनय एवं औचित्य का पालन किया जाता है। यही व्यावहारिक अनुशासन एवं शिष्टाचार जीवन के विकास एवं निर्माण में सहायक बनता है। जिस प्रकार राज दरबार में या मुख्य अधिकारियों के समीप जाने पर तद्योग्य अनुशासन का पालन करते हुए उनका बहुमान आदि करते हैं तथा उनके स्थान की सर्वोच्चता अभिव्यक्त करते हैं। उसी तरह परमात्मा के सामने उनकी त्रैकालिक सर्वोच्चता एवं त्रैलौकिक सत्ता को अभिव्यक्त करने का मार्ग है पाँच अभिगम। चैत्यवंदन भाष्य के अनुसार पाँच अभिगम निम्न हैं– 1. सचित्त का त्याग 2. अचित्त का अत्याग 3. उत्तरासंग 4. अंजलिबद्ध प्रणाम और 5. प्रणिधान (चित्त की एकाग्रता)।[5]

1. सचित्त का त्याग– त्रिलोकीनाथ जिनेश्वर परमात्मा के दरबार में प्रवेश करने से पूर्व शरीर को सजाने योग्य पुष्प, वेणी, मुकुट आदि सचित्त वस्तुओं तथा दवाई, इत्र, बीड़ी, सिगरेट, मुखवास आदि को मन्दिर प्रांगण के बाहर रखकर जाना सचित्त त्याग नाम का अभिगम है। राजा के द्वारा राजचिह्न के रूप में धारण किए हुए तलवार, छत्र, चामर, मुकुट एवं मोजड़ी इन पाँच का त्याग किया जाना चाहिए।[6] यह त्याग केवल स्वयं के लिए उपयोगी सामग्री के विषय में है। मन्दिर उपयोगी के लिए पुष्प, केसर, नैवेद्य आदि लेकर जा सकते हैं।

सचित्त त्याग अभिगम सम्बन्धी कुछ आवश्यक विवेक निम्नोक्त हैं–

- यदि जेब में रखी हुई सिगरेट, पान-मसाला, चॉकलेट, दवाई आदि मन्दिर में लेकर चले जाएं तो उसे स्वयं के उपयोग में नहीं लेना चाहिए। फिर वह पुजारी या अन्य व्यक्ति को दे देनी चाहिए।

• मन्दिर जाते समय स्वयं के सम्मान सूचक चिह्न जैसे कि साफा, पगड़ी आदि पहनकर नहीं जाना चाहिए। यह भी एक प्रकार का विनय है। इन्हें आरती के समय पहन सकते हैं।

• शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए फूल आदि लगाकर मन्दिर में नहीं जाना चाहिए।

• स्कूल बैग, ऑफिस का टिफिन या बाजार से खरीदा हुआ सामान आदि मन्दिर परिसर के बाहर रखना चाहिए। परमात्मा के सामने पर्दे या आड़ का पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा के सामने साफा, मुकुट आदि त्याग करना चाहिए तो फिर आरती, वरघोडा आदि के समय साफा, मुकुट आदि पहनने का विधान क्यों?

इसका समाधान यह है कि जुलूस, सामैया आदि में जाते समय साफा आदि जैनत्व की गरिमा को दर्शाने के लिए पहने जाते हैं, जो कि जिनधर्म का सम्मान है। परंतु वहीं मन्दिर में प्रवेश करते समय साफा आदि उतारना विनय गुण एवं परमात्मा को स्वामी रूप में स्वीकार करने का सूचक है। इसी प्रकार पूजन-महापूजन एवं आरती के समय इन्हें धारण करने का हेतु यह है कि श्रावक इस समय स्वयं को देवतुल्य मानता है तथा मुकुट आदि उसे देव होने की अनुभूति करवाते हैं।

2. अचित्त का अत्याग– मन्दिर जाते समय श्रावक को शरीर की शोभा के लिए उपयोगी निर्जीव वस्तुएँ जैसे वस्त्र, अलंकार आदि पहनकर जाना एवं पूजा उपयोगी सामग्री साथ लेकर जाना अचित्त त्याग नाम का अभिगम कहलाता है। नीति शास्त्रों में कहा गया है–"रिक्तपाणि र्न गच्छेत् राजानं देवतं गुरुम्"– राजा, देवता और गुरु के पास कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। अत: परमात्मा के दर्शन हेतु जाते समय पूजा योग्य सामग्री लेकर जाना श्रावक का प्रमुख कर्तव्य है।

• श्रावक मुकुट को छोड़कर शेष सभी अलंकार मन्दिर में पहनकर जा सकते हैं।

• पूजा उपयोगी सर्व सामग्री श्रावकों को साथ में अवश्य लेकर जाना चाहिए।

• ऑफिस या स्कूल जाते हुए जो लोग दर्शन करने जाते हैं उन्हें भी खाली हाथ परमात्मा के दरबार में नहीं जाना चाहिए।

• यात्रा आदि पर जाते समय जिस प्रकार हम मोबाइल, लैपटॉप, जूते, आवश्यक फाइल आदि ले जाना जरूरी समझते हैं उसी प्रकार मन्दिर उपयोगी सामग्री का बैग और पूजा के वस्त्र भी अवश्य साथ रखने चाहिए।

• जहाँ तक संभव हो मन्दिर की सामग्री का उपयोग नहीं करना चाहिए। स्वद्रव्य से ही परमात्म भक्ति करनी चाहिए।

3. उत्तरासंग (उत्तरासन)– उत्तरासंग अर्थात दुपट्टा या उपरना। श्रावक के द्वारा जिनमंदिर जाते समय कंधे पर खेस या दुपट्टा धारण करना उत्तरासंग नाम का अभिगम कहलाता है। यह एक प्राचीन आर्य संस्कृति है। आज भी दक्षिण भारत के लोग कंधे पर दुपट्टा धारण करते हैं। शादी करने जाते समय भी कंधे पर वस्त्र धारण किया जाता है। किसी का बहुमान करते समय भी दुपट्टा या शाल ओढ़ाकर सम्मानित किया जाता है। कई स्थानों पर पूजन आदि में बैठते वक्त टोपी एवं दुपट्टा धारण किया जाता है। उत्तरासंग पहनने के निम्न हेतु जैन दर्शन में बताए गए हैं–

• खमासमण आदि देते हुए उत्तरासंग के द्वारा भूमि की प्रतिलेखना की जा सकती है।

• चैत्यवंदन आदि करते समय इसका उपयोग मुँहपत्ति के रूप में भी हो सकता है।

• मुखकोश के रूप में भी उत्तरासंग का उपयोग कर सकते हैं।

• उत्तरासंग की किनारियाँ सिलाई की हुई नहीं होनी चाहिए। किनारी से चरवले के समान फुंदे निकले हुए होने चाहिए।

• गुरुवंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवचन श्रवण, वरघोडे आदि के समय श्रावकों को खेस अवश्य धारण करना चाहिए।

• पूजा करने वाले श्रावकों की तरह दर्शनार्थी श्रावकों को भी खेस धारण करना चाहिए।

• प्रश्न हो सकता है कि पाँच अभिगम का पालन तो सभी के लिए आवश्यक है फिर महिलाएँ इसका पालन किस रूप में करती हैं?

महिलाओं के लिए उत्तरासंग के स्थान पर साड़ी आदि के द्वारा सिर ढंकना, भूमि की पडिलेहन करना, उचित एवं मर्यादायुक्त वस्त्र धारण करना आदि नियम है। वर्तमान प्रचलित जिंस, केपरी, शॉर्ट्स आदि पहनकर मन्दिर परिसर में नहीं आना चाहिए। साड़ियाँ भी आजकल इस प्रकार पहनी जाती हैं कि उनसे अंगप्रदर्शन ही अधिक होता है। अत: श्राविकावर्ग को भी मर्यादायुक्त वेशभूषा में जिनमन्दिर जाना चाहिए।

4. अंजलिबद्ध प्रणाम– दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के साथ मिलाकर मस्तक झुकाना अंजलिबद्ध प्रणाम है। जहाँ से जिनमन्दिर का शिखर या ध्वजा दिखाई दे वहाँ से अथवा जिनालय में प्रवेश करते साथ तीर्थंकर परमात्मा के प्रथम दर्शन होने पर दोनों हाथ जोड़ते हुए एवं मस्तक झुकाकर "नमो जिणाणं' कहना चौथा अंजलिबद्ध नामक अभिगम है। परमात्मा के प्रति बहुमान व्यक्त करने की यह एक विशिष्ट रीति है। इससे जीवन में लघुता एवं विनयगुण का विकास होता है।

इस अभिगम पालन में रखने योग्य सावधानियाँ इस प्रकार हैं–

• दोनों हाथों में पूजन सामग्री होने पर हाथ न भी जोड़ सकें तो मस्तक झुकाकर 'नमो जिणाणं' अवश्य बोलना चाहिए।

• मार्ग में जिनमन्दिर आ जाए तो चप्पल उतारकर नमस्कार करना चाहिए।

• मुख्य द्वार पर नमन किए बिना कभी प्रवेश नहीं करना चाहिए। इसीलिए प्राचीन मन्दिरों एवं घरों के मुख्य द्वार छोटे बनाए जाते थे।

• पुरुष वर्ग को मस्तक पर हाथ लगाना चाहिए। महिलाओं को हाथ ऊपर किए बिना ही मस्तक झुकाकर नमो जिणाणं कहना चाहिए।

5. प्रणिधान– प्रणिधान शब्द का अर्थ है– मन की एकाग्रता या एकाकारता। मन, वचन एवं काया से परमात्मा भक्ति में तन्मय एवं एकाग्र बनना प्रणिधान नामक अभिगम है।

प्रारंभ के चार अभिगम काया को अंकुशित करते हैं वहीं यह अन्तिम अभिगम मन को नियंत्रित करने की कला सिखाता है। परमात्मा की भक्ति हेतु मन्दिर में प्रवेश करने के बाद से लेकर जिनालय से बाहर निकालने तक सांसारिक कार्यों का विचार तक नहीं करना चाहिए। कई लोग कहते हैं कि मन इतना चंचल है, इसे कैसे एक स्थान पर एकाग्र करें?

उन्हीं लोगों से एक प्रश्न है कि जब आप 500 की गड्डी गिनते हैं तब आपका मन या दृष्टि इधर-उधर जाती है? वैज्ञानिक जब प्रयोगशाला में शोध करते हैं तब क्या उन्हें सांसारिक गतिविधियाँ याद आती हैं। क्रिकेट के अन्तिम ओवर में जब हार-जीत के लिए एक-एक बॉल महत्त्वपूर्ण हो तब मोबाइल फोन या पत्नी की बातें सुहाती हैं? नहीं न–तो फिर परमात्मा के दर्शन में स्वत: एकाकारता क्यों नहीं आ सकती। जिसके मन में परमात्मा के प्रति सच्ची आस्था एवं श्रद्धा हो उसके मन में एकाकारता आ जाती है।

इस अभिगम का पालन करते हुए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

• मन्दिर में प्रवेश करने के पश्चात परिचित, स्वजन या परिजन किसी से भी कोई चर्चा नहीं करनी चाहिए।

• महिलाओं को एक-दूसरे की साड़ी, चप्पल, सब्जी-तरकारी आदि के विषय में पूछताछ नहीं करनी चाहिए।

• हाथों में घड़ी पहनकर मन्दिर नहीं जाना चाहिए, इससे भी कई बार भावधारा भंग होती है।

• जिनमंदिर में ऊँचे स्वर से स्तुति स्तवन आदि नहीं गाने चाहिए। इससे अन्य लोगों का ध्यान भंग हो सकता है।

• मन्दिर में मोबाइल लेकर भी नहीं जाना चाहिए और यदि साथ हो तो उसे बंद (स्विच ऑफ) कर देना चाहिए।

• एक क्रिया करते हुए मन को उसी क्रिया से जोड़े रखना चाहिए। एक साथ सब क्रियाओं की तरफ ध्यान लगाने पर एक भी क्रिया सम्यक रूप से सम्पन्न नहीं होती। हर क्रिया शुभ होने पर भी किसी एक में एकाकारता आवश्यक है।

इस तरह जिनेश्वर परमात्मा का दर्शन-वंदन आदि करते हुए इन पाँच अभिगमों का सम्यक रूप से पालन करना चाहिए। इससे अपूर्व लाभ एवं पुण्य का अर्जन होता है और विशिष्ट आनंद की प्राप्ति होती है। इन पाँच अभिगमों का पालन अहोभावपूर्वक करने से वे अंतरंग में आत्मानंद की अनुभूति करवाते हैं। अनुशासन एवं नियम मर्यादाओं का पालन यदि मानसिक रुचि पूर्वक किया जाए तो वे विशिष्ट प्रभावशाली होते हैं। अत: आत्मकल्याण के इच्छुक सत्त्वशील व्यक्तियों को इसका पालन अवश्य करना चाहिए।

पूजा विधि के महत्त्वपूर्ण चरण दस त्रिक

विश्ववंद्य देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा का दर्शन करते हुए यदि सही रूप में अन्तर्जगत का अन्वेषण, सर्वेक्षण एवं आत्मस्वरूप के दर्शन करना चाहें तो बाह्य वातावरण से स्वयं को मुक्त करके आभ्यंतर स्थिरता और आन्तरिक विशुद्धता के लिए जो आवश्यक नियम हैं उनका परिपालन जरूरी है।

जिनालय में प्रविष्ट होने के बाद से लेकर जब तक बाहर आकर निवृत्ति न ली जाए तब तक शुभ भावों के निर्माण एवं स्थिरता के लिए दस मुख्य क्रियाओं को तीन के समूह में बार-बार किया जाता है। जैन शास्त्रकारों ने उसे दस त्रिक के नाम से सम्बोधित किया है। किस क्रिया को कब, कितनी बार और किस प्रकार करना चाहिए इसका समुचित एवं सुंदर वर्णन आचार्य देवेन्द्रसूरिजी ने चैत्यवंदन भाष्य में किया है। इन दस त्रिक में जिनदर्शन हेतु गृह प्रस्थान से लेकर मन्दिर से बाहर आने तक की सम्पूर्ण विधि समाहित है।

'त्रिक' का अर्थ है तीन का समूह। दस त्रिक के अन्तर्गत दस बातों का विवरण तीन-तीन के समूह में किया गया है। पूजा के उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने हेतु इन सहयोगी क्रियाओं के समुचित पालन की आवश्यकता रहती है। दस त्रिकों का सामान्य वर्णन निम्नोक्त हैं–[7]

1. निसीहि त्रिक 2. प्रदक्षिणा त्रिक, 3. प्रणाम त्रिक 4. पूजा त्रिक 5. अवस्था त्रिक 6. दिशा त्याग त्रिक 7. प्रमार्जना त्रिक 8. आलंबन त्रिक 9. मुद्रा त्रिक और 10. प्रणिधान त्रिक।

1. निसीहि त्रिक

निसीहि शब्द का अर्थ है– निषेध करना, त्याग करना या ब्रेक लगाना। निसीहि त्रिक के द्वारा तीन स्थानों पर विविध कार्यों का त्याग किया जाता है।[8]

प्रथम निसीहि– चैत्यवंदन भाष्य के अनुसार जिनालय के अग्रद्वार पर पहली निसीहि बोली जाती है। इसके द्वारा मन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व समस्त सांसारिक पाप कार्यों से संबंध विच्छेद कर दिया जाता है। यहाँ समस्त पाप कार्यों एवं जगत सम्बन्धी विचारों को दूर कर मात्र जिनालय विषयक चिंतन एवं प्रवृत्तियाँ खुली रह जाती हैं।

द्वितीय निसीहि– दूसरी निसीहि परमात्मा के मूल गर्भगृह में पूजा हेतु प्रवेश करने से पूर्व बोली जाती है। इस निसीहि के उच्चारण के बाद मन्दिर

सम्बन्धी व्यवस्था का निरीक्षण, आदेश-उपदेश, साफ-सफाई एवं अन्य समस्त कार्यों का त्याग हो जाता है। जिनालय संबंधी सब कार्य सम्पन्न करने के बाद ही दूसरी निसीहि बोली जाती है।

तृतीय निसीहि– तीसरी निसीहि अष्टप्रकारी पूजा सम्पन्न करके चैत्यवंदन करने से पूर्व बोली जाती है। द्रव्यपूजा सम्बन्धी कार्य एवं विचारों का त्याग कर परमात्मा की भावपूजा में तन्मय होने के लिए तृतीय निसीहि बोलते हैं।

मुनि भगवंत एवं पौषधधारी श्रावक द्रव्य पूजा के त्यागी होते हैं। अत: वे दूसरी निसीहि रंगमंडप में प्रवेश करते समय कहते हैं।

शंका– प्रश्न हो सकता है कि मन्दिर जाते समय व्यक्ति के सांसारिक कार्यों का तो वैसे ही त्याग होता है फिर निसीहि की आवश्यकता क्यों?

समाधान– गाड़ी, स्कूटर, कार या साईकिल कोई भी वाहन चलाना हो तो उसके ब्रेक पर कंट्रोल होना परम आवश्यक है। अच्छे से अच्छे घुड़सवार को सबसे पहले घोड़े की लगाम कसनी आनी चाहिए अन्यथा उपयोगी सभी वाहन बेकार है। लाखों की मर्सीडिज और बीएमडब्ल्यू भी बिना ब्रेक के एक खटारा कबाड़ के समान है, क्योंकि बिना ब्रेक की गाड़ी में यात्रा करना मृत्यु को निमंत्रण देना है। इसी प्रकार अध्यात्म के क्षेत्र में मन रूपी घोड़े की लगाम ही निसीहि है।

प्रथम निसीहि बोलने के साथ ही व्यक्ति सांसारिक प्रवृत्तियों से सम्बन्ध विच्छेद कर देता है। जिनालय रूपी अध्यात्म योग की रंगभूमि पर साधक अपने आपको धीरे-धीरे अग्रसर करते हुए मन-वचन-काया रूपी त्रियोग से परमात्म चरणों में समर्पित हो जाता है तथा स्व-स्वरूप का आभास करता है। निसीहि शब्द का उच्चारण संकल्प बल को बलशाली बनाता है। व्यवहार जगत में हम देखते हैं कि जब कोई व्यक्ति पुलिस, डॉक्टर, मंत्री आदि बनता है तो उसे शपथ (Oath) दिलवाई जाती है, जबकि वह तो अध्ययन के द्वारा वैसी पात्रता प्राप्त कर चुका है। इसका मुख्य कारण है कि यह शपथ उसे स्वयं के आचार का भान करवाती है। इसी तरह भले ही मन्दिर में आने वाला व्यक्ति बाह्य वृत्तियों को छोड़कर आता है परन्तु निसीहि के द्वारा वह उनके प्रति कटिबद्ध हो जाता है।

अत: सुस्पष्ट है कि निसीहि त्रिक के द्वारा समस्त सांसारिक कार्यों का त्याग

हो जाता है, अत: मन्दिर में सांसारिक चर्चा या वार्तालाप करना कर्मबंध का कारण एवं शपथ का खंडन है।

निसीहि त्रिक का पालन करते हुए निम्न सावधानियाँ अवश्य रखनी चाहिए।

• प्रथम निसीहि के उच्चारण के बाद किसी भी प्रकार का सांसारिक वार्तालाप मन्दिर परिसर में नहीं करना चाहिए। व्यावसायिक, सामाजिक, कुशलता-अकुशलता या स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चाएँ या पूछताछ भी वहाँ पर वर्जित है।

• मन्दिर में फोन ले जाना या फोन पर बातें करना सर्वथा अनुचित है।

• किसी भी प्रकार का निमंत्रण मन्दिर परिसर में नहीं देना चाहिए।

• कई लोग मन्दिर में जाकर शादी के लिए लड़के-लड़की दिखाते हैं, यह एक सर्वथा गलत प्रक्रिया है।

• प्रथम निसीहि के बाद मन्दिर सम्बन्धी आदेश-निर्देश देने की छूट होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रावक वर्ग को मन्दिर का निरीक्षण एवं उसकी साफ-सफाई आदि की देख-रेख अवश्य करनी चाहिए। ट्रस्टियों का अथवा कर्मचारियों का कार्य समझकर उसे गौण करना जिनाज्ञा का भंग है।

• अंतिम निसीहि का उच्चारण करने के बाद द्रव्यपूजा सम्बन्धी समस्त विचारों का त्याग कर देना चाहिए। आप चैत्यवंदन कर रहे हैं और भगवान की आरती या प्रक्षाल आदि हो रहा हो तो आपको बीच में चैत्यवंदन विधि नहीं छोड़नी चाहिए। इसी प्रकार आप चैत्यवंदन कर रहे हैं और किसी ने आपका बनाया हुआ साथिया हटा दिया तो मन में किसी भी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं करना चाहिए। कलह या लड़ाई करने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इस प्रकार प्रथम त्रिक के माध्यम से परमात्मा का Connection सिर्फ जिन और जिनालय से जुड़ा हुआ रहता है।

2. प्रदक्षिणा त्रिक

प्रदक्षिणा शब्द का उद्भव प्र उपसर्ग पूर्वक दक्षिणा शब्द से हुआ है। 'प्र' अर्थात उत्कृष्ट भावपूर्वक और 'दक्षिणा' अर्थात परमात्मा की दायीं ओर से। अत: उत्कृष्ट भावपूर्वक परमात्मा की दायीं ओर से बायीं ओर चक्कर देना प्रदक्षिणा है।[9] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु तीन प्रदक्षिणा दी जाती है।

शंका– प्रदक्षिणा दायीं से बायीं तरफ ही क्यों दी जाए?

समाधान– लोक व्यवहार में उत्तम पदार्थों को दाहिनी तरफ रखने का, दाहिने हाथ से श्रेष्ठ एवं मंगल कार्य करने का विधान है। रुपयों का लेन-देन, पाणिग्रहण, आशीर्वाद आदि प्रमुख कार्य दाहिने हाथ से ही किए जाते हैं। दाएँ से बाएँ यह सृष्टिक्रम है। देवाधिदेव वीतराग परमात्मा को विश्व में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है अत: दायीं से बायीं ओर प्रदक्षिणा दी जाती है।

शंका– प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा को प्रदक्षिणा क्यों दी जाती है? इसके कुछ तथ्य निम्न प्रकार से दृष्टव्य है–

समाधान– • यह जीव अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। संसार के इस परिभ्रमण को मिटाने के लिए परमात्मा के चारो ओर प्रदक्षिणा दी जाती है।

• सांसारिक भवभ्रमण को मिटाने की ताकत दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रयी में ही है। अत: उनकी प्राप्ति हेतु भी तीन प्रदक्षिणा दी जाती है।

• परमात्मा को केन्द्र में रखकर प्रदक्षिणा देने से एक चुंबकीय वर्तुल (Magnetic Field) निर्मित होता है। इससे उत्पन्न विद्युत तरंगें हमारे भीतर की कार्मण वर्गणा को छिन्न-भिन्न कर आत्मा की ऊर्जा को जागृत करती हैं।

• जिनमंदिर की तीन दिशाओं में मंगलमूर्ति की स्थापना की जाती है। प्रदक्षिणा देते समय चारो ओर परमात्मा के दर्शन करते हुए समवसरण की कल्पना कर साक्षात भाव तीर्थंकर के दर्शन किए जाते हैं।

• परमात्मा की प्रदक्षिणा देने से 100 वर्ष के उपवास जितना फल प्राप्त होता है।

• जिनेश्वर परमात्मा की प्रदक्षिणा देते समय श्रावकों को निम्न मर्यादाओं का अवश्य पालन करना चाहिए।

• प्रदक्षिणा देने के स्थान में प्राकृतिक प्रकाश आ सके इस बात को ध्यान में रखकर जिनालय निर्माण करवाना चाहिए। ऐसी व्यवस्था होने पर जीव हिंसा एवं अनुचित आचरण की संभावना नहीं रहती।

• जहाँ पर प्रकाश आने की संभावना न हो वहाँ पर दीपक आदि से प्रकाश करना चाहिए।

• यदि स्थान संकरा हो और महिलाएँ प्रदक्षिणा दे रही हों तो पुरुषों को नहीं जाना चाहिए।

• प्रदक्षिणा देते हुए श्रावक को मंदिर का निरीक्षण भी करना चाहिए। जाले आदि लगे हों या कोई मृत जीव का कलेवर आदि पड़ा हो तो उसे दूर करके फिर पूजा करनी चाहिए।

• सामूहिक प्रदक्षिणा देते समय संघ प्रमुख, मुखिया श्रावक या ज्येष्ठ व्यक्ति को आगे रखना चाहिए।

• चैत्यवंदन महाभाष्य के अनुसार प्रदक्षिणा देते समय दोहा बोलने में कोई दोष नहीं है। उस समय दृष्टि नीचे जमीन पर रखनी चाहिए, जिससे जीव हिंसा नहीं हो।

• प्रदक्षिणा देते समय पूजा की सामग्री हाथ में लेकर चलना चाहिए।

3. प्रणाम त्रिक

प्रणाम अर्थात नमस्कार करना, वंदन करना आदि। जिनेश्वर परमात्मा को भावपूर्वक नमन करना प्रणाम कहलाता है। चैत्यवंदन भाष्य में तीन प्रकार के प्रणाम बताए गए हैं– 1. अंजलिबद्ध प्रणाम 2. अर्धावनत प्रणाम और 3. पंचांग प्रणिपात।[10]

1. अंजलिबद्ध प्रणाम– जिनालय के मुख्य द्वार पर परमात्मा का प्रथम दर्शन होते ही दोनों हाथ जोड़कर एवं उन्हें मस्तक पर लगाते हुए "नमो जिणाणं" कहना अंजलिबद्ध प्रणाम कहलाता है। जिनालय की ध्वजा अथवा शिखर दिखने पर एवं परमात्मा के प्रथम दर्शन होने पर यह प्रणाम किया जाता है।

2. अर्धावनत प्रणाम– अर्ध अवनत अर्थात आधा झुककर प्रणाम करना अर्धावनत प्रणाम कहलाता है। परमात्मा के गर्भगृह के पास पहुँचकर कमर तक शरीर झुकाते हुए दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना अर्धावनत प्रणाम है। परमात्मा के गर्भद्वार के समक्ष पहुँचने पर यह प्रणाम किया जाता है। तदनन्तर परमात्मा की स्तुति आदि बोली जाती है।

4. पंचांग प्रणिपात– दो हाथ, दो घुटने और मस्तक इन पाँच अंगों को एक साथ झुकाते हुए प्रणाम करना पंचांग प्रणिपात कहलाता है। इसे खमासमण भी कहते हैं। चैत्यवंदन करने से पूर्व तीन बार पंचांग प्रणिपात पूर्वक वंदन किया

जाता है। पाँचों अंग जमीन को स्पर्श कर सकें इस प्रकार यह प्रणाम करना चाहिए।

सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र में कहा गया है "इक्को वि नमुक्कारो जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स, संसार सागराओ तारेइ नरं व नारिं वा।" अर्थात प्रकृष्ट भावों से किया गया एक बार का वंदन भी नर अथवा नारी को भव सागर से पार कर देता है। इस दुनिया में हम अनेक लोगों के आगे-पीछे घूमते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं, जरूरत होने पर गधे को बाप भी बनाते हैं परन्तु इन सबको किया गया वंदन स्वार्थ युक्त होने से लौकिक लाभ में भले ही हेतुभूत बन जाए किन्तु भावजगत में इसके कोई शुभ परिणाम नहीं होते। वहीं राजराजेश्वर तीर्थंकर परमात्मा को वंदन करने से वैयक्तिक जीवन में नम्रता, लघुता, विनय आदि गुणों का विकास होता है जिससे इस लोक में स्नेह, आशीष एवं प्रेम की प्राप्ति होती है तथा भविष्य में पूज्यता प्राप्त होती है। अत: तीर्थंकर परमात्मा को किया गया। प्रणाम इह लोक और परलोक दोनों में ही मंगलकारी है।

परमात्मा को प्रणाम करने के विषय में जो असावधानियाँ देखी जाती हैं वे इस प्रकार हैं–

- कई लोग परमात्मा के दरबार में आकर भी खमासमण आदि देने से कतराते हैं क्योंकि ऐसा करने से उनके Dress की प्रेस बिगड़ जाती है। वर्तमान प्रचलित Skin tight Jeans आदि में खमासमण देना संभव भी नहीं है।
- बैठे-बैठे या आधे खड़े होकर खमासमण नहीं देना चाहिए।
- पंचांग प्रणिपात करते हुए जयणा पूर्वक भूमि का निरीक्षण कर खमासमण देना चाहिए तथा पाँचों अंग भूमि से स्पर्शित होने चाहिए।

4. पूजा त्रिक

पूजा का अर्थ है समर्पण। परमात्मा को अपना सर्वस्व समर्पित कर देना, उनका आदर-सम्मान करना पूजा कहलाता है। जहाँ प्रेम होता है वहीं समर्पण होता है। समर्पित व्यक्ति के भीतर परमात्मा के प्रति अनायास सर्वोत्तम द्रव्य अर्पण करने के भाव प्रस्फुटित होने लगते हैं। जैन शास्त्रकारों ने जिनपूजा के तीन प्रकार बताए हैं। इसे ही पूजा त्रिक के नाम से जाना जाता है। उनके नाम इस प्रकार हैं– 1. अंगपूजा 2. अग्र पूजा और 3. भाव पूजा।[11]

1. अंगपूजा– जिन प्रतिमा का स्पर्श करते हुए जो पूजा सम्पन्न की जाती

है वह अंग पूजा कहलाती है। जैसे– जिन प्रतिमा से निर्माल्य उतारना, जल पूजा, चंदन पूजा, पुष्प पूजा, आंगी पूजा आदि। शास्त्रों में अंगपूजा को विघ्ननाशक या समन्तभद्रा पूजा भी कहा जाता है। इस पूजा के द्वारा चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

2. अग्रपूजा– अग्र अर्थात आगे। जो पूजा परमात्मा के सामने सम्पन्न की जाती है, परन्तु जिसमें जिनप्रतिमा को स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं रहती वह अग्रपूजा कही जाती है। परमात्मा के समक्ष धूप, दीप, अक्षत आदि अर्पित करना अग्रपूजा है। इसे अभ्युदयकारिणी या सर्वभद्रा पूजा के नाम से भी जाना जाता है। मोक्षमार्ग की साधना में सहायक हो ऐसा अभ्युदय इस पूजा के द्वारा प्राप्त होता है। यह पूजा गर्भगृह के बाहर सम्पन्न की जाती है।

3. भावपूजा– जिस पूजा में द्रव्य के आलंबन की आवश्यकता नहीं रहती वह भावपूजा कहलाती है। परमात्मा के सामने स्तुति, स्तवन, चैत्यवंदन, गीत गान आदि करना भावपूजा है। इसे निवृत्तिकारिणी या सर्वसिद्धिफला पूजा भी कहते हैं। यह पूजा मोक्ष पद को प्राप्त करवाने वाली है। जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा पालन को उत्कृष्ट भाव पूजा कहा जाता है।

ये तीनो पूजाएँ पूजार्थी जीव के आध्यात्मिक विकास में सहायक बनती है। कुछ ग्रन्थकारों ने पंचोपचारी, अष्टोपचारी और सर्वोपचारी इन तीन पूजाओं को पूजात्रिक माना है। जिन प्रतिमा की पूजा करते हुए कुछ बातों की सावधानी अवश्य रखनी चाहिए। जैसे कि

- अंग, अग्र एवं भावपूजा करते हुए उनका क्रम उल्लंघन नहीं करना चाहिए।
- पूजा करते समय द्रव्यशुद्धि, भावशुद्धि, स्वद्रव्य आदि का विवेक अवश्य रखना चाहिए।
- जिस वक्त जो पूजा की जा रही हो उस समय मन को उन्हीं भावों से भावित करना चाहिए।
- अंगपूजा करते समय मुखकोश का प्रयोग जरूरी है। पूजार्थी के वस्त्र का जिनबिम्ब आदि से स्पर्श न हो इसकी भी सावधानी रखनी चाहिए।
- पूजा के वस्त्रों में ही अंगपूजा करनी चाहिए।
- धूप, दीप आदि अग्रपूजा गर्भगृह के अन्दर जाकर नहीं करनी चाहिए।

• भावपूजा करते समय अंग या अग्र पूजा विषयक चिंतन या तत्सम्बन्धी द्रव्य को लेकर संकल्प-विकल्प नहीं करना चाहिए।

• कुछ लोग अक्षत पूजा आदि करते हुए एक ही साथ चैत्यवंदन भी कर लेते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। एक समय में एक ही पूजा करनी चाहिए।

5. अवस्था त्रिक

अवस्था अर्थात जीवन की स्थिति। परमात्मा के जीवन की घटनाओं का स्मरण करना अवस्था त्रिक है। जिसकी वजह से जैन धर्म एवं श्रावकत्व प्राप्त हुआ ऐसे परमात्मा का स्मरण अहोभाव एवं सहृदयतापूर्वक प्रतिसमय करना चाहिए। परंतु सांसारिक उलझनों में उलझा हुआ मनुष्य सांसारिक विडंबनाओं में परमात्मा को विस्मृत कर देता है। अत: परमात्मा की पूजा करने के बाद उनके जीवन का स्मरण अवश्य रूप से करना चाहिए। इसी के साथ परमात्मा के जीवन से स्वयं की तुलना करते हुए स्वयं को प्रभु समान भावों से भावित करना चाहिए।

परमात्मा के च्यवन से लेकर निर्वाण तक की पाँच घटनाओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है। इन्हीं तीन अवस्थाओं के चिंतन को अवस्था त्रिक कहा जाता है।[12]

तीन अवस्थाओं के नाम निम्न हैं– 1. पिण्डस्थ अवस्था 2. पदस्थ अवस्था और 3. रुपातीत अवस्था।

1. पिण्डस्थ अवस्था– पिण्ड अर्थात देह या शरीर। जिसके माध्यम से परमात्मा की दैहिक अवस्था का चिंतन किया जाए वह पिण्डस्थ अवस्था है। इसमें केवलज्ञान की प्राप्ति होने से पूर्व तक की अवस्थाओं का चिंतन किया जाता है। इसके अन्तर्गत जन्म, राज्य एवं श्रमण अवस्था का समावेश हो जाता है। प्रतिमा के परिकर आदि को देखकर उनकी बाल्य अवस्था, ऋद्धि, मुकुट, आंगी आदि को देखकर राज्य अवस्था एवं मुण्डित सिर को देखकर श्रमण अवस्था का चिंतन किया जाता है।

परमात्मा ने इस देह में रहते हुए कैसे जीवन जीया, किस प्रकार अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह किया, जगत जीवों के प्रति उनकी करुणा, विश्वकल्याण आदि की भावना का चिंतन करते हुए उन्हें जीवन में लाने का संकल्प करना चाहिए।

2. पदस्थ अवस्था– केवलज्ञान होने के बाद परमात्मा ने तीर्थंकर पद को प्राप्त किया उसी अवस्था को पदस्थ अवस्था कहा गया है। इस दौरान अष्ट प्रातिहार्य युक्त परमात्मा की अरिहंत अवस्था का चिंतन किया जाता है। परिकर के ऊपरी भाग में चिह्नित अशोक वृक्ष एवं अष्टप्रातिहार्य के विभिन्न चिह्न इस अवस्था का सूचन करते हैं। इसमें परमात्मा के समवसरण आदि की कल्पना करते हुए यह विचार किया जाता है कि परमात्मा ने अरिहंत अवस्था में ही देशना देकर जगत के जीवों का कल्याण किया, चतुर्विध संघ की स्थापना की और मोक्ष मार्ग का निरूपण किया। अत: पदस्थ अवस्था को कल्याणकारी मानकर उसका चिंतन किया जाता है।

3. रूपातीत अवस्था– परिकर में रही हुई परमात्मा की पद्मासन अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा को देखकर परमात्मा की रूपातीत अर्थात सिद्ध अवस्था का ध्यान किया जाता है। तीर्थंकर परमात्मा स्वभाव दशा में रमण करते हुए शैलेशीकरण के द्वारा शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं और नियमत: परमात्मा का निर्वाण पद्मासन या खड्गासन में ही होता है। अत: जिन प्रतिमा को देखकर ही रूपातीत अवस्था का चिंतन किया जाता है।

परमात्मा ने अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को प्रकट कर लिया है, जो कि स्फटिकरत्न के समान निर्मल है एवं समस्त वैभाविक दोषों से रहित है। इसी तरह के आत्मस्वरूप को प्रकट करने की भावना इस अवस्था का चिंतन करते हुए की जाती है। अवस्था त्रिक का पालन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- अवस्था त्रिक का पालन करते हुए तत्सम्बन्धी भावनाओं का चिंतन अवश्य करना चाहिए।
- वर्तमान में आंगी का बढ़ता हुआ प्रचलन अवस्था त्रिक के चिंतन में बाधक है। अत: हर समय प्रतिमाजी पर आंगी चढ़ाकर नहीं रखनी चाहिए।
- जहाँ पर परिकर युक्त प्रतिमा न हो वहाँ पर भावों से ही कल्पना करते हुए इन अवस्थाओं का चिंतन करना चाहिए।

6. दिशा त्याग त्रिक

चैत्यवंदन प्रारंभ करने से पूर्व जिस दिशा में मूलनायक या आराध्य जिनप्रतिमा विराजमान हो उसके अतिरिक्त अन्य दिशाओं के निरीक्षण का त्याग

करना दिशात्याग त्रिक है।[13] इस त्रिक में परमात्मा पर दृष्टि को स्थिर करते हुए दायीं, बायीं और पीछे की दिशाओं का त्याग किया जाता है। इसमें चित्त की चंचलता, अनुचित एवं अतिरिक्त विचारों का भी त्याग किया जाता है। इससे मन की एकाग्रता एवं तल्लिनता में वृद्धि होती है। चैत्यवंदन करते समय इधर-उधर देखने से इस त्रिक का भंग होता है। परमात्मा की आशातना एवं अनादर होता है तथा मानसिक शुभध्यान में विक्षेप उपस्थित होता है।

दिशा त्याग त्रिक का पालन करते हुए निम्नोक्त सावधानियाँ आवश्यक हैं–

- चैत्यवंदन करते समय मन्दिर में आने-जाने वालों को या अगल-बगल में बैठे लोगों को देखना या उनसे बाते नहीं करना चाहिए।
- जिनमन्दिर में दृष्टि को नियंत्रित एवं मर्यादित रखना चाहिए।
- परमात्मा से दृष्टि हटाकर इधर-उधर देखने से प्रभु का अविनय होता है। और त्रिक भंग होने से आशातना भी लगती है।

7. प्रमार्जना त्रिक

प्रमार्जना का अर्थ है उपयोग पूर्वक पूंजना या साफ करना। चैत्यवंदन करने हेतु तीन खमासमण देने से पूर्व उस भूमि की तीन बार दुपट्टे के किनारों आदि से प्रमार्जना करना प्रमार्जना त्रिक कहलाता है।[14] साधु भगवंत रजोहरण से, पौषधधारी चरवले से एवं अन्य श्रावक दुपट्टे की किनारी से भूमि की प्रमार्जना करते हैं। यदि खेस आदि न पहना हुआ हो तो भी दृष्टि पडिलेहन अवश्य करना चाहिए। इसे करने से अहिंसा व्रत का पालन, प्रमाद से निवृत्त एवं जिनाज्ञा का बहुमान होता है।

खमासमण देने से पूर्व भूमि का और खमासमण देते समय शरीर के अवयव (संडाशक) स्थानों का पडिलेहन करना चाहिए। प्रमार्जन क्रिया के द्वारा जिनवाणी को आचरण में लाने का प्रयास किया जाता है।

प्रमार्जन त्रिक में निम्न पक्षों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए–

- मन्दिर जाते समय श्रावकों को उत्तरासंग अवश्य धारण करना चाहिए।
- उत्तरासंग की किनारियाँ मुलायम या फुंदे वाली होनी चाहिए, जिसके द्वारा जीव रक्षा सम्यक रूप से हो सके।
- वर्तमान में उत्तरासंग या खेस सिर्फ पूजा करने वाले श्रावकों द्वारा ही धारण किया जाता है। अन्य श्रावकों को भी उत्तरासंग धारण करके ही मन्दिर

जाना चाहिए। यदि किसी कारणवश उत्तरासंग धारण न किया हो तो दृष्टि से भूमि का पडिलेहन अवश्य करना चाहिए।

• यदि फर्श पर जीव-जन्तु न भी दिख रहे हों तो भी प्रमार्जन करना जरूरी है।

8. आलंबन त्रिक

आलंबन का अर्थ है आधार। चैत्यवंदन करते समय मन-वचन-काया की स्थिरता हेतु उन्हें प्रशस्त भावों से जोड़ना तथा उनकी दुष्प्रवृत्तियों को रोकने हेतु तीनों को भिन्न-भिन्न तीन आलंबनों से जोड़ना आलंबन त्रिक कहलाता है। वे तीन आलंबन निम्न हैं– 1. सूत्रार्थ 2. सूत्रोच्चारण एवं 3. विविध मुद्रा या जिनबिम्ब।[15]

सूत्र बोलते समय मन में उसके अर्थ का भी चिन्तन-मनन करना जिससे मन नियंत्रित रहे। सूत्रों का मात्र तोता रटन नहीं करना।

वचन को नियंत्रित रखने हेतु सूत्रों के शुद्ध उच्चारण का आलम्बन लेना। इसी के साथ पद, संपदा, स्वर, व्यंजन आदि का पूर्ण ध्यान रखना। काया की स्थिरता हेतु सूत्रों के साथ करने योग्य मुद्राओं के आचरण का आलंबन लेना। इस प्रकार तीनों योगों को विभिन्न आलम्बनों में स्थिर करके भक्ति योग में तदाकार बनना आलंबन त्रिक है। ये तीनों आलम्बन त्रियोग को स्थिर करने के श्रेष्ठ उपाय हैं। सूत्रों में रही हुई शब्द एवं मंत्र शक्ति, राग-द्वेषरूपी जहर को उतारने का सामर्थ्य रखती है। परन्तु इनका अनुभव तब ही हो सकता है जब कोई इन तीनों आलंबनों को त्रियोग की स्थिरता पूर्वक धारण करे।

आलंबन त्रिक का पालन करते हुए निम्न मर्यादाओं का पालन आवश्यक है–

• चैत्यवंदन रूप भावपूजा करते हुए सूत्रों के शुद्ध उच्चारण पर पूरा ध्यान देना चाहिए। उनकी पद, सम्पदा आदि को विस्मृत कर सुपरफास्ट ट्रेन की तरह नहीं दौड़ना चाहिए।

• जिस सूत्र के साथ जो मुद्रा बताई गई है उसे उसी मुद्रा में बोलना चाहिए। बैठे-बैठे इरियावहियं करना अथवा चैत्यवंदन करते हुए उचित मुद्रा को धारण नहीं करना अविधि है।

• सूत्रार्थ एवं सूत्रोच्चारण गुरुगम पूर्वक अवश्य सीखना चाहिए।

• सूत्रोच्चारण मधुरता, त्रियोग की शुद्धि एवं एकाग्रतापूर्वक अर्थ चिंतन करते हुए करना चाहिए साथ ही परमात्मा के प्रति अहोभाव लाना चाहिए।

9. मुद्रा त्रिक

मुद्रा अर्थात अभिनय, एक्शन या शरीर की अवस्था विशेष। जैनाचार्यों ने विविध सूत्रों के साथ विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का गुम्फन किया है। चैत्यवंदन क्रिया करते हुए तीन विशिष्ट मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। उन मुद्राओं को धारण करने से हमारे मन एवं शरीर पर विशेष प्रभाव पड़ता है। ये मुद्राएँ विनय, नम्रता, स्थिरता, वीरता आदि भावों की सूचक है एवं उन्हीं भावों का जागरण भी करती हैं। वे तीन मुद्राएँ निम्नोक्त हैं– 1. योग मुद्रा 2. मुक्ताशुक्ति मुद्रा एवं 3. जिनमुद्रा। ये तीनों मुद्राएँ प्रशस्त मानी गई हैं।[16]

1. योग मुद्रा– यह एक हस्त मुद्रा है। दोनों हाथों की दसों अंगुलियों को हल्के से एक दूसरे में ग्रथित कर हथेलियों को अविकसित कमल की तरह बनाते हुए दोनों कोहनियों को पेट पर रखने से योगमुद्रा बनती है। जं किंचि, चैत्यवंदन, नमुत्थुणं, स्तवन, अरिहंत चेइयाणं आदि पाँच दंडक सूत्र इस मुद्रा में ही बोले जाते हैं।

2. मुक्ताशुक्ति मुद्रा– यह भी एक हस्त मुद्रा है। मुक्ता अर्थात मोती और शुक्ति यानी सीप। सीप के आकार जैसी हस्त मुद्रा मुक्ताशुक्ति मुद्रा कहलाती है। दोनों हाथों को जोड़कर अंगुलियों के ऊपरी पोरवों को आपस में मिलाते हुए हथेली के मध्यभाग को खोखला या पोला रखना मुक्ताशुक्ति मुद्रा है। इस मुद्रा में हाथों को ललाट या भौहों के बीच रखा जाता हैं। जावंति चेइयाइं, जावंत केवि साहु एवं जयवीयराय सूत्र मुक्ताशुक्ति मुद्रा में बोले जाते हैं।

3. जिन मुद्रा– यह पाँव और हाथ की मुद्रा है। तीर्थंकर परमात्मा (जिन) जिस मुद्रा में कायोत्सर्ग हेतु खड़े रहते हैं वह जिनमुद्रा कहलाती है। इस मुद्रा में सीधे खड़े होकर दोनों पैरों के बीच आगे की तरफ चार अंगुल एवं पीछे एड़ियों में चार अंगुल से कम का अन्तर रखते हुए दोनों हाथों को नीचे की ओर सीधा लटकता हुआ रखा जाता है। दोनों हथेलियाँ जंघा की तरफ रहती है। इस प्रकार जिनमुद्रा बनती है। कायोत्सर्ग के समय जिनमुद्रा धारण की जाती है। खड़े रहकर बोले जाने वाले सूत्रों में पैरों की जिनमुद्रा एवं हाथों की योग मुद्रा होती है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ चक्र, ग्रन्थि, तत्त्व आदि को नियंत्रित रखा

जा सकता है। इससे एक्युप्रेशर पॉइन्ट प्रभावित होते हैं एवं जीव का समग्र क्षेत्रों में विकास होता है।

मुद्रा त्रिक में रखने योग्य सावधानियाँ निम्नोक्त हैं–

- मनमर्जी अनुसार किसी भी मुद्रा में कोई भी सूत्र नहीं बोलना चाहिए।
- सूत्रोच्चारण करते हुए इधर-उधर घूमना, मैल उतारना, हाथों को मनचाही अवस्था में रखने से मुद्रा त्रिक का पालन नहीं होता।
- अविधिपूर्वक मुद्रा करने से उनका समुचित लाभ प्राप्त नहीं होता और न ही भावनात्मक एकाग्रता आती है।

10. प्रणिधान त्रिक

प्रणिधान का अर्थ है मन-वचन-काया की एकाग्रता या एकरूपता। एकाग्रता आराधना का मूल आधार है। किसी भी कार्य में तन्मयता एवं तल्लीनता होने पर ही उसकी संपूर्ण सिद्धि होती है। चैत्यवंदन आदि सूत्रों में मन-वचन-काया की एकाकारता को प्रणिधान त्रिक कहते हैं। मन-वचन-काया को अन्य विचारों से रिक्त कर देव-गुरु-धर्म की भक्ति में स्थापित करना भी प्रणिधान कहलाता है। प्रणिधान त्रिक इस प्रकार है– 1. मन का प्रणिधान 2. वचन का प्रणिधान और 3. काया का प्रणिधान।[17]

1. मन का प्रणिधान– जो क्रिया कर रहे हैं उसी में मन को स्थिर करना मन का प्रणिधान है।

2. वचन का प्रणिधान– जिस सूत्र का उच्चारण कर रहे हैं उसकी शैली, उच्चारण आदि को ध्यान में रखकर सूत्र बोलना वचन का प्रणिधान है।

3. काया का प्रणिधान– जिस मुद्रा में क्रिया करनी हो उस मुद्रा के अतिरिक्त शरीर की अन्य शुभ-अशुभ चेष्टाओं का त्याग करना काया का प्रणिधान है।

कुछ आचार्यों के अनुसार प्रणिधान के तीन प्रकार हैं– 1. चैत्यवंदन, 2. गुरुवंदन और 3. प्रार्थना।

1. चैत्यवंदन प्रणिधान– जावंति चेइआइं सूत्र के द्वारा तीनों लोकों में स्थित चैत्यों को वंदन करना चैत्यवंदन प्रणिधान कहलाता है।

2. गुरुवंदन प्रणिधान– जावंत केवि साहु सूत्र के द्वारा ढाई द्वीप में रहे हुए साधुओं को वंदन करना गुरुवंदन प्रणिधान कहलाता है।

3. प्रार्थना प्रणिधान– जय वीयराय सूत्र के द्वारा परमात्मा के चरणों में भव निर्वेद आदि की प्रार्थना करना प्रार्थना प्रणिधान है।

प्रणिधान त्रिक में रखने योग्य सावधानियाँ निम्नोक्त हैं–

• प्रणिधान त्रिक का पालन मन, वचन, काया की स्थिरता एवं एकाकारता के लिए किया जाता है। अत: चैत्यवंदन करते समय मानसिक एवं शारीरिक चंचलता का निरोध करना चाहिए।

• जिस समय जो कार्य कर रहे हो उस समय मात्र उसी में ध्यान रखना चाहिए। अन्य किसी भी बात का चिंतन नहीं करना चाहिए।

• प्रणिधान सूत्रों का उच्चारण एवं मनन करते हुए उन भावों से गुम्फित होने का प्रयास करना चाहिए।

• प्रणिधान समस्त आराधनाओं का मुख्य आधार है। इसके बिना कोई भी आराधना सफल नहीं हो सकती। अत: इसमें पूर्ण तल्लीनता रखनी चाहिए।

दस त्रिक, यह एक ऐसा Practical प्रयोग है जिसके द्वारा क्रमश: Step by Step परमात्मा से सम्बन्ध मजबूत बनता है। जिस प्रकार विविध प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद स्वर्ण एकदम शुद्ध बन जाता है वैसे ही विविध क्रियाओं को करते-करते भक्त एवं भगवान के बीच रहा सम्बन्ध भी स्वार्थ एवं सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठकर विशुद्ध एवं स्थायी बन जाता है। अत: प्रत्येक श्रावक को इन दस त्रिक का पालन पूर्ण जागृति एवं मनोयोग पूर्वक करना चाहिए जिससे वह भक्ति योग की मस्ती में अलमस्त बन जाए।

जिनपूजा सम्बन्धी विधियों का संक्षिप्त परिचय

जैन शास्त्रकारों ने श्रावक के कर्त्तव्यों का निरूपण करते हुए जिनपूजा को एक आवश्यक कर्त्तव्य माना है। इस कर्त्तव्य का यथोचित पालन करने हेतु तत्सम्बन्धी मर्यादाओं एवं विधि मार्ग का निर्देशन भी हमें विविध आचार ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इन नियमों का पालन करता हुआ श्रावक शुद्ध रूप से जिनपूजा का अनुष्ठान पूर्ण कर मानसिक शांति, आत्मिक प्रसन्नता एवं शारीरिक स्फूर्ति का भी अनुभव कर सकता है। उन समस्त विधियों का एक संक्षिप्त क्रम एवं विधि शास्त्रानुसार इस प्रकार है।

स्नान करने की विधि

• स्नान करने की विधि का उल्लेख करते हुए जैनाचार्य कहते हैं कि स्नान

करने से पूर्व सुगन्धी तेल आदि से विधिपूर्वक तैलमर्दन (मालीश) करना चाहिए। इससे प्रमाद दशा दूर होकर शरीर में स्फूर्ति आती है।

• स्नान करने की भूमि का निरीक्षण कर जयणा पूर्वक परात, बाल्टी आदि रखनी चाहिए। छने हुए जल का ही प्रयोग स्नान हेतु करना चाहिए।

• इसके बाद पूर्व दिशा की तरफ मुख करके पीतल की परात आदि में बैठकर स्नान करना चाहिए।

• कुछ ग्रन्थकारों के अनुसार भावपूर्वक मंत्र स्नान करना चाहिए। दोनों हाथों को अंजलि मुद्रा में बनाते हुए एवं उसमें तीर्थों के पवित्र जल की कल्पना करते हुए उसके द्वारा अपने शरीर की शुद्धि कर रहे हैं ऐसी भावना करें एवं निम्न मंत्र का उच्चारण करें–

"ॐ अमले विमले सर्वतीर्थ जले पां पां वां वां अशुचिः शुचिर्भवामि स्वाहा।।"

• स्नान करते हुए पूर्ण वस्त्र नहीं उतारने चाहिए तथा मौनपूर्वक स्नान करना चाहिए।

• स्नान करने के बाद शास्त्र कथन के अनुसार शरीर को पोछना नहीं चाहिए। पूरा पानी निथर जाए उसके बाद वस्त्र पहनने चाहिए। परंतु प्रचलित परम्परा में शुद्ध Towel आदि के प्रयोग की विधि देखी जाती है।

• शरीर सूखने के बाद पूजा के वस्त्र पहनने चाहिए।

पूजा के वस्त्र पहनने की विधि

श्राद्ध विधि प्रकरण में पूर्वोक्त रीति से स्नान करने के बाद वस्त्र पहनने की विधि बताते हुए कहा गया है कि

• स्नान करने के पश्चात थोड़े समय तक वहीं खड़े रहना चाहिए। जब शरीर पर रहा पानी पूरा टपक जाए उसके बाद शरीर को पोंछें।

• शरीर पोंछने हेतु स्वच्छ, मुलायम, सुगंधी रेशमी या सूती वस्त्र जो पानी सोंख सके ऐसा वस्त्र प्रयोग में लेना चाहिए। जब पूरा पानी सूख जाए या शरीर का भीगापन चला जाए तो उसके बाद दूसरा वस्त्र पहनना चाहिए।

• केश आदि पूजा के वस्त्र पहनने से पूर्व ही संवारना चाहिए।

• भीगे हुए पैरों से गंदी जमीन पर नहीं जाना चाहिए।

• पूजा हेतु योग्य स्थान में खड़े होकर एवं उत्तर दिशा की ओर मुख करते

हुए मनोहर, अखंड, बिना सिले हुए, शुद्ध एवं धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिए।

• पुरुषों के लिए धोती और दुपट्टा इन दो अखंड वस्त्रों का विधान है तथा महिलाओं के लिए तीन वस्त्र। वर्तमान में महिलाओं के द्वारा चौथे वस्त्र के रूप में मुखकोश को प्रयुक्त किया जाता है।

• पुरुषों को पूजा हेतु दूध के समान श्वेत वस्त्र पहनने का उल्लेख शास्त्रों में अनेक स्थान पर प्राप्त होता है।

• पूजा के वस्त्र पहनने की विधि बताते हुए कहा है कि धोती पहनते समय उसमें गाँठ नहीं लगानी चाहिए।

• आगे-पीछे की पटली (Plates) इस प्रकार लगानी चाहिए कि नीचे का अंग नहीं दिखे।

• धोती के ऊपर सोना, चाँदी, पीतल आदि धातुओं का कंदोरा यथाशक्ति अवश्य पहनना चाहिए।

• दायाँ कंधा खुला रहे इस प्रकार उत्तरासंग पहनना चाहिए। दुपट्टे के दोनों छोर (किनारों) पर रेशम के फुंदे होने चाहिए, जिससे भूमि आदि की प्रमार्जना हो सके।

• खेस को इस प्रकार पहनना चाहिए कि उसके पल्ले से आठ पट्ट का रूमाल बांधा जा सके। पुरुषों को अलग से मुखकोश का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• अंगों का प्रदर्शन हो इस प्रकार पूजा के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए।

• सामर्थ्य हो तो दसों अंगुलियों में अंगुठी धारण करनी चाहिए। यदि संभव न हो तो पूजा की अंगुली (अनामिका अंगुली) में तो मुद्रिका अवश्य पहननी चाहिए।

• विधि ग्रन्थों में वीरवलय, बाजुबंध, मुकुट, नवसर हार आदि पहनने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। महिलाओं को भी सोलह शृंगार करके जिन मन्दिर जाना चाहिए।

• ठंड के दिनों में स्वेटर आदि पहनने की अपेक्षा पूजा हेतु अलग शॉल रखनी चाहिए और उसे भी मूल गंभारे में पहनकर नहीं जाना चाहिए।

• कुछ आचार्यों ने पूजा के वस्त्रों को 'ॐ ह्री आं क्रौं नमः' इस मंत्र से अभिमंत्रित एवं धूप से अधिवासित करके पहनने का विधान भी बताया है।

पैर धोने की विधि

• मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व आने-जाने में अशुद्ध हुए पैरों की शुद्धि के लिए उन्हें स्वच्छ जल से धोना चाहिए।

• संभव हो तो पैर धोने का पानी साथ में लाना चाहिए। अन्यथा मन्दिर में जहाँ भी पैर धोने की व्यवस्था हो वहाँ पर पैर धोना चाहिए।

• स्तुति का उच्चारण मधुर स्वर में और धीमी आवाज में करना चाहिए, जिससे अन्य दर्शनार्थियों को विक्षेप उत्पन्न न हो।

मुखकोश बांधने की विधि

• परमात्मा की दृष्टि नहीं पड़ती हो ऐसे स्थान पर खड़े होकर खेस के एक छेड़े से आठ परत करते हुए मुखकोश बांधना चाहिए। महिलाओं को बड़े रूमाल का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु उसकी भी आठ परत बनाना आवश्यक है।

• आठ परत इस प्रकार बनाना चाहिए कि उससे नासिका और दोनों होठ ढँक जाएँ।

• मुखकोश व्यवस्थित बाँधने के पश्चात हाथों को पानी से शुद्ध करना चाहिए।

• रूमाल को बार-बार ऊपर नीचे नहीं करना चाहिए।

• मुखकोश को बांधकर ही अंगपूजा सम्बन्धी सभी कार्य करने चाहिए। जैसे कि चंदन घिसना, पुष्प आदि चढ़ाना आदि।

• मुखकोश बांधने के बाद मौन रहना चाहिए। दोहे आदि का उच्चारण भी मन में ही करना चाहिए।

चंदन घिसने की विधि

• चंदन घिसने हेतु सर्वप्रथम आठ पट का मुखकोश बांधें। तदनन्तर कपूर, केशर, अंबर, कस्तूरी, बरास आदि सुगन्धित द्रव्यों को एक कटोरी में निकाल लेना चाहिए।

• चंदन घिसने का पत्थर (ओरसिया) एवं चंदन दोनों को जयणापूर्वक देखकर स्वच्छ पानी से साफ करना चाहिए।

• ओरसिया स्वच्छ होने के बाद केशर एवं पानी आदि मिलाते हुए चंदन रस तैयार करना चाहिए। तदनन्तर चन्दन रस को हथेली से कटोरी में लेना चाहिए।

• चंदन रस को कटोरी में लेते समय एवं घिसते समय पसीना उसमें न गिरे इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए तथा केशर नाखून में नहीं जाए इसका भी पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

• चंदन घिसते समय किसी से बातचीत नहीं करनी चाहिए।

• परमात्म भक्ति के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक कार्य के लिए अथवा शारीरिक रोग उपशान्ति के लिए चंदन घिसने पर देवद्रव्य के सेवन का दोष लगता है।

• तिलक लगाने की केशर यदि अलग से कटोरी में रखी हुई न हो तो श्रावक को दो कटोरी में घिसा हुआ चंदन लेना चाहिए। एक तिलक लगाने के लिए और दूसरी परमात्म पूजा के लिए।

• केसर आदि का उपयोग मौसम के अनुसार यथोचित मात्रा में करना चाहिए।

तिलक करने की विधि

• प्राचीन परम्परा के अनुसार चंदन घिसने के बाद गृहस्थ को चौकी आदि पर पद्मासन मुद्रा में बैठकर दर्पण के सामने तिलक लगाना चाहिए। वर्तमान में खड़े रहकर तिलक लगाने की विधि ही प्रचलित है।

• तिलक लगाने के स्थान पर परमात्मा की दृष्टि न पड़े इसका पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

• पुरुषों को ललाट, दोनों कान, कंठ, हृदय और नाभि पाँच अंगों पर तिलक लगाना चाहिए और महिलाओं को ललाट, कान और कंठ पर।

• पुरुषों को ललाट पर बादाम या जलती हुई दीपशिखा के आकार वाला तथा महिलाओं को सौभाग्य सूचक गोल बिंदी के आकार का तिलक लगाना चाहिए।

• परमात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य कर रहा हूँ इन भावों से मस्तक पर तिलक करना चाहिए।

• कुछे आचार्यों के अनुसार तिलक करने से पूर्व 'ॐ आँ ह्रीँ क्लैँ अर्हते नमः' इस मन्त्र का सात बार स्मरण करते हुए केशर को मन्त्रित करना चाहिए।

अभिषेक (प्रक्षाल) जल तैयार करने की विधि

• पूर्व काल में लगभग पंचामृत से प्रक्षाल करने का ही विधान था वहीं आज अधिकांश स्थानों पर दूध एवं पानी से प्रक्षाल करने तक सीमित रह गया है।

• प्रक्षाल हेतु कुआं, बावरी, बारिश आदि का पानी ही उपयोग में लेना चाहिए। वर्तमान में प्रयुक्त हो रहा नलों का पानी शास्त्रानुसार योग्य नहीं है।

• पंचामृत तैयार करने हेतु 50% गाय का दूध, 25% निर्मल जल, 10% दही, 10% शक्कर और 5% गाय का घी इनका मिश्रण करना चाहिए।

• पंचामृत तैयार करते समय मुखकोश बांधकर रखना चाहिए। आपस में बातें नहीं करनी चाहिए। थूक, पसीना आदि पंचामृत में न गिरे इसका पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

• सिर्फ दूध से प्रक्षाल करना हो तो दूध में नाम मात्र पानी मिलाना चाहिए।

• पंचामृत या गन्ना रस आदि से प्रक्षाल करने के बाद चिकनाहट पूर्ण रूप से साफ हो जाए इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

• पैर धोने से पूर्व पैर धोने के स्थान का जयणापूर्वक निरीक्षण करना चाहिए ताकि जीव हिंसा न हो और पानी छाना हुआ हो।

• नल के नीचे पैर नहीं धोने चाहिए।

• पैरों के पंजों को एक-दूसरे से रगड़कर नहीं धोना चाहिए इससे संसार में अपयश मिलता है।

• गीले पैरों से एक-दूसरे स्थान पर चलकर नहीं जाना चाहिए।

• जहाँ पैर धो रहे हो वह पानी नाली में नहीं जाए और 48 मिनट की अवधि में सूख जाए इसका विवेक रखना चाहिए।

मन्दिर में प्रवेश करने की विधि

• अष्टप्रकारी पूजा की सम्पूर्ण सामग्री लेकर श्रावक वर्ग को मंदिर की दायीं तरफ से तथा श्राविका वर्ग को बायीं तरफ से प्रवेश करना चाहिए। मंदिर द्वार की पहली सीढ़ी पर दोनों को सर्वप्रथम दायाँ पैर ही रखना चाहिए, ऐसा निर्देश श्राद्धविधि प्रकरण में किया गया है।

• परमात्मा के दर्शन होते ही मस्तक झुकाकर 'नमोजिणाणं' कहना चाहिए।

• स्कूल, ऑफिस, मार्केट आदि जाते हुए दर्शन करने वालों के पास जिनपूजा के अतिरिक्त कोई भी सामग्री हो तो उसे मंदिर के बाहर रखकर जाना चाहिए।

• श्राद्ध विधि प्रकरण के अनुसार पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके जब चंद्र स्वर चल रहा हो तब पूजा विधि प्रारंभ करनी चाहिए।

• मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व श्रावक के लिए पाँच अभिगम अर्थात विनय स्थान बताए गए हैं। उन पाँच अभिगमों का पालन भी अवश्य करना चाहिए।

प्रथम निसीहि की विधि

• जिनमन्दिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करने से पूर्व एक बार निसीहि शब्द का उच्चारण सांसारिक समस्त वृत्तियों का त्याग करना चाहिए।

• प्रवेश करते समय आधा झुककर एवं देहलीज पर हाथ लगाकर उसे मस्तक पर लगाने का विधान है। यह परमात्मा के समक्ष दर्शाने योग्य एक प्रकार का विनय है।

• प्रथम निसीहि का उच्चारण करने के बाद मन्दिर सम्बन्धी आदेश आदि की छूट रहती है। अत: श्रावक वर्ग को मन्दिर एवं तद्विषयक कार्यों का पूर्ण निरीक्षण करना चाहिए।

• जिनमन्दिर सम्बन्धी नियमों का पालन एवं संरक्षण आदि करने से अनंतगुणा लाभ प्राप्त होता है।

• मन्दिर सम्बन्धी समस्त कार्य आराधक वर्ग को स्वयं करने चाहिए। यदि कर्मचारियों से करवाते हैं तो अत्यंत मृदुतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

घंटनाद करने की विधि

• परमात्मा के मन्दिर में प्रवेश करने के साथ ही सुप्त आत्मा को जागृत करने के उद्देश्य से प्रथम बार घंटनाद करना चाहिए। यह अलार्म के समान जीव को जगाने का कार्य करता है।

• परमात्मा का अभिषेक करते हुए परमात्मा के जन्म की सूचना के अनुकरण रूप दूसरी बार घंटनाद करना चाहिए।

• अष्टप्रकारी पूजा या सम्पूर्ण द्रव्य पूजा सम्पन्न होने पर तीसरी बार घंटनाद करना चाहिए।

• प्रभु भक्ति से प्राप्त आनंद की अभिव्यक्ति एवं उसे जग जाहिर करने हेतु मन्दिर से निकलते समय चौथी बार घंटनाद करना चाहिए।

• घंटनाद करते हुए यह विवेक अवश्य रखना चाहिए कि उससे अन्य दर्शनार्थियों को अंतराय उत्पन्न नहीं हो।

प्रदक्षिणा देने की विधि

• प्रदक्षिणा देते समय समवसरण में विराजित तीर्थंकर परमात्मा की कल्पना करते हुए एवं मूलनायक परमात्मा की दायीं तरफ से तीनों दिशाओं में रही हुई मंगल मूर्तियों को वंदन करते हुए तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए। इसी कारण अधिकांश जिनालयों में मंदिर के मूल गर्भगृह के बाहर तीन दिशाओं में एक-एक प्रतिमा होती है।[18]

• मौन पूर्वक अथवा प्रदक्षिणा के दोहे बोलते हुए जयणापूर्वक प्रदक्षिणा देनी चाहिए।

• यदि सामुदायिक क्रिया कर रहे हों तो ज्येष्ठ व्यक्ति को सबसे आगे रखना चाहिए। पुरुष वर्ग को आगे और महिला वर्ग को पीछे रहना चाहिए।

• प्रदक्षिणा देते हुए सम्पूर्ण पूजा सामग्री को हाथ में लेकर प्रदक्षिणा देनी चाहिए।

• सामर्थ्य हो तो सम्पूर्ण मन्दिर परिसर की अथवा मूलनायक प्रतिमा जी की प्रदक्षिणा देनी चाहिए। यदि वह शक्य न हो तो त्रिगड़ा में विराजमान प्रतिमाजी की प्रदक्षिणा अवश्य देनी चाहिए।

• प्रदक्षिणा देने का एक हेतु मन्दिर का सूक्ष्म निरीक्षण करना भी है। अतः प्रदक्षिणा देते समय मन्दिर के हर कोने को अच्छे से देख लेना चाहिए।

• प्रदक्षिणा के दोहों को अत्यंत मंद स्वर में बोलना चाहिए।

स्तुति बोलने की विधि

• प्रदक्षिणा देने के बाद मूल गर्भगृह के द्वार के समीप खड़े होकर परमात्मा को अर्धावनत प्रणाम करके स्तुति बोलनी चाहिए।

• स्तुति बोलते समय श्रावक वर्ग को परमात्मा की दायीं तरफ एवं श्राविका वर्ग को परमात्मा की बायीं तरफ खड़े रहना चाहिए।

• पैकेट का दूध, बासी दूध, सोयाबीन का दूध आदि प्रक्षाल हेतु प्रयोग में नहीं लेना चाहिए। इस विषय में सावधानी रखना अत्यंत आवश्यक है, वरना जीवोत्पत्ति की संभावना रहती है।

मूल गर्भगृह में प्रवेश करने की विधि

• मूल गर्भगृह में प्रवेश करने से पूर्व मन्दिर सम्बन्धी कार्यों का भी त्याग करने के सूचनार्थ दूसरी निसीहि बोलनी चाहिए।

• विनय भाव का प्रदर्शन करने हेतु अर्धावनत प्रणाम करते हुए अंगपूजा सम्बन्धी सामग्री को हाथ में लेकर फिर गंभारे में प्रवेश करना चाहिए।

• गंभारे में प्रवेश करने के बाद किसी भी तरह की बातें नहीं करनी चाहिए।

• गंभारे में किसी भी स्तुति-स्तोत्र आदि का पाठ नहीं करना चाहिए। यथासंभव मौनपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

• गर्भगृह के मूल द्वार की देहलीज के दायीं-बायीं तरफ बने हुए केशरी सिंह और व्याघ्र दोनों क्रमशः राग और द्वेष के प्रतीक हैं। गंभारे में प्रवेश करने से पूर्व राग और द्वेष दोनों का ही दमन करना चाहिए, ऐसा इन चिह्नों से संदेश मिलता है।

• गर्भगृह में अंगपूजा, निर्माल्य उत्तारण, अंगलुंछन आदि हेतुओं से ही प्रवेश करना चाहिए। अकारण गर्भगृह में नहीं जाना चाहिए।

• पूजा के वस्त्र पहनकर एवं मुखकोश बांधकर ही गर्भगृह में प्रवेश करना चाहिए।

निर्माल्य उतारने की विधि

• निर्माल्य उतारने हेतु सर्वप्रथम एक स्वच्छ थाल में प्रतिमाजी पर रहे हुए पुष्प आदि अत्यंत कोमलतापूर्वक उतारने चाहिए।

• बासी फूलों को यथायोग्य स्थान पर रखकर यदि मुकुट, आंगी, अलंकार आदि चढ़ाए हुए हों तो उन्हें भी अत्यंत धीरतापूर्वक एक-एक करके उतारना चाहिए। इन्हें उतारकर फर्श आदि पर नहीं रखते हुए किसी थाली में रखना चाहिए। बहुमानपूर्वक क्रिया करना भी परमात्मा के प्रति एक प्रकार का विनय है।

• तदनन्तर मोरपींछी के द्वारा जिनबिम्ब पर रहे हुए शेष निर्माल्य, वासक्षेप आदि उतारनी चाहिए।

• उसके पश्चात एक स्वच्छ कटोरे में पानी लेकर उससे प्रतिमाजी को

गीला करते हुए हाथ से धीरे-धीरे केशर आदि को दूर करना चाहिए। शेष चिपकी हुई केशर आदि को सूती गीले कपड़े से दूर करना चाहिए।

• तदनन्तर स्वच्छ जल से भरे हुए कलश के द्वारा अभिषेक करके निर्माल्य को पूरी तरह से दूर करने का प्रयास करना चाहिए, इसके बावजूद भी यदि प्रतिमाजी पर निर्माल्य रह जाए या वह नहीं निकल रहा हो तो कोमलतापूर्वक वालाकुंची का प्रयोग करना चाहिए।

• निर्माल्य पुष्पों को प्रक्षाल में नहीं डालना चाहिए।

अभिषेक करने की विधि

• परमात्मा का अभिषेक करने हेतु आठ पट्ट का मुखकोश बांधकर सर्वप्रथम पंचामृत या दूध से और फिर जल से परमात्मा का प्रक्षाल करें।

• प्रक्षाल करते समय मुखकोश को ऊपर-नीचे नहीं करना चाहिए। यदि मुखकोश के बार-बार हाथ लगाएं तो उस समय हाथ धोकर फिर जिनबिम्ब को स्पर्श करना चाहिए।

• पूजार्थी को मौनपूर्वक प्रक्षाल करना चाहिए तथा रंगमंडप में खड़े अन्य भाविक श्रावकों को घंटनाद, शंखनाद, नगाड़ा आदि वाजिंत्र बजाने चाहिए। स्नात्र के दोहे आदि गाने चाहिए।

• अभिषेक करते समय वस्त्र या शरीर का कोई भी भाग परमात्मा को स्पर्श नहीं करे, यह विवेक रखना चाहिए।

• अभिषेक कलश को दोनों हाथों से बहुमानपूर्वक पकड़कर फिर परमात्मा के मस्तक पर धारा देनी चाहिए।

• पंचामृत या दूध से प्रक्षाल होने के बाद पानी का प्रक्षाल चल रहा हो तो दुबारा दूध से प्रक्षाल नहीं करना चाहिए।

• प्रक्षाल होने के पश्चात अंगलुंछन का कार्य चल रहा हो, पूजा चल रही हो अथवा चैत्यवंदन कर रहें हों तब अंगूठे का भी प्रक्षाल नहीं करना चाहिए।

• पंचामृत और पानी का कलश अलग-अलग रखना चाहिए।

• कलश नीचे न गिरे, न्हवण जल के ऊपर पैर आदि न आए, इसका पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

• अभिषेक करते समय प्रक्षाल का जल नहीं लगाना चाहिए। इसे न्हवण पात्र में निकालने के बाद घर जाते समय लगाना चाहिए।

अंगलुंछन करने की विधि

• 'साक्षात तीर्थंकर परमात्मा का अंगलुंछन कर रहे हैं' इन भावों से युक्त होकर मलमल के सूती वस्त्र से अत्यंत कोमलतापूर्वक अंगलुंछन करना चाहिए।

• तीन प्रकार के अंगलुंछन वस्त्रों के प्रयोग का विधान है। पहला अंगलुंछन थोड़ा मोटा, दूसरा थोड़ा पतला (पक्की मलमल) और तीसरा सबसे पतला (कच्ची मलमल) होना चाहिए।

• अंगलुंछन के वस्त्र सफेद, मुलायम एवं काण (तिरछापन) रहित होने चाहिए।

• अंगलुंछन वस्त्रों का प्रयोग करने से पूर्व उन्हें दशांग धूप आदि से धुपित कर सुगंधित करना चाहिए।

• अंगलुंछन करते समय शरीर या वस्त्रों का स्पर्श परमात्मा से नहीं हो, इसकी सावधानी रखनी चाहिए।

• अंगलुंछन वस्त्रों को एक थाली में ही रखना चाहिए। भूमि पर रखे गए वस्त्रों का प्रयोग बिना धोए नहीं हो सकता।

• अंगलुंछन करते समय सर्वप्रथम प्रतिमाजी पर रहे हुए पानी को ऊपर-ऊपर से सुखाना चाहिए। इसके बाद दूसरे अंगलुंछण के द्वारा संपूर्ण बिम्ब का पानी सोखा जाता है। फिर उसी अंगलुंछण वस्त्र से अंग-उपांग, हथेली के नीचे, कंधे के नीचे आदि छोटी जगह में वस्त्र की पतली लट बनाकर वहाँ से आर-पार निकाली जाती है। इससे भी यदि पानी न सुखे तो शलाका का प्रयोग किया जाता है।

• सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, चंदन आदि से निर्मित शलाका का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। तदनन्तर तीसरे अंगलुंछण वस्त्र के द्वारा संपूर्ण प्रतिमा को धीरे से पोछना चाहिए, जिससे कहीं भी पानी रहा हुआ हो तो सूख जाए।

• अष्ट प्रातिहार्य या परिकर युक्त प्रतिमा के परिकर का अंगलुंछन भी करना चाहिए।

• देवी-देवता, गुरु मूर्ति, परिकर आदि का अंगलुंछण वस्त्र अलग रखना

चाहिए। परमात्मा के अंगलुंछण वस्त्र का प्रयोग इनके लिए अथवा इनके लिए प्रयुक्त अंगलुंछण वस्त्र का प्रयोग परमात्मा के लिए नहीं करना चाहिए।

• अंगलुंछण करने के बाद अंगलुंछण वस्त्रों को वापस एक थाली में रखना चाहिए। दरवाजा, खिड़की, पबासन आदि पर अंगलुंछण वस्त्र नहीं रखने चाहिए।

• अंगलुंछण दोनों हाथों से करना चाहिए। एक हाथ से प्रभु की प्रतिमा, दीवार या परिकर का टेका लेकर अंगलुंछण नहीं करना चाहिए।

• अंगलुंछण, पाटलुंछण एवं जमीनलुंछण इन तीनों की डोरी अलग-अलग होनी चाहिए।

• अंगलुंछण का कार्य पूर्ण होते ही वस्त्रों को तुरंत धोकर सुखाना चाहिए।

• अंगलुंछण धोने हेतु परात या थाली का प्रयोग करना चाहिए और यदि संभव हो तो उस पानी को नाली आदि में भी नहीं डालना चाहिए।

• अंगलुंछण आदि क्रियाएँ एकदम मौनपूर्वक करनी चाहिए।

• अंगलुंछण वस्त्रों को पाटलुंछण वस्त्र के साथ रखना, धोना या सुखाना नहीं चाहिए।

विलेपन करने की विधि

• देसी कपूर और चंदन को मिश्रित करके जिनपूजा हेतु सुगंधित विपेलन तैयार करना चाहिए।

• विलेपन को छोटी थाली में ग्रहण कर एवं धूप से संस्कारित करके फिर मूल गंभारे में लेकर जाना चाहिए।

• विलेपन नाखून में रह न जाए यह सावधानी रखते हुए पाँचों अंगुलियों से परमात्मा के सर्व अंग पर विलेपन करना चाहिए। मुख पर विलेपन नहीं करना चाहिए।

• जब एक व्यक्ति विलेपन कर रहा हो तो बाकी लोगों को हाथ जोड़कर पंक्ति में खड़ा रहना चाहिए।

• विलेपन पूजा सम्पन्न होने के बाद अंगलुंछण वस्त्र के समान किसी मलमल आदि के वस्त्र से विलेपण को पोंछने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

• कई आचार्यों के अनुसार यदि परमात्मा की बरख आदि से अंगरचना करनी हो तो ही विलेपन पूजा करनी चाहिए। विलेपन पूजा का मुख्य हेतु अंगरचना बताया गया है।

• विलेपन वस्त्र को धोने के पश्चात उसे अंगलुंछन वस्त्र के साथ सुखा सकते हैं।

• यदि अंगरचना करनी हो तो ही विलेपन पूजा करनी चाहिए।

केशर पूजा की विधि

• जिनेश्वर परमात्मा की केशर पूजा करने हेतु अंबर, कस्तूरी, बरास चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों को मिश्रित कर मध्यम प्रकार का पेस्ट तैयार करना चाहिए।

• केशर को धूप से संस्कारित कर फिर मूल गर्भगृह में ले जाना चाहिए। अनामिका अंगुली के द्वारा परमात्मा की नवांगी पूजा करनी चाहिए।

• केशर का नाखून से स्पर्श नहीं हो इसकी सावधानी रखनी चाहिए। यदि नाखून से स्पर्श हो जाए तो केशर का विसर्जन कर देना चाहिए।

• मुखकोश को इस प्रकार बांधना चाहिए कि नाक और मुख दोनों ही ढके हुए रहें।

• परमात्मा के नौ अंगों की पूजा तेरह टीकी लगाकर की जाती है। पहले दाएँ अंग पर और फिर बाएँ अंग पर पूजा करनी चाहिए।

• एक अंग की पूजा के लिए एक ही बार केशर लेनी चाहिए। यदि केशर समाप्त हो जाए तो कटोरी में दूसरी केशर ले सकते हैं।

• परमात्मा के किसी भी अंग की पूजा एक बार ही होती है। चरण की जगह सिर्फ अंगूठे की ही पूजा होती है और उसे एक बार ही करनी चाहिए।

• नौ अंगों की पूजा क्रम से करनी चाहिए। पहले दोहे का चिंतन और फिर उस अंग की पूजा करनी चाहिए।

• पूजा के समय पूर्ण मौन रहते हुए कोई भक्ति स्तोत्र आदि भी नहीं बोलना चाहिए।

• पूजा विधिपूर्वक एवं शांति से करनी चाहिए। अधिक प्रतिमाओं की पूजा करने के लिए सभी बिम्बों की पूजा को फटा-फट निपटा देना, अंगुली में एक बार केशर लेकर नौ अंगों की पूजा कर लेना दोषपूर्ण है। सभी बिम्बों की पूजा करना अति उत्तम है परन्तु अधिक के लिए अविधि करने की अपेक्षा थोड़े की विधिपूर्वक पूजा करना अधिक औचित्यपूर्ण है।

• पुरुषों को भगवान की दायीं तरफ खड़े रहके एवं महिलाओं को बायीं तरफ खड़े रहके पूजा करनी चाहिए।

• पूजा करते हुए पंचधातु की प्रतिमा, छोटी प्रतिमा या सिद्धचक्र के गट्टाजी को हिलाना नहीं चाहिए।

• कोई भविक व्यक्ति परमात्मा की अंग रचना कर रहा हो या कर चुका हो तो पूजा का आग्रह नहीं रखना चाहिए। अन्य प्रतिमाजी की पूजा कर लेनी चाहिए।

• पूजा करते समय सर्वप्रथम मूलनायक परमात्मा, फिर अन्य परमात्मा, सिद्धचक्रजी, बीसस्थानकजी, प्रवचन मुद्रा में गणधर प्रतिमा, गुरुमूर्ति, शासन अधिष्ठायक देवी-देवता की पूजा क्रमशः करनी चाहिए।

• यदि मूलनायक की पूजा होने में विलम्ब हो तथा पूजार्थी के पास उतना समय न हो तो थोड़ा सा केशर अलग रखकर शेष सभी की पूजा कर सकते हैं।

• यदि प्रतिमाजी के ऊपर से केशर की धारा निकल रही हो तो पहले अतिरिक्त केशर को साफ करके फिर पूजा करनी चाहिए।

• अष्टमंगल का पट्ट, लंछन, श्रीवत्स और हथेली की पूजा नहीं करनी चाहिए।

• सिद्धचक्र की पूजा करने के बाद उसी केशर से वीतराग परमात्मा की पूजा कर सकते हैं।

• देवी-देवताओं की पूजा अंगूठे से तिलक लगाकर करनी चाहिए।

पुष्प पूजा करने की विधि

• परमात्मा को चढ़ाने हेतु शुद्ध, सुगन्धित, धूल आदि से रहित, अखंड, पूर्ण विकसित, ताजे पुष्पों का ही प्रयोग करना चाहिए।

• मूल विधि के अनुसार तो जो पुष्प सहज रूप में बिछाए हुए वस्त्र पर गिर जाएं उन्हीं ताजे पुष्पों का प्रयोग करना चाहिए।

• यदि पुष्पों को पेड़ से तोड़ना हो तो अत्यंत सावधानी एवं कोमलता पूर्वक अंगुलिओं पर सोना, चाँदी या पीतल के कवर चढ़ाकर उन्हें चूंटना चाहिए।

• माली आदि से पुष्प खरीदे तो भी शुद्धता एवं ताजगी का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

• पुष्पों को सोने, चाँदी या पीतल की छाब में रखना चाहिए।

• पूजा हेतु पुष्पों को एक थाली में लेकर एवं धूप से अधिवासित करके फिर मूल गर्भगृह में लेकर जाना चाहिए।

• पुष्पमाला बनाने हेतु फूलों को सूई से बिंधना नहीं चाहिए। हाथों से गूंथकर पुष्पमाला बनानी चाहिए।

• फूलों को दोनों हाथों में लेकर फिर परमात्मा के चरणों में चढ़ाना चाहिए।

• पुष्प इस प्रकार चढ़ाना कि पूजा करने वालों को दिक्कत न हो।

• चढ़ाए हुए पुष्पों को एक बार उतारने के बाद पुनः प्रतिमाजी पर नहीं चढ़ाना चाहिए। यदि आंगी रचानी हो तो पुष्पों को एक थाली में एकत्रित कर तुरंत उनका उपयोग करना चाहिए। पूरा दिन एकत्रित कर फिर उसमें से छांट-छांटकर नहीं चढ़ा सकते।

• प्रतिमा पूरी ढंक जाए इस प्रकार पुष्पों को नहीं चढ़ाना चाहिए।

• फूलों को प्लास्टिक की डब्बी, Polythene, कागज या पूजा पेटी में नहीं रखना चाहिए।

• फूलों की पंखुड़ियाँ तोड़कर नहीं चढ़ानी चाहिए।

• पुष्पों को सूंघ-सूंघकर नहीं चढ़ाने चाहिए।

• मन्दिर में रखे हुए पुष्पों का उपयोग गृह मन्दिर के लिए नहीं करना चाहिए।

• यदि चढ़ाने हेतु पुष्प उपलब्ध नहीं हो तो सोने अथवा चाँदी के पुष्प चढ़ा सकते हैं।

• पुष्पों को पानी में भिंगाकर नहीं रखना चाहिए। इससे उनमें जीवोत्पत्ति की संभावना रहती है।

धूप पूजा की विधि

• धूप पूजा करने हेतु मालती, केशर, चंदन, गुलाब आदि सुगंधित द्रव्यों से युक्त धूप ही परमात्मा के समक्ष रखना चाहिए।

• सुगंध रहित अथवा अतिगंध युक्त धूप जिससे अन्य दर्शनार्थियों को परेशानी हो ऐसा धूप प्रयोग में नहीं लेना चाहिए। इसी प्रकार लकड़ी वाली अगरबत्ती का प्रयोग भी जिनपूजा में नहीं करना चाहिए।

• धूप पूजा हेतु धूप सामग्री यथासंभव अपने घर से लानी चाहिए। यदि मंदिर का धूप प्रयोग कर रहें हो और धूप जल रहा हो तो नया धूप नहीं जलाना चाहिए।

• धूप पूजा परमात्मा के बायीं तरफ खड़े रहकर करनी चाहिए।

• धूप चढ़ाना अग्र पूजा है। यह पूजा परमात्मा के मूल गर्भगृह के बाहर खड़े रहकर करनी चाहिए। इसमें कम से कम साढ़े तीन हाथ का अवग्रह (दूरी) अवश्य रखना चाहिए।

• धूपदानी में धूप रखकर उसे गोल-गोल घुमाना नहीं चाहिए। उसे हृदय के पास स्थिर रखकर धूप पूजा का दोहा बोलना चाहिए।

• अंगपूजा पूर्ण होने के बाद ही धूप पूजा करनी चाहिए।

• अंगपूजा करते हुए धूप आदि को साथ लेकर मूल गर्भगृह में नहीं जाना चाहिए।

• धूपबत्ती को जलाने से पूर्व उसे घी में नहीं डुबाना चाहिए और फूंक देकर धूप को बुझाना भी नहीं चाहिए।

दीपक पूजा की विधि

• दीपक पूजा के लिए गाय के शुद्ध घी का उपयोग करना चाहिए।

• दीपक पूजा मूल गर्भगृह के बाहर परमात्मा के दायीं तरफ खड़े रहकर करना चाहिए।

• दीपक को थाली या फाणस में रखकर ही प्रज्वलित करना चाहिए।

• जिनमंदिर में प्रज्वलित सभी दीपक चारों तरफ से ढंके हुए हों, इसकी पूरी जयणा रखनी चाहिए।

• दीपक को नाभि से ऊपर एवं नासिका से नीचे रखना चाहिए।

• पुरुषों को आरती और मंगल दीपक करते समय सिर पर साफा या टोपी एवं कंधे पर खेस रखना चाहिए तथा महिलाओं को सिर ढंकना चाहिए।

• यथासंभव सभी को अपने घर से दीपक साथ में लाना चाहिए ताकि स्वद्रव्य से परमात्मा की दीपक पूजा की जा सके।

नृत्यपूजा (चामर डुलाने) की विधि

• परमात्मा के समक्ष दासत्व भाव की अभिव्यक्ति एवं परमात्मदर्शन से प्राप्त आनंद की अभिव्यक्ति करने हेतु नृत्यपूजा के रूप में चामर पूजा की जाती है।

• चामर पूजा रंग मंडप में अर्थात मूल गर्भगृह के बाहर की जाती है।

• अन्य आराधकों को हमारे नृत्य से विक्षेप न हो इसका विवेक अवश्य रखना चाहिए।

• दोनों हाथों में चामर लेकर वाजिंत्र नाद के साथ नृत्यपूजा करनी चाहिए। दो चामर न हों तो दाएँ हाथ में चामर एवं बाएँ हाथ से नृत्य की विविध मुद्राएँ करते हुए नृत्य करना चाहिए।

• भक्ति आदि में फिल्मी नृत्य या नागिन आदि का नृत्य नहीं करना चाहिए।

• चामर पूजा करते समय अपने पैरों को धीरे-धीरे नचाते हुए हाथों से भी नृत्य का हाव-भाव प्रकट करना चाहिए।

• जिन मंदिर में रखे हुए चामर को गुरु महाराज के समक्ष अथवा नाटक आदि में राजा आदि के सामने नहीं ढुलाना चाहिए। यदि उपयोग में लिया हो तो तद्योग्य नकरा मंदिर में जमा करा देना चाहिए।

दर्पण दर्शन एवं पंखी बिंझने की विधि

• परमात्मा को हृदय में बसाने के प्रतीक स्वरूप परमात्मा की दर्पण पूजा की जाती है।

• दर्पण पूजा के लिए उपयोगी दर्पण Aluminium, Plastic, कागज आदि में Frame किया हुआ नहीं होना चाहिए। सामर्थ्य हो तो सोना, चाँदी अथवा पीतल का सुंदर नक्काशी किया हुआ दर्पण उपयोग में लेना चाहिए।

• दर्पण में मात्र परमात्मा के मुख का दर्शन करना चाहिए। खुद का मुख देखने के बाद उस दर्पण का प्रयोग परमात्मा के लिए नहीं करना चाहिए।

• टूटा हुआ, Scratch लगा हुआ अथवा खराब हुआ पुराना दर्पण मन्दिर के प्रयोग में नहीं लेना चाहिए।

• दर्पण पूजा के लिए दर्पण के पृष्ठ भाग को हृदय के पास इस प्रकार स्थापित करें कि उसमें परमात्मा के दर्शन हों। इस समय दर्पण के समान परमात्मा को हृदय में बसाने की भावना भी करनी चाहिए।

• दर्पण में प्रभु के दर्शन होते ही चारो तरफ घूम सकें ऐसी पंखी के द्वारा परमात्मा को बिंझाना चाहिए।

• पंखी कपड़े, पुट्ठे या Aluminium की नहीं होनी चाहिए।। सोना, चाँदी या पीतल की पंखी बनवानी चाहिए।

अक्षत पूजा की विधि

• उत्तम Quality के स्वच्छ, शुद्ध एवं जीव रहित अखंड चावलों का प्रयोग परमात्मा की पूजा हेतु करना चाहिए। सामर्थ्य हो तो सोने या चाँदी के चावल बनवाकर उनसे अक्षत पूजा करनी चाहिए।

• रंगीन चावल या केशर आदि से मिश्रित चावलों का प्रयोग प्रभु पूजा में नहीं करना चाहिए।

• अक्षत पूजा करने हेतु सुखासन में नहीं बैठना चाहिए। उभड़क आसन में बैठकर अक्षत पूजा करनी चाहिए।

• अक्षत पूजा करने के लिए एक थाली में चावल लेकर उसे दोनों हाथों से पकड़ते हुए अक्षत पूजा का दोहा बोलना चाहिए। उसके बाद शिखर मुद्रा (Thums up के समान) में चावल लेकर पहले रत्नत्रयी की तीन ढगली, फिर सिद्धशिला और फिर स्वस्तिक की ढगली बनाना चाहिए। ढगली बनाने के बाद तर्जनी अंगुली से पहले स्वस्तिक और फिर सिद्धशिला बनानी चाहिए।

• संभव हो तो स्वस्तिक के स्थान पर नंद्यावर्त्त एवं अष्टमंगल भी बनाने चाहिए।

• मंदिर से बाहर निकलने से पूर्व अक्षत आदि को यथास्थान डालकर पट्टे को उचित स्थान पर रखना चाहिए।

नैवेद्य चढ़ाने की विधि

• प्राचीन काल में नैवेद्य पूजा के दौरान सम्पूर्ण भोजन का थाल चढ़ाने की व्यवस्था थी। वर्तमान परम्परा में मिश्री, मिठाई आदि चढ़ाने को नैवेद्य पूजा कहा जाता है।

• प्रचलित परम्परा के अनुसार नैवेद्य स्वस्तिक पर ही चढ़ाना चाहिए। परंतु कुछेक आचार्य सिद्धशिला पर नैवेद्य चढ़ाने की भी बात करते हैं। इसके कारण आगे स्पष्ट किए जाएंगे।

• बासी मिठाई, बाजार की मिठाई, चॉकलेट, केडबरी, रेडिमेड मिठाई आदि परमात्मा को नहीं चढ़ानी चाहिए।

• ताजा मिठाई नहीं हो तो मिश्री, गुड़ की डली भी चढ़ा सकते हैं। किन्तु

मिश्री के स्थान पर पैसा नहीं चढ़ाना चाहिए।

फल पूजा करने की विधि

• साधना के श्रेष्ठ फल रूप सिद्धशिला पर उत्तम Quality के फल चढ़ाने का विधान शास्त्रकारों ने किया है। कुछ आचार्य स्वस्तिक पर फल चढ़ाने का निर्देश करते हैं परन्तु वर्तमान प्रचलित परम्परा में यह विधि देखी नहीं जाती।

• फल पूजा हेतु श्रीफल को सर्वोत्तम फल माना गया है। अन्य फल जो श्रावक के लिए खाने योग्य माने गए हैं, वे सभी चढ़ा सकते हैं। यदि फल न हो तो उसके स्थान पर बादाम चढ़ाने का प्रचलन है। अन्य सूखा मेवा या लौंग आदि भी चढ़ा सकते हैं।

• बहुबीज फल, तुच्छ फल या अनजान फल परमात्मा के आगे नहीं चढ़ाना चाहिए।

• फल के स्थान पर पैसा आदि भी नहीं चढ़ाना चाहिए।

• द्रव्य और भाव दोनों पूजा करने के बाद फल या नैवेद्य को योग्य स्थान पर रखकर पट्टा खाली कर देना चाहिए।

खमासमण देने की विधि

• खमासमण देने हेतु सर्वप्रथम खेस के द्वारा भूमि का प्रमार्जन करना चाहिए।

• फिर 'वंदिउं' तक खमासमण सूत्र अंजलिबद्ध मुद्रा में खड़े-खड़े ही बोलें। 'जावणिज्जाए निसीहिआए' बोलते समय आधा झुक जाँए और खेस या रूमाल के द्वारा हाथ, पैर और मस्तक की प्रतिलेखना करें। उसके बाद 'मत्थएण वंदामि' बोलते हुए मस्तक, दोनों घुटने और अंजलिबद्ध दोनों हाथों को जमीन से स्पर्श करवाते हुए पंचांग प्रणिपात करें। इस तरह शरीर के पाँचों अंगों को झुकाना खमासमण कहलाता है।

• दूसरा खमासमण देने के लिए वापस खड़ा होना चाहिए।

• शारीरिक समस्या के अतिरिक्त किसी भी अन्य कारण से अविधिपूर्वक खमासमण नहीं देना चाहिए।

• हाथ टिकाकर, बैठे-बैठे या आधे खड़े होकर खमासमण देना अविधि है।

चैत्यवंदन करने की विधि

• द्रव्यपूजा करने के बाद भावपूजा के रूप में चैत्यवंदन विधि की जाती है।

• जिनेश्वर परमात्मा की दायीं तरफ पुरुषों को एवं बायीं तरफ महिलाओं को एक निश्चित अवग्रह रखते हुए स्तुति, स्तोत्र, स्तवन आदि के साथ चैत्यवंदन करना चाहिए।

• चैत्यवंदन विधि प्रारंभ करने से पूर्व द्रव्यपूजा के त्यागरूप तीसरी निसीहि का उच्चारण कर पूजा सम्बन्धी द्रव्यों से रहे हुए सम्बन्ध को भी विच्छिन्न कर दिया जाता है। अत: चैत्यवंदन करते समय चढ़ाए गए अक्षत आदि से पूजार्थी का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए।

• चैत्यवंदन प्रारंभ करते समय सर्वप्रथम योग मुद्रा में इरियावहियं करनी चाहिए।

• इरियावहियं करते हुए पच्चक्खाण लेने या देने की क्रिया, बीच में उठकर प्रक्षाल आदि करना, घर जाने से पहले पुन: एक बार परमात्मा के चरणों को भेंटना आदि दोषयुक्त है।

• चैत्यवंदन करने हेतु दाहिना पाँव जमीन पर एवं बायां घुटना ऊपर उठाकर हाथों को योगमुद्रा में रखना चाहिए।

• जावंति चेइआइ, जावंत केवि साहु और जयवीयराय यह तीनों प्रणिधान सूत्र हाथों की मुक्ताशुक्ति मुद्रा में बोलने चाहिए।

• मन को स्थिर रखने के लिए सूत्र एवं उनके अर्थ का चिंतन सूत्रोच्चारण करते हुए करना चाहिए।

• चैत्यवंदन आदि करने के पश्चात पच्चक्खाण करना चाहिए। उसके बाद एक खमासमण देकर प्रभुपूजा से प्राप्त आनंद को अभिव्यक्त करने के लिए स्तुतियाँ बोलनी चाहिए।

• फिर एक खमासमण देकर उभड़क पैरों से जमीन पर घुटनों को स्थापित करके एवं सीधे हाथ को मुट्ठी रूप में नीचे रखकर प्रभुभक्ति के दरम्यान की गई अविधि के लिए मिच्छामि दुक्कडम् करना चाहिए।

कायोत्सर्ग करने की विधि

• 19 दोषों से रहित होकर शरीर को स्थिर करते हुए एवं दृष्टि को प्रभु के समक्ष या अपने नासाग्र पर केन्द्रित कर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

• किसी भी दीवार का सहारा लिए बिना खड़े रहना आदि।

• होठ, हाथ की अंगुलियाँ, दृष्टि सभी को स्थिर रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

• कायोत्सर्ग करते समय पैरों के आगे की तरफ चार अंगुल का एवं पीछे की तरफ इससे कुछ कम अन्तर होना चाहिए।

• कायोत्सर्ग करते समय मुख से उच्चारण अथवा, गण-मण नहीं करना चाहिए।

• कायोत्सर्ग में रखे गए आगार (छूट) के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से विचलित या अस्थिर नहीं होना चाहिए।

परमात्मा को बधाने की विधि

• चैत्यवंदन रूप भावपूजा समाप्त होने के पश्चात सोना, रूपा, हीरा, माणक, मोती आदि से प्रभु को दोनों हाथों से बधाना चाहिए।

• बधाने के लिए यदि बहुमूल्य सामग्री लाना संभव नहीं हो तो सोने-चाँदी की पॉलिश वाले पुष्प, मोती या अखंड चावलों से परमात्मा को बधाना चाहिए।

• बधाते समय स्वस्तिक आदि के चावल नहीं उठाकर नए चावल लेने चाहिए। चावलों से अंजलि को भर देना चाहिए।

• उछाले हुए चावल जमीन पर पैरों के नीचे नहीं आने चाहिए।

मन्दिर से बाहर निकलने की विधि

• परमात्मा के सन्मुख दृष्टि रखकर हृदय में परमात्मा का वास करते हुए परमात्मा की तरफ पीठ न आए इस प्रकार आगे और पीछे दोनों तरफ की जयणा रखते हुए उल्टे कदमों से मन्दिरजी से बाहर निकलना चाहिए।

• द्वार के पास पहुँचने से पूर्व परमात्म दर्शन के आनंद की अभिव्यक्ति करने हेतु तीन बार घंटनाद करना चाहिए।

• घंटनाद के बाद परमात्मा से दूर जाने के विरह भाव एवं पापमय संसार में पुन: लौटने के लिए आंतरिक पीड़ा का अनुभव एवं भाव करने चाहिए। तदनन्तर मन्दिर से बाहर निकलें।

• मन्दिर से बाहर निकलते हुए तीन बार 'आवस्सही' कहें।

न्हवण जल लगाने की विधि

• मन्दिर के प्रवेश द्वार के पास परमात्मा की दृष्टि न पड़े ऐसे सुयोग्य स्थान पर न्हवण जल रखना चाहिए।

• न्हवण जल को एक कटोरे में ढक्कन लगाकर रखना चाहिए।

• यदि न्हवण जल रखने का पात्र छोटा हो तो उसे एक छोटी थाली में रखना चाहिए। न्हवण जल लगाते समय, वह नीचे न गिरे इसकी पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

• अहोभावपूर्वक दो अंगुलियों में न्हवण जल लेते हुए अनुक्रम से नाभि के ऊपर के एक-एक अंग पर लगाना चाहिए।

आँखों पर न्हवण जल लगाते हुए दोषदृष्टि एवं कामविकार दूर करने की भावना, कानों पर लगाते हुए दोष श्रवण एवं स्वगुण श्रवण की कमी को दूर करने की भावना, कंठ पर लगाते हुए कल्याणकारी वाणी प्राप्त करने एवं परपीड़ा कारक वाणी को छोड़ने के भाव, हृदय पर न्हवण जल लगाते हुए सर्व जीवों के प्रति मैत्री का विस्तार भाव एवं प्रभु आज्ञा का हृदय में वास हो यह भाव तथा नाभि पर लगाते हुए आंतरिक शक्ति के जागरण के भाव करने चाहिए।

• नाभि से नीचे के अंग पर न्हवण जल नहीं लगाना चाहिए।

चबूतरे पर बैठने की विधि

• मन्दिर विधि पूर्ण होने के बाद शुभ भावों के स्थिरीकरण के लिए कुछ समय मन्दिर के बाहर बैठना चाहिए।

• भगवान एवं मन्दिर की ओर पीठ न हो, इस प्रकार बैठना चाहिए।

• बीच रास्ते में या सीढ़ियों पर नहीं बैठना चाहिए।

• मौनपूर्वक आँखें बंद करके तीन नवकार गिनना एवं हृदय में परमात्मा के दर्शन करना चाहिए।

• मेरी विवशता है कि मुझे प्रभु का दरबार छोड़कर जाना पड़ रहा है। इन भावों से युक्त होकर उठना चाहिए।

समाहार रूप में कहा जा सकता है कि जिनपूजा एक आत्म कल्याणकारी अनुष्ठान है। प्रत्येक जीव का अन्तिम लक्ष्य स्व-स्वरूप की प्राप्ति है। जिन प्रतिमा लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य आलम्बन है। आलंबन का यथोचित सम्मान, गुणगान एवं विधिपूर्वक उसकी आराधना लक्ष्य प्राप्ति में सहायक बनती है।

जिनालय के माध्यम से व्यवहारत: जिनप्रतिमा का वंदन-पूजन किया जाता है परन्तु निश्चय से तो आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने का ही प्रयास किया जाता है। इस अध्याय में जिनपूजन की क्रमिक विधि एवं जिन पूजन-दर्शन की सम्यक आराधना में सहायक सात प्रकार की शुद्धि, पाँच अभिगम एवं दसत्रिक का विवेचन इस प्रकार किया गया है कि जिससे प्रत्येक उपासक सरल एवं सुगम मार्ग को जानकर उसे आचरण में ला सकेगा।

संदर्भ-सूची

1. (क) *मंगलं जिनशासनम्, पृ-8*
   (ख) *पूजा प्रकरण, गा. 1, 8,9, 10,11*
2. (क) *धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, गा. 60-61 की टीका, पृ. 9-25*
   (ख) *मध्याह्ने कुसुमैः पूजा, पूजा प्रकरण, गा. 10*
3. (क) *मंगल जिनशासनम्, पृ.-9*
   (ख) *संध्यायां धूपदीपयुक, पूजा प्रकरण, गा. 10*
4. (क) *जैन धर्म और जिन प्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 207*
   (ख) *श्राद्धविधिप्रकरण, पृ. 119*
5. *चैत्यवंदन, भाष्य गा. 20*
6. *चैत्यवंदन भाष्य, गा. 21*
7. *चैत्यवंदन भाष्य, गा. 6-7*
   चैत्यवंदन कुलक, गा. 1-8, पृ. 97
8. (क) *चैत्यवंदन भाष्य, गा.-8*
   (ख) *चैत्यवंदन कुलक, गा.-4, पृ. 97*
9. *चैत्यवंदन कुलक, गा. 4, पृ. 97*
10. (क) *चैत्यवंदन भाष्य, गा. 8*
    (ख) *चैत्यवंदन कुलक, गा. 5, पृ. 97*
11. (क) *चैत्यवंदन भाष्य, गा. 10*
    (ख) *चैत्यवंदन कुलक, गा. 5, पृ. 97*
12. (क) *चैत्यवंदन भाष्य, गा. 11, 12*
    (ख) *चैत्यवंदन कुलक, गा. 6, पृ. 97*
13. (क) *चैत्यवंदन भाष्य, गा. 13*

(ख) चैत्यवंदन कुलक, गा. 6, पृ. 97

14. चैत्यवंदन कुलक, गा. 7, पृ. 97
15. (क) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 14
    (ख) चैत्यवंदन कुलक, गा. 7, पृ. 97
16. (क) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 15-17
    (ख) चैत्यवंदन कुलक, गा. 8, पृ. 97
    (ग) पंचाशक प्रकरण, 3/18-20
17. (क) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 19
    (ख) चैत्यवंदन कुलक, गा. 8, पृ. 97
18. चैत्यवंदन भाष्य, गा. 8

अध्याय-3

अष्ट प्रकारी पूजा का बहुपक्षीय अनुशीलन

जिनपूजा एक आगमिक विधान है। प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में आराध्य की पूजा-उपासना की जाती रही है। प्राच्य काल से अब तक उपासना विधियों में अनेक परिवर्तन देखे जाते हैं। आगम युग में सर्वोपचारी पूजा का प्रचलन था। वहीं बदलते-बदलते वर्तमान में अष्टप्रकारी पूजा को स्थान प्राप्त हो गया है। वर्तमान श्रावकवर्ग जिनपूजा विधि के रूप में मात्र अष्टप्रकारी पूजा विधि से ही परिचित हैं और वही सर्वत्र प्रचलित है। यह पूजा श्रावकों का नित्य कर्तव्य है। यदि कर्तव्य का निर्वाह सिर्फ Duty समझकर किया जाए तो वह कभी मानसिक शान्ति एवं आत्मिक आनंद में हेतुभूत नहीं बनता। यदि उन्हीं कर्तव्यों को जीवन के अमूल्य सार्थक क्षण मानकर किए जाएं तो ये विशिष्ट उपलब्धि करवा सकते है।

वर्तमान में जीत व्यवहार का अनुसरण किया जाता है। तदनुसार श्रावक वर्ग को सांसारिक आसक्ति न्यून करने एवं अपने आप को अध्यात्म मार्ग पर गतिशील रखने हेतु नित्य त्रिकाल दर्शन एवं अष्टप्रकारी पूजा का आचरण करना चाहिए। परंतु यह आचरण कैसा हो? किस प्रकार प्रत्येक पूजा को सम्पन्न किया जाए? पूजा में उपयोगी द्रव्यों का स्वरूप कैसा हो? इन पूजाओं का शास्त्रीय स्वरूप क्या है? और वर्तमान में इनके प्रति किस प्रकार की जनधारणा है? ऐसे कई विषय हैं जिनसे सामान्य जनता आज भी अनभिज्ञ है। अधिकांश वर्ग रूढ़ परम्परा का अनुकरण करते हुए इन पूजाओं को सम्पन्न करता है। इनके अन्तर्निहित रहस्यों आदि से उपासक वर्ग प्राय: अपरिचित है। ऐसी अज्ञेयता में की जा रही आराधनाएँ कहाँ तक सफलीभूत हो सकती हैं? इसी प्रश्न को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में अष्टप्रकारी पूजा करने की विधि, उनमें भावों का रस उड़ेलने वाले दोहे एवं उनसे सम्बन्धित अनेक विध तथ्यों का विवेचन किया जा रहा है, जिससे साधकवर्ग मूल मार्ग से परिचित हो सकें, सामर्थ्य अनुसार उसका आचरण कर सकें तथा भाव जगत को भक्ति योग से जोड़ सकें, क्योंकि

भावपूर्वक की गई आराधना ही पुण्य के सर्जन एवं दुष्कर्मों के वर्जन में हेतुभूत बन सकती है।

आज का बहुसंख्यक युवा वर्ग अष्टप्रकारी पूजा के नाम से भी अपरिचित है क्योंकि School, Tution और Extra Classes के चलते धर्म क्रियाओं के लिए उन्हें समय ही नहीं है और न ही वैसे संस्कारों का बीजारोपण उनमें किया जा रहा है। मन्दिरों की बढ़ती दूरियाँ भी इसका एक मुख्य कारण है। साधु-साध्वियों की अल्पता एवं स्वाध्याय के प्रति श्रावक वर्ग का उपेक्षा भाव भी उन्हें सम्यक् तत्त्वों की जानकारी नहीं होने देता। इन सबको देखते हुए सर्वप्रथम अष्टप्रकारी पूजा की विधि, दोहों का सामान्य परिचय एवं अर्थ बताया जा रहा है।

अष्टप्रकारी के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसमें आठ प्रकार की पूजाओं का समावेश होता है। उनके नाम इस प्रकार हैं– 1. जलपूजा 2. चंदन पूजा 3. पुष्प पूजा 4. धूप पूजा 5. दीपक पूजा 6. अक्षत पूजा 7. नैवेद्य पूजा और 8 फल पूजा।

इन आठ पूजाओं में से प्रारम्भ की तीन पूजाएँ जिनबिम्ब पर की जाती हैं। इन्हें अंगपूजा भी कहते हैं। इसके बाद की धूप एवं दीपक पूजा गर्भगृह के बाहर जिनबिम्ब के सम्मुख की जाती है तथा शेष तीन पूजाएँ रंगमंडप में पट्टा, चौकी या बाजोट पर सम्पन्न की जाती है।

पूर्वाचार्यों के अनुसार अष्टप्रकारी पूजा का समय मध्याह्न काल है, परन्तु वर्तमान में त्रिकाल पूजा का विधिवत आचरण लगभग नहीं होने से तथा लोगों की व्यस्त जीवनशैली के कारण इसे अधिकतर प्रात:काल में ही सम्पन्न कर लेते हैं। नियमत: सूर्योदय होने के बाद ही ये पूजाएँ की जानी चाहिए।

अष्टप्रकारी पूजा विधि एवं दोहों का सार्थ विवरण

अष्टप्रकारी पूजा में सर्वप्रथम जिनबिम्ब पर जलपूजा की जाती है। जलपूजा के द्वारा प्रक्षाल पूर्वक जिनप्रतिमा पर रहे हुए बासी निर्माल्य को जयणापूर्वक उतारा जाता है। तदनन्तर सम्यक निरीक्षण करते हुए परमात्मा की वासक्षेप पूजा की जाती है।

वासक्षेप का अर्थ है सुगंध वासित चूर्ण का क्षेपण करना या चढ़ाना। वर्तमान में इस सुगंधित चूर्ण को ही वासक्षेप कहा जाता है। यह चूर्ण चंदन

आदि द्रव्यों को मिलाकर बनाया जाता है। जैसा कि इसके नाम से भी स्पष्ट होता है कि यह पूजा चूर्ण बरसाकर की जाती है। वर्तमान में प्रभु के नव अंगों पर वासक्षेप द्वारा जो पूजा की जाती है वह अर्थसंगत प्रतीत नहीं होती।

वासक्षेप पूजा का मूल हार्द आहार आदि संज्ञाओं, क्रोधादि कषायों एवं जीव की विभाव अवस्था को दूर करते हुए आत्मा को सद्गुणों से सुवासित करना है।

जलपूजा– इसे जलपूजा, प्रक्षाल पूजा एवं अभिषेक पूजा के नाम से भी जाना जाता है। यद्यपि इस पूजा में दूध आदि पंचामृत से प्रक्षाल किया जाता है। किन्तु यह जलपूजा के नाम से ही रूढ़ है।

जलपूजा करने हेतु परमात्मा के जन्म कल्याणक की कल्पना करते हुए पानी का कलश लेकर जिन प्रतिमा के सम्मुख खड़े रहें और चिंतन करें– हे परमात्मन्! मैं अपने अनादि संचित कर्म मल को दूर करने के लिए यह जलकलश लेकर उपस्थित हुआ हूँ, ऐसी भावना करते हुए निम्न श्लोक एवं दोहे का स्मरण करें।

श्लोक– विमल केवल भासन भास्करं, जगति जंतु महोदय कारणम्।
जिनवरं बहुमान जलौघतः, शुचिमनः स्नापयामि विशुद्धये।।

अर्थ– जो निर्मल केवलज्ञानरूपी सूर्य से प्रकाशित है, संसारी प्राणियों के लिए विकास का परम आधार है, ऐसे जिनेश्वर परमात्मा की पूर्ण भक्ति सहित विशुद्ध मन से जलपूजा करता हूँ।

दोहा– जलपूजा जुगते करो, मेल अनादि विनाश।
जलपूजा फल मुज हजो, मांगु एम प्रभु पास।।

अर्थ– द्रव्य और भाव युक्त जलपूजा करने से अनादिकालीन कर्म मल का विनाश होता है। ऐसा ही फल मुझे भी प्राप्त हो, यही मांगणी मैं आपसे करता हूँ।

मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्री मते जिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा।

यह बोलकर पंचामृत या दूध से प्रक्षाल करें। प्रक्षाल के समय साक्षात जन्मोत्सव के वर्णनयुक्त निम्न पद्य बोलें–

मेरु शिखर न्हवरावे हो सुरपति, मेरुशिखर न्हवरावे
जन्मकाल जिनवरजी को जाणी, पंचरूप करी आवे, हो सुरपति।।

रत्नप्रमुख अडजातिना कलशा, औषधि चूरण मिलावे
क्षीर समुद्र तीर्थोदक आणी, स्नात्र करी गुण गावे, हो सुरपति
ऐणी परे जिनप्रतिमा को न्हवण करी, बोधिबीज मनु वावे
अनुक्रमे गुणरत्नाकर फरसी, जिन उत्तम पद पावे, हो सुरपति।।

अर्थ– परमात्मा के जन्म के बारे में ज्ञात होते ही शक्रेन्द्र पाँच रूप बनाकर परमात्मा को मेरू शिखर पर ले जाते हैं। देवतागण रत्न, स्वर्ण, रजत आदि आठ प्रकार के कलशों को समुद्रों एवं विविध तीर्थों की नदियों के जल से भरकर उसमें सुगन्धित चूर्ण एवं औषधियां मिलाकर परमात्मा का गुणगान पूर्वक न्हवण करते हैं। इस प्रकार जिनप्रतिमा का न्हवण करते हुए भव्य जीव सम्यक्त्व रूपी बोधि बीज का वपन करते हैं तथा अनुक्रम से परमात्मा के गुणों का स्पर्श करते हुए सर्वोत्तम जिनेश्वर पद की प्राप्ति करते हैं।

प्रक्षाल करते समय बोलने का दोहा :

दोहा– ज्ञान कलश भरी आतमा, समता रस भरपूर ।
श्री जिनने न्हवरावता, कर्म थया चकचूर ।।

अर्थ– आत्मारूपी ज्ञान कलश में समतारस रूपी जल भरकर परमात्मा का न्हवण करने से कर्मों का नाश होता है।

जल पूजा करने के बाद भी जिनप्रतिमा पर कहीं केशर आदि रह गई हो तो भीगे हुए अंगलुंछण से उसे साफ करें। जरूरी होने पर वालाकुंची एवं चाँदी या तांबे की सलाई का प्रयोग करें। तीन वस्त्रों से परमात्मा का अंगलुंछण करें।

चंदन पूजा– अष्ट प्रकारी पूजा में दूसरे क्रम पर चंदन पूजा की जाती है। इस पूजा के माध्यम से आत्मा में रही विषय-कषाय की गर्मी को परमात्मा के शीतल गुणों द्वारा दूर करने का प्रयास किया जाता है। केसर, चंदन, बरास आदि सुगन्धित द्रव्यों के मिश्रण से निर्मित रस को जन भाषा में चंदन या केशर कहा जाता है। बाएँ हाथ में चंदन रस की कटोरी लेकर दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली (ring finger) से पूजा की जाती है।

चंदन पूजा के अंतर्गत जिनबिम्ब के नौ अंगों पर चंदन लगाया जाता है– 1. दो चरण 2. दो घुटना 3. दो कलाई 4. दो स्कंध 5. शिखा 6. ललाट 7. कंठ 8. हृदय और 9. नाभि। इन नौ अंगों पर कुल 13 टीकी लगाई जाती है।

परमात्मा के समक्ष चंदन की कटोरी लेकर चिंतन करें– हे प्रभु! जिस

प्रकार चंदन के अंग-अंग में शीतलता रमी हुई है उसी तरह मेरी आत्मा में भी समता रूपी शीतलता प्रकट हो, ऐसी भावना करते हुए निम्न श्लोक एवं दोहा बोलें–

सकल मोह तमिस्र विनाशनं, परम शीतल भाव युतं जिनम्।
विनय कुंकुम दर्शन चन्दनैः सहज तत्त्व विकास-कृताऽर्चये।।

अर्थ– जिसने मोह रूपी अंधकार का विनाश कर दिया है तथा जो परम शान्ति एवं शीतलता गुण से युक्त है, उन वीतराग प्रभु की विनय रूपी कुंकुम (केसर) एवं सम्यग्दर्शन रूपी चंदन से स्वाभाविक आत्मोकर्ष की प्राप्ति हेतु चंदनपूजा करता हूँ।

दोहा– शीतल गुण जेहमां रह्यो, शीतल प्रभु मुख रंग।
आत्म शीतल करवा भणी, पूजो अरिहा अंग।।

अर्थ– जिनके भीतर चंदन की भांति शीतलता का गुण रमा हुआ है तथा मोह आदि कषायों का नाश कर जिन्होंने अपनी आत्मा में शीतलता प्रसरित कर दी है, ऐसी आत्मिक शीतलता को प्राप्त करने हेतु अरिहंत परमात्मा के अंग की पूजा करता हूँ।

मन्त्र– ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय चन्दनं यजामहे स्वाहा।

तत्पश्चात चिंतन पूर्वक निम्न दोहें बोलते हुए प्रभु के नव अंगों की पूजा करें। पूजा करते हुए प्रथम दाएँ अंग पर फिर बाएँ अंग पर तिलक करें।

नव अंग पूजा के दोहें–

चरण– जल भरी संपुट पत्रमां, युगलिक नर पूजंत।
ऋषभ चरण अंगूठडे, दायक भवजल अंत।।

अर्थ– युगलिकों ने पत्र (पत्ते) संपुट में जल भरकर ऋषभदेव के चरण युगल की पूजा की थी। ऐसे परमात्मा के चरणों की पूजा भव समुद्र का अंत करने वाली है। इन भावों के साथ पहले दाएँ और फिर बाएँ अंगूठे की पूजा करें।

जानु (घुटना)–

जानु बले काउसग्ग रह्या, विचर्या देश-विदेश।
खड़ा-खड़ा केवल लह्या, पूजो जानु नरेश।।

अर्थ– जिन घुटनों के बल खड़े रहकर परमात्मा ने कायोत्सर्ग में अडिगता

प्रदर्शित की, देश-विदेश में विचरण कर भव्यजनों को प्रतिबोध दिया तथा साधना करते हुए ही केवलज्ञान भी प्राप्त किया उसी बल को प्राप्त करने हेतु परमात्मा के घुटनों की पूजा करता हूँ। इन्हीं भावों के साथ दाएँ और बाएँ घुटने की पूजा करें।

कलाई–

लोकान्तिक वचने करी, वरस्यां वरसीदान।
कर कांडे प्रभु पूजना, पूजो भवि बहुमान।।

अर्थ– लोकान्तिक देवों द्वारा विनंती करने पर तीर्थंकर परमात्मा ने हर रोज एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान देते हुए वर्ष भर में तीन सौ अठ्यासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मोहरों के दान की वर्षा की। अतः अत्यंत बहुमान पूर्वक दानवृत्ति पाने के उद्देश्य से भगवान की कलाई की पूजा करता हूँ। इन्हीं भावों से कर युगल की पूजा करें।

स्कंध–

मान गयुं दोय अंश थी, देखी वीर्य अनंत।
भुजाबले भवजल तर्या, पूजो खंध महंत।।

अर्थ– तीर्थंकर परमात्मा ने अनंतवीर्य के द्वारा मान कषाय (अहंकार) को पूर्ण रूप से समाप्त कर इस भवसागर को भी अपने भुजाबल द्वारा पार किया है। उसी सामर्थ्य को पाने हेतु मैं आपके कंधों की पूजा करता हूँ।

शिखा–

सिद्धशिला गुण ऊजली, लोकान्ते भगवन्त।
वसिया तिण कारण भवि, शिरशिखा पूजन्त।।

अर्थ– समस्त कर्म बंधनों से मुक्त होकर अरिहंत परमात्मा ने चौदह राजलोक के अग्रभाग में स्थित सिद्धशिला पर निवास कर लिया है। शिखा स्थान की दिशा से ही उनकी आत्मा का ऊर्ध्वारोहण होता है। इस प्रयोजन से एवं मोक्ष प्राप्ति की भावना से भगवान के शिखा की पूजा करता हूँ। इन्हीं भावों के साथ शिखा स्थल पर तिलक करें।

ललाट–

तीर्थंकर पद पुण्यथी, त्रिभुवन जन सेवंत।
त्रिभुवन तिलक समां प्रभु, भाल तिलक जयवंत।।

अर्थ– तीर्थंकर पद के पुण्य से तीनों लोक में परमात्मा की पूजा-सेवा होती है और इसलिए आप तीनों लोक के तिलक के समान हैं। अत: ऐसे भाल पर तिलक करने से सही अर्थ में आत्म विजय प्राप्त होती है। इन शुभ भावों से युत होकर परमात्मा के ललाट पर तिलक करता हूँ।

कंठ–

सोलह प्रहर प्रभु देशना, कंठे विवर वर्तुल।
मधुर ध्वनि सुरनर सुणे, तिणे गले तिलक अमूल।।

अर्थ– निर्वाण प्राप्ति से पूर्व तीर्थंकर परमात्मा ने निरंतर सोलह प्रहर तक अपने कंठ विवर से देशना देकर भव्यजीवों का कल्याण किया। मालकोश रागबद्ध परमात्मा की मधुर ध्वनि को मनुष्य, देवता, तिर्यंच आदि समस्त जीव एकाग्रता पूर्वक सुनते हैं। ऐसे पावन कंठ की तिलक द्वारा मैं पूजा करता हूँ।

हृदय–

हृदय कमल उपशम बले, बाल्या राग ने रोष।
हिम दहे वनखंडने, हृदय तिलक संतोष।।

अर्थ– जिस प्रकार बरफ गिरने से सम्पूर्ण वन जल जाता है उसी प्रकार आपके हृदय में रही शान्ति एवं शीतलता द्वारा राग और द्वेष भी जल जाते हैं तथा परम संतोष गुण प्राप्त होता है। उसी समता एवं संतोष की प्राप्ति हेतु परमात्मा के हृदय की पूजा करता हूँ।

नाभि–

रत्नत्रयी गुण ऊजली, सकल सुगुण विश्राम।
नाभि कमलनी पूजना, करता अविचल धाम।।

अर्थ– समस्त शक्तियों का मूल केन्द्र नाभि है। रत्नत्रयी रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की साधना से समस्त सद्गुणों का वास परमात्मा की नाभि में होता है। ऐसे नाभि कमल की पूजा करने से अविचल मुक्तिधाम की प्राप्ति होती है। इन्हीं उत्तम गुण प्राप्ति के भावों से युक्त होकर नाभिकमल की पूजा करता हूँ।

कलश–

उपदेशक नवतत्त्व ना, तेणे नव अंग जिनंद।
पूजो बहुविध भावसुं, कहे शुभवीर मुणिंद।।

अर्थ– परमात्मा ने अपने उपदेशों के द्वारा भव्य जीवों को नवतत्त्व का ज्ञान देकर विश्व व्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप दिया। ऐसे परमात्मा के नव अंग की पूजा अत्यंत भावपूर्वक करनी चाहिए, ऐसा मुनि शुभवीर कहते हैं।

इस दोहे से यह स्पष्ट होता है कि परमात्मा ने नव तत्त्व का उपदेश दिया। यह दर्शाने हेतु नौ अंगों की पूजा करते हैं। यह नवांगी पूजा के दोहे मुनि शुभवीर द्वारा रचे गए हैं।

जो लोग पूजाविधि एवं उनके रहस्यों को नहीं जानते वे परमात्मा के समान अधिष्ठायक देवों की भी नवांगी पूजा करते हैं। यह शास्त्र मर्यादा के विपरीत है क्योंकि देवी देवताओं का सिर्फ तिलक किया जा सकता है। परमात्मा के समान गुरु भगवंतों की नवांगी पूजा करने का वर्णन अनेक शास्त्रों में प्राप्त होता है।

उपाध्याय मणिप्रभसागरजी म.सा. द्वारा रचित दादा गुरुदेव की नवांगी पूजा के दोहें इस प्रकार हैं–

चरण–

अंगूठे पूजा करो, दादा तारणहार।
जिन शासन हमको मिला नहीं भूलूँ उपकार।।

अर्थ– तीर्थंकरों द्वारा स्थापित जिनधर्म की अखंडता का श्रेय आचार्य आदि मुनियों को जाता है। दादा गुरुदेव ने लाखों लोगों को जैन कुल में स्थापित किया। अत: ऐसे गुरुदेव के उपकारों का स्मरण कर उनके चरणों की पूजा करें।

जानु–

गाँव-गाँव में संचरे, किना धर्म प्रचार।
दत्त जानु पूजो भवि, पाओ शक्ति अपार।।

अर्थ– जिस जंघा बल या घुटनों के आधार पर गुरुदेव ने गाँव-गाँव और शहर-शहर में विचरण कर जिन धर्म का प्रचार किया। ऐसे गुरुदेव के जानु स्थान की पूजा करने से अनंत शक्ति प्राप्त होती है।

कलाई–

वासक्षेप दे लक्ष को, जैन बनाया सार।
कर पूजो गुरु दत्त के, दादा जय-जयकार।।

अर्थ– जिनदत्तसूरिजी ने अपनी वासक्षेप के द्वारा लाखों नूतन लोगों को जैन बनाया है। ऐसे दादा की जय-जयकार करते हुए गुरुदेव के कर युगल की पूजा करें।

स्कंध–

अंगभुजा दत्त पूजना, श्रद्धा निश्चय धार।
दो दादा शक्ति मुझे, उतरूँ भवजल पार।।

अर्थ– गुरुदेव के प्रति श्रद्धा एवं संसार मुक्ति का निश्चय कर दादा के भुजाओं की पूजा करते हुए यही कामना करता हूँ कि वे मुझे संसार से पार होने की शक्ति प्रदान करें।

शिखा–

शक्ति केन्द्र शिखा पूजना, आनंद मंगल माल।
पाऊं मैं सर्वोच्च पद, दादा दत्त दयाल।।

अर्थ– शिखा अर्थात मस्तक यह शक्ति एवं आनंद का उद्भव स्थान है। सर्वोच्च स्थान पर रही शिखा की पूजा करने से सर्वोच्च पद की प्राप्ति हो, ऐसी प्रार्थना दादा से करते हैं।

ललाट–

सागर गुण गुरू दत्त को, पूजो भाव उमंग।
भाल अंग नित पूजना, पाओ आत्म तरंग।।

अर्थ– सागर समान अनंत गुण रत्नों के भंडार दादा गुरुदेव के आत्मस्थल की पूजा उमंग एवं उल्लास भावपूर्वक करने से जीव में आत्मगुण तरंगित हो जाते हैं।

कंठ–

प्रवचन पावन कंठ से, जिनवाणी आधार।
गले तिलक करूं दत्त के, पाऊँ सुख आगार।।

अर्थ– गुरुदेव के कंठ से नि:सृत प्रवचन, जिनवाणी को जानने, समझने एवं उसे आचरण में लाने का मुख्य आधार है। उसे धारण करके मैं आगार धर्म अर्थात संयम जीवन को ग्रहण कर सकूं इसी उत्तम भावना से गुरुदेव के कंठ की पूजा करो।

हृदय–

सर्वगच्छ आदर करो, गुरु समता भंडार।
हृदय अंग पूजो भवि, कल्पतरु संसार।।

अर्थ– गुरुजन समता के भंडार होते हैं, सभी के प्रति उनके हृदय में

समभाव होते हैं और इसी कारण समस्त गच्छ उनका आदर-सम्मान करते हैं, उनके हृदयगत भाव संसारी प्राणियों के लिए कल्पवृक्ष के समान है, ऐसे विशाल हृदय की पूजा करके उन्हीं गुणों की कामना करता हूँ।

नाभि–

अमृतकुंड जिहां वसे, नाभिकमल नित सेव।
अमृतमणि पाओ सदा, जय दादा गुरुदेव।।

अर्थ– नाभि कमल की जगह आठ रूचक प्रदेश ऐसे हैं जो कर्म रहित होने से अमृत कुंड के समान हैं। हमारी आत्मा पूर्ण रूप से कर्म रहित होकर अमृतमय हो जाए, इस भावना से नाभिकमल की पूजा की जाती है। इन्हीं भावों से युत होकर गुरुदेव के नव अंगों की पूजा करनी चाहिए।

पुष्प पूजा– जिनपूजा के क्रम में तीसरे स्थान पर पुष्पपूजा का उल्लेख है। अपने हृदय को अन्य जीवों के प्रति पुष्प के समान कोमल एवं निर्मल बनाने की भावना के साथ अर्धखुली अंजली मुद्रा में पुष्प धारण करते हुए निम्न श्लोक बोलें–

विकच निर्मल शुद्ध मनोरमैः, विशद चेतन भाव समुद्भवैः।
सुपरिणाम प्रसून घनैर्नवैः, परम तत्त्व मयं ही यजाम्यहम्।।

अर्थ– जो फूल सुविकसित, निर्मल, शुद्ध, मनमोहक और सुगन्धित हैं। जो शुद्ध आत्मिक भावों की उत्पत्ति में हेतुभूत हैं तथा सुंदर मनोभावों का प्रतीक है। ऐसे सुगन्धितपुष्पों द्वारा मैं परम तत्त्व के धारक भगवान की पूजा करता हूँ।

दोहा–

सुरभि अखंड कुसुम ग्रही, पूजो गत संताप।
सुम जंतु भव्यज परे, करिये समकित छाप।।

अर्थ– सुरभि युक्त अखंड पुष्पों द्वारा परमात्मा की पूजा करने से जीव के ताप-संताप दूर होते हैं। परमात्मा के चरणों में समर्पित होने वाला पुष्प जिस प्रकार भव्य बन जाता है वैसे ही मुझे भी भव्यत्व की प्राप्ति हो।

मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्युनिवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय पुष्पम् यजामहे स्वाहा।

धूप पूजा– चौथे क्रम पर धूप पूजा की जाती है। धूप के समान ऊर्ध्वगामी

बनने की भावना के साथ धूपदानी या धूपबत्ती को दोनों हाथ से धारण करते हुए निम्न श्लोक बोलें।

श्लोक– सकल कर्म महेन्धन दाहनं, विमल संवर भाव सुधूपनम् ।
अशुभ पुद्गल संग विवर्जितं, जिनपतेः पुरतोस्तु सुहर्षितः ।।

अर्थ– धूप समस्त कर्मरूपी ईंधन को जलानेवाला है। निर्मल संवर भावों की सुगंध को प्रसरित कर अशुद्ध पुद्गल परमाणुओं को दूर करने वाला है। ऐसे उत्तम धूप से हर्षित भावयुत होकर जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करता हूँ।

दोहा– ध्यान घटा प्रगटावीए, वाम नयन जिन धूप ।
मिच्छत्त दुर्गन्ध दूरे टले, प्रगटे आत्म स्वरूप ।।
अमे धूप नी पूजा करीए रे, ओ मन मान्या मोहनजी
प्रभु धूपघटा अनुसरिए रे, ओ मन मान्या मोहनजी
प्रभु नहीं कोई तुम्हारी तोले रे, ओ मन मान्या मोहनजी
प्रभु अंते छे शरण तमारूं रे, ओ मन मान्या मोहनजी

अर्थ– जिस प्रकार अग्नि में धूप डालने से उसका धुँआ ऊपर की तरफ जाता है, वैसे ही ध्यान साधना द्वारा कर्मरूपी विभाव दशा अलग होने से आत्मा हल्की बनकर धुएं के समान ऊर्ध्वगति करती है। यह पूजा मिथ्यात्व रूपी दुर्गन्ध को दूर कर आत्मा स्वरूप प्राप्ति की प्रेरणा देती है। परमात्मा के समान इस लोक में कोई नहीं है अत: इस जगत में अन्तिम शरण परमात्मा ही है।

मन्त्र– ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय धूपं यजामहे स्वाहा।

दीपक पूजा– अष्टप्रकारी पूजा में पाँचवें क्रम पर दीपक पूजा की जाती है।

श्लोक– भविक निर्मल बोध विकासकं, जिनगृहे शुभ दीपक दीपनम् ।
सुगुण राग विशुद्ध समन्वितं, दधतु भाव विकास कृतेर्चना ।।

अर्थ– जिनालय में दीपक जलाने से भव्य जनों के हृदय में निर्मल सत्य ज्ञान का विकास होता है। यह दीपक सद्गुण एवं प्रशस्त राग से युक्त होने के कारण शुभ भावों का विकास करता है।

दोहा– द्रव्य दीप सुविवेक थी, करता दुख होय फोक ।
भाव प्रदीप प्रगट हुए, भासित लोकालोक ।।

अर्थ– जगत दिवाकर तीर्थंकर परमात्मा के सामने द्रव्य दीप प्रगट करने से समस्त दुखों का नाश होता है तथा भावदीप रूप केवलज्ञान के प्रकट होने से सम्पूर्ण लोकालोक प्रकाशित होता है।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय दीपं यजामहे स्वाहा।

अक्षत पूजा– अरिहंत परमात्मा के सम्मुख पूजा के रूप में अक्षत पूजा की जाती है। अक्षय स्थिति की कामना करते हुए चतुर्दल मुद्रा एवं शिखर मुद्रा में अक्षत चढ़ाएं।

श्लोक– सकल मंगल केलि निकेतनं, परम मंगल भाव मयं जिनम्।
श्रयति भव्य जना इति दर्शयन्, दधतुनाथ पुरोक्षत स्वस्तिकं ।।

अर्थ– श्री जिनेश्वर प्रभु समस्त मंगल एवं श्रेयस् के क्रीड़ा स्थान हैं, परम मंगल भावना के धाम हैं, इन्हीं उत्तम भावों को व्यक्त करने हेतु मंगलकारी अखंड चावलों से परमात्मा के समक्ष स्वस्तिक बनाया जाता है।

दोहा– शुद्ध अखंड अक्षत ग्रही, नंद्यावर्त्त विशाल।
पूरो प्रभु सन्मुख रही, टाली सकल जंजाल।।

अर्थ– शुद्ध और अखंड चावलों के द्वारा परमात्मा के समक्ष नद्यावर्त्त बनाने से संसार के समस्त दुःख और जंजाल समाप्त हो जाते हैं।

मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय अक्षतं यजामहे स्वाहा।

स्वस्तिक, सिद्धशिला आदि बनाते हुए निम्न दोहे बोले जाते हैं–

दोहे– दर्शन-ज्ञान-चारित्रनां, आराधन थी सार।
सिद्धशिलाने ऊपरे, हो मुझ वास श्रीकार।।
अक्षत पूजा करतां थकां, सफल करूं अवतार।
फल मांगु प्रभु आगले, तार तार मुझ तार।।
सांसारिक फल मांगिने, रखडियो बहु संसार।
अष्ट कर्म निवारवा, मांगुं मोक्ष फल सार।।
चिहुंगति भ्रमण संसारमां, जन्म-मरण जंजाल।
पंचम गति विण जीव ने, सुख नहीं त्रिहुं काल।।

अर्थ– दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय की साधना से मेरा सिद्ध शिला पर

वास हो। आपकी अक्षत पूजा करने से मेरा यह मनुष्य भव सफल हुआ। अब इस पूजा के भावी फल के रूप में मुझे इस संसार सागर से तारो।

अब तक सांसारिक फलों की चाह रखने के कारण मैं इस संसार में ही परिभ्रमण कर रहा हूँ। आप ही मुझे अष्ट कर्मों के निवारण रूप मोक्ष फल प्रदान कर सकते हैं।

इस संसार की चारों गतियों में भ्रमण करते हुए जन्म-मरण के बहुत चक्कर किए परन्तु मोक्ष रूप पंचम गति प्राप्त नहीं हो तब तक सच्चा शाश्वत सुख कहीं भी नहीं है।

नैवेद्य पूजा– पूजा विधि में सातवें स्थान पर नैवेद्य पूजा का वर्णन आता है। अणाहारी पद प्राप्ति की भावना से संपुट मुद्रा में नैवेद्य चढ़ाना चाहिए।

श्लोक– सकल पुद्गल संग विवर्जितं, सहज चेतन भाव विलासकं ।
सरस भोजन नव्य निवेदनात, परम निवृत्त भावमहं स्पृहे ।।

अर्थ– प्रभु को नैवेद्य (पक्वान्न) चढ़ाने से आत्मा के समस्त कर्म पुद्गल दूर होते हैं और आत्म स्वभाव विकसित होता है। इसलिए उत्तम प्रकार के सरस नैवेद्य चढ़ाकर परमात्मा से निवृत्ति भाव की याचना करता हूँ।

दोहा– अणाहारी पद मैं कर्या, विग्गह गईय अनंत ।
दूर करी ते दीजिए, अणाहारी शिव संत ।।

मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय नैवेद्यं यजामहे स्वाहा।

अर्थ– विग्रह गति में अर्थात एकभव से दूसरे भव में जाते हुए अनंत बार अणाहारी अवस्था प्राप्त हुई परन्तु क्षणमात्र में ही पुनः आहार संज्ञा प्राप्त होने के कारण उसका कोई सार नहीं है। अब इस संज्ञा को दूर करके शाश्वत अणाहारी पद (मोक्ष पद) प्रदान करें।

फल पूजा– अष्टप्रकारी पूजा में आठवें और अन्तिम स्थान पर फल पूजा का उल्लेख है। यह पूजा मोक्षरूपी श्रेष्ठतम फल प्राप्ति की भावना से विवृत्त समर्पण मुद्रा में की जाती है।

श्लोक– कटुक कर्म विपाक विनाशनं, सरस पक्व फल व्रज ढौकनम्।
वहति मोक्ष फलस्य प्रभोः पुरः, कुरूत सिद्धि फलाय महाजनः ।।

अर्थ– फल पूजा अनिष्ट कर्मों के फल को नष्ट करने वाली है। सरस पके

हुए फलों से की गई फल पूजा मोक्ष फल का प्रतीक है। अत: भव्य प्राणियों को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल पूजा करनी चाहिए।

दोहा– इन्द्रादिक पूजा भणी, फल लावे धरी राग।
पुरुषोत्तम पूजा करी, माँगे शिवफल त्याग।।

अर्थ– इन्द्र आदि देवी-देवतागण पूजा करते हुए अनुराग पूर्वक परमात्मा को फल चढ़ाते हैं और उनसे मोक्ष फल प्राप्ति की कामना करते हैं। मैं भी फल पूजा द्वारा मोक्ष प्राप्ति की कामना करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय फलं यजामहे स्वाहा।

इस प्रकार अष्टप्रकारी पूजा विधि सम्पन्न होती है। इसके बाद भाव पूजा रूप चैत्यवंदन विधि की जाती है। इसका वर्णन हम भावपूजा के विभाग में करेंगे। अष्टप्रकारी पूजा के मध्य ही दीपक पूजा के बाद चामर एवं दर्पण पूजा भी की जाती है। इसका वर्णन स्नात्र पूजा में आता है। अष्टप्रकारी पूजा में इनका समावेश न होने से यह वर्णन अन्त में किया जा रहा है–

चामर पूजा– दीपक पूजा के बाद चामर पूजा की जाती है। इस पूजा के माध्यम से दोनों हाथों में चामर लेकर नृत्य करते हुए भव भ्रमण समाप्ति की भावना की जाती है।

दोहा– चामर बींझे सुर मन रींझे, वींझे थइ उजमाल।
चामर प्रभु शिर ढालतां, करतां पुण्य उदय थाय।

अर्थ– आपके समक्ष चामर बींझते हुए देवतागण अत्यंत आनंद की अनुभूति एवं अनंत कर्मों की निर्जरा करते हैं। आपके आगे चामर ढुलाने से प्रकर्ष पुण्य प्रकट होता है एवं ऊर्ध्वगति की प्राप्ति होती है।

दर्पण पूजा– दर्पण पूजा के द्वारा परमात्मा को हृदय में स्थापित करने की भावना करते हुए निम्न दोहा बोला जाता है–

दोहा– प्रभु दर्शन करवा भणी, दर्पण पूजा विशाल।
आतम दर्पण थी जुवे, दर्शन हुए तत्काल।।

अर्थ– साक्षात परमात्मा का दर्शन करना असंभव है अत: दर्पण के द्वारा उनका दर्शन करते हुए बाह्य दर्पण में जिनबिम्ब का और आत्मा रूपी भाव दर्पण में परमात्मा के साक्षात दर्शन होते हैं।

नाद पूजा– पूजा के द्वारा प्राप्त आनंद की अभिव्यक्ति करने हेतु पूजा सम्पन्न करने के पश्चात घंटनाद किया जाता है।

अष्टप्रकारी पूजा के सारगर्भित पहलू

अष्टप्रकारी पूजा के विविध चरणों को सम्पन्न करते हुए यदि यह जानकारी हो कि उसे कब, क्यों, कैसे करना चाहिए? हमारे बाह्य जगत और आन्तरिक जगत में क्या परिवर्तन होते हैं, तो भावों का जुड़ाव श्रेष्ठ रूप से हो सकता है। द्रव्य से जब तक भावों का जुड़ाव न हो तब तक उस क्रिया को करने से जीव को आन्तरिक जगत में कोई विशेष उपलब्धि नहीं होती। अत: अष्टप्रकारी पूजा करते हुए उसके शास्त्रीय मार्ग एवं हेतुओं को जानना परमावश्यक है।

जलपूजा का अभिप्राय और उसके कारण

जिनेश्वर परमात्मा को जल अर्पण करना जलपूजा कहलाता है। अद्य प्रचलित जिनपूजा विधि में इसका प्रथम स्थान है। सामान्य व्यवहार में इसे अभिषेकपूजा या प्रक्षाल पूजा भी कहते हैं। इन्द्रों का अनुकरण करते हुए शुद्ध जल, पंचामृत, दूध आदि के द्वारा जिनबिम्ब का न्हवण करना जल पूजा है।

पूर्वकाल में जब नित्य प्रक्षाल का विधान नहीं था तब अष्टोपचारी पूजा में आठवें (अन्तिम) क्रम पर जिनप्रतिमा के सम्मुख सिर्फ जल का कलश भरकर रखने का विधान था।

जब भी किसी तीर्थंकर के जीव का जन्म होता है तब इन्द्र प्रभु के जीव को मेरु पर्वत पर ले जाकर विविध नदियों एवं समुद्र के जल से उनका जन्माभिषेक करते हैं। उसी जन्म कल्याणक की आराधना के प्रतीक रूप में जल पूजा की जाती है। जलपूजा करने का एक कारण जिनप्रतिमा पर लगे हुए चन्दन आदि निर्माल्य को दूर करना भी है। समस्त प्रकार की शुद्धियों का श्रेष्ठ माध्यम पानी है। जिस प्रकार जल के प्रयोग से शरीर का मैल दूर होता है वैसे ही जलपूजा के द्वारा आत्मा पर लगा हुआ कर्म मल भी दूर होता है।

जल पूजा में उपयोगी जल का स्वरूप

जलपूजा हेतु जमीन से निकला हुआ शुद्ध, निर्मल, जीव जन्तु रहित मीठे जल को विधिपूर्वक छानकर उपयोग में लेना चाहिए।

वर्तमान में क्षीर समुद्र के जल आदि के प्रतीक रूप में पंचामृत या दूध का

प्रयोग किया जाता है।[1] दूध शुद्ध एवं ताजा होना चाहिए। संभव हो तो गाय के ताजे दुहे हुए दूध से ही प्रक्षाल करना चाहिए। पैकेट, पाउडर, बासी या डिब्बा बंद दूध का प्रयोग प्रक्षाल हेतु सर्वथा वर्जित है। अशुद्ध दूध की अपेक्षा शुद्ध जल से प्रक्षाल करना ज्यादा उचित है। पंचामृत को भी प्रक्षाल से पूर्व ही तैयार करना चाहिए।

जिस कुँए का जल प्रक्षाल हेतु उपयोग में लिया जाता है वहाँ से आम आदमी पानी नहीं भरते हों, लोग घरों का कूड़ा-करकट वहाँ न डालते हों, कपड़े धोने-नहाने आदि का कार्य वहाँ नहीं करते हों तथा अन्य किसी भी कारण से वह जल अपवित्र न होता हो, इसकी पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि प्रक्षाल हेतु कुँए के जल का ही विधान क्यों है?

जैनाचार्यों के अनुसार अभिषेक हेतु कूप या कुँए का जल ही प्रयोग में लेना चाहिए क्योंकि जमीन के भूगर्भ से निर्झरित होकर कुँए में आने वाला जल अनेक प्रकार के पदार्थों से निष्पंदित होता है। भूमि को अनेक पवित्र पदार्थों एवं औषधियों का भंडार माना गया है। इन पदार्थों से प्रभावित होकर जल शुद्ध, पवित्र एवं प्रभावोत्पादक बन जाता है। इसी कारण शास्त्रकारों ने प्रक्षाल हेतु कुँए के जल का विधान किया है।

पूर्व काल में इसी कारण मन्दिर निर्माण के साथ कुँए का निर्माण भी किया जाता था। आज भी कई प्राचीन मन्दिरों में कुँए देखे जाते हैं।

यदि कहीं पर कुँए का जल खारा हो तो वहाँ पर नदी, झरने या बावड़ी का जल भी उपयोग में ले सकते हैं, क्योंकि अनवरत प्रवाहित रहने से वह हमेशा पवित्र ही रहता है। यदि इनमें से कोई भी सुविधा उपलब्ध न हो तो बारिश का पानी स्टोर किया जाता है, ऐसी टंकी का पानी प्रक्षाल हेतु प्रयोग में ले सकते हैं। तालाब, बोरिंग, हैंडपंप का पानी अथवा मिनरल वाटर का प्रयोग वर्जित है। ये सभी जल अशुद्ध और अपवित्र माने गए हैं। तालाब का जल एक स्थान पर एकत्रित रहने एवं आम जनता द्वारा प्रयुक्त होने से अशुद्ध हो जाता है। हैंडपंप या बोरिंग का पानी भूमिगत तो होता है लेकिन उसमें भूमिगत ऑइल होने एवं लोहे के पाइप से पानी स्पर्शित होने के कारण अपवित्र माना गया है। नल एवं फिल्टर आदि के पानी को रसायनों के प्रयोग द्वारा Bacteria आदि से

रहित किया जाता है अत: वह भी अभिषेक हेतु अशुद्ध है।

इसलिए अभिषेक हेतु कुँआ, नदी, झरना, बावड़ी या टंकी का जल ही उपयोग में लेना चाहिए।

परवर्ती ग्रन्थकारों ने जल लाने की विधि का उल्लेख करते हुए कहा है कि सम्पूर्ण अंग वाली, शील एवं सदाचार युक्त, सुहागन महिला को मौनपूर्वक 27 नवकार गिनकर कुँए से जल निकालना चाहिए और वही जल अभिषेक हेतु प्रयोग में लेना चाहिए। प्रतिष्ठा आदि मंगल विधानों में भी महिलाओं एवं कुमारी कन्याओं द्वारा कुँए का जल मंगवाया जाता है।

वर्तमान में इस परम्परा का पालन नहींवत ही होता है। कुछ आचार्यों ने वर्तमान समयानुसार विधि परिवर्तन करते हुए कहा है कि जिस कुँए आदि से पानी निकालना हो वहाँ पर सूर्योदय के पश्चात जयणापूर्वक जाकर पानी निकालना चाहिए। मोटे वस्त्र से उस पानी को छानकर कलश को ढंक देना चाहिए। गरणे को पुन: कुँए में ही डाल देना चाहिए। जल लाते समय मार्ग में शुद्धि का पूर्ण उपयोग रखना चाहिए।

आजकल इस विधि का पालन भी नहींवत ही किया जाता है। अधिकांश स्थानों पर नल के पानी का ही प्रयोग होता है। कई मन्दिरों में रात को ही पानी भरकर रख दिया जाता है। परंतु यह सब महती विराधना के कारण हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए बारिश का जल संग्रहित कर उसका प्रयोग करना सहज एवं श्रेष्ठ मार्ग है।

अभिषेक हेतु जल लाने एवं रखने के लिए सोना, चाँदी, पीतल या ताँबे का बर्तन प्रयोग में लेना चाहिए। प्लास्टिक, स्टील, एल्युमिनियम आदि का बढ़ता प्रयोग अनुचित है क्योंकि स्टील में लोहा होता है और प्लास्टिक में कोलतार मिलाया जाता है। मन्दिर में दोनों का ही प्रयोग निषिद्ध है।

जिनेश्वर परमात्मा का अभिषेक कैसे करें?

अरिहंत परमात्मा के जन्माभिषेक का अनुकरण करते समय उस अवसर का चिंतन एवं वैसे माहौल का निर्माण करना चाहिए जिससे उसी प्रकार की भावधारा बने। जन्म कल्याणक के समय देवगण हर्षविभोर होकर परमात्मा के अभिषेक के लिए विविध प्रकार के कलशों में अनेक प्रकार का जल लेकर खड़े रहते हैं। शकेन्द्र पाँच रूप बनाकर परमात्मा को ले जाते हैं और अपनी गोद में

बिठाकर उनका अभिषेक करवाते हैं। इस प्रकार देवतागण स्वऋद्धि अनुसार भव्यातिभव्य रूप से जन्माभिषेक का आयोजन करते हैं।

गीतार्थ आचार्यों के अनुसार जैसे किसी राजा के राज्य अभिषेक या राष्ट्रपति के शपथ ग्रहण समारोह में राज दरबार जन-मेदनी से भर जाता है वैसे ही परमात्मा का दरबार भक्तजनों से भर जाना चाहिए। उपस्थित श्रावक वर्ग को वाजिंत्र, चामर, पंखी, शंख आदि लेकर खड़े रहना चाहिए। अभिषेक के दौरान परमात्मा के दोनों तरफ चामर एवं पंखा झुलाना चाहिए तथा घंटा, शंख, शहनाई, करताल आदि की मधुर ध्वनि से सम्पूर्ण दरबार में गुंजन करना चाहिए। सुमधुर कंठ से श्रावकों को अभिषेक सम्बन्धी काव्य स्तोत्रों का गान करना चाहिए। त्रिलोकीनाथ का अभिषेक ऐसे ही शाही ठाठपूर्वक करना चाहिए।

जल अभिषेक करने हेतु विधिपूर्वक ललाट आदि पर तिलक लगाकर हाथों को धूप से अधिवासित करना चाहिए। तदनन्तर एकाग्रतापूर्वक परमात्मा की ओर दृष्टि स्थापित कर मोरपिच्छी के द्वारा जिनबिम्ब, अलंकार आदि की प्रमार्जना करनी चाहिए। फिर अत्यंत जयणापूर्वक पुष्पादि निर्माल्य एवं अलंकारों को उतारना चाहिए। अभिषेक हेतु उपयोगी कलश, कुंडी, अंगलुंछण वस्त्र आदि की भी प्रमार्जना करनी चाहिए। सम्पूर्ण क्षेत्र की जयणापूर्वक प्रमार्जना करने के बाद प्रक्षाल की क्रिया प्रारंभ करनी चाहिए।[2]

अभिषेक आरंभ हो तब वाजिंत्रों का नाद एवं मंगल स्तोत्रों का गान करते हुए अहोभावपूर्वक परमात्मा का ही ध्यान करना चाहिए। आपस में किसी भी प्रकार का सांसारिक वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

सर्वप्रथम पंचामृत या दूध से एवं तदनन्तर जल से प्रक्षाल करना चाहिए। इससे पंचामृत आदि की चिकनाई अच्छे से निकल जाती है तथा जीवोत्पत्ति की संभावना नहीं रहती। उसके पश्चात यत्नपूर्वक वालाकुंची का प्रयोग करते हुए प्रतिमाजी पर विद्यमान केशर आदि निकालना चाहिए और अंत में प्रतिमा को निर्जल करने के लिए तीन वस्त्रों के द्वारा परमात्मा का अंगलुंछन करना चाहिए। इससे प्रतिमा में श्यामता नहीं आती।[3]

वर्तमान में पुजारी या एकाध श्रावक के भरोसे हो रही प्रक्षाल क्रिया कितनी उचित है, यह गृहस्थों के लिए विचारणीय तथ्य है?

निर्माल्य किसे कहते हैं? तथा प्रक्षाल आदि निर्माल्य द्रव्य का क्या करना चाहिए?

चैत्यवंदन महाभाष्य के अनुसार

भोग-विणट्ठं दव्वं निम्मलं विन्ति गीयत्था ।।85।।

गीतार्थजन भोग से विनष्ट हुए द्रव्य को निर्माल्य कहते हैं। जिनबिम्ब पर चढ़ाने के बाद जो द्रव्य निस्तेज, शोभा रहित एवं पुनः चढ़ाने योग्य नहीं रहे वह निर्माल्य द्रव्य कहलाता है।

जिनबिम्ब पर चढ़ाएँ गए फूल, न्हवण, जल आदि निर्माल्य द्रव्य हैं। अभिषेक से पूर्व उतारे गए फूल आदि को जयणापूर्वक ऐसे स्थान पर सुखा देना चाहिए जहाँ लोगों के पैर आदि नहीं आते हों तथा धूप आदि से उन जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचे, इसका पूर्ण विवेक रखना चाहिए। फिर चार-पाँच दिन बाद उन्हें नदी आदि में डाल देना चाहिए।

अभिषेक करने के पश्चात न्हवण जल को भी ऐसे स्थान पर ही प्रतिष्ठापित करना चाहिए। मिट्टी का कुण्ड बनाकर उसमें भी निर्माल्य डाल सकते हैं। उस मिट्टी को हर 7-8 दिन में बदलना चाहिए। कई स्थानों पर गंगा आदि नदियों में भी निर्माल्य जल पधराया जाता है। हर रोज निर्माल्य एवं न्हवण जल का निकास करने हेतु यह सर्वोत्तम मार्ग है।

वर्तमान में कई स्थानों पर मन्दिर के बगीचे आदि में या छत पर भी न्हवण जल डाल दिया जाता है। न्हवण जल कहीं पर भी डाला जाए बस यह विवेक रखना चाहिए कि उस पर पैर आदि नहीं आए हो तथा वहाँ जीवोत्पत्ति नहीं हो। कुछ स्थानों पर न्हवण जल पुजारियों को देने एवं पशु-पक्षियों को पिलाने की परम्परा भी देखी जाती है। यद्यपि इसमें कोई शास्त्रोक्त विरोध तो नहीं लगता परन्तु यह व्यवहार विरुद्ध प्रतीत होता है। इस विषय में गीतार्थ गुरु भगवंतों से मार्गदर्शन लेना चाहिए। परमात्मा को चढ़ाए गए फूल आदि यदि व्यवस्थित रखने या अंगरचना हेतु उतारे जाते हैं तो वे निर्माल्य नहीं कहलाते। वे फूल पुनः चढ़ाए जा सकते हैं। इसी प्रकार वस्त्र आभूषण आदि भी निर्माल्य नहीं कहलाते।

अभिषेक पूजा का माहात्म्य एवं विशिष्ट घटनाएँ

• नित्य अभिषेक, अठारह अभिषेक, लघुस्नात्र, अष्टोत्तरी पूजा, 108 अभिषेक आदि में अभिषेक पूजा को विशेष स्थान प्राप्त है।

• श्रीकृष्ण की सेना पर छोड़ी गई जराविद्या का निवारण शंखेश्वर पार्श्वनाथ के न्हवण जल से हुआ था और तब ही वहाँ शंखेश्वर तीर्थ की स्थापना हुई।

• श्रीपाल एवं सात सौ कोढ़ियों का कोढ़ रोग सिद्धचक्र के प्रक्षाल जल से ही दूर हुआ था।

• आचार्य अभयदेवसूरि का कोढ़ रोग स्तम्भन पार्श्वनाथ की प्रतिमा के न्हवण जल के प्रभाव से ही दूर हुआ था।

• कांवड़ में नदियों का जल भरके विविध स्थानों पर मात्र अभिषेक हेतु ही ले जाते हैं।

• पालनपुर के प्रह्लाद राजा का दाह रोग प्रक्षालित जल के स्पर्श से ही शान्त हुआ था।

• परमात्मा का साक्षात जन्माभिषेक करते समय 64 इन्द्र असंख्य देवों के साथ उपस्थित होते हैं तथा शक्रेन्द्र स्वयं उन्हें अपनी गोद में लेकर बैठता है।

• परमात्मा का अभिषेक करने हेतु सोना, चाँदी, रत्न आदि आठ प्रकार के कलश उपयोग किए जाते हैं। ये कलश 25 योजन लम्बे होते हैं। आठों प्रकार के कलश आठ-आठ हजार, इस प्रकार कुल 64 हजार कलशों से परमात्मा का एक अभिषेक होता है। इस तरह 250 अभिषेक में 1 करोड़ 60 लाख कलशों से तीर्थंकर परमात्मा का जन्माभिषेक किया जाता है।

जलपूजा सम्बन्धी जन धारणाएँ

• अभिषेक जल को पवित्र, निर्मल एवं पूजनीय दृष्टि से देखा जाता है। परमात्मा की प्रतिमा को स्पर्शित हुआ जल परमात्मा की सकारात्मक ऊर्जा से अभिसिंचित होता है।

• जैन परम्परा ही नहीं अन्य परम्पराओं में भी जल को पवित्र ऊर्जा का स्रोत माना गया है। विद्वद वर्ग के अनुसार जल अपवित्रता एवं अशुद्धि को ग्रहण नहीं करता।

• हिन्दू परम्परा में गंगाजल, मुसलमानों में आबे-जम-जम आदि को अमृत तुल्य मानकर घरों में रखा जाता है। जैन श्रावक भी विशिष्ट तीर्थों, शांतिस्नात्र आदि के अभिषेक जल को कष्ट निवारण, रोग उपशामक, शुद्धिकारक आदि मानकर घरों में रखते हैं।

• कई लोगों की मान्यता के साथ यह अनुभवसिद्ध भी है कि शान्ति स्नात्र आदि का जल भूत-प्रेत आदि की बाधा को दूर करता है तथा व्यंतर आदि के उपद्रव को शांत करता है।

• आज भी न्हवण जल के प्रयोग से आँखों की रोशनी आना, कैन्सर रोग का मिट जाना, चर्म रोग ठीक हो जाना आदि देखा जाता है।

• जैन परम्परा के अनुसार ण्हवण जल को अंग पर लगाया जा सकता है किन्तु उसका आचमन आदि नहीं करना चाहिए।

• इस प्रकार के चमत्कारों में मुख्य रूप से जीव का उपादान एवं श्रद्धा कार्य करती है। श्रद्धा जितनी बलवती होती है, दुष्कर से दुष्कर कार्यों की सिद्धि उतनी ही सहज होती है।

शंका– उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कई लोगों के मन में यह प्रश्न हो सकता है कि अभिषेक करने मात्र से सामान्य जल में ऐसा परिवर्तन कैसे आ जाता है कि जिससे वह पूज्य एवं प्रभावी बन जाता है।

समाधान– सामान्य जल एवं अभिषेक जल में वही अन्तर होता है जो फुटपाथ पर बिक रही Painting और Showroom में लगी हुई Painting में होता है। रोड पर जिसे हम 100-200 में नहीं खरीदते Showroom या Art Gallery में लगने के बाद उसी को लाखों रुपए देकर खरीदते हैं।

जब सामान्य जल परमात्मा के बिम्ब को स्पर्शित करता है तो बिम्ब में प्रतिष्ठित प्राण ऊर्जा का अंश जल में आ जाता है। पाषाण एवं धातु प्रतिमा से जल का स्पर्श होने पर उसमें जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं वह उसे अधिक प्रभावी बनाते हैं।

अभिषेककर्त्ता के शुभ अध्यवसाय, वहाँ उच्चारित हो रही मंत्र ध्वनि, शंखनाद, घंटनाद आदि का तथा मन्दिर का शांत वातावरण भी अभिषेक जल में विशिष्ट गुणों का संचार करता है।

न्हवण जल का प्रयोग करने वाले के मन में रहे श्रद्धा भाव एवं विधेयात्मक सोच तथा अभिषेक कर्त्ताओं के मन में रही जगत कल्याण की भावना भी उसे विशेष प्रभावी बनाती है।

शंका– "वृषभ रूप धरी श्रृंगे जल भरी न्हवण करे प्रभु अंगे" इस पंक्ति का अभिप्राय बताईए?

समाधान– मेरु पर्वत पर परमात्मा का जन्माभिषेक करते समय शकेन्द्र वृषभ (बैल) का रूप धारण करके अपने श्रृंगों (सिंग) द्वारा परमात्मा का न्हवण करते हैं। इसी का वर्णन इस पंक्ति में किया गया है। किन्तु प्रश्न होता है कि इन्द्र बैल का रूप क्यों धारण करते हैं? शास्त्रकारों के अनुसार यह क्रिया इन्द्र के मन में रही प्रभु भक्ति एवं परमात्मा को सर्वोत्कृष्ट मानने का सूचक है। प्रभु भक्ति में भाव-विभोर हुआ इन्द्र परमात्मा को सर्वोत्कृष्ट एवं अपने आपको निम्न स्तर का मानता है। तीर्थंकरों के ज्ञान वैभव के सामने वे स्वयं को बैल के समान समझते हैं। व्यवहार जगत में बैल को अल्पबुद्धि या जड़बुद्धि वाला माना जाता है और ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति को बैल बुद्धि वाला कहा जाता है। इन्द्र जो कि 32 लाख देवों के अधिपति और तीन ज्ञान के धारक हैं वे भी परमात्मा के सामने अपने आपको बैल तुल्य मानकर अपनी लघुता अभिव्यक्त करते हैं। इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति करने हेतु वे वृषभ रूप धारण करते हैं।

शंका– प्रक्षाल क्रिया में वालाकुंची और अंगलुंछन वस्त्रों का प्रयोग क्यों और कब से?

समाधान– वालाकुंची या खसकुंची एक शास्त्रोक्त उपकरण है। प्रतिमाजी पर चिपके हुए केशर एवं चिकनाहट को दूर करने के लिए खसकुंची का प्रयोग किया जाता है। प्रतिमाजी पर केशर या चिकनाहट रह जाए तो मूर्ति में श्यामता या निष्प्रभता आ जाती है। कई बार उसके कारण सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति भी हो जाती है। अत: सूक्ष्म स्थानों में रहे केशर आदि को निकालने के लिए वालाकुंची का प्रयोग आवश्यक है। परन्तु जहाँ शास्त्रकारों ने इसके प्रयोग को जरूरी माना है वहीं इस विषय में अत्यंत सावधानी रखने का भी निर्देश दिया है। जितनी जागरूकता एवं कोमलता पूर्वक पैर का काँटा या आँख का कचरा निकाला जाता है उससे भी अधिक विवेक एवं सावधानी वालाकुंची के प्रयोग में रखनी चाहिए। वालाकुंची का प्रयोग करने से पूर्व उसे दस मिनट तक पानी में भिगाकर फिर उपयोग में लेना चाहिए।[4]

मेहनत एवं समय बचाने के लिए वालाकुंची का प्रयोग अनुपयुक्त है। आजकल बढ़ते उपयोग के कारण धातु की प्रतिमाओं के अंग-उपांग बहुत जल्दी घिस जाते हैं। इस विषय में श्रावक वर्ग का जागरूक होना अत्यंत आवश्यक है।

सम्भवत: नित्य प्रक्षाल का विधान प्रारंभ होने के बाद ही मध्यकाल में इसका प्रयोग प्रचलन में आया होगा।

प्रक्षाल क्रिया करने के बाद जिनबिम्ब पर रहे जल को पोंछने के लिए अंगलुंछन वस्त्र का प्रयोग किया जाता है। तीन अंगलुंछन वस्त्रों के द्वारा क्रमश: सम्पूर्ण जल को साफ किया जाता है। प्रतिमा पर जलबिन्दु रहने से उसमें मलिनता एवं श्यामता आ जाती है।

जलपूजा आत्मशुद्धि का प्रतीक कैसे?

जल शुद्धता एवं शीतलता का प्रतीक है। जल पूजा के द्वारा हृदय, शरीर एवं मन शुद्धता की भावना की जाती है। हिन्दू परम्परा के अनुसार समुद्र मंथन के दौरान निकले अमृत कलश के प्रतीक रूप में पूजा विधानों के दौरान जल कलश का प्रयोग किया जाता है।

दूध शांति और सौहार्द का सूचक है। इसे माँ की ममता एवं क्षीर समुद्र के जल का प्रतीक भी माना जाता है। दूध यह पंचामृत का मुख्य घटक है।

वैदिक परम्परा के अनुसार पंचामृत द्वारा अभिषेक करने से मुक्ति प्राप्त होती है। श्रद्धापूर्वक पंचामृत का पान करने वाले को सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य की उपलब्धि होती है। चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार पंचामृत में रोग निवारण की विशेष शक्ति रही हुई है।

जिस प्रकार जल से शरीर का मल दूर होता है, वैसे ही जलपूजा के द्वारा आत्मा पर लगा हुआ कर्म मल दूर होता है एवं आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करती है।

इस प्रकार जलपूजा आत्मशुद्धि का परम उपाय है।

चंदन पूजा का अर्थ और उसके प्रयोग

चंदन, केशर, कर्पूर, कुंकुम, कस्तूरी एवं बरास आदि सुगंधित द्रव्यों को घोटकर तैयार किए गए विलेपन से परमात्मा के नवअंग की पूजा करना चंदन पूजा कहलाता है।[5] इसे चंदन पूजा, केशर पूजा या विलेपन पूजा भी कहते हैं। अष्टप्रकारी पूजा के क्रम में इसका दूसरा स्थान है।

शंका– वर्तमान में बरास पूजा और केसर पूजा ऐसी दो पूजाएँ प्रचलित हैं। इनमें से चंदन पूजा का समावेश किसमें होता है?

समाधान– अष्टप्रकारी पूजा के क्रम में बरास पूजा या केशर पूजा का स्वतंत्र उल्लेख नहीं है। चंदन को अधिक सुगंधि बनाने के लिए बरास एवं केशर मिलाए जाते हैं। मूल अभिप्राय की जानकारी नहीं होने से लोगों ने इसे अलग-अलग मान लिया है। सत्रहभेदी पूजा में इनका अलग-अलग उल्लेख है परन्तु अष्टप्रकारी पूजा में नहीं। यदि अंगरचना करनी हो तो बरास का उपयोग किया जा सकता है और वह भी इस प्रकार करना कि प्रतिमा की सुंदरता में अधिक निखार आए।

जन्म, दीक्षा आदि कल्याणक के समय अभिषेक करने के बाद परमात्मा का सुगन्धि द्रव्यों से विलेपन किया जाता है। उसी के अनुकरण रूप परमात्मा की चंदन पूजा की जाती है।

चंदन पूजा करने का एक अन्य हेतु यह भी है कि जिस प्रकार चंदन में रही हुई शीतलता बाह्य ताप का नाश करती है वैसे ही परमात्मा की चंदन पूजा आंतरिक ताप का नाश करती है।

चंदन पूजा हेतु पूर्वकाल में गोशीर्ष चंदन का उपयोग किया जाता था। वर्तमान में गोशीर्ष चंदन तो उपलब्ध नहीं होता परन्तु उत्तम कोटि के शुद्ध प्राकृतिक चंदन का उपयोग करना चाहिए। मार्केट में उपलब्ध सस्ते, विदेशी या कृत्रिम (Artificial) चंदन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार सिन्थेटिक या मिलावट वाली केशर का प्रयोग भी निषिद्ध है। वर्तमान में उपलब्ध बरास में भीमसेनी बरास को सर्वाधिक शुद्ध एवं सुगन्धित माना जाता है। जर्मनी से आने वाला सिन्थेटिक बरास उपयोग में नहीं लेना चाहिए।

चंदन पूजा की पूर्व तैयारी

चंदन पूजा हेतु उद्यत श्रावक अपने घर से ही केशर, चंदन, बरास आदि साथ लेकर आए। मन्दिर की प्रदक्षिणा एवं तत्सम्बन्धी कर्तव्यों को पूर्ण कर अष्टप्रकारी पूजा से पूर्व चंदन घिसकर तैयार कर लेना चाहिए। चंदन घिसने से पहले आरस (पत्थर) एवं उसके स्थान की प्रमार्जना करके उसे जल से साफ करें। उसके बाद आठ पट्ट का मुखकोश बांधकर चंदन घिसने के स्थान पर सुखासन में बैठ जाएं। शुभ भावों का चिंतन करते हुए दो कटोरियों में चंदन घिसकर तैयार करें। एक कटोरी पूजा के लिए और एक तिलक लगाने के लिए।

चंदन ऐसे स्थान पर घिसना चाहिए जहाँ परमात्मा की दृष्टि न पड़ती हो।

चंदन घिसने हेतु अलग से चंदन घर बनवाना चाहिए अथवा अलग से किसी कोने में व्यवस्था करनी चाहिए। चंदन घिसने का स्थान हवादार हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए ताकि चंदन घिसते समय पसीना आदि गिरने से उसके अशुद्ध होने की संभावना न रहे।

वर्तमान में अधिकांश मन्दिरों में घिसा हुआ चंदन तैयार रखा जाता है। किन्तु जहाँ तक संभव हो श्रावकों को स्वयं ही यह क्रिया करनी चाहिए।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि आज की व्यस्त जीवन शैली में यदि पुजारी से चंदन घिसवाएं तो क्या दोष है?

मन्दिरों में पुजारी की व्यवस्था है तो फिर हम उस व्यवस्था का लाभ क्यों नहीं उठाएं? आज के व्यस्त समय में विधिपूर्वक क्रिया करें तो आधा दिन मन्दिर में ही बीत जाएगा जो कि संभव नहीं है। ऐसे ही कई तर्क अधिकांश लोग करते हैं।

यदि इस सम्बन्ध में गहराई से चिंतन करें तो आज हम हर कार्य के लिए पूरा समय देते है परन्तु जहाँ धर्मकार्यों की बात आती है हमारे Excuse और बहाने शुरू हो जाते हैं। धर्मकार्य करने के लिए सबको shortcut चाहिए।

जो लोग कर्मभीरू हैं वह यह जानते हैं कि सांसारिक कार्यों में किया गया शक्ति का उपयोग मात्र कर्मबंधन का कारण है, वहीं परमात्म भक्ति हेतु स्वशक्ति का उपयोग करने से वीर्यान्तराय का क्षय होता है।

मन्दिर में पुजारी की व्यवस्था बालकों एवं अवस्था वाले लोगों की अपेक्षा की जाती है। इस व्यवस्था का सार्वजनिक उपयोग तो मात्र प्रमाद एवं अविधि को बढ़ावा दे रहा है। सामर्थ्य होने पर भी मन्दिर में दी गई सुविधाओं का उपयोग करना दोषकारी होता है। अत: श्रावकों को स्वयं इस विषय में विवेक रखना चाहिए।

चंदन पूजा करने हेतु सोने अथवा चाँदी की कटोरी का उपयोग करना चाहिए क्योंकि द्रव्य और उपकरण जितने उत्तम होते हैं उतने ही उत्कृष्ट भावों का निर्माण होता है। यदि मन्दिर के उपकरणों का प्रयोग करते हैं तो उन्हें भी अच्छे से धोकर और पोंछकर रखना चाहिए।

जहाँ मन्दिरों में चंदन घिसकर रखा जाता है वहाँ चंदन रखने हेतु चाँदी, तांबा आदि का ढक्कन युक्त प्याला उपयोग में लेना चाहिए।

चंदन पूजा करने की शास्त्रोक्त विधि

चंदन पूजा करने हेतु सर्वप्रथम चंदन को धूप से अधिवासित करें। तत्पश्चात गर्भगृह में प्रवेश करते हुए पुरुष वर्ग परमात्मा की दायीं तरफ Right और महिलाएँ बायीं तरफ Left खड़ी रहें। फिर चंदन पूजा हेतु शुभ भाव जागृत करें। उसके पश्चात दोहे बोलते हुए अनामिका अंगुली से परमात्मा के नौ अंगों की पूजा करें। नवअंग पूजा की विस्तृत विधि इसी अध्याय के प्रारंभ में बता चुके हैं।

शंका– अनामिका अंगुली से ही परमात्मा की पूजा क्यों करनी चाहिए?

समाधान– अनामिका अंगुली की विशेषता बताते हुए विचारकों का कहना है कि इस अंगुली में संवेदनशीलता एवं वाहकता अन्य अंगुलियों की अपेक्षा अधिक होती है। इसके संपर्क में आने वाली वस्तुओं से इसका संबंध (connection) अतिशीघ्र जुड़ जाता है। इस अंगुली का सम्बन्ध सीधा हृदय से है अत: इसके माध्यम से संप्रेषित भाव सीधे हृदय तक पहुँचते हैं। इससे हृदय एवं भावों का शुद्धिकरण होता है। अन्य अंगुलियों की तुलना में अनामिका को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इसका उपयोग भी अधिकांश श्रेष्ठ कार्यों हेतु ही होता है। सगाई की अंगूठी भी अनामिका अंगुली में ही पहनाई जाती है ताकि दोनों दंपत्तियों का सम्बन्ध हृदय से स्थापित हो सके। यही वजह है कि अनामिका अंगुली से पूजा करने पर भक्त और भगवान के हृदय के तार जुड़ जाते हैं।

पूर्वकाल में विलेपन पूजा केवल चरणों की ही होती थी जो कि बढ़ते-बढ़ते पूर्ण अंग पर विलेपन करने तक पहुँच गई। तदनन्तर व्यवस्था की अपेक्षा से नौ अंगों की पूजा का विधान किया गया जो अद्यतन प्रचलित है।

शंका– कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा के चरण या ललाट पर तिलक करने से भी पूजा हो सकती है तो फिर नौ अंग की पूजा क्यों?

समाधान– सामान्यतया चरण या ललाट पर तिलक करने से पूजा हो जाती है क्योंकि अतिथियों के चरण स्पर्श एवं तिलक करने से उनका उचित सम्मान हो जाता है। विशेष परिस्थितियों में अथवा तीर्थस्थलों पर केवल चरण पूजा ही करवाई जाती है। परंतु श्रुतधर आचार्यों ने परमात्मा के नौ अंग की पूजा करने का विधान किया है। अत: जीत व्यवहार का पालन करते हुए श्रावकों को

नव अंग की ही पूजा करनी चाहिए। इन नौ अंगों से कई विशिष्ट रहस्य भी जुड़े हुए हैं और उन-उन अंगों की पूजा करने पर वे उत्पन्न भी होते हैं।

नव अंग पूजा के मौलिक तथ्य

अंग पूजा में 1. चरण 2. जानु 3. कलाई 4. कंधा, 5. शिखा 6. ललाट 7. कंठ 8. हृदय और 9. नाभि– इन नौ अंगों का समावेश होता है।[6] सर्वप्रथम परमात्मा के चरणों की पूजा की जाती है जिसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

चरण– चरण युगल सेवा, साधुता एवं साधना के प्रतीक माने जाते हैं। किसी की सेवा करनी हो तो चरणों की सेवा ही विशेषरूप से की जाती है। यद्यपि नाभि से नीचे के अंगों को निम्न कोटि का माना जाता है परन्तु चरणों को इनमें भी पूज्य स्थान प्राप्त है। शरीर के उत्तमांग मस्तक को चरणों में ही झुकाया जाता है। परमात्मा ने विभिन्न क्षेत्रों में विहार, धर्म का प्रचार-प्रसार आदि इन्हीं चरणों के द्वारा किया।

इन पावन चरणों के आधार पर ही साढ़े बारह वर्ष तक परमात्मा ने कठोर साधना की, कायोत्सर्ग एवं प्रतिमाएँ धारण की तथा अपने आप को पूज्य पद पर अग्रसर किया।

चरण में अंगूठे को विशेष तीर्थरक्षक माना गया है। शरीर में धातुराज के रूप में रहे वीर्य को संतुलित करने हेतु चरण मुख्य केन्द्र है। अंगूठे पर ध्यान केन्द्रित करने से एकाग्रता-प्रसन्नता एवं आत्मिक आनंद में अभिवृद्धि होती है। गुरुजनों के भी चरण स्पर्श ही किए जाते हैं क्योंकि उनकी साधना की शक्ति चरणों में ही समाहित होकर रहती है।

परमात्मा ने इसी अंगूठे के द्वारा जन्म कल्याणक के समय मेरु पर्वत को कंपायमान किया था। ऐसे प्रभावशाली परमात्मा के पद युगल की पूजा अहोभावपूर्वक करनी चाहिए। जिस प्रकार परमात्मा ने अपने चरणों को भोगमार्ग से योगमार्ग की ओर अग्रसर किया वैसे ही योग मार्ग की प्राप्ति के लिए चरण पूजा श्रेयस्कर है।

जानु (घुटना)– नव अंगों में अंगूठे की पूजा करने के बाद घुटनों की पूजा करनी चाहिए। घुटना स्वाधीनता का प्रतीक है। जो व्यक्ति स्वाधीन या स्वतंत्र हो वही सेवा-साधना आदि कार्य स्वेच्छापूर्वक कर सकता है। हम व्यवहार जगत में भी देखते हैं कि जब बच्चा घुटनों के बल पर चलना सीख

लेता है उसके बाद ही खड़ा होकर चलने लगता है। इन्हीं घुटनों के बल पर छद्मस्थ काल में भगवान ने कठोर साधना की, ध्यान किया, देश-विदेश में विचरण करते हुए केवलज्ञान को प्राप्त किया। ऐसे स्व-पर कल्याणकारी जानु पूजनीय हैं और अहोभावपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिए।

करयुगल (कलाई)– कलाई हाथ की सूचक है। जहाँ घुटने स्वतंत्रता का प्रतीक है वहीं करयुगल नियंत्रण का प्रेरक है। साधना के द्वारा प्राप्त ऊर्जा शक्ति को नियन्त्रित रखने एवं आवश्यकता अनुसार उसके व्यय करने की क्षमता हाथों में ही रही हुई है। हाथों से ही आशीर्वाद दिया जाता है और हाथों से अभिशाप भी दे सकते हैं।

परमात्मा इन्हीं हाथों के द्वारा दीक्षा लेने से पूर्व प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख मोहरों का दान देते हैं। दानशीलता के इसी गुण को प्रकट करने हेतु करयुगल की पूजा की जाती है।

स्कंध (कंधा)– स्कंध आत्मनिर्भरता एवं भारवहन का प्रतीक है। कंधों के आधार पर व्यक्ति सर्वाधिक बोझ उठा सकता है। जब किसी पर कोई जिम्मेदारी सौंपी जाती है तो यही कहा जाता है कि यह कार्य भार तुम्हारे कंधों पर है। इसी के साथ स्कंध को मान कषाय या अभिमान का स्थान भी माना गया है। परमात्मा ने मान कषाय पर विजय प्राप्त कर इस संसार रूप समुद्र को अपनी भुजाओं से पार किया है। उसी सामर्थ्य की प्राप्ति हेतु परमात्मा के दोनों स्कंधों की पूजा की जाती है।

शिखा (सिर)– शिखा या सिर को उत्तम अंग की उपमा दी गई है। शरीरस्थ सात चक्रों में सर्वश्रेष्ठ सहस्रार चक्र का स्थान शिखा है। वहीं से शरीर के समस्त तंत्रों का संचालन होता है। सहस्रार चक्र के जागृत होने पर अतीन्द्रिय (आन्तरिक) शक्तियाँ स्वयमेव जागृत होती हैं। शिष्य की चोटी शिखा स्थल से ही ली जाती है और वासक्षेप भी वहीं दी जाती है क्योंकि शिखा स्थान प्रभावित होने से आन्तरिक ज्ञान जागृत होता है जिससे सहजतया मोक्ष की उपलब्धि होती है। अग्र स्थान पर रही शिखा लोक के अग्रभाग में ले जाए इसी भाव से शिखा की पूजा की जाती है।

ललाट– ललाट आज्ञा चक्र का स्थान है। आज्ञाचक्र को नियंत्रण का केन्द्र माना गया है। स्वयं पर नियंत्रण साधने हेतु आज्ञाचक्र का नियंत्रित होना

परमावश्यक है। तीर्थंकर नाम कर्म के पुण्य से तीनों लोक में परमात्मा की पूजा की जाती है और परमात्मा भी तिलक के समान तीनों लोक में शोभित होते हैं। अत: परमात्मा के ललाट पर तिलक पूजा की जाती है।

कंठ– कंठ वाणी का उद्‌गम स्थल है। विशुद्धि चक्र इसी कंठ में स्थित है। जिसका विशुद्धि चक्र जागृत एवं बलवान होता है वह विषय वासनाओं से ऊपर उठकर उपासना के क्षेत्र में ऊर्ध्वगमन करता है। परमात्मा के कंठ से निकलती मधुर वाणी समस्त जीवों का कल्याण करती है। जगत कल्याण के भावों से आप्लावित होकर ही परमात्मा अन्तिम समय तक देशना फरमाते हैं। अत: परमात्मा के परमोपकारी कंठ की पूजा की जाती है।

हृदय– हृदय अर्थात अनाहत चक्र। यह चक्र प्रेम, करुणा, मैत्री एवं समता आदि शुभ भावों का स्रोत है। जिनेश्वर परमात्मा के हृदय में उपकारी एवं अपकारी दोनों के प्रति समभाव रहता है। जैसे बर्फ गिरने से समस्त वन खण्ड जल जाता है वैसे ही परमात्मा के हृदय में रहे उपशम रूपी बर्फ से राग-द्वेष का दहन हो जाता है तथा हृदय में संतोषभाव का संचार होता है। हमारे हृदय में भी ऐसी ही समत्व वृत्ति का जागरण हो इन्हीं भावों से हृदय पर तिलक करना चाहिए।

नाभि– नाभि शरीर का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाभि के स्थान पर मणिपुर चक्र स्थित है। शरीर की ऊर्जा को नियंत्रित करने हेतु यह मुख्य केन्द्र है। इस चक्र का ध्यान करने से उदर एवं पाचन विकार दूर होते हैं।

योगीजन आत्म साक्षात्कार के लिए इसी चक्र का ध्यान करते हैं। नाभि स्थान में अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने अनावृत्त आठ रूचक प्रदेश हैं। इन आठ रूचक प्रदेश के समान हमारे समस्त आत्म प्रदेशों को कर्ममुक्त करने की प्रेरणा नाभिचक्र से प्राप्त होती है।

जिस प्रकार माँ एवं गर्भस्थ शिशु के बीच सम्बन्ध जोड़ने का माध्यम नाभि होती है। उसी तरह जगत तारक परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने का स्थान नाभि को माना जाता है। नाभि स्थान से नि:सृत प्रार्थना Direct परमात्मा तक पहुँच जाती है, ऐसी लोकोक्ति है। अत: परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने एवं आत्म प्रदेशों को कर्म रहित करने हेतु नाभि स्थान की पूजा की जाती है।

इसी प्रकार नौ अंगों में विशेष शक्तियाँ समाहित हैं। उन्हीं को ध्यान में

रखते हुए सुन्दर भावों से युक्त होकर परमात्मा के नव अंगों की पूजा करनी चाहिए।

कई लोग इन नौ अंगों के अतिरिक्त परमात्मा की अंजली, लंछन एवं फण आदि की भी पूजा करते हैं किन्तु वर्तमान प्रचलित परम्परानुसार मात्र नौ अंग की ही पूजा करनी चाहिए। परिस्थिति विशेष में या जिस मंदिर में जैसी व्यवस्था हो तदनुसार मात्र चरण युगल की पूजा करके भी जिनपूजा की जा सकती है।

• जिनपूजा का कोई क्रम है या नहीं? पहले किसकी पूजा करना और बाद में किसकी करना?

सर्वप्रथम मूलनायक भगवान की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात अन्य पाषाण प्रतिमाओं एवं पंचधातु की प्रतिमाओं की पूजा की जाती है। महिलाओं को मूलनायक प्रतिमा की दाईं ओर तथा पुरुषों को बाईं ओर से पूजा करनी चाहिए।

यदि मूलनायक प्रतिमा की प्रक्षाल आदि बाकी हो तो पहले अन्य प्रतिमाओं की पूजा करके फिर मूलनायकजी की पूजा कर सकते हैं।

सिद्धचक्रजी एवं पंचधातु प्रतिमा की पूजा करने के बाद पाषाण के प्रतिमाजी की पूजा करने में कोई आशातना नहीं है। गणधर एवं दादा गुरुदेव की पूजा करने के बाद उसी केशर से जिनबिम्ब की पूजा नहीं कर सकते परन्तु यदि गणधर प्रतिमा केवली अवस्था में हो तो उसकी पूजा करने के बाद उसी चंदन से जिनप्रतिमा की पूजा कर सकते हैं।

गुरु भगवन्त की प्रतिमा के बाद अधिष्ठायक देवी-देवताओं की पूजा करनी चाहिए।

प्रासाद देवी का यदि प्रक्षाल किया जाता हो तो उनकी पूजा देवी-देवताओं के साथ होती है।

मंगलमूर्ति एवं अष्टमंगल पट्ट की पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि मंगलमूर्ति समवसरण में स्थापित परमात्मा के तीन प्रतिबिम्बों की प्रतीक रूप हैं तथा अष्टमंगल पट्ट रखने की परम्परा अष्टमंगल आलेखन की अपेक्षा से हुई थी और वह लकड़ी के पट्टों से छोटे धातु में प्रवर्तित हो गई है। अष्टमंगल पट को परमात्मा के सामने रखना चाहिए।

चंदन पूजा के विषय में जन धारणाएँ

• कई लोग परमात्मा की चंदन पूजा करने को ही पूजा मानते हैं। यदि किसी दिन चंदन पूजा न हो तो अक्षत पूजा आदि को पूजा नहीं मानते। यह एक भ्रान्त मान्यता है। यहाँ चंदन पूजा न होने पर यह कह सकते हैं कि आज परमात्मा की अंगपूजा नहीं हुई।

• बरास पूजा एवं केशर पूजा को अलग-अलग माना जाता है। दोनों अलग-अलग नहीं हैं अपितु चंदन पूजा के अंतर्गत सुगंधि द्रव्यों की अपेक्षा से केशर आदि का मिश्रण किया जाता है।

• बहुत से लोग परमात्मा के चरणों की बार-बार पूजा करते हैं पर ऐसा कोई विधान नहीं है।

• जितनी अधिक केशर का मिश्रण किया जाए उतना श्रेष्ठ चंदन रस तैयार होता है ऐसा नहीं है। केशर आदि का मिश्रण मौसम के अनुसार करना चाहिए।

• कई लोगों की अवधारणा है कि चंदन पूजा से पूर्व बरास पूजा करना जरूरी है, परन्तु यथार्थत: ऐसा नहीं है। यदि परमात्मा की अंगरचना करनी हो अथवा उसके द्वारा जिनबिम्ब की शोभा बढ़ती हो तो ही बरास पूजा करनी चाहिए अन्यथा बरास पूजा करना आवश्यक नहीं है।

चंदनपूजा के लाभ एवं वैशिष्ट्य

चंदन पूजा के निमित्त साक्षात जिनबिम्ब का स्पर्श करने का पुण्य अवसर प्राप्त होता है, इससे जिनबिम्ब में समाहित ऊर्जा का संचरण पूजक के भीतर भी होता है। जिस प्रकार चण्डकौशिक जैसा विषधर सर्प भी परमात्मा के स्पर्श मात्र से शांत एवं समत्वशील बन गया वैसे ही जिनपूजन के दौरान परमात्मा का स्पर्श कर हमारी विषय-कषाय रूप अग्नि शांत हो जाती है तथा स्वाभाविक सौम्यता एवं आत्मिक शीतलता प्राप्त होती है।

चंदन पूजा के द्वारा नौ अंगों में समाहित विशिष्ट शक्तियों का जागरण पूजार्थी के भीतर भी होता है। कई ऐसी अतिशययुक्त प्रतिमाएँ हैं जिनकी अंगपूजा करने से अंग पीड़ा का हरण होता है, ऐसी मान्यता है।

आबु के पास चंद्रावती नगरी में हर रोज सवासेर केशर पूजा हेतु उपयोग की जाती थी।

शंखेश्वर, पालीताना आदि तीर्थों में लोग सुबह से शाम तक परमात्मा की चंदन पूजा करने हेतु Line में खड़े रहकर अनंत कर्मों की निर्जरा करते हैं।

पूर्वकाल में जिनपूजा हेतु प्रयुक्त इत्र, चंदन आदि पदार्थों की सुगंध से कई-कई दिनों तक आस-पास का प्रदेश सुरभि युक्त रहता था। जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक एवं निर्वाण कल्याणक के समय इन्द्रों द्वारा परमात्मा की विलेपन पूजा की जाती है।

प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों में आचार्य भगवंत आदि के नौ अंगों की पूजा करने की परम्परा है। वर्तमान में अंगपूजा के अंतर्गत सर्वाधिक चंदन पूजा ही की जाती है तथा चंदन पूजा को अष्टप्रकारी पूजा में विशेष स्थान प्राप्त है।

चंदनपूजा का संदेशात्मक रूप

चंदन विशेष रूप से सुगंध एवं शीतलता के लिए प्रसिद्ध है। इसके द्वारा आत्मस्वभाव को शीतल बनाने की प्रेरणा मिलती है। जिस प्रकार चंदन को काटने वाली कुल्हाड़ी भी चंदन की खुशबू से महक उठती है। उसी प्रकार हमारे विरोधी तत्त्व भी हमारे गुणों से लाभान्वित हों ऐसी प्रेरणा चंदन पूजा के द्वारा प्राप्त होती है। केशर को परमात्म शक्ति,त्याग एवं बलिदान का प्रतीक माना गया है।

पुष्प पूजा का शास्त्रोक्त स्वरूप एवं प्रयोजन

अष्टप्रकारी पूजा में तृतीय स्थान पर पुष्प पूजा का उल्लेख है। यह अन्तिम अंग पूजा है। शुद्ध, सुन्दर, सुगन्धित एवं अखंड पुष्पों को जयणापूर्वक परमात्मा के चरणों में चढ़ाना पुष्पपूजा कहलाता है। पंचोपचारी एवं अष्टोपचारी पूजा में पुष्प पूजा का समावेश होता था। अतः पुष्प पूजा पूर्वकाल से नित्यपूजा के रूप में मान्य रही है।[7]

वीतराग प्रतिमा को पुष्पों से सुशोभित करने पर सौंदर्य में वृद्धि होती है, जिसके दर्शन से उत्पन्न भाव उर्मियां कर्म निर्जरा के साथ पुण्यबंध में हेतुभूत बनती है।

पुष्प को प्रेम, कामवासना और भोग का प्रतीक माना गया है। साहित्यमनीषी कामदेव के बाण के रूप में इसकी प्रशंसा करते हैं। वीतराग परमात्मा राग-द्वेष एवं कामवासना आदि भोग वृत्तियों से ऊपर उठकर चरम सिद्ध पद को प्राप्त कर चुके हैं। पुष्पों को समर्पित करते हुए परमात्मा से वासना मुक्ति की प्रार्थना की जाती है।

जिस प्रकार पुष्प सुगन्धी, कोमल एवं चित्त को आनंद में रमाने वाला होता है उसी तरह हमारा मन भी परदुख में कोमल, दूसरों को सुख-शान्ति देने वाला बनें, इन सब हेतुओं से पुष्प पूजा करनी चाहिए।

पुष्प पूजा के विविध पक्ष

पुष्प पूजा करने हेतु पुष्प कैसे हों? उन्हें कहाँ से कैसे लाया जाए? आदि कई महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। जैन शास्त्रकारों के अनुसार परमात्मा को चढ़ाने हेतु शुद्ध, ताजे, पूर्ण विकसित, अखंड एवं पवित्र भूमि में उत्पन्न सुंदर पुष्पों का ही प्रयोग करना चाहिए। चढ़ाने योग्य पुष्प जीव-जन्तु रहित, ताजे हों, वे जमीन पर गिरे हुए तथा Cold Storage आदि से खरीदे हुए नहीं होने चाहिए। पुष्पों को गंदे वस्त्र या पात्र में नहीं रखें।

फूलों को पानी में भिंगाकर नहीं रखना चाहिए। इससे उसमें रहे हुए कुंथुआ आदि जीव हिंसा की संभावना रहती है। पुष्पमाला बनाने हेतु सूई आदि से पुष्पों को बिंधना नहीं चाहिए।[8]

यदि शुद्ध एवं उत्तम कोटि (Quality) के पुष्प उपलब्ध नहीं हों तो सोने अथवा चाँदी के पुष्प बनाकर भी चढ़ा सकते हैं। चावल को केसर में रंगकर या पुष्प के स्थान पर लोंग आदि चढ़ाने की परम्परा भी देखी जाती है।

पुष्प पूजा हेतु सर्वप्रथम तो श्रावक को स्वयं ही पुष्प एकत्रित करने चाहिए। पूर्वकाल में श्रावक बगीचों में चादर बिछा देते थे और जो पुष्प स्वयं से चादर पर झड़ जाते थे उन्हें पूजा में प्रयुक्त किया जाता था। कहीं-कहीं मन्दिरों में ही बगीचे की व्यवस्था होती है तो कई श्रावक अपने घर में भी पौधे लगाकर उन पुष्पों का प्रयोग परमात्म पूजा में करते हैं।

वर्तमान में अधिकांश स्थानों पर माली को आर्डर देकर पुष्प मंगवाए जाते हैं। अनेक मन्दिरों एवं तीर्थ स्थलों में बाहर फूलवाले बैठते भी हैं। जहाँ पर माली द्वारा पुष्प मंगवाएँ जाते हैं वहाँ का माली जयणा एवं शुद्धता का पूर्ण ध्यान रखता है या नहीं? यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए।

जो लोग मन्दिरों में उपलब्ध पुष्पों का प्रयोग करते हैं उन्हें तद्योग्य द्रव्य भंडार में अवश्य डालना चाहिए। फूलों को यदि डाली से अलग करना हो तो अति सावधानी पूर्वक उनका छेदन करना चाहिए, जिससे उन्हें अति पीड़ा न

हो। यथार्थत: जो श्रावक स्वयं पुष्पों को एकत्रित करते हैं उन्हें सामायिक आदि आवश्यक कार्य पूर्ण करके शुद्ध पुष्पों की प्राप्ति हेतु जाना चाहिए। अष्टप्रकारी पूजा से पूर्व ही तद्योग्य सामग्री एकत्रित कर लेनी चाहिए।

पुष्प पूजा हेतु फूलों को पुष्प चंगेरी (फूल की छाब) अथवा थाली में रखना चाहिए।

पुष्पपूजा करने वाले श्रावकों को पूजा के समय पुष्पों के साथ अत्यंत मृदुतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। पुष्पों को आर्द्र वातावरण में या गीले वस्त्र में लपेटकर रखना चाहिए ताकि उन्हें पीड़ा न हो। परमात्मा के चरणों में पुष्प को अखंड रूप में चढ़ाना चाहिए। फूल की पंखुड़ियाँ तोड़-तोड़कर नहीं चढ़ानी चाहिए। पुष्पों को जयणापूर्वक हाथों में लेकर अत्यंत कोमलता से जिन चरणों में समर्पित करना चाहिए। पुष्पमाला बनाने हेतु फूलों के डंठलों को धागे से बांधकर फूलमाला बनानी चाहिए। पूजा की सामग्री वस्त्र या शरीर से स्पर्शित नहीं हो इसका ध्यान रखना चाहिए। खण्डित, जीव युक्त या सड़े हुए पुष्प पूजा हेतु प्रयोग में नहीं लेने चाहिए।

पुष्पपूजा का ऐतिहासिक महत्त्व

• अरिहंत परमात्मा के आठ प्रातिहार्यों में से एक पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य है। इसके माध्यम से देवी-देवताओं द्वारा साक्षात परमात्मा की पुष्प पूजा की जाती है।

• जिन प्रतिमाओं की जल एवं चंदन पूजा संभव नहीं होती उनकी पुष्प पूजा तो हमेशा की जा सकती है।

• आगमकाल से जिनपूजा विधि में पुष्प पूजा का प्रमुख स्थान रहा है।

• मांडवगढ़ के मंत्री पेथडशाह प्रतिदिन पंचरंगी पुष्पों द्वारा परमात्मा की पुष्पपूजा करते थे। स्वयं राजा भी आ जाएं तो उनका ध्यान उससे विचलित नहीं होता था।

• कुमारपाल राजा द्वारा भावपूर्वक चढ़ाए गए पाँच कोडी के पुष्पों के फलस्वरूप उन्हें अठारह देश का साम्राज्य प्राप्त हुआ।

• नागकेतु को पुष्पपूजा करते-करते केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

• धनसार श्रावक द्वारा चढ़ाए गए पुष्प हार के लाभ का वर्णन सर्वज्ञ भी नहीं कर सकते, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

• मंत्र सिद्धि के लिए पाँच लाख पुष्प चढ़ाकर आज भी साधना की जाती है।

• वर्तमान में कई श्रद्धालु भक्त परमात्मा की पुष्पों द्वारा इतनी सुंदर अंगरचना करते हैं कि दर्शन करते ही मुख से निकल जाता है–

फुलडा केरा बागमां, बैठा श्री जिनराज।
जिम तारामां चन्द्रमा, तिम सोहे महाराज।।

पुष्पपूजा के सकारात्मक पहलू

पुष्पपूजा से मानव का अन्तर्जगत एवं बाह्य जगत दोनों ही लाभान्वित होते हैं।

• शास्त्रकारों के अनुसार परमात्मा के चरणों में अर्पित किए जाने वाले पुष्प भव्यता को प्राप्त करते हैं। इनमें से कई पुष्प जिनबिम्ब के साक्षात्कार से बोधिबीज को प्राप्त करते हैं।

• पुष्प पूजा से प्रतिमा को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती।

• परमात्म के चरणों में पुष्प समर्पित करने से उन जीवों को अभयदान देने का लाभ मिलता है।

• परमात्मा के चरणों में पुष्प समर्पित करने से हृदय में कोमलता, मृदुता एवं सौम्यता का विकास होता है तथा जीवन में सद्गुणों की प्राप्ति होती है।

• जिनके प्रभुपूजा का नित्य नियम हो ऐसे लोग जिनप्रतिमा के अभाव में पुष्प में भी जिनबिम्ब की स्थापना कर अपना नियम अखंडित रख सकते हैं।

• पुष्पों को देखने मात्र से ही प्रसन्नता की सहज अनुभूति होती है अत: पुष्पपूजा करने वाले का मन आनन्दित होने से उसका पूरा दिन आनन्दमय बीतता है।

• भावपूर्वक पुष्पपूजा करने से कुमारपाल महाराजा को अठारह देश का आधिपत्य तथा नागकेतु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

• अहिंसा, करुणा, जयणा, जीवदया आदि गुणों का विकास पुष्प पूजा के माध्यम से सहजतया हो जाता है।

शंका– कई लोग तर्क करते हैं कि पुष्प तो एकेन्द्रिय जीव है फिर जिनपूजा हेतु इसका प्रयोग करने से हिंसा का दोष क्यों नहीं लगता?

समाधान– पुष्प एकेन्द्रिय जीव है इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है। जहाँ उसका उपयोग है वहाँ निश्चित रूप से हिंसा भी होगी। परन्तु जो लोग हिंसा और अहिंसा का सही स्वरूप नहीं जानते, उनके विविध पर्यायों को नहीं समझते, उनके लिए पुष्प पूजा एक हिंसात्मक प्रक्रिया है। यदि जैन धर्म के गूढ़ रहस्यों को समझा जाए तो जिनपूजा हेतु पुष्प प्राप्ति की जो विधि बतलाई गई है उसका विधिवत पालन किया जाए तो पुष्पपूजा के निमित्त लेशमात्र भी हिंसा नहीं होती।

सांसारिक कार्यों में प्रयुक्त होने वाले पुष्पों को पीड़ा एवं उनकी दुर्गति निश्चित है जबकि परमात्मा के चरणों में समर्पित करने पर उनकी स्वाभाविक मृत्यु होती है। परमात्म शरण प्राप्त करने से उनका कल्याण भी निश्चित हो जाता है।

जैन धर्म भावना प्रधान है। पुष्पपूजा करते समय उनकी हिंसा के भाव नहीं होते अत: मात्र द्रव्य कर्म का बंध ही होता है भाव कर्म का नहीं और द्रव्य कर्म उसी समय क्षीण हो जाता है। अत: जिनपूजा में पुष्पों का प्रयोग करने पर हिंसा का दोष नहीं लगता।

पुष्पपूजा का प्रतीकात्मक रूप

पुष्प-सुंदरता, शुद्धता, कोमलता एवं पवित्रता का प्रतीक माना जाता है। कमल को ज्ञान का प्रतीक मानते हैं। पुष्प के द्वारा परोपकार वृत्ति की भी शिक्षा मिलती है। पुष्पों पर बैठकर भंवरा उसके परिमल द्वारा अपनी उदर पूर्ति करता है तथा परिणामस्वरूप उसकी सौरभ को भी प्रसरित करता है।

इन सब गुणों के कारण पुष्पपूजा करने वाले में तद्रूप गुणों का विकास होता है। वे आचार-विचार एवं वाणी के सद्गुणों से युक्त होकर सर्वत्र अपनी सौरभ को प्रसरित करते हैं।

अष्टप्रकारी पूजा के क्रम में वर्णित अब तक की तीनों पूजाओं का समावेश अंग पूजा में होता है। आगे की पाँच पूजाएँ अग्र पूजा के अन्तर्गत समाविष्ट होती हैं।

अंग, अग्र एवं भाव पूजा में मुख्य अंतर

जल, चन्दन एवं पुष्प पूजा इन तीनों को अंगपूजा कहा है। इन्हें विघ्न विनाश का हेतु माना गया है। द्रव्य राग आत्मसिद्धि में विघ्न बाधाएँ उत्पन्न

करता है क्योंकि उनके रहते कार्य की सिद्धि संभव ही नहीं होती।

अष्ट प्रकारी पूजाओं में उपरोक्त तीनों पूजाओं के द्वारा जीवन को निर्विघ्न बनाया जाता है। तत्पश्चात अग्र पूजा के द्वारा ऋद्धि-सिद्धि एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है।

अंगपूजा करते हुए परमात्मा के साथ शारीरिक सम्बन्ध जुड़ा रहता है अर्थात जिनबिम्ब को स्पर्श करके ये पूजाएँ की जाती हैं अत: इनका स्थान गर्भगृह माना गया है।

अग्र पूजा के दौरान परमात्मा से द्रव्य अर्पण का सम्बन्ध बनाया जाता है अत: यह पूजा गर्भगृह के बाहर सम्पन्न की जाती है। अग्रपूजा के द्वारा इस भव में सुख-समृद्धि की एवं भवान्तर में देवलोक आदि के सुख की प्राप्ति होती है। अत: अग्रपूजा को अभ्युदयकारिणी पूजा भी कहा गया है।

अष्टप्रकारी पूजा के बाद स्तुति, स्तवन, चैत्यवंदन रूप भावपूजा की जाती है। इनके माध्यम से परमात्मा से भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ जाता है। यह पूजा समस्त दुखों का विनाश करके अप्रतिपाति मोक्ष सुख की उपलब्धि करवाती है।

धूप पूजा का मौलिक स्वरूप

परमात्मा के समक्ष शुद्ध एवं सुगन्धित धूप जलाकर आत्मा से मिथ्यात्व रूपी दुर्गन्ध को दूर करने की भावना करना धूप पूजा है। अष्टप्रकारी पूजा में इसका चौथा स्थान एवं अग्र पूजा में यह प्रथम पूजा है।

धूप पूजा का कारण बताते हुए शास्त्रकार भगवंत कहते हैं कि जिस प्रकार धूप दुर्गन्ध को दूर कर सुगन्ध को प्रसरित करता है। उसी तरह हमारी आत्मा भी कर्म एवं मिथ्यात्व रूपी दुर्गन्ध से दूर होकर सम्यग्दर्शन से सुवासित बने। धूप स्वभाव से ऊर्ध्वगामी होता है और हमारी आत्मा भी स्वभावत: ऊर्ध्वगामी है। अत: धूप पूजा के माध्यम से आत्मा को स्व-स्वरूप का आभास होता है तथा जीव सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है।

धूप पूजा के द्वारा मन्दिर का वातावरण पवित्र, सुगन्धित एवं निर्मल बनता है, जिससे परमात्म भक्ति में साधक का मनोयोग अधिक प्रबलता से जुड़ता है।

धूप पूजा करने हेतु प्राकृतिक एवं सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित दशांगधूप या चूर्ण वाले धूप का प्रयोग करना चाहिए। पूर्वाचार्यों के अनुसार चंदन, देवदारू, मृगमद, गंधवटी, घनसार, कृष्णागार आदि अनेक सुगन्धित द्रव्यों को मिलाकर

धूप तैयार करना चाहिए। मार्केट में उपलब्ध लकड़ी की काठी वाली अगरबत्ती धूप पूजा के लिए प्रयोग में नहीं लेनी चाहिए क्योंकि उसमें लकड़ी पर धूप चिपकाने हेतु प्राणिज पदार्थों का उपयोग होता है। साथ ही लकड़ी का अशुद्ध धुआं भी धूप में मिश्रित हो जाता है। दर्शनार्थी एवं पूजार्थी सभी श्रावकों को अपना धूप लेकर मन्दिर जाना चाहिए। मन्दिर में रखा हुआ धूप श्रावकों को यथासंभव उपयोग में नहीं लेना चाहिए। जो लोग मन्दिर के धूप का उपयोग करते हैं उन्हें यदि धूप जल रहा हो तो नया धूप नहीं जलाना चाहिए तथा उतना द्रव्य भी भंडार में डाल देना चाहिए।

शंका– शंका हो सकती है कि जब मन्दिर के द्रव्य का प्रयोग नहीं करना तो फिर मन्दिरों में द्रव्य की व्यवस्था ही क्यों रखी जाती है?

समाधान– श्रावकों के लिए स्वद्रव्य से जिनपूजा करने का विधान है। इससे श्रावक द्वारा अर्जित द्रव्य का शुभ कार्यों में व्यय होता है एवं द्रव्यों के प्रति आसक्ति न्यून होती है। पूर्वकाल में मन्दिरों में देव-द्रव्य की व्यवस्था नहीं रखी जाती थी। इस कारण श्रावक स्वत: द्रव्य लेकर उपस्थित होते थे। दूसरा उस समय नित्य प्रक्षाल का विधान नहीं था अत: केवल अग्र पूजा की सामग्री एवं पुष्पपूजा ही आवश्यक होती थी। तीसरा पहलू यह है कि उस समय त्रिकाल पूजा का क्रम होने से श्रावकों के लिए दोपहर तक सामग्री तैयार करना भी सहज हो जाता था।

परन्तु वर्तमान की बदलती हुई विचारधारा और व्यस्त जीवनशैली के कारण दूर रहने वाले लोगों के लिए मन्दिरों में पुजारी की व्यवस्था की गई और पुजारी की व्यवस्था ने अन्य सुविधाओं को जन्म दिया। इस सुविधावादी व्यवस्था ने भक्ति की अपेक्षा अविधि को ही बढ़ावा दिया है। अत: भले ही मन्दिरों में व्यवस्था की अपेक्षा सुविधा रखी गई हो परन्तु श्रावकों को स्वद्रव्य का ही उपयोग करना चाहिए।

मन्दिरों में धूप रखने हेतु अलग से छोटा डिब्बा आदि रखना चाहिए। प्लास्टिक के डिब्बे आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जले हुए धूप को दीपक आदि की थाली में या इधर-उधर नहीं रखना चाहिए।

धूप पूजा की प्रचलित विधि

धूप पूजा कहाँ और कैसे करें? इसका समाधान करते हुए जैनाचार्यों ने

लिखा है कि धूप पूजा एक अग्र पूजा है। अत: इसे मूल गर्भगृह के बाहर करनी चाहिए। कई लोग धूपशलाका को परमात्मा के पास ले जाकर धूप पूजा करते हैं, यह एक गलत प्रवृत्ति है एवं आशातना का कारण है। भगवान की नासिका के पास ले जाकर भी धूप पूजा नहीं करनी चाहिए। सम्यक रीति से धूप पूजा करने हेतु रंगमंडप में परमात्मा की बायीं तरफ खड़े रहकर धूप पूजा करना चाहिए। इससे संपूर्ण मन्दिर सुवासित होता है।[9]

धूप पूजा करने हेतु धूपशलाका को हाथ में इस प्रकार ग्रहण करें कि दोनों हाथों की अंगुलियाँ एक-दूसरे के सामने मिल जाएं। इसके बाद तर्जनी और मध्यमा के बीच जो अवकाश रहता है वहाँ पर धूपशलाका को अच्छे से पकड़ लें। धूपशलाका खड़ी रहे इस प्रकार परमात्मा के समक्ष धूप लेकर खड़े रहें। यदि धूपदानी में रखकर धूप करते हैं तो उसे भी दोनों हाथों से ही पकड़ना चाहिए। धूप को गोल-गोल घुमाने का विधान कहीं भी शास्त्रों में उल्लेखित नहीं है।

धूपपूजा विषयक जन मान्यता

• कई लोग यह सोचते हैं कि धूप पूजा के द्वारा वातावरण को परमात्मा के लिए सुगन्धित बनाया जाता है और इसी कारण वे मूल गर्भगृह में भी धूप लेकर पहुँच जाते हैं। जिनेश्वर परमात्मा तो अच्छे-बुरे के भाव से मुक्त होते हैं। उनका वीर्य इतना विकसित है कि उन्हें गंध लेने के लिए नासिका की आवश्यकता ही नहीं रहती। धूप पूजा तो हम स्वयं को निर्मल संवर भावों से सुगन्धित करने हेतु करते हैं।

• कुछ लोग यह मानते हैं कि नया धूप जलाकर ही धूप पूजा करनी चाहिए। इसी कारण धूप जल रहा हो तो भी वे नया धूप जलाते हैं। मन्दिर में रखे हुए धूप का इस प्रकार अनावश्यक प्रयोग नहीं करना चाहिए। स्व द्रव्य से पूजा करने वाले धूप-दीप आदि नया प्रकट कर सकते हैं।

शंका– कुछ लोग शंका करते हैं कि परमात्मा जब राग-द्वेष रहित एवं सर्वत्र हैं तो फिर उनके समक्ष धूप आदि से पूजा करने की क्या आवश्यकता?

समाधान– परमात्मा को न पूजा से फर्क पड़ता है न निंदा से। चाहे कोई उनकी पूजा करे या कोई उन्हें तिरस्कृत उनके लिए सभी समान है। यथार्थत: परमात्मा की पूजा परमात्मा के लिए नहीं स्वयं के लिए की जाती है।

जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त है "अप्पा सो परमप्पा"– आत्मा ही परमात्मा

है, अत: हमारी आत्मा के भीतर रही परमात्म सत्ता को प्रकट करने के लिए हम विविध प्रकार से परमात्मा की पूजा करते हैं।

धूप पूजा के माध्यम से अनंत काल की सांसारिक वृत्तियों से मलिन हुई आत्मा को स्वगुणों में स्थिर करने का प्रयास किया जाता है। इसी के साथ आत्मा के ऊर्ध्वगामी स्वरूप एवं मोक्ष लक्ष्य का भी स्मरण करवाया जाता है। शुद्ध एवं निर्मल वातावरण में आत्मभाव भी सहजतया निर्मल बनते हैं।

धूपपूजा का प्रेरणास्पद स्वरूप एवं उसके लाभ

पूजा विधि के दौरान धूप के प्रयोग से विशिष्ट खुशबू का उत्सर्जन होता है। धूप स्वयं जलकर सम्पूर्ण वातावरण को पवित्र, स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण बनाता है तथा मानव मन के अहंकार को जलाकर प्यार और करुणा के इत्र को प्रसरित करने की प्रेरणा देता है। धूप आत्मा के ऊर्ध्वगामी स्वरूप का श्रेष्ठ प्रतीक है।

धूप पूजा करने से आत्मा के निरुपाधिक गुण प्रकट होते हैं। अनंत काल से आत्मा को मलिन कर रहे अष्टकर्म भस्मीभूत होते हैं एवं आत्म प्रदेश आत्मगुणों से सुवासित हो जाते हैं।

धूप की सुरम्य परिमल से जिस प्रकार वातावरण पवित्र, निर्मल एवं मनोनुकूल बन जाता है, वैसे ही धूप पूजा करने से जीव सम्यग्दर्शन की खुशबू से महक उठता है।

धूप के उर्ध्वगामी स्वरूप के अनुसार पूजक के भक्ति भाव की भी वृद्धि होती है। जीव अपने आत्मस्वभाव में रमण करने लगता है, जैसे धुआं कीटाणुओं को दूर कर वायुमण्डल को शुद्ध एवं पवित्र बनाता है वैसे ही धूप पूजा भोग एवं रोग रूपी कीटाणुओं को दूर कर मन को पवित्र बनाती है।

दीपक पूजा का तात्त्विक स्वरूप

मन्दिर परिसर में व्याप्त बाह्य अंधकार एवं आत्मा में व्याप्त आंतरिक अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने के लिए परमात्मा के समक्ष शुद्ध घी के दीपक प्रकट करना दीपक पूजा है। अष्टप्रकारी पूजा में इसका पाँचवाँ स्थान एवं अग्रपूजा में दूसरा स्थान है। पूजन-महापूजन आदि में दीपक पूजा या अखंड दीपक का विशेष महात्म्य देखा जाता है।

दीपक में प्रज्वलित ज्योति अग्नि का ही एक स्वरूप है। अग्नि को शुद्ध एवं शुद्धिकरण का विशेष साधन माना गया है। स्वर्ण आदि पदार्थों की अशुद्धि

को दूर करने के लिए अग्नि का ही प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार दीपक पूजा भी जीव की वैभाविक अशुद्धियों को दूर कर शुद्ध आत्म स्वरूप को प्रकट करती है।

परमात्मा के समक्ष दीपक प्रकट करने का एक अन्य हेतु यह है कि जिस प्रकार दीपक अंधकार का नाश करता है वैसे ही जिनेश्वर परमात्मा का ज्ञान रूपी प्रकाश हमारे जीवन के दु:ख एवं अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करें।

दीपक का सात्त्विक प्रकाश जिनालय के वातावरण को मनोरम बनाता है तथा पूजार्थी के मन का सुप्त ज्ञान एवं विवेक जागृत करता है।

शंका– दीपक के स्थान पर मन्दिरों में आधुनिक लाइटों का प्रयोग उचित है या नहीं? अंधकार तो उनसे भी दूर हो सकता है?

समाधान– जैन शास्त्रों में मन्दिरों के लिए घृत के दीपक करने का ही विधान मिलता है। उन्हें शुद्ध, पवित्र एवं सात्त्विक प्रकाश युक्त माना है। दूसरा दीपक करने का प्रयोजन मात्र प्रकाश करना ही नहीं है। मन्दिर में आने वाले श्रावकों के मन में विशुद्ध भावों को जागृत करना एवं मन्दिर के वातावरण को सुरम्य बनाना भी इसका मुख्य हेतु है।

वर्तमान में उपलब्ध Electric Lamp और Halogen Lights आदि का मन्दिरों में प्रयोग करना उचित नहीं है। विद्युत निर्माण एक हिंसक प्रवृत्ति है अत: उसके द्वारा उत्पन्न रोशनी वातावरण में शुद्धता एवं पवित्रता को उत्पन्न नहीं कर सकती। विद्युत निर्माण में मात्र स्थावरकाय की ही नहीं त्रसकाय जीवों की भी हिंसा होती है।

विद्युत संसाधनों से निसृत आक्रामक रोशनी के कारण मूर्तियों के प्रभाव में भी कमी आती है तथा बिजली के कारण सदा भय भी बना रहता है। वर्तमान में कई अप्रिय घटनाएँ Short Circuit आदि के कारण देखी जाती है।

दीपक के प्रकाश में परमात्मा की जो सौम्य मुखमुद्रा नजर आती है एवं वातावरण में आह्लादकता अनुभूत होती है वह कृत्रिम विद्युत लाइटों में नहीं होती।

वैज्ञानिक शोधकर्ताओं के अनुसार अत्यंत खतरनाक अणुबम के विनाशक असर को भी घृत दीपक नहींवत कर देता है। मंदिर में दीपक की रोशनी ही सर्वोत्कृष्ट है अत: दीपक भी उतना ही उत्तम होना चाहिए। प्राचीन ग्रन्थकारों के

अनुसार शुद्ध गाय के घी से बना हुआ दीपक ही पूजा हेतु प्रयोग करना चाहिए। दीपक भी यथाशक्ति सोने, चाँदी, ताँबा अथवा पीतल का होना चाहिए। शुद्ध घी का दीपक सकारात्मक ऊर्जा का निर्माण करता है। डालडा घी या तैल के दीपक मन्दिर में नहीं करना चाहिए।

दीपक करने से पूर्व बत्ती को घी से अच्छी तरह पूरित करना चाहिए। कई लोग घी में बत्ती डूबाकर ही दीपक जला लेते हैं जो पाँच मिनट में बुझ जाता है। परमात्मा के दरबार में इस प्रकार की कृपणता नहीं दिखानी चाहिए।

श्रावकों को यथाशक्य अपना दीपक लाना चाहिए। यदि मन्दिर का दीपक उपयोग करते हैं तो उसमें घी पूरित करना चाहिए। यदि कारण विशेष में उपयोग कर रहे हैं तो उतना द्रव्य भी भंडार में डाल सकते हैं।

जो श्रावक दीपक साथ में लाते हैं उन्हें प्रदक्षिणा देने के बाद दीपक प्रगटा देना चाहिए। यहाँ पर मात्र दीपक प्रकट करना है। दीपक पूजा तो उसका क्रम आने पर ही करनी चाहिए क्योंकि दीपक पूजा पाँचवें क्रम पर की जाती है। परंतु पूर्व में दीपक प्रकट करके रखने से वह जितने अधिक समय तक जलता है, वातावरण की उतनी ही अधिक विशुद्धि होती है। कई लोग दीपक पूजा से पूर्व दीपक प्रज्वलित करते हैं, इससे विधि तो सम्पन्न हो जाती है परन्तु भावों में वह उल्लास और वेग उत्पन्न नहीं होता जो दीपक पूजा के समय होना चाहिए।

जैसे आरती को घुमाते हैं वैसे दीपक नहीं घुमाना चाहिए। दीपक के ज्योति की स्थिरता मन में भी स्थिरता उत्पन्न करती है।

दीपक पूजा कब करनी चाहिए इस विषय में यदि श्रावक की त्रिकाल पूजा सम्बन्धी चर्या का अवलोकन करें तो तीनों समय ही दीपक पूजा की जा सकती है। कई लोग दीपक पूजा को ही आरती मानते हैं। यद्यपि आरती दीपक पूजा का ही रूप है किन्तु अष्टप्रकारी पूजा में दीपक पाँचवें स्थान पर है वहीं आरती अष्टप्रकारी पूजा के बाद की जाती है। आरती संन्ध्या के समय करनी चाहिए जबकि दीपक पूजा दर्शन करते हुए कभी भी की जा सकती है। वर्तमान में अनेकश: मन्दिरों में अखंड दीपक का विधान देखा जाता है।

दीपक को परमात्मा की दायीं तरफ रखना चाहिए। दीपक खुला रहने पर उसमें पतंगा आदि जीवों की हिंसा हो सकती है। अत: दीपक को फानस में अथवा छिद्र वाले ढक्कन से ढंकना चाहिए। दीपक पूजा परमात्मा के मूल

गर्भगृह के बाहर रंगमंडप में करनी चाहिए एवं उसकी स्थापना भी बाहर ही करनी चाहिए। गर्भगृह के भीतर दीपक की स्थापना करने से धुएँ आदि के कारण छत पर कालास जम जाती है तथा प्रतिमा पर भी इसके दुष्प्रभाव देखे जाते हैं।[10]

दीपक पूजा सम्बन्धी आम धारणा

• अनेक सम्प्रदायों में अग्नि को दोष निवारक, देवरूप एवं पूज्य माना गया है अत: स्थान आदि की शुद्धि के लिए यज्ञ, हवन, दीपक प्रज्वलन आदि किए जाते हैं।

• अग्नि की साक्षी या संयोग से पाप नष्ट होते हैं एवं गृहीत नियम में दृढ़ता रहती है।

• यदि देवतागण इस धरती पर आएं तो अग्नि के रूप में वास करते हैं क्योंकि अग्नि कभी अशुद्ध और अपवित्र नहीं होती।

• हवा आदि के कारण जलता हुआ दीपक बुझ जाए तो उसे अशुभ माना जाता है।

• अखंड दीपक प्रज्वलित रहने से ऐच्छिक कार्य की पूर्ति तथा संघ, परिवार, व्यापार आदि में वृद्धि होती है।

दीपक पूजा की विशेषताएँ एवं लाभ

• जिनमन्दिर आदि आराधना स्थल जन मानस में भक्तिभाव, श्रद्धा आदि को जाग्रत करने के मुख्य केन्द्र स्थल हैं। दीपक वहाँ पर आत्मज्ञान को जागृत करने की प्रेरणा देता है।

• दीपक के प्रकाश में जिनबिम्ब अधिक आकर्षक एवं मनोहारी प्रतीत होता है। इससे भक्त हृदय में उल्लास भाव प्रस्फुटित होते हैं।

• कई स्थानों पर दीपक से धुएँ के स्थान पर वासक्षेप या केशर जैसा धुआं भी निकलता हुआ देखा जाता है।

• जिस प्रकार दीपक तमस् को मिटाकर उजाला फैलाता है वैसे ही दीपक पूजा करने से आत्मा में ज्ञान रूपी रोशनी प्रकट होती है, जिससे संसार के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।

• घृत दीपक से नि:सृत ज्योति विनाशक तत्त्वों के प्रभाव को निष्क्रिय करती है।

• भावपूर्वक की गई दीपक पूजा शिवसुख को प्रदान करती है, अरति का हरण करती है तथा मंगल भावों का वर्धन करती है।

दीपक को ज्ञान का प्रतीक माना है। यह विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। जलते हुए घी या तेल की भाँति यह नकारात्मक विचारों एवं वासनाओं को जलाकर हृदय को शुद्ध बनाता है तथा बाती के समान अहंकार को न्यून कर विनम्रता के साथ अन्य लोगों की सेवा का संदेश देता है। दीपक के ऊपर की तरफ जलती हुई लौ आध्यात्मिक जीवन में प्रगति और स्थिरता का प्रतीक है।

अक्षतपूजा का लाक्षणिक स्वरूप

अक्षय सुख की प्राप्ति हेतु परमात्मा के आगे अखंड चावलों द्वारा स्वस्तिक, सिद्धशिला, अष्टमंगल आदि बनाना अक्षत पूजा कहलाता है।[11]

अष्टप्रकारी पूजा में अक्षतपूजा का छठवां एवं अग्रपूजा में तीसरा स्थान है। अक्षत को एक मांगलिक धान्य के रूप में शुभ कार्यों हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि परमात्मा के समक्ष चावल ही क्यों चढ़ाना? गेहूँ, मूंग, चना आदि क्यों नहीं चढ़ा सकते?

अक्षत पूजा करने के हेतु का उल्लेख करते हुए जैनाचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार छिलके से निकला हुआ चावल वापस कभी नहीं उगता वैसे ही हमारी आत्मा के ऊपर से भी कर्म रूपी छिलका हट जाने पर वह अपने जन्म-मरण रहित मूल स्वरूप को प्राप्त कर सकती है।

यदि सूक्ष्मता पूर्वक चिंतन करें तो नवपद ओलीजी में चावल, गेहूँ, मूंग, चना एवं उड़द ये पाँचों धान्य परमात्मा के समक्ष चढ़ाए जाते हैं। परन्तु दैनिक क्रिया में अक्षत का ही प्रचलन होने से अक्षत चढ़ाना ही जीत व्यवहार है।

अन्य सभी धान्यों की अपेक्षा चावल सहज रूप से हर क्षेत्र में उपलब्ध हो जाता है। नंद्यावर्त्त, विविध गहुँली आदि चावलों से बनाना अधिक सुगम होता है।

चावल का रंग श्वेत होता है और अरिहंत परमात्मा का वर्ण भी श्वेत है उनके हृदयस्थित करुणा, वात्सल्य आदि के गुणों के कारण उनका रक्त भी दूध के समान श्वेत बन जाता है। अत: श्वेत परमात्मा की श्वेत अक्षतों के द्वारा पूजा की जाती है।

अक्षत अचित्त अर्थात जीव रहित होता है। इसे अखंडता, उज्ज्वलता एवं शुद्धता का प्रतीक भी माना गया है अत: अक्षत द्वारा ही परमात्मा की पूजा की जाती है।

अक्षत पूजा हेतु उत्तम Quality के अखंड एवं सफेद चावलों का प्रयोग करना चाहिए। हो सके तो बासमती चावल और यदि किसी के लिए संभव न हो तो कम से कम जो चावल घर में खाने हेतु प्रयोग किए जाते हैं उनका प्रयोग अक्षत पूजा हेतु करना चाहिए।

कई लोग राशन के चावल या टुकड़ी चाँवलों का मन्दिर में प्रयोग करते हैं, यह परमात्मा का असम्मान है। जो चावल हल्की Quality का मानकर अपने या परिवार वालों के खाने के लिए उपयोग नहीं करते वे परमात्मा को कैसे चढ़ा सकते हैं?

चढ़ाने योग्य चावलों को जयणा पूर्वक देखकर फिर चढ़ाना चाहिए। उसमें इली-लट आदि जीव न हो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि द्रव्य जैसा होता है वैसे ही भाव बनते हैं।

मन्दिर में चढ़ाए गए चावल निर्माल्य द्रव्य रूप माने जाते हैं। उन चावलों को सस्ते दाम में या उचित दाम में भी नहीं खरीदना चाहिए। मन्दिर के लिए तो उनके प्रयोग का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

प्रत्येक श्रावक को अक्षत साथ लेकर मन्दिर जाना चाहिए क्योंकि आचार्यों का कहना है कि जो लोग अष्टप्रकारी पूजा नहीं कर सकते उन्हें कम से कम अक्षत पूजा तो अवश्य रूप से करनी चाहिए।

परमात्मा की धूप-दीप आदि से पूजा करने के बाद चैत्यवंदन से पूर्व सभामंडप में अक्षतपूजा करनी चाहिए।

प्रात:काल में प्रक्षाल आदि क्रिया करने वाले कुछ लोगों के द्वारा विधि के क्रम में फेरबदल कर दिया जाता है। अपनी सुविधा के लिए वे लोग विलेपन पूजा में विलम्ब हो तो अक्षत पूजा आदि पहले कर लेते हैं। यह जिनाज्ञा की प्रत्यक्ष आशातना है। परिस्थिति विशेष में विधि का अक्रम करना अपवाद रूप में स्वीकार्य हो सकता है। परन्तु बार-बार किया गया अक्रम कभी भी कार्य की सिद्धि में सहायक नहीं बन सकता।

जिस कार्य के लिए जो क्रम निर्धारित किया गया हो उसे उसी क्रम में करने पर उचित फल मिलता है। क्रम में किया गया रूपांतरण कई बार विपरीत फल भी देता है। उदाहरणतया स्कूल में पढ़ने का एक क्रम होता है और उसी

क्रम से बच्चों को आगे की क्लास में बढ़ाया जाता है। अनुमान कीजिए कि वो क्रम न हो। कोई बच्चा पहले पाँचवीं कक्षा में पढ़े फिर उसे दूसरी कक्षा में भेजा जाए और फिर चौथी में तो वह सम्यक प्रकार से कुछ भी नहीं सीख पाएगा। वैसे ही यदि मन-मर्जी से पूजा के क्रम में परिवर्तन करते रहें तो मनोयोग पूर्वक किसी एक से भी नहीं जुड़ पाएंगे। अत: क्रम एवं विधिपूर्वक समस्त क्रियाएँ करनी चाहिए।

अक्षत पूजा हेतु अक्षतों को व्यवस्थित डिब्बी या मन्दिर Bag में रखने चाहिए। मिश्री, नैवेद्य आदि को चावलों के साथ नहीं रखना चाहिए। कई बार उनका चूर्ण चावलों में मिश्रित होकर जीवोत्पत्ति में कारणभूत बनता है। दस-पन्द्रह दिन के अंतराल में उसकी सफाई अवश्य करनी चाहिए। मुखकोश को चावलों के साथ नहीं रखना चाहिए।

यदि सामूहिक पूजा कर रहे हों तो सभी के चावल एक थाली में इकट्ठा कर गहुँली आदि बनानी चाहिए।

अक्षत पूजा करते समय चावलों को सर्वप्रथम दाहिने हाथ में ग्रहण कर बायीं हथेली को दायीं हथेली के नीचे तिरछी रखें। कुछ आचार्यों के अनुसार पुरुषों को दायीं एवं महिलाओं को बायीं हथेली में चावल रखने चाहिए। मंत्रोच्चार पूर्वक शिखर मुद्रा में चावल चढ़ाने चाहिए। सर्वप्रथम सिद्धशिला की ढेरी, फिर दर्शन, ज्ञान, चारित्र की ढेरी और अंत में स्वस्तिक की ढेरी बनाएँ। इसका उलटा क्रम भी देखा जाता है।

सर्वप्रथम तर्जनी अंगुली से स्वस्तिक और फिर सिद्धशिला बनाई जाती है।

शंका– प्रश्न हो सकता है कि अक्षत पूजा में स्वस्तिक और सिद्धशिला ही क्यों बनाए जाते हैं?

समाधान– अक्षत पूजा के माध्यम से जीव अपनी वर्तमान दशा एवं भविष्य के लिए आंतरिक इच्छा को अभिव्यक्त करता है। स्वस्तिक, चार गति का सूचक है। इन चार गतियों के भ्रमण से मुक्ति पाने हेतु जीव रत्नत्रय रूप सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान एवं सम्यक चारित्र की आराधना से शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर सिद्धशिला को प्राप्त कर सकता है। इसी के प्रतीक रूप में स्वस्तिक और सिद्धशिला बनाए जाते हैं।

शंका– अक्षत पूजा तर्जनी अंगुली से जबकि जिनपूजा अनामिका अंगुली से की जाती है, ऐसा क्यों?

समाधान– अनामिका अंगुली पवित्रता एवं पूज्यता की सूचक है। अतः परमात्मा की पूजा अनामिका अंगुली से की जाती है।

तर्जनी अंगुली तिरस्कार की सूचक है एवं चारो गतियाँ मनुष्य के लिए हेय,त्याज्य एवं तिरस्कार योग्य मानी गई हैं। क्रोध में आया व्यक्ति जब किसी को दुत्कारता है तो तर्जनी अंगुली का प्रयोग करता है। वैसे ही चारो गतियों से त्रस्त जीव तर्जनी के द्वारा चारो गतियों का तिरस्कार करता है।

यहाँ कोई कह सकता है कि सिद्धशिला भी तिरस्कार योग्य है? नहीं, सिद्धशिला तिरस्कार योग्य नहीं सत्कार योग्य है। जिस प्रकार तर्जनी का प्रयोग तिरस्कार के लिए किया जाता है वैसे ही इसका प्रयोग निर्देश करने हेतु भी होता है। जब किसी की ओर सूचित करना हो या दिशा-निर्देश करना हो तो इसी अंगुली का प्रयोग किया जाता है। तर्जनी अंगुली के द्वारा सिद्धशिला बनाकर जीव को चार गति त्याग के बाद सिद्धशिला प्राप्ति का निर्देश या लक्ष्यदर्शन करवाया जाता है। संसारी जीव को मोक्षगति प्राप्त करवाने में रत्नत्रयी सहायक बनती है अतः दोनों के मध्य रत्नत्रयी के सूचक के रूप में तीन ढेरी बनाई जाती है।

सिद्धशिला के आकार के विषय में भी मतांतर है। कुछ लोग द्वितीया के चंद्रमा जैसी सिद्धशिला बनाकर उसमें एक ढेरी बनाते हैं जो सिद्ध आत्माओं की सूचक है और कुछ आचार्यों के अनुसार सिद्धशिला अष्टमी के चन्द्रमा की भाँति अर्धवर्तुलाकार बनाकर उसमें एक लाईन खींच देनी चाहिए। वर्तमान में दोनों ही परम्पराएँ प्रचलित हैं। परंतु प्रथम परम्परा में अधिक अर्थसाम्य प्रतीत होता है।

अक्षतपूजा सम्बन्धी जन अवधारणाएँ

- कई गृहस्थों का कहना है कि चढ़ाये हुए चावल भगवान तो नहीं खाते, उन्हें पुजारी ही लेकर जाता है, तो फिर अच्छी Quality के चावल का क्यों उपयोग करें?
- कोई गृहस्थ यदि भावपूर्वक सुन्दर गहुँली आदि बनाकर द्रव्य का उपयोग बहुलतापूर्वक करता है तो लोगों द्वारा यह कहते हुए भी देखा जाता है कि "क्या भगवान को खिचड़ी बनाकर खानी है जो इतना चावल चढ़ाते हो।"

यथार्थत: जो लोग द्रव्यपूजा के सही तात्पर्य को नहीं समझते वे ही ऐसे तर्क करते हैं। द्रव्यपूजा तो आसक्ति एवं परिग्रह वृत्ति को न्यून करने की अपेक्षा से की जाती हैं। परमात्मा को द्रव्य की Quality से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि वे तो वीतरागी हैं परन्तु उत्तम कोटि का द्रव्य होने पर उत्तम भावों के निर्माण में सहयोग मिलता है अत: जिनपूजा में उत्कृष्ट द्रव्य का उपयोग करना चाहिए।

• यदि चैत्यवंदन विधि करते हुए पुजारी आदि साथिया हटा दे तो कई लोग क्रिया को अपूर्ण या अविधि मानते हैं। कुछ लोग तो झगड़ा भी शुरू कर देते है परन्तु यथार्थत: एक बार द्रव्यपूजा का त्याग कर भावपूजा में प्रवेश करने के बाद द्रव्य विषयक चिंतन करना मूर्खता है।

• कुछ लोग दो स्वस्तिक बनाकर दांपत्य जीवन के सुखद निर्वाह एवं भविष्य के साथ की कामना करते हैं। जबकि मन्दिर में संसार समाप्ति की कामना करनी चाहिए, संसार वृद्धि की नहीं।

• किसी भी तप आदि की क्रिया करते हुए जब तक क्रिया पूर्ण न हो तब तक स्वस्तिक आदि मिटाने नहीं चाहिए ऐसी मान्यता प्राय: लोगों में देखी जाती है। परन्तु ऐसे किसी भी विधान का सूचन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता।

यह मान्यता प्राय: इस कारण हो सकती है कि द्रव्य सामने होने पर भावों में अधिक उल्लास भाव जागृत होते हैं किन्तु इसका आग्रह रखना या इस हेतु स्वयं के परिणाम बिगाड़ना सर्वथा अनुचित है।

• देवी-देवताओं के आगे त्रिशूल आदि बनाए जाते हैं। जैन मन्दिरों में शस्त्र निर्माण उचित प्रतीत नहीं होता अत: उनके समक्ष भी स्वस्तिक आदि ही बनाना चाहिए।

• दादा गुरुदेव के सम्मुख स्वस्तिक एवं रत्नत्रयी रूप तीन ढेरियाँ बनाई जाती हैं। उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के अनुसार गुरु के समक्ष मोक्षेच्छा की अभिव्यक्ति करते हुए सिद्धशिला भी बना सकते हैं। कहीं-कहीं पर सिद्धशिला के स्थान पर ध्वजा बनाने का विधान भी देखा जाता है।

अक्षत पूजा का वैशिष्ट्य एवं फायदे

• अष्टप्रकारी पूजा न करने वाले श्रावकों के लिए भी अक्षत पूजा करने का आवश्यक विधान है। एकमात्र अक्षत पूजा से भी जिनपूजा का लाभ प्राप्त होता है।

• राजा श्रेणिक हर रोज नवनिर्मित सोने के चावलों से भगवान महावीर जिस दिशा में विचर रहे होते थे उस दिशा में स्वस्तिक बनाते थे।

• कई भावयुत श्रद्धालु श्रावकों द्वारा विशेष अवसरों पर चावल के स्थान पर मोती आदि विशिष्ट रत्नों से अक्षत पूजा करने एवं परमात्मा को बधाने की क्रिया आज भी देखी जाती है।

• अक्षत पूजा के माध्यम से श्रावक नित नए प्रकार से परमात्म भक्ति कर सकता है।

• जिनपूजा हेतु किसी प्रकार का स्वद्रव्य नहीं लाने वाले श्रावक भी चावल तो घर से ही लाते हैं।

• कुसुमांजली हेतु जब पुष्प कम हो या न हो तो केशर मिश्रित चावलों से ही कुसुमांजलि की जाती है।

• अक्षत पूजा के द्वारा जीव वीर्यान्तराय कर्म का क्षय करते हुए आभ्यंतर रूप को आलोकित करता है।

• अक्षत पूजा करने से जीव को अपने परमलक्ष्य रूप पंचम गति तथा चारो गति के स्वरूप का भान रहता है।

• अक्षत पूजा में प्रयुक्त चतुर्दल मुद्रा एवं शिखर मुद्रा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का शमन करती है।

अक्षत का अखंड रूप दीर्घायु का प्रतीक माना जाता है। जल की भाँति चावल को भी जीवन का चिह्न माना है। व्यवहार जगत में भी तिलक पर चावल लगाकर दीर्घ जीवन की प्रार्थना की जाती है। चावल का शाल (छिलका) रहित रूप जीव के शुद्ध स्वरूप का सूचक है।

नैवेद्य पूजा का आध्यात्मिक स्वरूप

नैवेद्य का अर्थ होता है मिष्ठान्न या रसयुक्त पदार्थ तथा इनके समर्पण द्वारा होने वाली पूजा नैवेद्य पूजा कहलाती है। अष्टप्रकारी पूजा में इसका सातवाँ एवं अग्रपूजा में चौथा स्थान है।

त्रिविध, चतुर्विध आदि समस्त पूजाओं में नैवेद्य पूजा का उल्लेख है।[12] इसे आमिष पूजा भी कहते हैं। यहाँ आमिष से अभिप्राय रसयुक्त द्रव्य से है।[13]

कई बार बालकों द्वारा यह प्रश्न सहज रूप में पूछा जाता है कि भगवान को मिठाई क्यों चढ़ाते हैं? क्या भगवान को मिठाई ज्यादा पसंद है?

यह प्रश्न बच्चों का ही नहीं कई अन्य लोगों का भी हो सकता है। प्राय: सभी सम्प्रदायों में देवी-देवता, भगवान आदि को भोग लगाने हेतु मिठाई ही चढ़ाई जाती है। किसी को मोदक, किसी को लड्डू तो किसी को खीर परन्तु किसी को भी नमकीन नहीं चढ़ाई जाती है।

जैन मत के अनुसार परमात्मा तो अनाहारी पद को प्राप्त कर चुके हैं, अत: इन्हें मीठा कम या अधिक पसंद होने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। व्यवहार जगत में भोज्य पदार्थों के अन्तर्गत मिष्टान्न को उत्कृष्ट द्रव्य माना जाता है। जब भी कोई मेहमान आते हैं या किसी मंगल कार्य का प्रारंभ हो रहा हो या फिर कोई कहीं प्रस्थान कर रहा हो अथवा कोई भी विशिष्ट दिन या पर्व दिवस हो तो मिष्टान्न ही खिलाया जाता है। इसे उत्तम एवं मंगलकारी मानते हैं अत: परमात्मा के समक्ष भी सर्वोत्तम वस्तु के रूप में मिष्टान्न ही अर्पित किया जाता है।

मिष्टान्न चढ़ाने का एक अन्य हेतु अणाहारी पद को प्राप्त करना भी है। संसारी जीव मुख्य रूप से आहार, भय,मैथुन एवं परिग्रह इन चार संज्ञाओं से ग्रसित है। नैवेद्य आदि द्रव्य चढ़ाकर यह जीव आहार संज्ञा पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा करता है। जीव के संसार परिभ्रमण का प्रमुख कारण आहार है। सामान्य व्यवहार में भी कहा जाता है कि "पापी पेट सब कुछ करवाता है" अत: आहार के प्रति आसक्ति न्यून करने के भावों से परमात्मा को नैवेद्य चढ़ाया जाता है।

अरिहंत परमात्मा की नैवेद्य पूजा भ्रम या मिथ्या धारणा का निराकरण कर अन्तराय कर्म का निवारण करती है।

धर्मसंग्रह आदि ग्रंथों में परमात्मा को चार प्रकार के आहार चढ़ाने का वर्णन प्राप्त होता है।[14]

1. अशन-पकाए गए चावल, कंसार, दलिया-दाल-सब्जी आदि।
2. पाण-गुड़, शक्कर का पानी आदि।
3. खादिम– फल, सूखा मेवा आदि।
4. स्वादिम– नागरवेल के पान, सुपारी आदि।

इन चार प्रकार के आहारों से की जाने वाली पूजा विशेष फलदायी होती है। निशीथ, महानिशीथसूत्र आदि में भी पकाए हुए अन्न चढ़ाने का विधान है।

प्राचीन काल में यही विधान था। वर्तमान में इस प्रकार के सम्पूर्ण भोजन का थाल साधर्मिक भक्ति (संघ भोजन) आदि के समय चढ़ाए जाते हैं। परमात्मा को चढ़ाने हेतु शुद्ध एवं उत्तम द्रव्य के साथ जयणापूर्वक निर्मित मिष्टान्न का ही प्रयोग करना चाहिए। मिश्री, पतासा, गुड़ आदि भी नैवेद्य के रूप में चढ़ाए जा सकते हैं।

रस की मिठाई जैसे कि रसगुल्ला, जलेबी, गुलाबजामुन, हलवा आदि दूसरे दिन बासी हो जाते हैं। सुखी हुई या बासी मिठाई परमात्मा को नहीं चढ़ाई जा सकती। कई लोग यह सोचते हैं कि चढ़ाई हुई मिठाई पुजारी ही तो लेकर जाएगा अत: वे लोग छोटे से छोटा पीस मन्दिर ले जाते हैं। कई लोग ऐसी मिठाइयाँ मन्दिर में चढ़ाते हैं जो घर में कोई नहीं खाता, यहाँ तक कि नौकर भी उसे नहीं लेगा। इस तरह के हीन भावों से परमात्मा को द्रव्य समर्पित करना कर्म क्षय की अपेक्षा कर्मबंधन का हेतु बनता है।

परमात्मा को ऐसा ही द्रव्य समर्पित करना चाहिए जो हमारे खुद के लिए खाने योग्य हो। बाजार से यदि मिठाई खरीदते हैं तो उसकी निर्माण शुद्धि पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। चाकलेट, पिपरमेंट आदि अभक्ष्य पदार्थों से युक्त मिष्टान्न परमात्मा को नहीं चढ़ाना चाहिए।

संभव हो तो श्रावक को घर में बनाई हुई मिठाई ही परमात्मा को चढ़ानी चाहिए। शुद्ध रीति एवं द्रव्यों के साथ भावों का जो मिश्रण एक गृहस्थ के द्वारा किया जाता है वह बाजार की मिठाईयों में संभव ही नहीं है। पूर्वकाल में जहाँ पूर्ण भोजन थाल समर्पित किया जाता था वह आज मात्र मिठाई या मिश्री के एकाध पीस तक ही सीमित रह गया है।

नैवेद्य पूजा एक अग्र पूजा है अत: जिनालय के सभामंडप में अक्षत पूजा के स्थान पर ही यह पूजा की जाती है तथा प्रत्येक दर्शनार्थी एवं पूजार्थी श्रावक को यह पूजा करनी चाहिए। स्वस्तिक के ऊपर अणाहारी पद प्राप्ति की भावना से नैवेद्य चढ़ाया जाता है। यदि सामुदायिक रूप में नैवेद्य चढ़ाना हो तो थाली में एकत्रित करके फिर चढ़ाना चाहिए। रसयुक्त या गीले पदार्थों को कटोरी में रखकर चढ़ाना चाहिए जिससे चावल रसयुक्त न हो। कागज या प्लास्टिक पर रखकर नैवेद्य नहीं चढ़ाना चाहिए। इससे कागज के पैर में आने, प्लास्टिक के इधर-उधर फेंकने से जीवोत्पत्ति होने एवं गाय आदि के द्वारा उसे खाए जाने की संभावना रहती है।

यदि चींटी, मकोड़ा आदि आने की संभावना हो तो मिठाई को जाली से ढंक देना चाहिए। नैवेद्य पूजा करने हेतु वस्तु को थाली या हाथों से ग्रहण कर सांसारिक पदार्थों की असारता एवं अणाहारी पद प्राप्ति का भाव करते हुए संपुट मुद्रा में नैवेद्य चढ़ाना चाहिए।

वर्तमान में नैवेद्य चढ़ाने सम्बन्धी दो परम्पराएँ देखी जाती हैं। अधिकांश आचार्य स्वस्तिक पर नैवेद्य चढ़ाने का विधान करते हैं वहीं कुछ आचार्य सिद्धशिला पर नैवेद्य चढ़ाने का उल्लेख भी करते हैं।

प्रथम पक्ष के अनुसार चारों गतियों में आहार की आवश्यकता होती है और इसी के कारण संसार परिभ्रमण है। आहार एवं चारों गति त्याज्य हैं अत: आहार आसक्ति को दूर करने के लिए स्वस्तिक पर नैवेद्य चढ़ाया जाता है।

सिद्धशिला पर नैवेद्य चढ़ाने का कारण स्पष्ट करते हुए जैनाचार्य कहते हैं कि नैवेद्य पूजा तो अणाहारी पद की प्राप्ति हेतु की जाती है और अणाहारी अवस्था सिद्धशिला पर ही है अत: नैवेद्य सिद्धशिला पर चढ़ाना चाहिए।

वर्तमान में स्वस्तिक पर नैवेद्य चढ़ाने की परम्परा अधिक प्रचलित है। यद्यपि दोनों ही विधान अपेक्षाकृत उचित प्रतीत होते हैं। यदि आहार त्याग की भावना की अपेक्षा से विचार करें तो यह चतुर्गति से सम्बन्धित है। नैवेद्य पूजा के माध्यम से श्रावक इस संसार में रहते हुए आहार आसक्ति को न्यून करने एवं शाश्वत अनाहारी पद को प्राप्त करने की भावना करता है अत: स्वस्तिक पर नैवेद्य चढ़ाना अधिक औचित्यपूर्ण लगता है।

शंका– कई लोग शंका करते हैं कि नैवेद्य तो पुजारी ले जाता है फिर उससे हमें या जिनमंदिर को क्या लाभ?

समाधान–पूजा करने का सही मर्म नहीं समझने वाले मूढ़ व्यक्ति ही ऐसी शंकाएँ उत्पन्न करते हैं। कई लोग इसी कारण मंदिरों में द्रव्य चढ़ाने के स्थान पर भंडार में पैसे डालने की बात करते हैं, जिससे देवद्रव्य की वृद्धि हो सके। परन्तु जिनपूजा कोई व्यापार नहीं है। यहाँ पर लाभ-हानि का विचार करना निरर्थक है। जिनपूजा एक भाव प्रधान क्रिया है। अष्टप्रकारी द्रव्य अर्पण करते हुए जो भावों का आवेग मन में उत्पन्न होता है तथा कर्मक्षय, संसारमुक्ति एवं परमात्ममिलन की जो लालसा होती है वह पैसा भंडार में डालने से उत्पन्न नहीं

हो सकती। मात्र द्रव्य चढ़ाने या देवद्रव्य बढ़ाने से कर्म निर्जरा संभव नहीं है। कर्म निर्जरा हेतु भावों का आरोहण अधिक आवश्यक है।

नैवेद्य आदि चढ़ाने के पीछे मुख्य हेतु आहार के प्रति अनासक्ति भाव को विकसित करना है। उस द्रव्य को पुजारी ले जाता है या उससे देवद्रव्य की वृद्धि होती है यह सब गौण पक्ष है। अत: द्रव्यभक्ति में इन पक्षों की विचारना नहीं करनी चाहिए।

नैवेद्य पूजा सम्बन्धी जन मान्यता

• भगवान को मीठा ज्यादा पसंद है इसलिए उन्हें मीठे का भोग लगाते हैं।

• मिष्ठान्न को देखकर देवी-देवता शीघ्र आकर्षित होते हैं एवं मनोवांछित फल प्रदान करते हैं।

• मीठा खिलाने या अर्पण करने से क्लेश की निवृत्ति एवं स्नेह की वृद्धि होती है।

नैवेद्य पूजा की महत्ता

• महानिशीथ सूत्र के अनुसार परमात्मा की द्रव्य पूजा करने से तीर्थ की उन्नति होती है।

• पकाये हुए अन्न एवं मिष्टान्न से देवी-देवता प्रसन्न होते हैं तथा विघ्न निवारण, रोग उपशमन आदि में सहायक बनते हैं।

• अरिहंत परमात्मा की देशना पूर्ण होने के बाद पकाए हुए बलि बाकुले उछाले जाते हैं।

• जब रामचंद्रजी वनवास से लौटे तब उन्होंने प्रजाजनों को अन्न की कुशलता पूछी थी।

• निशीथ सूत्र में कहा गया है कि उपद्रव को शान्त करने के लिए नैवेद्य चढ़ाये जाते हैं।

• दस दिकपाल, भूत-प्रेत आदि देवी-देवता पके हुए धान्य से खुश होते हैं।

• नैवेद्य पूजा करने से अनादिकालीन चारो संज्ञाएँ कमजोर पड़ती हैं, जिससे जीव मुक्ति के निकट पहुँचता है।

• परमात्मा को नित्य नैवेद्य आदि समर्पित करने से आहार सम्बन्धी अन्तराय कर्म का क्षय होता है।

• नैवेद्य जीवन को मधुर और वाणी को मीठा रखने की प्रेरणा देता है। जिस प्रकार नैवेद्य पौष्टिक गुणों से युक्त होता है वैसे ही हमारी आत्मा आध्यात्मिक गुणों से युक्त बने यही सूचन नैवेद्य पूजा से प्राप्त होता है।

फलपूजा का पारमार्थिक स्वरूप

मोक्ष फल प्राप्ति की भावना से उत्तम जाति के सूखे मेवे तथा सचित्त फल आदि परमात्मा को समर्पित करना फलपूजा कहलाता है। अष्टप्रकारी पूजा में इसका आठवाँ एवं अग्रपूजा में पांचवाँ स्थान है।

जिस प्रकार बीज का अन्तिम Stage फल होता है उसी तरह जिनपूजा का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष फल की प्राप्ति है। इसी के सूचन रूप फल पूजा की जाती है।

परमात्मा और हमारे बीच जो भेद रेखा है वह सांसारिक पदार्थों के कारण है। उसी भेद रेखा को समाप्त करने हेतु परमात्मा की भक्ति फलरूप जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उसे परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देना भी फल पूजा का एक कारण है। फल पूजा के द्वारा अनिष्ट कर्म फल नष्ट हो जाते हैं एवं सर्व कार्यों की सिद्धि होती है।

जिनेश्वर देव की फल पूजा पूर्वकृत दुःख रूप कर्म फलों को सुख रूप में परिवर्तित कर देती है, सुख-शान्ति का विस्तार करती है तथा पापों का निवारण कर शिवफल प्रदान करती है।

फल पूजा करने से नौ प्रकार के निधान प्रकट होते हैं तथा चारों दिशाओं में कीर्ति प्रसरित होती है।[15]

परमात्मा को चढ़ाने हेतु श्रेष्ठ जाति के उत्तम पके हुए ताजे फल उपयोग में लेने चाहिए। श्रीफल को श्रेष्ठ फल माना गया है। ताजे फल के स्थान पर सूखा मेवा जैसे– बदाम आदि भी चढ़ाए जा सकते हैं। फल पूजा में उन्हीं फलों का प्रयोग करना चाहिए जो श्रावक के लिए खाने योग्य है। नई ऋतु के आने पर अर्थात Seasonal फल सर्वप्रथम परमात्मा को चढ़ाना चाहिए।[16]

फल पूजा हेतु Cold Storage के फल, सड़े हुए फल, बहुबीज फल, अनजाने फल, तुच्छ फल, विदेशी फल आदि नहीं चढ़ाने चाहिए। मेहमानों की थाली में या किसी को भेंट रूप में जैसे फल अर्पित किए जाते हैं वैसे ही परमात्मा के सामने फल प्रस्तुत करने चाहिए। मन्दिर में पुजारियों द्वारा सस्ते

दाम पर बेचे जाने वाले फल नहीं खरीदने चाहिए। इसी प्रकार इंजेक्शन एवं केमिकल्स आदि के द्वारा कृत्रिम रूप से पकाए हुए फलों का भी यथासंभव प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पूजा उपयोगी फलों को लाने हेतु Polythene Bag, गंदी थैली, मैले वस्त्र आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वे फल हमारे शरीर आदि से स्पर्शित न हों, इसका भी विवेक रखना चाहिए। श्रावकों को नित्य ताजे फल लाकर पूजा हेतु उपयोग में लेने चाहिए। Freeze में रखे हुए एक-एक हफ्ते के फल का प्रयोग जिनपूजा हेतु नहीं करना चाहिए।

समस्त दर्शनार्थी एवं पूजार्थी श्रावकों को फल पूजा करनी चाहिए। फलपूजा हेतु फल को थाली में रखकर अथवा विवृत्त समर्पण मुद्रा में उसे हाथ में धारण कर मंत्र आदि का उच्चारण करते हुए सिद्धशिला पर चढ़ाना चाहिए। आचार्य हेमचंद्रसागरजी स्वस्तिक पर फल चढ़ाने का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार स्वस्तिक मंगल का प्रतीक है। इसी कारण परमात्मा एवं गुरु महाराज आदि के समक्ष स्वस्तिक या नंद्यावर्त्त का आलेखन किया जाता है। परमात्मा की पूजा मंगलकारी है। उस मंगल स्वरूप पूजा का फल जीवन में मंगल वृद्धि करे इस हेतु फल चढ़ाते हैं।

स्वस्तिक यह संसार का प्रतीक है। संसार को प्रभु चरणों में समर्पित कर पंचमगति रूप फल पाने के लिए स्वस्तिक पर फल चढ़ाना चाहिए।

वर्तमान परम्परा में अधिकांश स्थानों पर सिद्धशिला के ऊपर ही फल चढ़ाने की प्रणाली देखी जाती है। सिद्धशिला यह अन्तिम मोक्ष फल की सूचक है। आत्मा का अन्तिम पड़ाव स्थल सिद्धशिला ही है। उसे प्राप्त करने हेतु अन्तिम फल पूजा को उस स्थान पर सम्पन्न किया जाता है।

शंका– जब हम अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व तिथि को फल खाते नहीं हैं तो फिर मन्दिर में फल कैसे चढ़ा सकते हैं?

समाधान– पर्व तिथि के दिन हरी-वनस्पति त्याग करने के कई कारण हैं। सर्वप्रथम तो श्रेष्ठ वस्तुओं के प्रति रहा आसक्ति भाव न्यून होता है। वनस्पति काय के रूप में उत्पन्न जीवों को अभयदान मिलता है। इसी के साथ हिंसात्मक कार्यों का त्याग होने से शुभ भावों में रमणता बढ़ती है। इससे भी बढ़कर शरीर में पानी की मात्रा संतुलित रहने से व्याधियों से छुटकारा मिलता है क्योंकि इन

दिनों चन्द्रमा की वजह से समुद्र में ज्वार भाटा आता है, पानी का वेग बढ़ता है। इसका दुष्प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है। फल आदि के सेवन से पानी की मात्रा में वृद्धि होने की पूर्ण संभावना रहती है। इन कारणों से हरी वनस्पति का निषेध हैं। जबकि परमात्मा को फल आदि चढ़ाते हुए जीव हिंसा की भावना नहीं रहती अपितु उनके प्रति त्याग एवं अनासक्ति भाव का वर्धन होता है। इसी के साथ उस जीव को पूर्ण रूप से अभयदान भी मिल जाता है। इसी कारण अष्टमी-चौदस आदि पर्व तिथियों के दिन श्रावक को स्वयं के लिए हरी-वनस्पति आदि का त्याग करना चाहिए किन्तु परमात्म चरणों में वह अर्पित कर सकता है। यदि श्रावक सम्पूर्ण द्रव्य का त्याग करके श्रावक ही ले ले तो फिर उसे मन्दिर में भी किसी प्रकार का द्रव्य नहीं चढ़ाना चाहिए।

फलपूजा सम्बन्धी जन धारणा

- परमात्मा को फल अर्पित करने से मन वांछित फल की प्राप्ति होती है।
- भोमियाजी आदि अधिष्ठायक देवों को श्रीफल आदि चढ़ाने से वे शीघ्र मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं।
- श्रीफल को मंगल का सूचक माना गया है एवं उसे चढ़ाने से जीवन में कल्याण की प्राप्ति होती है।
- चढ़ाया हुआ श्रीफल यदि फट जाए तो अशुभ का संकेत मानते हैं।

फलपूजा का माहात्म्य एवं लाभ

- सुन्दर, मधुर एवं पूर्ण पका हुआ फल जिस प्रकार मन को आनन्दित एवं तन को स्फूर्तिमय बनाता है। उसी तरह फलपूजा आत्मानंद की अनुभूति करवाती है।
- रोगी व्यक्ति को मिलने जाते समय कई स्थानों पर मंगलकामना के रूप में फूल के समान फल भी दिए जाते हैं। वैसे ही परमात्मा के सम्मुख फल ले जाकर आत्म स्वस्थता को प्राप्त किया जा सकता है।
- फल पूजा करने से अनिष्ट कर्मों के फल नष्ट हो जाते हैं।
- जिस प्रकार फल में मधुरता, पूर्णता आदि के गुण व्याप्त हैं, फलपूजा के द्वारा इन्हीं गुणों को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है।
- फलपूजा कर्म बंधन को क्षीण कर मोक्ष फल प्राप्त करने एवं आत्मा के शुद्ध परमात्म स्वरूप का प्रतीक है।

अष्ट प्रकारी पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

अष्टप्रकारी पूजा आत्मोत्थान का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। इस अनुष्ठान्न में किए जाने वाले प्रत्येक कार्य का आंतरिक एवं बाह्य जगत पर विशिष्ट प्रभाव देखा जाता है। अत: इन पूजाओं को करते हुए पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। इसी हेतु को ध्यान में रखकर यहाँ पर अष्टप्रकारी पूजा में रखने योग्य सावधानियों का संक्षिप्त विवरण किया जा रहा है।

जल पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• मूल गर्भगृह में मुखकोश बांधकर प्रवेश करना चाहिए तथा मौन रहना चाहिए।

• जलपूजा करते समय जिनबिम्ब को कलश, पहने हुए वस्त्र आदि का स्पर्श न हो या प्रतिमाजी को ठपका न लगे, इसका पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

• छोटी पंचधातु की प्रतिमाओं को प्रक्षाल हेतु ले जाने से पूर्व विनम्रता पूर्वक आज्ञा लेनी चाहिए।

• वालाकुंची का उपयोग सावधानी एवं कोमलतापूर्वक करना चाहिए। तथा उपयोग करने से पूर्व उसे दस मिनट तक पानी में भिगाकर रखना चाहिए।

• अभिषेक जल जमीन पर नहीं गिरे तथा उस पर पैर आदि नहीं आएं इसका ध्यान रखना चाहिए।

• अभिषेक जल को अपने शरीर पर लगाने के बाद हाथों को धोकर फिर से पूजा करनी चाहिए।

• न्हवण जल को नाभि से नीचे के अंगों पर नहीं लगाना चाहिए।

• अंगलूंछण, पाटलूंछण आदि को न्हवण जल में नहीं डुबाना चाहिए।

• अभिषेक जल को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ पर जीवोत्पत्ति की संभावना न हो तथा किसी का पैर आदि नहीं आए। उस स्थान पर सूर्य की धूप बराबर में आती हो इसका ध्यान रखना चाहिए।

• अभिषेक क्रिया पूर्ण होने के बाद पबासन सूखे वस्त्र से अच्छी तरह पोंछ लेना चाहिए।

• अंगलूंछण वस्त्रों को जमीन पर नहीं रखना चाहिए। लूंछण करने के बाद उन्हें एक थाली में रखना चाहिए।

• अभिषेक हेतु कुँए आदि का शुद्ध जल एवं गाय का शुद्ध ताजा दूध ही उपयोग में लेना चाहिए।

• इक्षुरस आदि से प्रक्षाल करने के बाद प्रतिमाजी को पुनः शुद्ध जल से साफ करना चाहिए।

• एक हाथ में कलश लेकर परमात्मा का अभिषेक नहीं करना चाहिए। कलश को दोनों हाथों से अहोभावपूर्वक पकड़ना चाहिए।

• अंगलूंछन करते हुए पसीना आदि आए तो गर्भगृह के बाहर आकर पसीना सुखा देना चाहिए। प्रतिमाजी के ऊपर पसीने की बूंद गिरने या न्हवण में मिश्रित होने पर आशातना लगती है।

• अभिषेक करते हुए घंटा, शंख आदि मधुर वाद्यों के नादपूर्वक हर्ष अभिव्यक्त करना चाहिए।

• बासी दूध, पैकेट का दूध या पाउडर का दूध प्रक्षाल हेतु सर्वथा निषिद्ध है।

• अंगलूंछण एवं पाटलूंछण वस्त्रों को हर रोज धोकर एक अलग डोरी पर सुखाना चाहिए।

• नीचे गिरे हुए अंगलूंछण वस्त्र का बिना धोए प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• आंगी की हुई प्रतिमा का प्रक्षाल उसी दिन दुबारा तभी करना चाहिए जब उससे अधिक सुन्दर आंगी बनाने का सामर्थ्य हो।

• न्हवण जल को यदि कुछ दिनों तक रखना हो तो उसमें उचित मात्रा में कपूर अवश्य डालना चाहिए।

• प्रतिमा के निर्माल्य पुष्प न्हवण जल में नहीं डालने चाहिए।

• न्हवण करते समय सभी को पहले दूध से और फिर जल से प्रक्षाल करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा बार-बार दूध और जल का प्रक्षाल करना उचित नहीं है।

चन्दन पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• चंदन पूजा करते हुए नाखून में चंदन न जाए इसका ध्यान रखना चाहिए। यदि नाखुन में गई हुई केशर भोजन के साथ पेट में चली जाए तो देवद्रव्य भक्षण का दोष लगता है।

• परमात्मा के नवअंग के अतिरिक्त हथेली, लंछन आदि की पूजा नहीं करनी चाहिए।

• चंदन घिसने से पूर्व चन्दन (मुठिया), आरस (चन्दन घिसने का पत्थर) एवं उसके आस-पास के क्षेत्र की प्रमार्जना करनी चाहिए।

• चंदन घिसने में उपयोगी जल को अलग से किसी बर्तन में ढंककर रखना चाहिए।

• पूजा करते हुए वस्त्र, बाल, नाखून आदि का जिनबिम्ब से स्पर्श न हो यह विवेक रखना चाहिए।

• पुरुषों को दाईं तरफ एवं महिलाओं को परमात्मा की बाईं तरफ से पूजा करनी चाहिए।

• परमात्मा के दाहिने अंगूठे पर बार-बार तिलक लगाने का कोई विधान नहीं है।

• महिलाओं एवं पुरुषों को सजोड़े एक कटोरी से पूजा नहीं करनी चाहिए। जिनालय के परिसर में महिला एवं पुरुष को परस्पर में स्पर्श नहीं करना चाहिए।

• कम्प्यूटर के बटन दबाने के समान फटाफट परमात्मा की पूजा नहीं करनी चाहिए।

• शरीर खुजलाना, पसीना पोंछना, नाक-कान आदि में अंगुली डालना, खांसना, जम्हाई लेना, आलस मरोड़ना आदि क्रियाएँ पूजा करते समय नहीं करनी चाहिए।

• शरीर में घाव हो और उससे पीव आता हो तो पूजा नहीं करनी चाहिए।

• मौसम के अनुसार केशर, चंदन, बरास आदि का परिणाम बदलना चाहिए। शीतकाल में केशर अधिक और बरास कम, ग्रीष्म काल में बरास अधिक और केसर कम तथा वर्षा ऋतु में दोनों की मात्रा समान रखनी चाहिए।

• सर्वप्रथम मूलनायकजी की पूजा करनी चाहिए। यदि प्रक्षाल आदि बाकी हो तो अन्य जिनबिम्बों की पूजा भी कर सकते हैं।

• पंचधातु एवं सिद्धचक्रजी की पूजा करने के बाद उसी केशर से पाषाण प्रतिमा की पूजा कर सकते हैं परन्तु गुरुमूर्ति एवं अधिष्ठायक देवों की पूजा करने के बाद नहीं।

• महिलाओं को सिर ढंककर ही पूजा करनी चाहिए।

• पुरुषों को अलग से मुखकोश नहीं बांधना चाहिए अपितु खेस (दुपट्टा) के ही आठ पट करके मुखकोश बांधना चाहिए।

• पूजा करके भगवान की गोद में मस्तक रखना, उनके पैर दबाना आदि करने का विधान नहीं है।

• सोने अथवा चाँदी के टीके जहाँ लगे हों वहाँ पूजा करनी चाहिए।

• चंदन पूजा हेतु स्वयं को चंदन रस तैयार करना चाहिए। जिनालय में उपलब्ध केशर आदि का प्रयोग करने से वीर्यान्तराय आदि का बंधन होता है तथा स्वद्रव्य के लाभ से भी वंचित रहते हैं।

• पार्श्वनाथ भगवान के फण आदि की पूजा करना आवश्यक नहीं हैं। यदि सुंदरता आदि की अपेक्षा से पूजा करनी भी हो तो उसी केशर से पूजा कर सकते हैं।

• परमात्मा की हथेली को खाली नहीं रखना चाहिए। उसमें सोने या चाँदी का बिजोरा, श्रीफल, पान, सुपारी, रौप्यमुद्रा आदि रखना चाहिए।

• जितने केशर की आवश्यकता हो उतनी ही केशर का प्रयोग करना चाहिए। पूजा की थाली, कटोरी आदि उपकरणों को यहाँ-वहाँ नहीं रखते हुए उन्हें धो-पूंछकर उसे यथास्थान रखना चाहिए।

• बची हुई केशर को सुखाकर उसका उपयोग वासक्षेप, माला आदि बनाने में किया जा सकता है।

• सिन्थेटिक केशर, बरास एवं चंदन आदि का प्रयोग जिनपूजा में नहीं करना चाहिए।

• चंदन रस पानी के समान पतला नहीं होना चाहिए।

पुष्प पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• पुष्पपूजा हेतु पुष्पों को पानी से नहीं धोना चाहिए। इससे लीलन-फूलन (Fungus), कुंथुआ आदि जीवोत्पत्ति की संभावना रहती है।

• फूल सूंघकर परमात्मा को नहीं चढ़ाना चाहिए।

• शुष्क भूमि पर गिरे हुए, अर्ध विकसित टूटे हुए, कीड़े लगे हुए, मुरझाए हुए, अशुद्ध स्थान में उत्पन्न हुए, ऋतुवती (M.C.) महिला द्वारा लाए गए फूलों को नहीं चढ़ाना चाहिए।

• फूलों की पंखुड़ियाँ तोड़कर अथवा सूई आदि से बाँधकर बनी हुई माला

का प्रयोग जिनपूजा में नहीं करना चाहिए।

• पुष्पों को हमेशा थाली में रखना चाहिए।

• पुष्प एकेन्द्रिय जीव है अत: पुष्पों के प्रति हमारा व्यवहार अत्यंत कोमल एवं विवेकपूर्ण होना चाहिए। उन्हें आर्द्र वातावरण में ही रखना चाहिए।

• परमात्मा को चढ़ाने हेतु सुगंधयुक्त, आकर्षक, ताजे, पूर्ण विकसित श्रेष्ठ पुष्पों का चयन करना चाहिए।

• फ्रीज या कोल्ड स्टोरेज में रखे हुए पुष्पों का प्रयोग पूजा हेतु नहीं करना चाहिए क्योंकि वे पुष्प यद्यपि फ्रिजर के अति शीत वातावरण के कारण मुरझाते नहीं हैं परन्तु उन्हें वहाँ पीड़ा का अनुभव तो होता ही है। इसी के साथ वे बासी भी हो ही जाते हैं। अत: पुष्प खरीदने से पहले इस बात की विशेष जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिए।

• पशु-पक्षियों द्वारा चर्वित पुष्प, गंदे कपड़े में लपेटे हुए पुष्प, पावों के नीचे कुचले हुए पुष्पों का प्रयोग जिनपूजा हेतु नहीं करना चाहिए।

• निर्माल्य फूलों को न्हवण जल में नहीं डालना चाहिए।

• मन्दिर में लगे हुए बगीचे के पुष्प अन्य कार्यों हेतु प्रयोग नहीं करने चाहिए।

• मन्दिर के पुष्पों को गृह मन्दिर हेतु लेकर नहीं जाना चाहिए।

धूप पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• धूप पूजा मूल गर्भगृह के बाहर रंगमंडप में बायीं ओर खड़े रहकर करनी चाहिए।

• लकड़ी की काठी वाली अगरबत्ती धूप पूजा के लिए प्रयोग में नहीं लेनी चाहिए। लकड़ी पर धूप चिपकाने के लिए अशुद्ध प्राणिज पदार्थों का उपयोग होता है तथा लकड़ी का अशुद्ध धुआं भी उसमें मिल जाता है।

• धूप शलाका को जोर-जोर से घुमाना नहीं चाहिए।

• धूप आदि के धुएँ के कारण जो पीलापन, मंदिर के दरवाजे, घुम्मट, चौखट आदि पर छा जाता है उसे बराबर गीले कपड़े से साफ करते रहना चाहिए।

• धूपपूजा स्वद्रव्य से करनी चाहिए। मंदिर में रखा हुआ धूप जल रहा हो तो अन्य नया धूप नहीं जलाना चाहिए।

• धूप बत्ती को परमात्मा के नाक के पास नहीं ले जाना चाहिए।

• धूप करके धूपदानी को यथास्थान रखना चाहिए। धूप बत्ती आदि को भी दीपक आदि की थाली में नहीं रखना चाहिए।

• स्वद्रव्य से पूजा करने वालों को धूप दीप आदि जलाने हेतु माचिस आदि भी स्वयं का ही उपयोग करना चाहिए।

दीपक पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• दीपक पूजा करते समय दीपक थाली में रखकर दोनों हाथों से पकड़ना चाहिए।

• परमात्मा के दाईं तरफ खड़े रहकर मूल गंभारे के बाहर दीपक पूजा करनी चाहिए।

• दीपक के लिए बाती शुद्ध रूई से बनानी चाहिए। घी में गुड़,कपूर, कुमकुम आदि द्रव्य मिलाने चाहिए। इससे पुजारी आदि उस धृत का उपयोग नहीं कर सकते तथा घृत में जीवोत्पत्ति भी नहीं होती।

• दीपक को जिनालय में ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ से किसी के कपड़े आदि नहीं जलें।

• अधिक समय तक जलने वाले दीपक या अखंड दीपक को चिमनी आदि से ढंकना चाहिए। खुले दीपक पर सूक्ष्म जीव आदि गिरने से उनके हिंसा की संभावना रहती है।

• अखंड दीपक को सावधानी पूर्वक योग्य स्थान पर स्थापित करना चाहिए ताकि वह वायु आदि के वेग से बुझ न जाए।

कई बार अखंड दीपक में घी आदि पूर्ण मात्रा में नहीं होने से दीपक के आस-पास कालापन छा जाता है, सम्पूर्ण गंभारा एवं प्रतिमाजी कई बार काले पड़ जाते हैं तथा फानस का काँच भी फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जिसे लोग देवी-देवताओं का चमत्कार मानकर मिथ्या भ्रान्तियाँ फैलाते हैं। यथार्थत: तो वह हमारी असावधानी एवं लापरवाही का परिणाम होता है।

• अखंड दीपक आदि जलाने हेतु देवद्रव्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• आजकल मंदिर में रोशनी एवं सजावट हेतु दीपक के स्थान पर रंग-बिरंगी लाइटों का प्रयोग होने लगा है। यह एक अनुचित प्रक्रिया है। इसके द्वारा मंदिरों का वातावरण अशुद्ध तथा प्रतिमाओं का तेज एवं प्रभाव क्षीण हो रहा है।

• पूजा की थाली में धूप-दीपक आदि रखकर परमात्मा की नवांगी पूजा नहीं होती। उन्हें बाहर रखकर गर्भगृह में प्रवेश करना चाहिए।

• दीपक जलाने हेतु डालडा घी या तेल आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। परमात्मा के समक्ष शुद्ध गाय के घी का दीपक करना चाहिए।

• स्वद्रव्य का उपयोग करने वालों को पूजा प्रारंभ करने से पूर्व दीपक जलाना चाहिए। दीपक पूजा से पूर्व दीपक प्रज्वलित करने से विधि का पालन तो हो जाता है किन्तु परमात्मा के प्रति बहुमान भाव एवं भक्ति में उल्लास भाव प्रकट नहीं होते।

अक्षत पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• अक्षत पूजा हेतु उत्तम Quality के चावलों का प्रयोग करना चाहिए। घर में प्रयोग किए जाने वाले चावलों को छानकर उनकी कनकी का प्रयोग मंदिर में करना निम्न भावों का परिचायक है।

• चावल की डिब्बी, थैली, पेटी आदि को नियमित साफ करते रहना चाहिए जिससे उसमें जीवोत्पत्ति न हो।

• चावलों के साथ मिश्री आदि नहीं रखनी चाहिए, उसका चूरा आदि चावलों में मिलने से चींटियाँ आदि जल्दी आ जाती है।

• पूजा का रूमाल चावलों के साथ नहीं रखना चाहिए। रूमाल मुखवायु, श्वासोच्छ्वास आदि से अशुद्ध हो जाता है तथा चावलों के साथ रखने से चावल भी अशुद्ध हो जाता है।

• चावल रखने की पेटी प्लास्टिक, स्टील या लोहे की नहीं होनी चाहिए।

• अक्षत पूजा करते हुए चावल जमीन पर नहीं गिराना चाहिए।

• परमात्मा को बधाने हेतु चावलों को जमीन पर नहीं उछालने चाहिए, उन्हें पाट आदि पर डालना चाहिए।

• स्वस्तिक आदि बनाने हेतु तर्जनी अंगुली का ही प्रयोग करना चाहिए। अनामिका या अंगूठे का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• अक्षत पूजा करते समय पहले स्वस्तिक और फिर सिद्धशिला बनानी चाहिए।

• चैत्यवंदन विधि और अक्षत पूजा साथ में नहीं करनी चाहिए।

• चैत्यवंदन करते समय साथिया ठीक करना, फल सजाना आदि क्रियाएँ करने से आशातना होती है।

• चढ़ाने योग्य चावल इली-लट आदि से युक्त नहीं होने चाहिए। जिस प्रकार घर में पकाने हेतु चावलों को अच्छे से देखा और साफ किया जाता है, जिनमन्दिर में भी वैसे ही चावल ले जाने चाहिए।

• स्वस्तिक बनाने की सही विधि सीखनी चाहिए। जैसे तैसे लाइनें बनाकर स्वस्तिक नहीं बनाना चाहिए।

• अक्षतपूजा करते समय कम से कम उतने चावलों का प्रयोग तो करना ही चाहिए कि जिससे स्वस्तिक आदि अच्छे से बन सकें सिर्फ नाम भर चावल चढ़ाकर रीत का रायता नहीं करना चाहिए।

नैवेद्य पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• नैवेद्य पूजा हेतु प्रयोग की जाने वाली मिठाई श्रेष्ठ द्रव्यों से बनी हुई होनी चाहिए तथा बासी मिठाई आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• अधिक समय की बनी हुई या खराब हो गई मिठाई परमात्मा के आगे नहीं चढ़ानी चाहिए।

• मिठाई के रूप में चॉकलेट, पीपरमेन्ट आदि परमात्मा के आगे नहीं चढ़ाने चाहिए।

• नैवेद्य चढ़ाने के बाद उस पर चींटी आदि न आ जाए इस हेतु ऊँचे टेबल पर एक थाली में ही मिठाई रखनी चाहिए।

• नैवेद्य को चावलों के साथ न रखकर एक अलग डिब्बी में रखना चाहिए, जिससे उसका टूटकर चूरा न हो जाए।

• टूटी हुई मिठाई, चक्की आदि नहीं चढ़ानी चाहिए।

• चढ़ाया हुआ नैवेद्य आदि पुजारी ले जाएगा, इन भावों से हल्का द्रव्य नहीं चढ़ाना चाहिए।

• नैवेद्य के स्थान पर कभी-कभार अपवाद रूप में पैसा रखा जा सकता है परन्तु नैवेद्य के स्थान पर भंडार में पैसे डालने से भावों में वह उल्लास जागृत ही नहीं होता।

• कागज या प्लास्टिक के ऊपर मिठाई नहीं चढ़ानी चाहिए। रसयुक्त मिठाई हो तो उसे कटोरी में रखना चाहिए।

• तीर्थों में या पुजारियों के पास कम दाम में मिल रही मिश्री आदि का उपयोग चढ़ाने या खाने में नहीं करना चाहिए।

• जिस डिब्बे में मिठाई रखी जाती है उसमें नास्ते के प्लेट में बची हुई मिठाई वापस नहीं डालनी चाहिए न उस डिब्बे से निकालकर बार-बार खानी चाहिए नहीं तो सारे डिब्बे की मिठाई जूठी हो जाती है।

• जिस काल में जो चीज श्रावक के लिए अभक्ष्य बताई गई है वह वस्तु परमात्मा को भी नहीं चढ़ानी चाहिए। जैसे कि काजू आदि ड्रायफ्रुट की मिठाई फाल्गुन चातुर्मास के बाद नहीं चढ़ानी चाहिए।

फल पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• परमात्मा को चढ़ाने हेतु सड़े हुए, गले हुए, दागयुक्त, कच्चे फलों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

• Coldstorage, Chemicals या इन्जेक्शन आदि से पके हुए फल जहाँ तक संभव हो मन्दिर में नहीं चढ़ाने चाहिए।

• बैर, जामुन आदि तुच्छफल, अनजान फल, अंजीर आदि बहुबीज फल श्रावक के न खाने योग्य है और न ही चढ़ाने योग्य।

• ताजा फल उपलब्ध न हो तो सूखा मेवा जैसे बादाम आदि चढ़ाने चाहिए, परन्तु एक किसमिस या एक काजू फल के स्थान पर चढ़ाना अनुचित है।

• जिस समय जिस फल का Season हो उस समय वही फल चढ़ाने चाहिए। Season का फल जब पहली बार घर में आए तो सर्वप्रथम परमात्मा के दरबार में चढ़ाकर फिर खाना चाहिए।

• सबसे छोटा फल या सस्ता फल इन भावों से युक्त होकर कभी भी फल नहीं चढ़ाना चाहिए।

• फल के स्थान पर पैसे आदि नहीं चढ़ाना चाहिए।

चामर पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• चामर पूजा नृत्यमुद्रा में करनी चाहिए।

• चामर को जोर-जोर से घुमाना या कूद-कूदकर नहीं बींझना चाहिए।

• अत्यन्त विनम्रता, भक्तिभाव, उल्लास एवं विवेक पूर्वक परमात्मा के समक्ष चंवर लेकर नृत्य करना चाहिए।

• कई लोग पूजा आदि में चंवर लेकर नृत्य करते हुए परमात्मा को पीठ

कर देते हैं तो कुछ लोग परमात्मा के समक्ष उद्भट फिल्मी नृत्य करते हैं जो सर्वथा अनुपयुक्त एवं अनुचित है।

• परमात्मा की पूजा हेतु उपयोगी चामर में प्लास्टिक के तार आदि का प्रयोग नहीं हुआ हो, इसका विवेक रखना चाहिए।

दर्पण पूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• परमात्मा की दर्पण पूजा करते हुए दर्पण में परमात्मा के मुख का दर्शन करना चाहिए, स्वयं का नहीं।

• धुंधला पड़ा हुआ, टूटा हुआ, खंडित, प्लास्टिक आदि के फ्रेम वाला दर्पण प्रयोग में नहीं लेना चाहिए।

• दर्पण को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ से उसके गिरकर टूटने की संभावना कम से कम हो।

• जिस प्रकार घर के Dressing Table आदि के कांच की सफाई नियमित की जाती है। उसी तरह परमात्म दर्शन हेतु उपयोगी दर्पण भी नित्य साफ किया जाना चाहिए।

वस्त्रपूजा सम्बन्धी सावधानियाँ

• जब भी श्रावक अपने लिए वस्त्र खरीदने जाए तब उसे परमात्मा के लिए भी वस्त्र अवश्य खरीदना चाहिए।

• जिनपूजा हेतु फटे हुए, पुराने, पीले पड़े हुए अंगलुंछन वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• फटे-पुराने, मोटे या घर में पड़े ऐसे-वैसे वस्त्रों के अंगलुंछन बनाने से परमात्मा की आशातना होती है।

• जिस प्रकार हम स्वयं के लिए ब्रांडेड (Quality) के वस्त्रों का प्रयोग करते हैं, एक-एक Dress के पीछे हजारो रुपयों का खर्च करते हैं, वैसे ही परमात्मा के लिए भी उत्तम Quality का सफेद मलमल ही खरीदना चाहिए।

• अंगलुंछन किए हुए वस्त्रों को प्रक्षाल के पानी में नहीं धोना चाहिए। उन्हें धोने हेतु शुद्ध, स्वच्छ, छने हुए जल का प्रयोग किया जाना चाहिए।

• अंगलुंछन वस्त्रों को यत्र-तत्र नहीं सुखाना चाहिए और न ही पुराने होने पर उन्हें यहाँ-वहाँ फेंकना चाहिए।

• केशरपूजा आदि करके कई लोग अंगलुंछन वस्त्र से ही हाथ पोंछ लेते हैं। इससे परमात्मा की आशातना होती है।

• पाट पुंछन आदि के लिए भी अलग वस्त्र रखना चाहिए। एक ही वस्त्र का प्रयोग दोनों कार्यों हेतु नहीं करना चाहिए।

• परमात्मा का अंगलुंछन तीन भिन्न-भिन्न वस्त्रों से करना चाहिए।

• अंगलुंछन वस्त्रों को थाली में रखना चाहिए। उन्हें नीचे जमीन आदि पर नहीं रखना चाहिए।

• प्रत्येक श्रावक को पर्व दिवसों में अथवा महीने में एक बार परमात्मा को अंगलुंछन वस्त्र अवश्य चढ़ाने चाहिए।

• परमात्मा को artificial अलंकार आदि नहीं चढ़ाने चाहिए। संभव हो तो रत्न, मणि, मोती आदि से जड़ित स्वर्णाभूषण अथवा चाँदी के आभूषण चढ़ाने चाहिए।

• भगवान को चढ़ाने हेतु आंगी-मुकुट आदि भी सोने-चाँदी से बनाने चाहिए। ताँबे की आंगी परमात्मा को नहीं चढ़ानी चाहिए।

आरती-मंगल दीपक में रखने योग्य सावधानियाँ

• आरती उतारना एक पवित्र एवं आदरसूचक क्रिया है। अत: आरती करने वाले श्रावकों को 1. ललाट पर तिलक लगाना चाहिए, 2. टोपी, पगड़ी आदि के द्वारा सिर ढंका हुआ होना चाहिए, 3. कंधे पर उत्तरासन (दुपट्टा) अवश्य होना चाहिए। आजकल मन्दिरों में लगभग यह व्यवस्था रखी जाती है।

• आरती को नाभि से नीचे और नासिका के ऊपर नहीं ले जाना चाहिए।

• आरती और मंगलदीपक को सृष्टिक्रम अर्थात परमात्मा के दाहिने पक्ष से ऊपर की ओर ले जाना चाहिए।

• वर्तमान में समयाभाव एवं प्रमाद के कारण इक्का-दुक्का लोगों के द्वारा या मात्र पुजारी के द्वारा आरती सम्पन्न की जाती है, जो कि सर्वथा अनुचित है। शंखनाद, घंटनाद, धूप, चामर और मधुर काव्यों का गान करते हुए श्रीसंघ के साथ आरती करनी चाहिए।

• आरती होने के बाद आरती और मंगलदीपक को छिद्र वाले ढक्कन से ढंक देना चाहिए।

• रात्रि में परमात्मा भक्ति के बाद दस बजे आरती करना एक अनुचित क्रिया है।

• आरती के ऊपर हाथ घुमाने आदि की परम्परा हमारे यहाँ नहीं है अत: आरती, मंगल दीपक आदि पर हाथ नहीं घुमाना चाहिए।

• कुमारपाल राजा की आरती जैसे भक्ति आयोजनों में समय एवं आचरण का ध्यान रखना चाहिए। लाभार्थियों को तैयार करने के लिए Beauty Parlour आदि भेजना एवं उनके द्वारा हिंसात्मक प्रसाधनों का उपयोग करना एक सर्वथा अनुपयुक्त आचरण है।

भावों की वीणा पर बजाएं मुक्ति की सरगम

जैन धर्म भावना प्रधान धर्म है। इसमें जीव भावों के आधार पर ही एक क्षण में धरती से आसमान पर पहुँच जाता है तो निम्न भावों के कारण वह पलभर में शिखर से तलहटी पर भी आ सकता है।

भावों में वह शक्ति है पहुँचा दे शिखर उत्तुंग
भावों की ही नाव पर तिरकर बनते अरिहंत
भावों से ही मुक्ति है भावों से भव-भव का फंद
भावों की उज्ज्वलता के लिए जिनपूजा सर्वोत्तम

भावों को अर्थात मन को नियन्त्रित करना या उसे सही दिशा देना कोई सहज कार्य नहीं है। मन को जितना अंकुशित किया जाए वह उतना ही विपरीत दिशा में भागता है। अत: मन को नकारात्मक मार्ग से रोकने के लिए सकारात्मक दिशा की ओर अभिमुख करना जरूरी है। जिनपूजा भावों के विशुद्धिकरण हेतु अग्नि के समान है। मन्दिर रूपी अग्नि में प्रवेश करते ही आत्मा रूपी स्वर्ण में लगे हुए समस्त मलीन भाव विनष्ट हो जाते हैं।

जैनाचार्य कर्मबंधन में क्रिया की अपेक्षा भावों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसीलिए कहा भी है–

भावे भावना भाविए, भावे दिजे दान।
भावे जिनवर पूजिए, भावे केवलज्ञान।।

तीर्थंकर परमात्मा भी "सवि जीव करूं शासन रसी" की भावना करते हुए तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करते हैं।

अष्टप्रकारी पूजा के दौरान विविध द्रव्यों को चढ़ाते हुए श्रावक जन स्वयं को विविध भावनाओं से भावित करके अपनी मनोभूमि को निर्मल एवं स्वच्छ

बना सकते हैं। जिस प्रकार शल्य रहित पोली भूमि में ही फसल प्राप्ति हेतु बीज डाले जा सकते हैं, उसी तरह राग-द्वेष आदि कषायों से निर्मल हुए चित्त में ही सिद्ध अवस्था के बीज डाले जा सकते हैं।

जलपूजा से करें अंतर मल का शोधन

अरिहंत परमात्मा का जल आदि द्रव्यों से अभिषेक करते समय मन को उल्लास एवं आनंद से आप्लावित करते हुए परमात्मा के निर्मल स्वरूप का चिंतन तथा चित्त में अहोभावों का प्रस्फुटन करना चाहिए।

हे परमात्मन्! आप तो द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकार के मैल से रहित हो चुके हैं, अत: आपको तो न्हवण की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु हे नाथ! आपको न्हवण करवाकर मैं स्वयं कर्मों से निर्मल होना चाहता हूँ।

जिस प्रकार जल तृष्णा को बुझाता है, मैलेपन को साफ करता है, ताप का शमन करता है वैसे ही इस द्रव्य के साथ भाव रूपी जल का मिश्रण कर आपका अभिषेक करते हुए आत्मा के साथ लगे हुए अनादिकालीन कर्म रूपी मैल, विषय-कषाय रूपी तृष्णा तथा त्रिविध तापों से स्वच्छ एवं निर्मल बनूं।

हे त्रिलोकीनाथ! कितना सुंदर और नयनाभिराम दृश्य होता होगा जब स्वयं सौधर्मेन्द्र आपको गोद में लेकर बैठते है एवं समस्त देव-देवी गण हर्षित होकर स्वसामर्थ्य के अनुरूप भक्ति का आनंद लेते हैं। साथ ही विविध नदियों एवं समुद्रों का सुगंधित जल लाकर आपका न्हवण करने के लिए लालायित रहते हैं।

हे परमात्मन्! संभव है कि मैंने भी कभी देवरूप में आपका जन्माभिषेक किया होगा। आज यद्यपि देवों के जितना सामर्थ्य मुझमें नहीं है पर मुझसे जो बन पड़ा मैं वह लेकर उपस्थित हुआ हूँ।

हे कृपालु! आप मेरी सामग्री को नहीं मेरे भावों को देखिए। आज अगर मुझे पंख मिल जाए तो मैं भी विविध नदियों का जल ले आऊँ, पर मेरे लिए यह संभव नहीं है अत: श्रेष्ठ पाँच वस्तुओं को मिलाकर पंचामृत से ही मैं आपका स्नपन करता हूँ।

इस पंचामृत के द्वारा मुझे पंच महाव्रत की संप्राप्ति हो, आपके अभिषेक के प्रभाव से चारित्र मोहनीय का विनाश हो एवं मेरे हृदय में संयम ग्रहण की भावना जागृत हो।

हे प्रभु! आपके शरीर से उतरती हुई जलधाराएँ देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा

है कि मानो मेरे आत्मा रूपी ज्ञान कलश से समतारस रूपी धाराएँ बह रही हैं और अनादिकालीन वैभाविक मल उससे दूर हो रहा है।

हे राजराजेश्वर! मेरे हृदय सिंहासन पर अब तक मोहराज का साम्राज्य था। आज इस अभिषेक क्रिया के द्वारा मैं अपने हृदय सिंहासन पर आपकी स्थापना करना चाहता हूँ।

हे देवाधिदेव! मेरे इन भावों को स्वीकार करते हुए आप मेरे मन को स्वच्छ एवं निर्मल बनाकर अपने ही समान आत्मरस में निमग्न करने वाले परमात्म पद पर स्थापित करें।

चंदनपूजा से करें तन-मन को शीतल

जिनेश्वर परमात्मा की चंदन-केसर रूप विलेपन पूजा करते हुए हृदय में यह भावना लानी चाहिए कि हे भगवन्! चंदन शीतलता का प्रतीक है। दाहज्वर की भीषण गर्मी एवं ताप संताप को दूर करने में चंदन सर्वश्रेष्ठ है। हे करुणानिधान! मेरी आत्मा दुनिया के ताप-संताप, विषय-कषाय रूपी दावानल की गर्मी एवं ताप से संत्रस्त है। अत: आप ही मेरी आत्मा को समतारस रूपी शीतल चंदनरस से आत्मिक शीतलता प्रदान कर सकते हैं।

हे विश्वोपकारी! जिस प्रकार चंदन काटने, जलाने या घिसने पर भी सुगंध और शीतलता रूप अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता, उसी तरह हे शान्त सुधारस! दुनिया के विविध विपरीत प्रसंगों में भी मेरी आत्मजागृति बनी रहे, मैं भी अपने आत्मस्वभाव में मस्त रहूँ एवं सहजानंद की प्राप्ति करूं।

हे लावण्यस्वरूपी! आपके स्पर्श मात्र से मेरी आत्मा विषय-कषायों से मुक्त हो सकती है। चंडकौशिक जैसा विषधर सर्प भी आपकी शरणागति को पाकर कषायों से मुक्त हो गया, भयंकर क्रोध विष से शांत साधक बन गया। मेरी आत्मा भी विषरूपी परभावों से लिप्त है। हे दया निधान! दया करके मुझे भी इन सबसे मुक्त कर अपने समीप स्थान देने की कृपा करें।

हे जगत नाथ! कई लोग शीतलता पाने हेतु A.C., Cooler, Freeze आदि का उपयोग करते हैं तो कोई Swimming Pool आदि में जाकर पड़े रहते हैं। किन्तु इन सबसे तो बाह्य शारीरिक शीतलता प्राप्त होती है। भीतर की आग को शान्त करने का सामर्थ्य इनमें नहीं है, उस आग को तो मात्र आप ही शान्त कर सकते हैं। आपकी चन्दनपूजा के माध्यम से मेरे विषय-कषाय उपशान्त

होकर जड़मूल से विनष्ट हो जाए एवं चंदन के समान समतारस रूपी शीतलता मेरे रोम-रोम में व्याप्त हो जाए।

हे आत्म निरंजन! मेरे पास चढ़ाने हेतु गोशीर्ष चंदन या नंदनवन का केशर नहीं है। मलयगिरि के चन्दन एवं काश्मीर के केशर को ही आप मेरे उत्तम भावों के साथ स्वीकार करें। इस चंदन पूजा के प्रभाव से मुझे ज्ञान की खुशबू से महकता हुआ समतारस प्राप्त हो।

आपका स्पर्श करने मात्र से मेरे शरीर, हृदय एवं भावों आदि का शुद्धिकरण होता है। चन्दन पूजा के माध्यम से यह शुद्धता सतत बनी रहे यही अन्तर प्रार्थना करता हूँ।

पुष्पपूजा से महकाएँ आत्म सुमन

अरिहंत परमात्मा को ताजे, खिले हुए, अखंड एवं सुगंधित पुष्प चढ़ाते हुए मन में निम्नोक्त भावनाएँ करनी चाहिए–

हे त्रिलोकीनाथ! इस विश्व में पुष्पों को सर्वश्रेष्ठ भेंट के रूप में माना गया है। मैं भी श्रद्धासिक्त होकर श्रेष्ठ पुष्पों की भेंट लाया हूँ। पुष्प जैसे कोमल, विकसित और सुगंधित होते हैं, उसी तरह मेरी आत्मा भी काम-विकार तथा कषाय की दुर्गन्ध से मुक्त हो एवं मेरा हृदय सभी जीवों के प्रति कोमल एवं निर्मल भावों से युक्त बने।

हे दयासिन्धु! जिस प्रकार फूल आपकी शरण में आकर कष्ट एवं किलामनाओं से मुक्ति पाकर क्लेश रहित हो जाता है तथा अपनी खुशबू से चारो दिशाओं को महकाता है। उसी प्रकार मैं भी आपकी शरण में आया हूँ, मुझे भी क्लेश, संताप आदि से रहित करते हुए परमोच्च वीतराग भाव से सुवासित बनाएं। इस केवलज्ञान रूपी सुवास के द्वारा भव्य प्राणियों को तत्त्वों के सत्य स्वरूप से सुवासित कर सकूँ और अंततः मोक्ष प्राप्त कर शाश्वत निर्भयता को प्राप्त करूं, ऐसा वरदान दें।

हे विश्वोद्धारक! आपकी चरणों में चढ़ने वाला पुष्प जिस प्रकार भव्य बन जाता है, वैसे ही मुझे भव्यत्व अर्थात सम्यक्त्व की प्राप्ति हो। हे गुण श्रेष्ठ! आपकी आत्मा का प्रत्येक प्रदेश अनंत गुणों से महक रहा है। आपकी श्वासोछ्वास में भी मंदार एवं पारिजात जैसे पुष्पों की महक है। आप तो पुष्पहार एवं स्वर्ण अलंकारों के बिना भी विश्व के श्रेष्ठ पद वीतरागता एवं सर्वज्ञता

रूपी अलंकारों से सुशोभित हो रहे हैं। अत: आपको तो इन पुष्पों की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु आपको पुष्प चढ़ाने से मेरे आत्मा की दुर्गुण रूपी दुर्गंध नष्ट हो जाती है।

हे सुखदाता! आपकी पुष्पपूजा के प्रभाव से मुझे भी आपके सद्गुणों की महक प्राप्त हो तथा मेरे अन्तरंग में ईर्ष्या, द्वेष, विषय-कषाय के रूप में जो दुर्गुण भरे हुए हैं, उनका निकास हो।

जिस प्रकार रोगी को पुष्प देकर उसके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की प्रार्थना की जाती है, शादी में पुष्प देकर उज्ज्वल भविष्य की कामना की जाती है उसी तरह मेरी आत्मा को संसार के मोहरोग से शीघ्र मुक्ति मिले तथा अध्यात्म मार्ग में मेरा भविष्य उज्ज्वल बने यही भावना करता हूँ।

हे शरणागत प्रतिपाल! कुमारपाल महाराजा ने पूर्वभव में उत्तम भावों से पुष्प चढ़ाकर अठारह देश का अधिपत्य प्राप्त किया तथा गणधर पद को भी प्राप्त करेंगे। नागकेतु ने पुष्पपूजा करते-करते केवलज्ञान को प्राप्त किया हे प्रभु! मैं भी सर्वज्ञदशा को प्राप्त करूं।

हे जगत वत्सल! इस द्रव्य खुशबू को अर्पण कर मैं भाव सुगंध को पाने की भावना करता हूँ।

धूप पूजा से पाएं शील सुगंध

अरिहंत परमात्मा की धूप पूजा करते वक्त शुद्ध और सुगंधित धूप अर्पण करते हुए यह भावना की जाती है कि

हे चिदात्मन्! आपकी धूप पूजा समस्त कर्म रूपी ईन्धन को जलाकर निर्मल संवर भावना रूपी सुगंध को प्रसरित करने वाली तथा अशुद्ध पुद्गल परमाणुओं को दूर करने वाली है।

हे परमात्मन्! जैसे धूप करने से अशुभ गन्ध नष्ट होती है एवं शुभ गन्ध सर्वत्र प्रसरित होती है वैसे ही धूप पूजा करने से मेरी अशुभ भाव रूपी दुर्गन्ध नष्ट होकर शुभ भावों का सौरभ प्रकट हो। पूर्वकृत कर्मों के कारण कई जीवों से मेरी वैर-विरोध की परम्परा भी चली आ रही है। आत्म जागृति के द्वारा विरोधी जीवों के हृदय को भी शांति प्रदान करूं एवं शील की सुगंध से सबके हृदय को प्रसन्न कर सकूं, ऐसी कृपा करें।

हे शिवात्मन्! जैसे धूप जलकर राख हो जाता है एवं उसका धुआं

ऊर्ध्वगति को प्राप्त करता है वैसे ही मेरे समस्त कर्म भी भस्मीभूत हो जाएं एवं शुद्ध आत्मा सिद्धशिला की तरफ ऊर्ध्वगमन करे।

हे स्थिरात्मन्! जब अंगारे पर धूप जलता है तब उसकी सुगंधित धूम्र घटाएं ऊपर की ओर जाती हैं, उसी तरह मेरा भी मिथ्यात्व जल रहा है तथा सम्यक्त्व रूपी धूम्र घटायें मेरी आत्मा में प्रकट हो रही हैं। आपकी पुण्यकृपा से मेरा मिथ्यात्व मंद हुआ है तथा आपके और मेरे बीच रही दूरी भी कम हुई है। यदि आपकी पूर्ण कृपा हो जाए तो मेरा सम्पूर्ण मिथ्यात्व विनष्ट हो सकता है।

हे पवित्रात्मन्! आपके शुद्ध स्वरूप के प्रति अपने आस्था भावों को दृढ़ बनाते हुए मैं भी अपने शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त करूं।

दीपक पूजा से जलाएं अध्यात्म दीप

हे प्रभु! जिस प्रकार दीपक का प्रकाश अंधकार को दूर करता है उसी तरह आपकी दीपक पूजा करने से मेरे भीतर में रहा अज्ञान तिमिर नष्ट हो रहा है तथा सम्यकज्ञान का दीपक प्रकट हो रहा है।

हे कल्याणप्रदीप! आपने अपने केवलज्ञान रूपी दीपक से समस्त विश्व के अंधकार का हरण कर मोक्ष मार्ग को जगत जीवों के लिए प्रकाशित किया है।

हे भावदीपक! यह द्रव्य दीपक तो चंचल है, अस्थिर है, हवा के एक झोंके से ही इसकी ज्योति हिलने लगती है। थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात इसमें घी या तेल भरना पड़ता है। ज्यों-ज्यों यह जलता है, त्यों-त्यों कालिमा निकलती है। यह स्वयं भी तपता है और दूसरों को भी तपाता है परन्तु आपका जो केवलज्ञान रूपी दीपक है, वह ऐसा अद्भुत एवं अनुपम है कि चाहे जितने हवा के झोंके आएं वह कभी चलायमान नहीं होता। उसमें किसी प्रकार के घी को पूरना नहीं पड़ता। वह निरंतर जलता रहता है। फिर भी उसमें से कालिमा के स्थान पर आत्मा को उज्ज्वल करने वाले तत्त्व ही निकलते हैं। वह न तो स्वयं तपता है न औरों को तपाता है। मात्र शीतलता, आलोक एवं तेज प्रदान करता है।

हे अविनाशी! दीपक की ज्योत को स्पर्श करके जिस प्रकार पतंगा जलकर भस्म हो जाता है, वैसे ही आपके ज्ञान रूपी दीपक के प्रभाव से मेरी पाप रूपी पतंगे जल रही हैं।

हे परमात्मन्! आपके समक्ष इस द्रव्य दीपक को मैं प्रकट कर रहा हूँ, आप मेरे भीतर में भावदीपक को प्रकट करें ऐसी मेरी आन्तरिक प्रार्थना है। जिससे अनंतकाल से प्रारंभ हुई मेरी संसार यात्रा को अब विराम मिल सके और मेरा मुक्तिधाम में निवास हो सके।

अक्षत पूजा से प्रकटे आत्मा का अक्षय स्वरूप

विश्व वंद्य अरिहंत परमात्मा की अक्षत पूजा करते हुए हमें स्वयं को निम्न भावों से भावित करना चाहिए।

हे अक्षय रूपी! जिस प्रकार छिलके से रहित चावल पुनः उत्पन्न नहीं होते उसी तरह मैं भी जन्म मरण की परम्परा का क्षय कर आपके समान अक्षय स्थिति को प्राप्त करूं।

हे आनंदघन! संसार की चौराशी लाख योनि रूप चतुर्गति में भ्रमण करते-करते मैं थक गया हूँ। आपके द्वारा प्ररूपित रत्नत्रयी के द्वारा मैं इनसे मुक्त होकर सिद्ध स्थिति को उपलब्ध कर सकता हूँ। इसी उद्देश्य से मैं आपके समक्ष स्वस्तिक आदि का आलेखन कर रहा हूँ।

हे दीनानाथ! स्वस्तिक की यह चार पंखुड़ियाँ चतुर्गति की वक्रता एवं उनके भयंकर कष्टकारी परिणामों का स्मरण करवाती है। इस संसार समुद्र को पार करने के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रयी की नौका ही सक्षम है जो आपके अनुग्रह से ही प्राप्त हो सकती है।

हे अजन्मा! जिस प्रकार छिलके से निकला हुआ चावल पुनः छिलके को धारण नहीं करता और न ही अंकुरित होता है वैसे ही मेरी आत्मा भी कर्म रूपी छिलके से अनावृत्त होकर अखंड, निर्मल, उज्ज्वल शुद्ध स्वरूप को धारण करे।

हे देवाधिदेव! आप श्वेत वर्ण के धारक हैं, आपके भीतर करुणा रूपी श्वेत दुग्धधारा प्रवाहित होती है उसी के प्रतीक रूप यह श्वेत चावल मैं आपको अर्पित करता हूँ और आप मुझे आत्मा की निर्मल, निर्विकारी शुभ दशा प्रदान करें।

हे परमात्मन्! आपके समान मैं भी अक्षय, अनंत, अखंड, अजन्मा, अकलंक अवस्था को प्राप्त कर सकूँ तद्हेतु इन अखंड अक्षतों द्वारा मेरी पूजा को स्वीकार करें।

नैवेद्य पूजा से प्राप्त हो अणाहारी स्वरूप

हे आत्म विहारी! जन्म मरण की परम्परा का विच्छेद कर आपने शाश्वत अणाहारी अवस्था को प्राप्त कर लिया है। इस संसार में तो प्रत्येक क्षण आहार की प्रक्रिया चालू रहती है। भवांतर करते हुए विग्रह गति में कई बार अणाहारी अवस्था भी प्राप्त हुई किन्तु उसमें किसी भी प्रकार से आहार के प्रति लालसा कम नहीं हुई। कुछ ही क्षणों में जन्म लेने के साथ ही आहार संज्ञा पुनः प्रारंभ हो गई। हे भगवन्! कब मुझे भी आपके समान शाश्वत निराहारी अवस्था प्राप्त होगी?

हे विगताहारी! मैं आहार संज्ञा के कारण ही इस संसार में परिभ्रमण कर रहा हूँ। मैं जहाँ भी गया आहार के पुद्गलों को सर्वप्रथम ग्रहण किया। उन पर राग एवं आसक्ति रखकर कर्मबंधन करता रहा। मेरे द्वारा गृहीत अब तक के आहार पुद्गलों की यदि गणना करूं तो मेरुपर्वत भी छोटा पड़ेगा फिर भी अब तक मुझे कभी तृप्ति या संतुष्टि नहीं हुई। कभी मणों खाया तो कभी कण भर के लिए भी तरसता रहा। हे करुणावन्त? दया करो? मुझे इस पीड़ा से उबारो! अपने समान शान्त-निवान्त स्थिति की प्राप्ति करवाओं।

हे शिवंकर! मैं चाहे मिष्ठान, चढ़ाऊँ या पंचविध पकवान या फिर कोई अन्य पदार्थ, आपको उससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आप तो अनाहारी पद पर स्थित हैं परन्तु यह आहार चढ़ाकर मैं अपनी आहार संज्ञा को सर्वथा नष्ट करना चाहता हूँ। दुनिया के अधिकतम सांसारिक पाप कार्य मैं इसी आहार लालसा के वशीभूत होकर करता हूँ। अतः हे निजात्मन्! मुझे भी निजरूप में रमण करवाइए।

हे वीतरागी! नैवेद्य एवं गरिष्ठ पदार्थ श्रेष्ठ, उत्तम एवं रसयुक्त आहारों में गिने जाते है। इन उत्तम पदार्थों को अर्पित करते हुए मैं यही भावना करता हूँ कि जिस आहार की आसक्ति मुझे भवोभव भ्रमण करवा रही है, इसे मैं आपके चरणों में समर्पित कर उसका निवारण कर सकूँ तथा शुद्ध आत्मदशा को प्राप्त करने में सफल हो सकूं।

फल पूजा से मिलते जीवन के उत्तम पल

जिनेश्वर परमात्मा की फलपूजा करते हुए भव्य मनुज को यही भावना करनी चाहिए कि–

हे शुद्धात्मन्! बीज की अंतिम अवस्था फल के रूप में होती है। मैं आपको यह फल अर्पित करते हुए अंतिम फल स्वरूप मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। हे नाथ! मैंने सुना है कि 'फल थी फल निरधार'। मुझे विश्वास है कि आप भी मेरी फल पूजा को निष्फल नहीं करेंगे।

हे भवदुख भंजन! फलपूजा अनिष्ट कर्मों के फल को नष्ट करनेवाली है। सांसारिक फलों को प्राप्त कर मैं अपने आत्मस्वरूप को भूल गया हूँ। अब आप मुझे ऐसे फल का वरदान दो, जिससे सदा मुझे अपने आत्मस्वरूप का भान बना रहे। मुझे किसी अन्य फल प्राप्ति की इच्छा ही न रहे।

हे शान्त सुधाकर! जिस प्रकार वृक्ष पर पत्ते, पुष्प आदि आने के बाद फल भी लग ही जाते हैं वैसे ही सद्गति, सुख-शान्ति, वैभव-विलास आदि रूप पत्ते एवं पुष्प प्रदान करने के बाद मुझे मोक्ष फल भी प्रदान करो।

हे परमात्मा! आपका अद्वितीय आत्मस्वरूप अमृत से भी मधुर, जग हितकारी, दुखों का हरण करने वाला, आत्मवैभव को प्रदान करने वाला, सहजानंद स्वरूप को उपलब्ध करवाने वाला है। आपने मोहरूपी पर्वत श्रेणी को नष्ट कर दिया है तथा आप मोक्षफल देने में समर्थ हैं। अत: हे दयासिन्धु! मुझ पर अपनी करुणा धार बरसाकर मुझे कृतार्थ करें।

हे जिनेश्वर! फलों में श्रेष्ठ श्रीफल का आन्तरिक गोटा एवं ऊपर का आवरण जैसे अलग-अलग होता है, मेरी भी वही स्थिति है। यह शरीर तो मात्र बाह्य आवरण रूप है। मेरी आत्मा इससे बिल्कुल भिन्न है। आपको इन श्रेष्ठ फलों का अर्पण, मुझे अपने स्वरूप का भान करवाते हुए स्वस्वरूप में रमण करवाएगा। यही अन्तरकामना करता हूँ।

अष्टप्रकारी पूजा के बाद परमात्मा के सम्मुख चामर, दर्पण, वस्त्र, मुकुट आदि आभूषण पूजाएँ भी की जाती है जिनका वर्णन इक्कीस प्रकारी पूजा में आता है। ये पूजाएँ करते समय निम्नोक्त भावनाएँ करनी चाहिए।

चामर पूजा से करें भव नृत्य का नाश

अरिहंत परमात्मा की चामर पूजा करते हुए परमात्मा के समवसरण का साक्षात्कार करना चाहिए।

हे अतिशयधारी! समवसरण में आपकी ऋद्धि इन्द्र-देवेन्द्र की ऋद्धि को भी मात करती है। आपका ऐश्वर्य एवं अतिशय ऐसा है कि स्वयं इन्द्र आपके आगे चँवर लेकर नृत्य करते हैं।

हे राज राजेश्वर! यह चामर जैसे आपके चरणों में झुकता है एवं तुरंत उठता है वैसे ही आपके चरणों में झुककर मैं भी शीघ्र ही ऊर्ध्वगति को प्राप्त करूंगा।

हे अखिलेश्वर! जिसने आपके समक्ष चामर लेकर नृत्य कर लिया उसे कर्मराज एवं मोहराज भी अपने आगे नचा नहीं सकते। हे नाथ! कर्मों के आगे मैं बहुत नाचा, अब मेरे जीव को स्थिर करो।

दर्पण पूजा से निहारें निज का जिन रूप

परमात्मा की दर्पण पूजा करते हुए हमें निम्न भाव करने चाहिए।

हे निरंजन! अष्टमंगल में दर्पण को स्वयं मंगलरूप माना गया है। इस मंगलकारी दर्पण में देखा गया आपका मंगलमय प्रतिबिम्ब जीवन में मंगल रूप कार्य करता है।

हे सर्वेश्वर! जिस प्रकार इस दर्पण में आपका प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है, वैसे ही मेरे हृदय रूपी दर्पण में आपके प्रतिबिम्ब की स्थापना हो।

हे प्राणेश्वर! दर्पण में जो वस्तु जैसी होती है वैसी दिखाई देती है। इसी तरह आप भी एक स्वच्छ निर्मल दर्पण के समान हैं एवं आपके समक्ष खड़े होते ही मुझे मेरा कर्मों से लिप्त स्वरूप दिखाई देता है। हे भगवन्! आपकी कृपा से मैं अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकता हूँ।

हे परमात्मन्! आप मेरे हृदय सिंहासन पर शाश्वत रूप में विराजमान होवो इसी प्रयोजन से मैं आपकी दर्पण पूजा करता हूँ।

वस्त्र पूजा से तोड़ें आसक्ति का बंधन

वीतराग परमात्मा की पुष्पपूजा करने के बाद दो वस्त्रों से परमात्मा की वस्त्र पूजा का उल्लेख सत्रह भेदी पूजा आदि में आता है। देवेन्द्रों एवं नरेन्द्रों द्वारा पूजित देवाधिदेव की वस्त्र एवं अलंकार आदि से पूजा करते हुए निम्न भावना करनी चाहिए–

हे देवाधिदेव! जन्माभिषेक के समय देवों द्वारा बहुमूल्य वस्त्राभूषण अर्पण कर आपकी भक्ति की जाती है परंतु आपके मन में इन बाह्य वस्तुओं के प्रति कोई आकर्षण उत्पन्न नहीं होता। युवराज अवस्था में भी आपका मन कभी राजभोग आदि में आसक्त नहीं हुआ।

दीक्षा लेने से पूर्व आपने एक वर्ष तक वर्षीदान देकर अपनी संपदा के सदुपयोग का मार्ग बताया। अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धि आपके चरणों में आलोडन करती थी किन्तु आपने कभी उनका राग या अभिमान नहीं किया। किन्तु धन्य है आपकी इस वीतरागता को।

हे निस्पृही! भोग सामग्री का उपभोग करते हुए आपके मन में कभी उसके प्रति आसक्ति भाव या राग भाव उत्पन्न नहीं हुए। दीक्षा लेते समय चक्रवर्ती सदृश वेश भूषा में सुसज्जित होने पर भी आपके मन में वैराग्य की उर्मियां लहरें बनकर हिलोरें ले रही थीं। दीक्षा के बाद देवों द्वारा प्रदत्त देवदूष्य वस्त्र भी आपने ब्राह्मण को दे दिया।

हे लोक-लोकेश्वर! अरिहंत अवस्था में प्रातिहार्य एवं अतिशयों से शोभित होने पर भी आप सर्व परिग्रह के त्यागी थे। आपके मन में कभी भी उन वस्तुओं के प्रति राग भाव उत्पन्न नहीं हुआ। आप जलकमलवत सदा ही निर्लिप्त रहे।

हे त्रिलोकवंद्य! बाह्य पदार्थों की मोह और आसक्ति को कम करने के लिए तथा मूर्च्छा भाव को समाप्त करने के लिए मैं आपको यह वस्त्र समर्पित करता हूँ। आपके अनुग्रह से ही मुझमें अनासक्त भाव जागृत रह सकते हैं।

हे देवाधिदेव! आपने समस्त राग एवं आसक्ति का क्षय कर सिद्ध पद को प्राप्त किया है। मैं भी आपको वस्त्र अर्पित करते हुए यही भावना करता हूँ कि मेरी संसार बुद्धि को आप क्षीण करें एवं आत्मशुद्धि को उत्पन्न करें।

आरती और मंगल दीपक से पाएं मुक्ति की मंजिल

आरती और मंगलदीप उतारते समय श्रावक को निम्न भाव करने चाहिए–

हे दुख भंजन! सांसारिक दुख का हरण करने हेतु आपकी आरती उतारी जाती है। हे देवाधिदेव! मैं भी आपकी आरती उतारकर इस भव जंजाल से मुक्त होना चाहता हूँ।

हे निर्विकारी! आप पाँच दिव्य ज्ञानों से सुशोभित हैं। इसी हेतु पाँच दीपक वाली आरती से आपकी आरती उतारी जाती है।

हे दयासिन्धु! सर्प का दंश जीवन को समाप्त कर देता है परन्तु अग्नि के भय से सर्प पीछे हट जाता है। इसी तरह मोहनीय कर्म रूपी सर्प जो मुझे पुन:

पुन: जन्म-मरण की पीड़ा दे रहा है उसे आप ही अपने ज्ञान के द्वारा दूर भगा सकते हैं। सम्यग्ज्ञान की ताकत से ही मोहरूपी सर्प का विनाश किया जा सकता है।

हे शुद्धात्मन्! जिस प्रकार दीपक जलकर शांत हो जाता है वैसे ही मेरी आत्मा में भड़क रही कषायों की अग्नि भी इस दीपक की तरह शांत हो जाए।

हे स्वामिन् ! इस भव में ऊपर से नीचे और यहाँ से वहाँ घूमता-टकराता भटकता रहा हूँ। मेरा यह भटकना जल्दी समाप्त हो जाए और मैं स्थिर स्वरूप को प्राप्त करूं।

हे त्रिलोकीनाथ! मंगल दीपक के द्वारा मैं स्व-मंगल एवं विश्व-मंगल की भावना करता हूँ। आप विश्वकल्याण के सुंदर भावों से अनुप्राणित होकर सर्वत्र अपना ज्ञान प्रकाश फैलाते हैं। उसी तरह यह मंगल दीपक श्रेष्ठ परमाणुओं को सम्पूर्ण वातावरण में प्रसरित करता है। इसके साथ होता घंटनाद, शंखनाद आदि के द्वारा चैतसिक अशुद्ध परमाणुओं का विलय होता है।

हे जगत दिवाकर! आप मेरे कल्याण पथ को प्रकाशित करते हुए मुझे मुक्ति महल तक पहुँचाएं।

अष्ट प्रकारी पूजा श्रावक का दैनिक कर्तव्य है। यह मोक्ष साधक क्रिया तभी सार्थक बन सकती है जब उसमें कर्ता का आंतरिक जुड़ाव हो। मतलबी या स्वार्थी संसार से अपने Connection को Cut करके परमात्मा से connect होने का जिनपूजा एक अभूतपूर्व अभियान है। यह परमात्मा से Online होने के लिए net connection के समान है। इस connection को बस सही विधि एवं रीति से जोड़ना जरूरी है।

इस अध्याय के माध्यम से अष्टप्रकारी पूजा के विविध पहलुओं का अध्ययन करते हुए उसके विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया गया है जिससे पूजार्थी वर्ग अपने आपको सम्पूर्ण रूप से एवं शुद्ध मार्ग से प्रभु भक्ति में जोड़ पाएं तथा उसके उत्तम फल को प्राप्त कर पाएं क्योंकि कहा गया है–

प्रभु दर्शन सुख संपदा, प्रभु दर्शन नव निध।
प्रभु दर्शन थी पामिये, सकल पदारथ सिद्ध।।

यह अध्याय सर्वार्थ सिद्धि में सहायक बने यही अभ्यर्थना।

संदर्भ-सूची

1. सव्वोसहीहिं उदगाइएहिं चित्तेहिं। पंचाशक प्रकरण, 4/14
2. इत्याद्युत्केन नैवेधिकीत्रयकरण प्रदक्षिणात्रय चिन्त (विरच) नादिकेन च विधिना देवताऽवसर प्रमार्जन पूर्वं शुचि पट्टकादौ पद्मासनासीन : पूर्वोत्सारिता द्वितीयपात्रस्थचंदनेन देवपूजासत्कचन्दनभाजनाद्वा पात्रान्तरे हस्ततले वा गृहीतचन्दनेन कृत भालकण्ठहृदुदरतिलको रचितकर्णिकाङ्गःदहस्तकङ्कणा-दिभूषणश्चन्दन चर्चित धूपित हस्त द्वयो लोमहस्तकेन श्रीजिनाङ्गनिर्मल्यमपनयेत निर्माल्यं च। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 19
3. ततः सुयत्नेन वालककूर्चिकां....श्यामिका स्यादीति सा सर्वथा व्यपास्येते। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, पृ. 20,21
4. परमतेज, भा. 1, पृ. 119-120
5. (क) कर्पूरकुङ्कुमादिमिश्रगोशीर्षचन्दादिनाऽर्चयेत। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 22

   (ख) सुरहिं विलेवण। पंचाशक प्रकरण, 4/14
6. ततः 'अंहि 2 जानु 4 करां 6 ऽसेषु 8 मूर्ध्नि 9 पूजां यथाक्रमामि' त्युक्तेर्वक्ष्यमाणत्वात् सृष्ट्या नवाङ्गेषु। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 22
7. मध्याह्ने कुसुमैः पूजा। (क) पूजा प्रकरण, गा. 10

   गंधवरधूवसव्वोसहीहिं, उदगाइएहिं चित्तेहिं ।

   सुरिहि विलेपण वर, कुसुम दाम बलि दीवएहिं च ।।

   (ख) पंचाशक प्रकरण, 4/14

   पुष्पामिष स्तोत्र प्रतिपत्ति पूजानां दधोत्तरं प्राधान्यं ।

   (ग) परम तेज, ललितविस्तरा वृत्ति, पृ. 175
8. न शुष्कैः पुजयेद्देवं, कुसुमैर्न महीगातैः ।

   न विशीर्णदलैः स्पृष्टै, र्नाशुभैर्नाविकाशिभिः ।।

   कीटकोशापविद्धानि, शीर्णपर्युषितानि च ।

   वर्जयेदूर्णनाभेन, वासितं यदशोभितम् ।।

   पूतिगन्धीन्यगन्धीनि, अम्लगन्धानि वर्ज्जयेत् ।

   मलमूत्रादि निर्माणादुच्छिष्टानि कृतानि च ।।

   (क) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 23

   (ख) परमतेज, पृ. 178

9. तत्र धूपो जिनस्यवामपार्श्वे कार्य इत्यङ्गपूजा।

(क) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, पृ. 24

वामांङ्गे धूपदाहाः स्यादग्रपूजा संमुखी। (ख) पूजा प्रकरण, गा. 10

10. तत्र प्रदीपो जिनस्य दक्षिणपार्श्वे स्थाप्यः।

(क) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 24

अर्हतो दक्षिणे भागे, दीपस्य विनिवेशम्। (ख) पूजा प्रकरण, गा. 11

11. अक्षतैश्चाखण्डै, रौप्यसौवर्णैः शालेयैर्वा जिनपुरतो दर्पण 1 भद्रासन 2 वर्द्धमान 3 श्रीवत्स 4 मत्स्ययुग्म 5 स्वस्तिक 6 कुम्भ 7 नन्द्यावर्त 8 रूपाष्टमंगलानालेखयेत्। अन्यथा वा ज्ञानदर्शन-चारित्राराधननिमित्तं सृष्ट्या पुंजत्रयेण पट्टादौ विशिष्टाक्षतान्॥ धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, पृ. 24

12. पुष्पाऽऽमिष स्तोत्र-प्रतिपत्तिपूजानां यथोत्तरं प्राधान्यं। (क) ललित विस्तरा

पूयं वि पुप्फाऽऽसि थुइ पडिवत्ती भेयओ चउविहांपि।

(ख) वसुदेवहिंडिका, बा. 2

शुचि पुष्पाऽऽमिष स्तोत्रैर्देवमभ्यर्च्य वेश्मनि। (ग) योगशास्त्र, गा. 122

पुष्पामिस थुइ भेया, तिविहा पूया इमा होई।

(घ) चैत्यवंदनकुलक गा. 5 पृ. 97

13. तत्र 'आमिष' शब्देन मासभोज्य वस्तुरूचिर वर्णादिलाभ-संचयलाभ रूचिररूपादि शब्द नृत्यादि कामगुण-भोजनादयोऽर्थाः यथासम्भवं प्रकृतभावे योग्याः। ललित विस्तरा, पृ. 45-46

14. नैवेद्यमपि सति सामर्थ्ये कूराद्यशन 1 शर्करागुडादिपान 2. फलादिखाद्य 3 ताम्बुलादिस्वाद्यान् 4 ढौकयेत्। नैवेद्य पूजा च प्रत्यहमपि सुकरा महाफला च, धान्यस्य च विशिष्य। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, पृ.2 4

15. फल पूजा से फल मिले, प्रगटे नव निधान।
चहुं दिश कीरत विस्तरे, पूजन करो सुजान॥

16. पट्टादौ विशिष्टाक्षतन् पूगादिफलं च ढौकयेत्,. नवीनफलागमे तु पूर्वं जिनस्य पुरतः सर्वथा ढौक्यम्। (क) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, पृ. 24

प्रधानैश्च फलैः पूजा, विधेया श्रीजिनेशितुः। (ख) पूजा प्रकरण, गा. 14

●

अध्याय-4

भावे भावना भाविए

अध्यात्म जगत में भावों का महत्त्व सदाकाल से ही रहा है। शास्त्रकारों ने कहा है–

भावे भावना भाविए, भावे दीजे दान।
भावे जिनवर पूजिए, भावे केवलज्ञान।।

भावों के आधार पर ही जीव निगोद से मोक्ष की यात्रा करता है। भावधारा के आधार पर ही प्रसन्नचंद्र राजर्षि का Promotion एवं Demotion हुआ। भाव जगत का परिशोधन करते-करते ही मरुदेवी, बाहुबली आदि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसी कारण जैनाचार्यों ने भावों को अधिक प्रमुखता दी है। जिनपूजा में भी भावों का सर्वोच्च स्थान है। जिनपूजा के विविध प्रकार के भेदों को संक्षेप में द्रव्यपूजा और भावपूजा के अन्तर्गत ही समाविष्ट किया जा सकता है।

योगिराज आनंदघनजी महाराज कहते हैं[1]–

सत्तर भेद एकवीस प्रकारे, अष्टोत्तर शत भेदे रे।
भावपूजा बहुविध निरधारी, दोहग दुरगति छेदे रे।।

दुर्भाग्य और दुर्गति का छेदन करते हुए जिनपूजा पुण्य का वर्धन एवं सद्गति का सृजन करती है। द्रव्यपूजा जहाँ द्रव्य परिणति है वहीं भावपूजा आत्मा की एकाग्रता है। भावपूजा द्रव्य जगत से ऊपर उठकर भाव जगत में उच्च उड़ान करवाते हुए जीव को लोकाग्र में सिद्धशिला तक ले जाती है।

भाव पूजा के मननीय पहलू

जिस पूजा में भावों की प्रधानता हो वह भावपूजा कहलाती है। द्रव्यपूजा के बाद भावपूजा का क्रम आता है। जिनस्तुति, चैत्यवंदन, स्तवन आदि को भावपूजा कहते हैं।[2] पंचाशक प्रकरण में प्रत्याख्यान एवं चैत्यवंदन को भावपूजा माना है।

द्रव्यपूजा का प्रयोजन जहाँ द्रव्यासक्ति को न्यून करना है वहीं प्रत्याख्यान, स्तुति, स्तवन आदि आत्मोत्थान की दृष्टि से किए जाते हैं। चैत्यवंदन सूत्रों के

द्वारा परमात्मा को मात्र नमस्कार ही नहीं किया जाता अपितु परमात्म गुणों का अनुमोदन, कीर्तन, मनन करते हुए उन्हें स्वयं में उत्पन्न करने का प्रयत्न भी किया जाता है। यह जीव में गुणानुरागी वृत्ति का वर्धन करती है तथा आत्मा को परमात्म पद पर बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त करती है। भावपूजा का मुख्य हेतु अशुभ से शुभ और शुभ से शुद्ध की ओर प्रयाण करना है। द्रव्यपूजा के द्वारा संसार के प्रति निरसता एवं त्यागवृत्ति उत्पन्न करने के बाद भावपूजा के माध्यम से आंतरिक वैराग्य को प्रकट किया जाता है।

जिस प्रकार द्रव्यपूजा जिन चैत्य में की जाती है उसी तरह भाव पूजा भी उत्सर्गत: जिनप्रतिमा के समक्ष ही की जाती है। यदि कहीं पर जिनालय न हो अथवा वहाँ जाना संभव न हो तो गृह मन्दिर, परमात्मा की फोटो आदि आलम्बन के सम्मुख भी जिनपूजा की जा सकती है। साधु-साध्वी जिनप्रतिमा के अभाव में स्थापनाचार्य के समक्ष भी चैत्यवंदन रूप भावपूजा करते हैं।

शास्त्रोक्त निर्देश अनुसार द्रव्यपूजा करने वाले श्रावक को प्रथम द्रव्य पूजा एवं तदनन्तर भावपूजा करनी चाहिए। द्रव्य पूजा एक सार्वजनिक आवश्यक विधान नहीं है परंतु द्रव्य पूजा के त्यागी साधु-साध्वियों के लिए भी भावपूजा परमावश्यक मानी गई है। यह एक सर्वजन आवश्यक विधान है।

भावपूजा में प्रमुख रूप से चैत्यवंदन विधि का समावेश होता है। जैनाचार्यों ने प्रतिदिन सात बार चैत्यवंदन करने का विधान किया है। श्रावक को कम से कम त्रिकाल चैत्यवंदन तो अवश्य करना चाहिए।[3]

चैत्यवंदन की विविध कोटियाँ

पंचाशक प्रकरण, चैत्यवंदन भाष्य आदि के अनुसार चैत्यवंदन के तीन प्रकार हैं[4]– 1. जघन्य, 2. मध्यम और 3 उत्कृष्ट।

1. जघन्य चैत्यवंदन– केवल नमस्कार मन्त्र के द्वारा अथवा अंजलिबद्ध मुद्रा में नमो जिणाणं' बोलकर जो वंदन किया जाता है वह जघन्य चैत्यवंदन कहा जाता है। यह चैत्यवंदन एक पदरूप नमस्कार या 1 श्लोक से लेकर 108 श्लोक द्वारा अथवा एक नमुत्थुणं सूत्र द्वारा भी किया जाता है। इन्द्रों के द्वारा मात्र नमुत्थुणं सूत्र बोलकर ही चैत्यवंदन किया जाता है।[5]

2. मध्यम चैत्यवंदन– दंडक और स्तुति युगल पूर्वक चैत्यवंदन करना मध्यम चैत्यवंदन है। दंडक और स्तुतियुगल के शास्त्रकारों ने तीन अर्थ किए

हैं– 1. दंडक और स्तुति– इन दोनों के युगल रूप में अर्थात अरिहंत चेइयाणं एवं एक स्तुति पूर्वक 2. दंडक और स्तुति दोनों के युगल अर्थात दो दंडक एवं दो स्तुतिपूर्वक चैत्यवंदन करना 3. पाँच दंडक एवं चार स्तुति का एक जोड़ा अर्थात स्तुति युगल। इस प्रकार मध्यम प्रकार के चैत्यवंदन के तीन उपभेद हैं।

चैत्यवंदन सूत्रों में वर्णित पाँच दंडक में से अरिहंत चेइयाणं यह चैत्यस्त्व दंडक कहलाता है। अरिहंत चेइयाणं और अन्नत्थ सूत्र बोलते हुए एक नवकार के कायोत्सर्ग पूर्वक स्तुति बोलने पर प्रथम प्रकार का मध्यम चैत्यवंदन होता है।

दो दंडक और दो स्तुति पूर्वक अर्थात शक्रस्तव (नमुत्थुणं) और चैत्यस्तव (अरिहंत चेइयाणं) ये दो दंडक तथा अध्रुव और ध्रुव ऐसी दो स्तुति पूर्वक द्वितीय प्रकार का मध्यम चैत्यवंदन होता है। भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों की स्तुति अथवा चैत्य सम्बन्धी स्तुति अध्रुव स्तुति कहलाती है क्योंकि उसमें नाम बदलता रहता है। लोगस्ससूत्र जिसमें 24 तीर्थंकरों की स्तुति की गई है, वह ध्रुव स्तुति है। पूर्वकाल में स्तुति के पश्चात लोगस्स सूत्र बोला जाता था। वर्तमान में मात्र प्रथम स्तुति तक ही चैत्यवंदन किया जाता है।

तीसरे उत्कृष्ट चैत्यवंदन में पाँचों दंडक एवं चार स्तुति के जोड़े से चैत्यवंदन किया जाता है। इन तीनों प्रकार के चैत्यवंदन को जघन्य– मध्यम, मध्यम-मध्यम और उत्कृष्ट मध्यम चैत्यवंदन भी कहते हैं।

3. उत्कृष्ट चैत्यवंदन– पाँच दंडक, चार स्तुतियों के दो जोड़े, स्तवन एवं तीन प्रणिधान सूत्र पूर्वक चैत्यवंदन करना उत्कृष्ट चैत्यवंदन है।[6] नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं, लोगस्स, पुक्खरवरदी एवं सिद्धाणं बुद्धाणं यह पाँच दंडक सूत्र हैं। चार स्तुतियों में से प्रारम्भिक तीन स्तुतियाँ अधिकृत तीर्थंकर परमात्मा से सम्बन्धित होने के कारण उन्हें एक 'वंदना स्तुति' ही गिनते हैं तथा चौथी सम्यग्दृष्टि देवी-देवताओं के स्मरण वाली स्तुति को 'अनुशास्ति' नामक दूसरी स्तुति गिनने का सिद्धान्त है। इस प्रकार स्तुति चतुष्क का अभिप्राय आठ स्तुति या दो स्तुति युगल से है। इसी के साथ जावंति चेइयाइं, जावंत केवि. साहू और जय वीयराय यह तीन प्रणिधान सूत्र हैं। इन सभी सूत्रों के समायोजन से उत्कृष्ट चैत्यवंदन किया जाता है। वर्तमान प्रचलित देववंदन विधि का समावेश उत्कृष्ट चैत्यवंदन में होता है।[7]

कुछ आचार्यों ने नमुत्थुणं सूत्र की संख्या के आधार पर भी चैत्यवंदन के

तीन प्रकार किए हैं। तदनुसार एक नमुत्थुणं पूर्वक जघन्य चैत्यवंदन, दो या तीन नमुत्थुणं पूर्वक मध्यम चैत्यवंदन और चार या पाँच चैत्यवंदन पूर्वक उत्कृष्ट चैत्यवंदन किया जाता है।[8]

पंचाशक प्रकरण में कर्ता के भावों के आधार पर चैत्यवंदन के तीन प्रकार किए गए हैं। अपुनर्बन्धक, अविरत सम्यग्दृष्टि और विरत सम्यग्दृष्टि के भावों के अनुसार यह तीन प्रकार किए गए हैं। अपुनर्बन्धक के द्वारा किया गया जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट चैत्यवंदन भी जघन्य चैत्यवंदन की श्रेणी में आता हैं क्योंकि सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा उसके भावों की विशुद्धि कम ही होती है। अविरत सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया गया वंदन मध्यम श्रेणी का होता है क्योंकि अपुनर्बन्धक की अपेक्षा इनकी भाव विशुद्धि अधिक होती है किन्तु विरत सम्यग्दृष्टि से कम। विरत सम्यग्दृष्टि द्वारा किए गए जघन्य आदि तीनों प्रकार के चैत्यवंदन उत्कृष्ट ही होते हैं क्योंकि इनकी भावविशुद्धि अपुनर्बन्धक एवं अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अधिक ही होती है।[9]

इन तीनों के उल्लास भाव आदि के आधार पर चैत्यवंदन के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन भेद किए गए हैं।

भावपूजा में उपयोगी विभिन्न सूत्र एवं मुद्राएँ

भावपूजा का अभिन्न अंग है चैत्यवंदन विधि में उपयोगी सूत्र एवं उनकी प्रयोग विधि। इन्हीं के माध्यम से भावपूजा की सम्यक आराधना एवं सहज सिद्धि हो सकती है।

भावपूजा करते हुए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है–[10]

नवकार, खमासमणसूत्र, इरियावहियं, तस्सउत्तरी, अन्नत्थ, लोगस्स, नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं, पुक्खरवरदी, सिद्धाणं बुद्धाणं, जावंति चेइआइं, जावंत केवि साहु एवं जयवीयराय सूत्र। इसी के साथ प्रभु भक्ति में अन्तर्लीन होने हेतु आचार्यों द्वारा रचित भाववाही स्तुतियाँ, स्तवन, चैत्यवंदन स्तुति जोड़ा आदि का भी उपयोग किया जाता है।

भजन-कीर्तन, ध्यान-कायोत्सर्ग, नृत्य-गान आदि भी भावपूजा के प्रशस्त मार्ग माने जाते हैं। भावपूजा के दौरान जब सूत्रार्थ का चिंतन-मनन किया जाता है तब हृदय में परमात्मा के प्रति अनायास ही अहोभाव जागृत होते हैं, जो आत्मिक विशुद्धि एवं आचार निर्माण में कारणभूत बनते हैं। इन सूत्रों को

अधिक प्रभावी बनाने एवं उसमें मनोभावों को जोड़ने हेतु तद्योग्य मुद्राओं का भी निर्देश चैत्यवंदन भाष्य आदि में प्राप्त होता है।

तदनुसार चैत्यवंदन में मुख्य रूप से तीन मुद्राएँ उपयोगी बनती हैं– योग मुद्रा, जिनमुद्रा और मुक्ताशुक्ति मुद्रा। योगमुद्रा एवं मुक्ताशुक्ति मुद्रा ये हस्त मुद्राएँ हैं तथा जिनमुद्रा यह पाद मुद्रा है। पंचांग प्राणिपात एवं विनयमुद्रा का प्रयोग भी चैत्यवंदन विधि में होता है।[11]

पंचांग प्रणिपात मुद्रा में खमासमण दिया जाता है। नमुत्थुणं आदि स्तव सूत्र योगमुद्रा में, अरिहंत चेइयाणं आदि वंदन सूत्र जिनमुद्रा में तथा जयवीयराय आदि प्रणिधान सूत्र योगमुद्रा में बोले जाते हैं।[12]

पंचाशक प्रकरण के अनुसार नमुत्थुणं सूत्र को प्रणिपात सूत्र भी कहते हैं।[13] इसके द्वारा नमन और स्तवन ये दो क्रियाएँ की जाती हैं। नमुत्थुणंसूत्र के प्रारंभ में नमस्कार बद्ध वाक्य होने से यह प्रणिपात सूत्र कहलाता है तथा प्रारंभ में पंचांग प्रणिपात मुद्रा की जाती है। शेष भाग स्तव पाठ वाला होने से हाथों की योग मुद्रा के साथ पैरों में विनय मुद्रा या पर्यंकासन मुद्रा धारण की जाती है। अरिहंत चेइयाणं, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ, लोगस्स, इरियावहियं आदि शेष दंडक सूत्र हाथों की योगमुद्रा एवं पैरों की जिनमुद्रा के साथ बोले जाते हैं। जयवीयराय आदि प्रणिधान सूत्र हाथों की मुक्ताशुक्ति मुद्रा एवं पैरों की विनय मुद्रा के साथ बोले जाते हैं।

चैत्यवंदन विधि एक लाभप्रद अनुष्ठान

जैन दर्शन में भावपूजा रूप चैत्यवंदन विधि का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जितना महत्त्वपूर्ण इनका स्थान है उतना ही इस विधि का मूल्य व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक जगत में देखा जाता है।

आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार चैत्यवंदन विधि में सावधानी एवं पूर्ण जागरूकता रखने से इस लोक में धन की हानि नहीं होती है और पूर्वबंधित विशेष कर्मोदय के कारण इस लोक में यदि हानि हो भी जाए तो भी वह सद्भावों का नाश नहीं करती। विपरीत परिस्थिति में भी दीनता, द्वेष, चिन्ता, व्याकुलता और भय आदि उत्पन्न नहीं होने देती। आन्तरिक प्रसन्नता एवं सद्भाव होने से कर्मबंधन अल्प होता है जिससे परलोक में श्रेष्ठ वस्तुओं की उपलब्धि एवं शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति होती है।[14]

शारीरिक दृष्टि से चैत्यवंदन की क्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक प्रक्रिया है। इसमें प्रयुक्त विभिन्न मुद्राएँ हमारे शरीर को लचीला, फुर्तीला एवं स्वस्थ बनाती है। विभिन्न रोगों के निवारण, शारीरिक ग्रन्थि, विटामिन आदि के संतुलन में भी सहायक बनती है। जैसे– पंचांग प्रणिपात मुद्रा को नियमित रूप से करने पर पेट बेडौल नहीं होता तथा उदर विकार, जोड़ो के दर्द आदि में विशेष लाभ होता है। मोटापा नियंत्रित होता है। नाभि स्थान में स्थित रहस्यमयी शक्तियों का मस्तिष्क की तरफ ऊर्ध्वारोहण होता है। इससे मस्तिष्क की कार्यक्षमता विकसित होती है।

भावनात्मक स्तर पर यह भावों का विशोधिकरण करती हैं। इससे क्रोध, ईर्ष्या, आवेग, उत्तेजना आदि वैभाविक गुणों का नियंत्रण होता है। सद्भावों की निरंतरता के कारण मानसिक तनाव, द्वेषपूर्ण स्थिति, कषाय भाव आदि शीघ्र उत्पन्न नहीं होते।

आन्तरिक श्रद्धा, निष्ठा, एकाग्रता एवं संकल्प शक्ति के साथ किया गया परमात्मा का गुणगान, जाप, महिमा सुमिरन आदि भक्ति कर्त्ता के भीतर परमात्म गुणों का जागरण करता है तथा मन को शांत, निराकुल, स्थिर एवं एकाग्र बनाता है।

जैनागमों के अनुसार भावपूर्वक चैत्यवंदन करने वाले जीव का संसार अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परावर्त्तन से कुछ कम रहता है।[15] चैत्यवंदन करने वाले व्यक्ति को तात्कालिक फल के रूप में आत्मिक आनंद, कर्मक्षय एवं आत्मिक शान्ति की अनुभूति होती है तथा पारम्परिक फल के रूप में मोक्ष अथवा सद्गति की प्राप्ति होती है।[16] इस प्रकार चैत्यवंदन मात्र किसी विधि का पालन नहीं अपितु आत्म जागरण एवं उत्थान की विशिष्ट क्रिया है।

भावपूजा का प्रारंभ इरियावहियं सूत्र से ही क्यों?

जिनशासन में प्रत्येक क्रिया का प्रारंभ अथवा समापन लगभग इरियावहियं सूत्र द्वारा किया जाता है। इसी परम्परा का अनुपालन करते हुए जिनपूजा के दौरान द्रव्य पूजा का समापन एवं भावपूजा का प्रारंभ इरियावहियं सूत्र द्वारा किया जाता है। इस सूत्र के माध्यम से जाने-अनजाने में हुई गलतियों एवं दोषों की आलोचना की जाती है। "इरियावहियं" यह स्वीकृति सूत्र है। इसके द्वारा भूतकाल में हुई जीव हिंसा को स्वीकार किया जाता है। "तस्स उत्तरी" यह क्षमा

सूत्र है। गमनागमन, दर्शन-पूजन आदि की क्रिया करते हुए जीव हिंसा के द्वारा हमारी आत्मा मलिन हुई हो तो उसका प्रायश्चित्त तस्स उत्तरी सूत्र के द्वारा ही किया जाता है। अन्नत्थ सूत्र के द्वारा प्रायश्चित्त रूप में किए जा रहे कायोत्सर्ग की मर्यादाएँ एवं रूपरेखा तय की जाती है। कायोत्सर्ग के बाद उच्चारित किया जाने वाला लोगस्स सूत्र मार्ग प्रणेता चौबीस तीर्थंकरों के उपकारों का स्मरण करते हुए उनके प्रति कृतज्ञ भाव अभिव्यक्त करने का सूत्र है।

शास्त्रकारों के अनुसार कोई भी ऐसी क्रिया जिससे स्वरूप हिंसा भी न हो रही हो तो भी उससे पूर्व इरियावहियं करनी चाहिए। भावपूजा या चैत्यवंदन विधि भी एक ऐसा ही विधान है। भावपूजा से पूर्व इरियावहियं करने का एक कारण यह भी है कि भावपूजा से पूर्व द्रव्यपूजा करते हुए, जिनालय आते समय गमनागमन की क्रिया करते हुए अथवा मन्दिर सम्बन्धी कोई कार्य करते हुए किसी भी प्रकार की हिंसा हुई हो तो उसका प्रायश्चित्त भी इसी सूत्र के द्वारा किया जाता है।

शंका– प्रश्न हो सकता है कि जब प्रत्येक क्रिया करने से पूर्व इरियावहियं करनी चाहिए तो फिर द्रव्यपूजा रूप अष्टप्रकारी पूजा से पहले इरियावहियं क्यों नहीं करते?

समाधान– द्रव्य पूजा सावद्य व्यापार युक्त है अर्थात इसमें जीवहिंसा तो निश्चित है। परंतु यह हिंसा मात्र स्वरूप हिंसा होती है अनुबंध हिंसा नहीं। इसी कारण इसे हिंसा की श्रेणी में नहीं गिना जाता। इरियावहियं का विधान जैनाचार्यों ने उस क्रिया से पूर्व किया है जिसमें स्वरूप हिंसा भी न हो। अंग पूजा आदि से युक्त अष्टप्रकारी पूजा करने से पूर्व इसी कारण इरियावहियं करने का विधान नहीं है। भावों की प्रशस्तता एवं उर्ध्वता के कारण भी इस क्रिया में इरियावहियं करने का निर्देश न हो ऐसा हो सकता है।

चैत्यवंदन विधि की पारमार्थिक उपादेयता

पंचाशक प्रकरण में चैत्यवंदन के फल की विवक्षा करते हुए कहा गया है कि भावपूर्वक शुद्ध चैत्यवंदन करने से संसार परिभ्रमण अर्ध पुद्गल परावर्त्तन से भी कम रह जाता है। यद्यपि यह जीव अनंत बार चैत्यवंदन कर चुका है परंतु अनंत बार किया गया चैत्यवंदन अशुद्ध होने से मोक्ष साधना में हेतुभूत नहीं बना।[17]

विधि की महत्ता बताते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि विद्वानों को भी चैत्यवंदन की शुद्ध प्रक्रिया का निरूपण करते हुए अप्रमत्त होकर जिनवन्दना करनी एवं करवानी चाहिए क्योंकि मुग्ध जीव दूसरों को देखकर ही प्रवृत्ति करते हैं तथा चैत्यवंदन करने मात्र से मोक्ष नहीं होता अपितु शुद्ध चैत्यवंदन करने से ही मोक्ष होता है।[18]

विधि का ज्ञान न होने पर यदि कोई विधि विहीन वंदना करता भी हो तो उपासकों की योग्यता अनुसार उन्हें जिनवंदन हेतु अवश्य प्रेरित करना चाहिए। जिस प्रकार रोगी को उसकी बीमारी, अवस्था एवं शारीरिक क्षमता के अनुसार औषधि दी जाती है और तभी वह लाभ करती है। वैसे ही जगत कल्याणकारी वन्दना विधि भी जीवों को उनकी योग्यता के अनुसार बतानी चाहिए।[19]

सामान्य खेती आदि की क्रियाएँ भी यदि विधिपूर्वक की जाएं तो वह शुभ परिणामी होती हैं तो फिर विधिपूर्वक की गई जिनपूजन, वंदन आदि क्रियाएँ लौकिक एवं लोकोत्तर सुख को क्यों नहीं दे सकतीं? इसलिए शुद्ध विधि से चैत्यवंदन आदि की आराधना करनी चाहिए।

आर्य संस्कृति में भावपूजा का महत्त्व

भावपूजा का मुख्य हेतु शुभ भावों को उत्पन्न करना है। एक बार समुत्पन्न शुभ भाव प्राय: नए भावों का सर्जन करते हैं। यह कर्म रूपी शत्रुओं से रक्षा करते हुए मोक्ष मार्ग में दुर्ग (किला) की भाँति आश्रय प्रदान करती है।[20]

सामान्य मंत्र की साधना में भी विधि शुद्धता का पूर्ण ध्यान रखा जाता है अन्यथा वह मंत्र साधना निष्फल हो जाती है। वैसे ही भावपूजा रूप चैत्यवंदन सम्यक विधिपूर्वक करने पर ही शुभ परिणामों को उत्पन्न करता है। भावशुद्धि से रहित द्रव्यशुद्धि या द्रव्यपूजा से कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। भावपूजा के द्वारा आत्मभावों की शुद्धि होती है तथा राग आदि के संस्कार दूर होते हैं। आत्मनिंदा, गर्हा, पापों का प्रायश्चित्त, प्रभु का गुणगान आदि परमात्मा के समक्ष करने से प्रमोद भावों का जागरण होता है।

चैत्यवंदन के द्वारा आठ प्रकार के शुभ परिणामों की उत्पत्ति होती है। इसके माध्यम से जिनेश्वर परमात्मा का पूजन, वंदन, सत्कार, सम्मान, बोधिलाभ (सम्यक्त्व प्राप्ति), उपसर्ग हरण और शासन देवी देवताओं का

स्मरण आदि सहज रूप से होता है। अत: आध्यात्मिक उत्थान एवं मानसिक अभ्युदय हेतु भावपूजा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।[21]

भावपूजा में रखने योग्य विवेक

जो विवेक एवं उपयोग पूर्वक क्रिया करे वह श्रावक कहलाता है। श्रावक का प्रथम धर्म जयणा है। जिनमंदिर में दर्शन-पूजन करते समय श्रावक को पूर्णरूपेण जागरूक रहते हुए जयणा धर्म का पालन करना चाहिए तथा विवेक बुद्धि का परिचय देना चाहिए। जिनमंदिर में कोई भी कार्य इस प्रकार करना चाहिए कि उससे अन्य लोगों के मन में क्लेश भाव उत्पन्न न हो एवं स्वयं के भावों में न्यूनता न आए।

परमात्मा की स्तवन, गुणगान आदि मधुर, गंभीर एवं मंद स्वर में करना चाहिए जिससे अन्य दर्शनार्थियों एवं चैत्यवंदन करने वालों को अंतराय उत्पन्न न हो। यदि मूलनायक भगवान के सामने दर्शन आदि करने वालों की संख्या अधिक हो तो द्रव्यपूजा करने वालों को उसमें अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। चैत्यवंदन करने वालों को भी, परिस्थिति के अनुसार संघ मन्दिर में भक्ति करनी चाहिए। अन्य दर्शनार्थियों को अंतराय उत्पन्न होने से उनके मन में क्लेश, कषाय या द्वेष उत्पन्न हो सकता है तथा परमात्म भक्ति की अखंडधारा में विक्षेप भी आ सकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए जैनाचार्यों ने श्रावकों के लिए गृह मन्दिर का विधान किया है, जिससे कोई भी परमात्म भक्ति में अधिक समय देना चाहे या स्वेच्छा अनुसार परमात्म भक्ति में लीन हो सकता है।

कोई श्रावक प्रभु-भक्ति आदि कर रहा हो तो अकारण उनके सामने से नहीं निकलना चाहिए। जाना जरूरी हो तो विवेक पूर्वक झुककर धीरे से जाना चाहिए।

मन्दिर में स्वयं के मधुर स्वर को प्रदर्शित करने के भावों से कभी भी भक्ति नहीं करनी चाहिए। कोई अन्य स्तुति कर रहा हो तो उससे अधिक उच्च स्वर में नहीं गाना चाहिए। किसी को मन्दिर विधि आदि न आती हो तो किसी अन्य को क्रिया करते हुए बीच में नहीं रोकना चाहिए। या तो उसके साथ मिल जाना चाहिए अथवा उसकी क्रिया पूर्ण होने पर विनम्र भावों से क्रिया करवाने का निवेदन करना चाहिए।

यदि दर्शन-वंदन आदि क्रिया में कोई अन्य अंतराय का निमित्त हो तो हमें उसके प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं लाना चाहिए। भावों की गिरावट कर्म निर्जरा के स्थान पर कर्म बन्धन का हेतु बन जाती है। मन्दिर में जाकर सुन्दर यौवन, तीक्ष्ण बुद्धि, नई पोशाक, मधुर कंठ, ऐश्वर्य आदि का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। स्वयं की प्रशंसा आत्म पतन का मुख्य कारण है। दूसरों के सामने प्रदर्शन के भाव से भक्ति करना हीरे जैसी वस्तु के कोड़ी के मोल बेचने के समान है। अत: अंत:करण की प्रसन्नतापूर्वक परमात्मा का गुणगान करना चाहिए। लोगों की वाहवाही लुटने या वैभव दिखाने के भावों से की गई भक्ति लाभ के स्थान पर हानि का कारण बनती है।

सूत्रोच्चारण के प्रति भी पूर्ण जागरूक रहना नितांत जरूरी है। सूत्रों का अशुद्ध या गलत उच्चारण उसके परिणामों को न्यून कर देता है। कई बार अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है और भावों का जुड़ाव भी सम्यक प्रकार से नहीं हो पाता।

चैत्यवंदन विधि प्रारंभ होने के बाद कई लोग स्वस्तिक आदि बनाते रहते हैं। कुछ लोग अन्यों के द्वारा स्वस्तिक आदि हटाने पर कलह करते हुए नजर आते हैं तो कुछ लोग बनाए हुए स्वस्तिक से खेलते हुए भी नजर आते हैं। इस प्रकार की कोई भी क्रिया करना अविधि एवं अनुचित है। इससे पूर्ण एकाग्रता पूर्वक भावपूजा में जुड़ाव हो ही नहीं सकता। मन्दिर में किसी भी प्रकार के क्लेश युक्त वातावरण में निमित्तभूत नहीं बनना चाहिए।

चैत्यवंदन सम्बन्धी मुद्राओं का भी यथोचित रूप से पालन करना चाहिए। स्वेच्छा अनुसार कभी भी कोई भी मुद्रा नहीं करनी चाहिए। मुद्राओं को गलत ढंग से या प्रमाद भावों से जैसे-तैसे नहीं करना चाहिए। भावपूजा के समय द्रव्यपूजा सम्बन्धी भावों का पूर्णरूपेण त्याग कर देना चाहिए। भावपूजा करते हुए बीच में द्रव्यपूजा हेतु नहीं उठना चाहिए। जैसे– चैत्यवंदन कर रहे हैं और बीच में प्रक्षाल या आरती हो रही हो तो नहीं उठना चाहिए। यदि वह क्रियाएँ करनी हों तो भावपूजा कुछ देर रूककर करनी चाहिए। अन्यथा एक भी कार्य में पूर्ण मनोयोग नहीं जुड़ पाता। भावपूजा करते हुए उसी में पूर्ण मनोयोग एवं तल्लीनता रहे इसका प्रयास अवश्य करना चाहिए।

चैत्यवंदन विधि में उपयोग

पंचाशक प्रकरण के अनुसार चैत्यवंदन करते हुए पाँच स्थानों में उपयोग लगाना चाहिए। वे निम्न हैं[22]–

1. क्रिया– चैत्यवंदन आदि करते हुए सूत्रानुसार मुद्रा का प्रयोग करना। सूत्र बोलते हुए मुहपत्ती का प्रयोग करना तथा उत्तरासन से भूमि की प्रमार्जना आदि करना क्रिया उपयोग है।

इसी प्रकार अन्य क्रियाविधियों का भी जागरूकता पूर्वक पालन करना चाहिए।

2. सूत्रों की पद-संपदा आदि का ध्यान रखना सूत्र उपयोग है।

3. अकारादि वर्ण के उच्चारण की शुद्धता रखना उच्चारण उपयोग है।

4. सूत्रोच्चार के साथ अर्थ का भी चिंतन करना अर्थ उपयोग है।

5. जिन प्रतिमा पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित कर तीनों अवस्थाओं का चिंतन करना जिनप्रतिमा उपयोग है।

इन पाँचों स्थानों पर श्रावक को पूर्ण उपयोग एवं एकाग्रता रखकर क्रिया करनी चाहिए।

कई लोग शंका करते हैं कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपयोग रखने से उपयोग पुनः पुनः परिवर्तित होगा इससे एकाग्रता कैसे रह सकती है?

इसका समाधान आचार्य हरिभद्रसूरि छिन्न ज्वाला के उदाहरण से करते हैं। जिस प्रकार मूल ज्वाला से नई-नई ज्वालाएँ निकलकर मूल ज्वाला से अलग दिखती हैं, फिर भी उन्हें मूल ज्वाला से सम्बद्ध माना जाता है क्योंकि अलग हुई ज्वाला के परमाणु रूपांतरित होकर वहाँ अवश्य रहते हैं, किन्तु दिखलाई नहीं पड़ते हैं। एक घर में रखे गये दीपक का प्रकाश दूसरे घर में दिखलाई देता है। यहाँ मूल घर के झरोखे से निकलकर आया हुआ प्रकाश स्पष्ट दिखलाई नहीं देता है, फिर भी 'प्रकाश निकला है' ऐसा मानना पड़ता है क्योंकि निकले बिना दूसरे घर में प्रकाश जा नहीं सकता है। इसी प्रकार छिन्न ज्वाला का मूल ज्वाला से सम्बन्ध नहीं दिखता, किन्तु उसके परमाणु मूल ज्वाला के पास होने से मूल ज्वाला से सम्बद्ध मानना पड़ता है। इसी प्रकार चैत्यवंदन में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न उपयोग होने पर भी, उपयोग परिवर्तन अति तीव्र गति से होने के कारण एक ही उपयोग दिखलाई देता है, किन्तु शेष उपयोगों के भाव भी वहाँ होते हैं।

एकाग्रचित्त होने पर एक समय में व्यक्ति का उपयोग एक ही विषय में होता है, किन्तु उसके अतिरिक्त अन्य विषयों के परमाणु भी वहाँ मौजूद होते हैं। यह बात अलग है कि वे वहाँ दिखलाई नहीं देते या उनका आभास नहीं होता।

परमात्मा की स्तुति एवं स्तवन क्यों?

जिनपूजा का मुख्य हेतु जिनेश्वर परमात्मा के प्रति बहुमान व्यक्त करना है। स्तुति-स्तवन के माध्यम से परमात्मा का गुणगान करते हुए उनके प्रति पूज्य भाव अभिव्यक्त किया जाता है। अरिहंत परमात्मा का गुणगान करने से पूजक के मन में गुणानुरागी वृत्ति का अभिवर्धन होता है। इसी के साथ परमात्म गुणों का अवतरण एवं उनका सिंचन जीव में सहज रूप से होने लगता है।

परमात्मा के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण को व्यक्त करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम जिन स्तवना ही है। शास्त्रों में इसी को प्रीति अनुष्ठान के नाम से अभिव्यक्त किया गया है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने जिनपूजा, प्रभु-सत्कार आदि को विरति धर्म का प्रारंभ माना है।

जिनेश्वर परमात्मा के गुणगान से मन में जो भावोल्लास पैदा होता है, इससे चित्त की निर्मलता एवं स्थिरता में विकास होता है। श्रद्धा रूपी डोरी के द्वारा परमात्मा से अटूट सम्बन्ध बंध जाता है। यह भक्ति सम्बन्ध भक्त को भगवान बनाता है। परमात्म भक्ति मोक्ष का प्रथम सोपान है, क्योंकि प्रभु आकर्षण से प्रभु प्रीति, प्रीति से श्रद्धा, श्रद्धा से विरति, विरति से गुणश्रेणी और गुणश्रेणी से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जैनाचार्यों ने कई भावयुक्त पद्यों की रचनाएँ की है, जिनके द्वारा परमात्मा के सामने अपने अंतरभावों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। स्तवन के द्वारा परमात्मा के प्रति अपनत्व भाव की प्रतीति होती है तथा मनोभावों को प्रकट करने का भी यह सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। अत: जिनपूजन-दर्शन आदि करते हुए भावोल्लास में वृद्धि करने एवं शुभ भावों में स्थिरता आदि लाने हेतु भाव भरे स्तवनों द्वारा परमात्म स्तवना करनी चाहिए।

स्तवन के शास्त्रोक्त लक्षण

आचार्य हरिभद्रसूरि ने परमात्मा के समक्ष मेघ के समान गंभीर, मधुर स्वर युक्त उत्तम अर्थ वाले, वैराग्यजनक तथा आचार्यों द्वारा रचित स्तवन के द्वारा परमात्म भक्ति करने का निर्देश दिया है।[23]

पंचाशक प्रकरण में यह भी कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव के सद्भूत गुणों का संकीर्तन करने हेतु गंभीर पद और अर्थ से युक्त सारभूत स्तुति-स्तवन आदि का प्रयोग करना चाहिए। शुभ भावों से युक्त होने के कारण वे कर्मरूपी रोग को उपशांत करने में सक्षम हैं।[24]

ऐसे स्तवन अध्यवसायों की विशुद्धि करते हैं तथा आत्मा में संवेग एवं वैराग्य रस को उत्पन्न करते हैं इससे स्वकृत दुष्कृत्यों एवं पापकार्यों का निवेदन तथा पश्चात्ताप होता है।

गीतार्थ आचार्यों के अनुसार परमात्मा के सामने हर कोई स्तवन नहीं गाना चाहिए। स्तवन गाते समय निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए–

1. स्तवन कम से कम सौ वर्ष पुराना होना चाहिए।
2. रचयिता द्वारा निर्मित मूल राग में ही गाना चाहिए।
3. भक्ति भाववाहक एवं भावोल्लास वर्धक होना चाहिए।
4. आधुनिक फिल्मी धुन आदि पर बने हुए भड़कीले भजन नहीं गाने चाहिए।
5. मधुर कंठ से गुणगान करना चाहिए।
6. उपदेशात्मक या कथानक युक्त स्तवन नहीं गाना चाहिए।
7. स्तवन रागबद्ध एवं लयबद्ध होना चाहिए।
8. जिस आचार्य की रचना गा रहे हों उनके प्रति हमारे हृदय में अहोभाव होने चाहिए क्योंकि रचयिता के प्रति सद्भाव होने से उनकी प्रत्येक कृति के प्रति भी हमारे सद्भाव रहते हैं।

इस प्रकार की अनेक मर्यादाओं से युक्त स्तवन परमात्मा के आगे गाना चाहिए।

सौ वर्ष प्राचीन स्तवन की महत्ता क्यों?

प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा के समक्ष सौ वर्ष प्राचीन स्तवन ही क्यों गाना चाहिए?

इसके पीछे कई रहस्यपूर्ण तथ्य छुपे हुए हैं। सामान्यतया प्रत्येक जीवित व्यक्ति के प्रति सभी की समान सद्भावनाएँ नहीं होतीं। वहीं व्यक्ति के देह विलय के बाद उसके दुर्गुणों एवं अपराधों के प्रति उदासीन भाव बन जाता है। सौ वर्षों

के बाद उस व्यक्ति का व्यक्तित्व या तो समाप्त हो जाता है या चमक जाता है। वर्तमान जीवित व्यक्ति के प्रति हमारे सद्भाव हों या न हों परन्तु सौ वर्ष पहले हुए व्यक्ति के प्रति हमारे सद्भाव अवश्य रहते हैं। उस महापुरुष का उज्ज्वल जीवन आदर्श के रूप में हमारे सामने होने से परमात्म भक्ति में भी उच्च भाव जुड़ते हैं।

प्राचीन स्तवन रागबद्ध और तालबद्ध होते हैं। उनमें आज के भौतिक भावों का गुंफन नहीं होता। कहते हैं 'पुरुष विश्वासे वचन विश्वास' इस उक्ति के अनुसार व्यक्ति के प्रति विश्वास जम जाने से उसके वचन पर भी अनायास ही विश्वास जम जाता है। प्राचीन आचार्यों के प्रति सहज में सद्भाव बन जाते हैं। अत: उनके द्वारा निर्मित स्तवन में भी सहज रूप से भाव जुड़ जाते हैं। प्राचीन रचनाओं की शब्द संरचना आदि भी उत्तम होती है। इसी कारण सौ वर्ष से अधिक प्राचीन स्तवन गाने का विधान है ताकि रचयिता से सम्बन्धित किसी प्रकार के दुर्भाव उत्पन्न न हों और परमात्म भक्ति में हमारी तल्लीनता बनी रहे।

आजकल प्राय: देखा जाता है कि पुराने स्तवन नये रागों में गाए जाते हैं जिससे कई बार स्तवन के मूल भावों के विपरीत भाव उन रागों से अभिव्यक्त होते हैं। स्तवन के उदात्त एवं उदार भावों के स्थान पर फिल्मी धुन के चलचित्र हमारे समक्ष उभरने लगते हैं। इसके उपरान्त कोई भी अक्षर अलग-अलग उच्चरित होने के कारण शब्दार्थ भी दुरूह बन जाता है। अत: पुराने स्तवनों में नए रागों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कदाच कोई राग अत्यंत दुरूह एवं अज्ञात हो तो नए राग में उसको जमाते हुए उसके भाव, शब्दोच्चारण आदि का पूर्ण ध्यान रखकर ही उसमें परिवर्तन करना चाहिए।

वर्तमान प्रचलित नए फिल्मी गानों पर भजन रचना न करने का एक मुख्य कारण यह भी है कि नए गानों पर बनी हुई रचना सुनते समय मन पूर्ण रूप से स्तवन के भावों से नहीं जुड़ पाता, गाने में रहे हुए शब्द एवं भावों की स्मृति बार-बार मानस पटल पर आती रहती है। अत: कामोत्तेजक एवं अर्थहीन गानों के सुर मन को शांत एवं भक्तिमय बनाने की अपेक्षा अधिक अशांत एवं दुर्भाव युक्त बनाते हैं। कर्म निर्जरा एवं भावनात्मक उत्थान में ऐसे स्तवन हेतुभूत नहीं बन सकते। ऐसे ही कई कारणों की वजह से जैनाचार्यों ने स्तवन के प्रति कुछ मर्यादाएँ नियुक्त की हैं जिनका पालन करने से परमात्मा का सम्यक रूप से

गुणगान, गुणानुमोदन एवं गुणवर्णन आदि किया जा सकता है तथा स्तवन रचना के पीछे रहे उद्देश्यों की साचवनी हो सकती है।

स्तवन बोलने में रखने योग्य विवेक

स्तवन बोलते समय श्रावक को क्या-क्या विवेक रखना चाहिए? इसका निर्देशन भी जैनाचार्यों ने अनेक स्थानों पर किया है।

- मन्दिर में स्तवन मंद, मधुर एवं सुरीले स्वर में इस प्रकार गाना चाहिए कि किसी अन्य को उससे बाधा न पहुँचे।
- स्तवन गाते समय अपनी राग, गायन कला आदि के प्रदर्शन के भाव कदापि नहीं होने चाहिए।
- स्तवन रचयिता के नाम को छुपाना या बदलना नहीं चाहिए।
- नए फिल्मी रागों के भजन नहीं गाने चाहिए।
- रचयिता के भावों एवं निर्देशित राग आदि को ध्यान में रखकर स्तवन गाना चाहिए।
- स्तवन की शब्द संरचना आदि पर भी ध्यान देना चाहिए।
- घिसेपिटे कैसेट के समान एक ही राग का आलाप रोज-रोज नहीं करना चाहिए।
- जिस रचनाकार की रचना का गान कर रहे हों उनके प्रति भी आदर-बहुमान एवं कृतज्ञ भाव होना चाहिए।
- स्वेच्छा से स्तवन में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए। गाथा आदि क्रमानुसार ही गानी चाहिए।

स्तवन मानसिक शान्ति का अचूक उपाय

परमात्म भक्ति का मुख्य साधन स्तवन है। चाहे भक्ति संध्या हो, चाहे चैत्यवंदन, चाहे उत्सव-महोत्सव हो या आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति का अवसर। स्तवन एक बहुत ही सुंदर माध्यम है, परमात्मा के समक्ष मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने का।

संगीत की एक अनोखी शक्ति है। संगीत केवल शौक या मनोरंजन का ही साधन नहीं अपितु यह तो एक जागृत ऊर्जा है जो कठिनतम कार्यों को भी सिद्ध कर देती है।

शास्त्रीय संगीत की विविध रागों के प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व परिचित है। प्रत्येक राग के विशिष्ट अधिनायक देवी-देवता आदि होते हैं एवं उन रागों की विधिवत साधना से तज्जनित देवी-देवताओं का सान्निध्य प्राप्त होता है। संगीत के विविध स्वर, विविध काल, मौसम आदि के सूचक हैं। जैसे कि दीपक राग को गाने से दीपक स्वयमेव प्रकट हो जाता है और वातावरण में गर्मी बढ़ जाती है, वहीं मेघ मल्हार के गान से बादल मंडराने लगते है और मूसलाधार वर्षा होने लगती है। अरिहंत परमात्मा द्वारा दिए जाने वाले उपदेश में प्रयुक्त मालकोश राग द्वेष-आक्रोश की परम्परा को दूर कर मैत्री भाव की स्थापना में सहायक बनता है।

परमात्मा के दरबार में भी जब स्तवन का गान किया जाता है तो विशिष्ट भक्ति परमाणु सर्वत्र वातावरण में प्रसरित हो जाते है। सूत्रों की भाषा संस्कृत-प्राकृत आदि होने से मन का उतना जुड़ाव हो या न हो परन्तु स्तवन की भाषा को जानने एवं समझने के कारण उसमें भावों का जुड़ाव अवश्यमेव हो जाता है। परमात्मा के प्रति जागृत हुए प्रेम को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन संगीत है।

इतिहास के पन्नों में भी हमें इसके कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। रावण ने प्रभु भक्ति करते-करते तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था। मीरा, कबीर, तुलसी आदि की परमात्म भक्ति एवं रचनाएँ सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

यशोविजयजी, आनंदघनजी और देवचंद्रजी महाराज द्वारा कृत रचनाओं में परमात्मा से प्रीति की विशिष्ट अभिव्यक्ति होती है।

माँ जब बच्चे को लोरी सुनाती है तो बच्चा स्वयमेव ही शांत होकर सोने लगता है। विज्ञान भी संगीत के द्वारा कई मानसिक एवं शारीरिक रोगों के उपशमन का समर्थन करता है। संगीत श्रवण करते ही मानसिक अशांति Depression आदि दूर हो जाते हैं। इस प्रकार संगीत का अचिन्त्य प्रभाव व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में देखा जाता है। सम्बन्धों को मजबूत बनाने एवं मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्तम माध्यम संगीत है।

स्तवन के माध्यम से भक्त भगवान के साथ अपना नैकट्य सम्बन्ध स्थापित करता है। अत: स्तवन परमात्म भक्ति एवं पूजा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जो आत्मविशुद्धि में परम सहायक बनता है।

भावों का जीवन में विशेष महत्त्व होता है। जैसे हृदय के बिना शरीर का कोई महत्त्व नहीं है वैसे ही भावों के बिना क्रिया का कोई मूल्य नहीं है। भाव रहित क्रिया मात्र एक रोबोट के समान है, जो काम तो कर सकता है किन्तु संवेदनाओं को नहीं जान सकता। ऐसी क्रियाएँ मात्र कर्म बंधन में ही हेतुभूत बनती है। वहीं शुद्ध भावना भव विनाश में हेतुभूत बनती है। वर्णित अध्याय में भावपूजा रूप चैत्यवंदन विधि के विविध पक्षों का उल्लेख आराधक वर्ग को शुद्ध क्रिया करने में सहायभूत बने यही प्रयास है।

संदर्भ-सूची

1. *सुविधिनाथ जिन स्तवन, गा. 6*
2. *स्तुति स्तोत्रादि भावतो भावमाश्रित्य भावपूजेत्यर्थः ।*

   धर्मरत्नकरंडक, गा. 45 की टीका
3. *पडिक्कमणे चेइय जिमण, चरम पडिक्कमण सुअण पडिबोहे ।*
   चिइवंदण इय जइणो, सत्त वेला अहोरत्ते ॥
   पडिक्कमओ गिहिणो विहु, सग वेला पंचवेल इयरस्स ।
   पूआसु तिसंझासु अ, होइ ति वेला जहन्नेणं ॥

   चैत्यवंदन भाष्य, गा. 59-60
4. *णवकारेण जहण्णा, दंडग थुइजुयल मज्झिमा णेया ।*
   संपुण्णा उक्कोसा, विहिणा खलु वंदणा तिविहा ॥

   (क) पंचाशक प्रकरण, 3/2

   नमुक्कारेण जहन्ना, चिइवंदण मज्झ दंडथुइजुअला ।
   पण दंड थुइचउक्कग, थयपाणिहाणेहिं उक्कोसा ॥

   (क) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 23

   नवकारेण जहन्ना, दंडक थुई जमल भिमानेया ।
   संपुन्ना उक्कोसा विहि, जुत्ता वंदणा होई ॥

   (क) चैत्यवंदन कुलक, पृ. 98
5. *नमस्कारेण अंजलिबन्धशिरोनमनादिलक्षणप्रणाममात्रेण, यद्वा नमो अरिहंताणमित्यादिना, अथवैक श्लोकादि रूप नमस्कार पाठपूर्वक नमस्क्रियालक्षणेन करणभूतेन, जाति निर्देशाद्बहुभिरपि नमस्कारैः क्रियमाणा जघन्या स्वल्पा, पाठक्रियायोरल्पत्वात्, वन्दना भवतीति गम्यम् ।*

   (क) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञवृत्ति, पृ. 26

तत्थ नवकारेण एग सिलोगोच्चारणओ पणामकरणेण जहण्णा।

(ख) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 27

(ग) श्राद्ध विधि प्रकरण टीका, पृ. 136

6. तथा दण्डकश्च अरिहन्तचेइयाणमित्यादि श्चैत्यस्त्वरूपः, स्तुतिः -प्रतीता, या तदन्ते दीयते, तयोर्युगलं - युग्ममेत एव वा युगलं मध्यमा।

(क) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 26

तहा अरिहंतचेइआणमिच्चाइदंडगं भणित्ता काउस्सग्गं पारित्ता थुई।
दिज्जइति दंडगस्स थुइए अ जुअलेणं-दुगेणं मज्झिमा ॥

(ख) धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 27

तद्दुगतिगेण मज्झा। (ग) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 24

7. संपुण्णा उक्कोसा विहिणा खलु वंदणा तिविहा।

(क) पंचाशक प्रकरण, 3/2

उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा। (ख) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 24

पणदंड थुइचउक्कग, थयपणिहाणेहिं उक्कोसा।

(ग) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 23

तहा सक्कत्थयाइदंडगपंचगथुइचउक्कपणिहाणकरणतो संपुण्णा एसा उक्कोसत्ति।

(घ) धर्मसंग्रह स्वपज्ञ वृत्ति, पृ. 28

8. अन्ने बिंति इगेणं, सक्कथएणं जहन्नवंदणया।
तद्दुगतिगेण मज्झा, उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा ॥

चैत्यवंदन भाष्य, गा. 24

9. अहवावि भावभेया, ओघेण अपुण्बंधगाईणं।
सव्वावि तिहा णेया, सेसाणमिमी ण जं समए ॥

पंचाशक प्रकरण, 3/3

10. इय नवकार खमासमण, इरिय सक्कथयाइ दण्डेसु।
पाणिहाणेसु अ अदुरूत्त, वन्न सोलसयं सीयाला ॥

चैत्यवंदन भाष्य, गा. 27

11. जोगजिणमुत्तासुत्ती, मुद्दाभेएणं मुद्दतियं। चैत्यवंदन भाष्य, गा. 14

12. पंचंगो पणिवाओ थयपाढो होइ जोगमुद्दाए।
वंदण जिणमुद्दाए, पणिहाणं मुत्तसुत्तीए ॥

(क) पंचाशक प्रकरण, 3/17

(ख) चैत्यवंदनभाष्य गा. 18

13. पंचाशक प्रकरण, 3/17

14. पायं इमीए जत्ते ण होइ, इहलोगियावि हाणित्ति।
णिरूवक्कम भावाओ, भावोऽवि हु तीइ छेयकरो ॥

पंचाशक प्रकरण, 3/15

15. इक्कोवि णमुक्कारो, जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स।
संसार सागराओ, तारेइ नरं व नारि वा॥

(क) सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र

जो भावओ इमीए, परोऽवि हु अवड्ढ पोग्गला अहिगो।
संसारो जीवाणं हंदि, पसिद्धं जिणमयम्मि ॥

(ख) पंचाशक प्रकरण 3/32

एक बार प्रभु वन्दना रे, आगम रीते थाय।
कारण सत्ते कार्य नी रे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥

(ग) संभवनाथ जिन स्तवन, गा. 5, देवचंद्र चौबीसी

16. एहनुं फल दोय भेद सुणीजे, अनंतर ने परंपर रे।
आणा पालण चित्त प्रसन्नी, मुगति सुगति सुर मन्दिर रे ॥

सुविधिनाथ जिन स्तवन, गा-4, आनंदघन चौबीसी

17. णो भावओ इमीए, परोऽवि हु अवड्ढपोग्गला अहिगो।
संसारो जीवाणं हंदि, पसिद्धं जिणमयम्मि ॥

पंचाशक प्रकरण, 3/32

18. इय तंतजुत्तिओ खलु, णिरूपियव्वा बुहेहिं एसत्ति।
ण हु सत्तामेत्तेणं, इमीइ इह होइ णेव्वाणं ॥

पंचाशक प्रकरण, 3/33

19. तिव्व गिलाणादीणं, भेसजदाणाइयाइं णायाइं।
दट्ठव्वाइं इह खलु, कुग्गहाविरहेण धीरेहिं ॥

पंचाशक प्रकरण, 3/50

20. मोक्खद्धदुग्ग गहणं, एयं तं सेसगाणवि पसिद्धं।
भवियव्वमिणं खलु, सम्मंति कयं पसंगेणं ॥

पंचाशक प्रकरण 3/16

21. अरिहंत चेइयाणं सूत्र

22. सव्वत्थावि पणिहाणं, तग्गयकिरियाभिहाणवन्नेसु।
अत्थे विसए य तहा, दिट्ठंतो छिन्नजालाए॥

पंचाशक प्रकरण, 3/22

23. गंभीरमहुरसद्दं महत्थजुत्तं हवइ थुत्तं। पंचाशक प्रकरण, गा-58

24. सारा पुण थुइथोत्ता गंभीरपयत्थविरइया जे उ।
सब्भूयगुणुक्कित्तणरूवा, खलु ते जिणाणं तु॥
तेसिं अत्थाहिगमे, णियमेणं होइ कुसलपरिणामो।
सुंदरभावा तेसिं, इयरम्मिवि रयणणाएण॥
जरसमणाई रयणा, अण्णायगुणादि ते समिंति जहा।
कम्मजराई थुइमाइयावि तह भावरयणा उ॥

पंचाशक प्रकरण, 4/24-26

●

अध्याय-5

मन्दिर जाने से पहले सावधान

जिनमन्दिर जाने का मुख्य हेतु है आत्मा को कर्म भार से मुक्त करते हुए शुद्ध परमात्म स्वरूप को प्राप्त करना। इस परमोच्च अवस्था की प्राप्ति के लिए हमारी क्रिया भी उतनी ही उत्कृष्ट होनी चाहिए। कोई भी कार्य तभी सफल हो सकता है जब उसे यथोचित विधि मार्ग का पालन करते हुए एवं उसके लिए निषिद्ध मार्गों से बचते हुए पूर्ण किया जाए। ठीक वैसे ही जैसे Doctor द्वारा दी गई औषधि को सही निर्देशित समय पर विधिपूर्वक लेने एवं अपथ्य एवं निषेधित वस्तुओं का परहेज रखने पर ही वह औषधि रोग निवारण में सहायभूत बनती है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर जैनाचार्यों ने जिनदर्शन के सम्पूर्ण लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से कई कार्यों का निषेध किया है अथवा उनसे बचने का निर्देश दिया है, जिससे आराधना स्थल आत्म-विराधना का कारण न बन जाए। इसी के साथ मन्दिर में करने योग्य आचरण का भी विवेचन जैन ग्रन्थकारों द्वारा किया गया है, जिनके पालन द्वारा शुद्ध रूप से परमात्म पूजन-वन्दन आदि किया जा सकता है। इस अध्याय में उसी का विवेचन किया जा रहा है।

जैन वाङ्मय में आशातना का स्वरूप

आशातना एक जैन पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ विन्यास करते हुए विद्वत वर्ग ने 'आ' का अर्थ समस्त प्रकार से और 'शातना' का अर्थ विनाश किया है अत: जिस कार्य के द्वारा निश्चित रूप से आत्मा का विनाश हो वह आशातना है। शुभ कार्य, ज्ञान आर्जन, उचित व्यवहार आदि महान आत्मगुणों के लाभ में विनाश करने वाला अविनययुक्त आचरण भी आशातना कहलाता है। जिन मन्दिर, गुरू महाराज, तीर्थ दर्शन, सामायिक आदि के विषय में विशेष रूप से आशातनाओं का उल्लेख किया गया है।

चैत्यवंदन महाभाष्य में वर्णित पाँच आशातनाएँ

चैत्यवंदन महाभाष्य में मुख्य रूप से पाँच प्रकार की आशातना का वर्णन किया गया है– **''असायणा अवन्ना, अणायरो, भोग दुप्पणीहाणं, अणुचियवित्ति सव्वा पयत्तेणं।''**

आशातनाएँ पाँच प्रकार की हैं– 1 अवज्ञा 2. अनादर 3. भोग 4. दुष्प्रणिधान और 5. अनुचित वृत्ति।

मन्दिर परिसर में उपर्युक्त पाँच प्रकार की आशातनाओं का विवेक रखते हुए निष्ठापूर्वक इनका त्याग करना चाहिए।

1. अवज्ञा आशातना– वह क्रिया जिसके द्वारा परमात्मा का अविनय या अवज्ञा हो उसे अवज्ञा आशातना कहते हैं। इसके चार प्रकार बताए गए हैं–

पाय पसारण, पल्लत्थिबंधण, बिम्बपिट्ठिदाणं च।
उच्चासण सेवणया जिणपुरओ भण्णइ अवन्नं।।

(i) पाय पसारण– जिन प्रतिमा के सामने या जिनालय परिसर में पैर पसारकर बैठना।

(ii) पल्लत्थिबंधण– हाथ, वस्त्र आदि से पलाठी बांधकर बैठना।

(iii) बिम्बपिट्ठिदाणं– जिन प्रतिमा की तरफ पीठ करना।

(iv) उच्चासण सेवणया– प्रभु से ऊँचे आसंन पर बैठना।

इन सभी क्रियाओं एवं ऐसी ही अन्य क्रियाओं के द्वारा परमात्मा की अवज्ञा आशातना होती है।

2. अनादर आशातना– जिनपूजा आदि करते हुए अविधि का सेवन करना या निम्न स्तर की वस्तुओं का उपयोग करना अनादर आशातना है। इसके निम्नोक्त चार प्रकार हैं–

(i) जारिसना-रिस-वेसो– फटा, कटा, जला, मैला, सांधा हुआ ऐसे वस्त्रों का जिनपूजा में उपयोग करना।

(ii) जहा तहा जम्मि– पूजा एवं दर्शन की विधि का पालन नहीं करते हुए जैसे-तैसे अविधि से पूजा करना।

(iii) तम्मि कालम्मि– उचित एवं शास्त्रोक्त समय पर दर्शन-पूजन नहीं करना।

(iv) पुयाइ, कुणइ सुन्नो– मन, वचन, काया की अस्थिरता पूर्वक एवं

अन्यमनस्क होकर दर्शन-पूजन करना। ये सभी अरिहंत प्रभु की अनादर आशातना कहलाती है।

3. भोग आशातना– जिनालय परिसर में दस प्रकार के भोगों का सेवन करना भोग आशातना कहलाता है। भोग आशातना के दस प्रकार निम्न हैं–

"तंबोल, पाण, भोयण, वाणह, मेहुन्न, सुअण, निट्ठवणं, मुत्तुच्चारं, जुअं वज्जे जिणनाह जगईए।"

अर्थात तंबोल (पान-सुपारी) खाना, पानी पीना, भोजन करना, जूते पहनना, स्त्री भोग करना, थूकना, श्लेष्म फेंकना, पेशाब करना, शौच करना, और जुआ खेलना ये दस प्रकार की भोग वृत्तियाँ जिनमन्दिर में वर्जित हैं और इनका सेवन करना भोग आशातना है।

4. प्रविधान आशातना– राग, द्वेष, मोह अथवा अज्ञान के द्वारा चित्त की जो वृत्तियाँ दूषित होती हैं उन्हें दुष्प्रणिधान कहते हैं। जिन मन्दिर में ये वृत्तियाँ त्याज्य मानी गई हैं।

5. अनुचित वृत्ति आशातना– जिनमन्दिर में नहीं करने योग्य कार्य करना अनुचितवृत्ति आशातना है। इसके चार भेद हैं– 1. विकथा (स्त्री, भोजन, राजा एवं देश सम्बन्धी कथा) करना 2. धरणा देकर बैठना 3. कलह-विवाद आदि करना और 4. घर के काम भी करना या करवाना। ये सभी वृत्तियाँ अनुचित मानी जाती हैं। जिन मन्दिर सम्बन्धी 84 आशातनाएँ अनुचित आशातना है। जिनमन्दिर सम्बन्धी आशातनाओं की चर्चा करते हुए शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार की आशातनाओं की चर्चा की है जिनमें मुख्य रूप से जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट आशातनाओं की चर्चा की है।

1. जघन्य आशातना– जिनमन्दिर के सम्बन्ध में दस जघन्य आशातनाओं का वर्णन शास्त्रकारों ने किया है। पूर्व चर्चित दस प्रकार की भोग आशातनाएँ ही जघन्य आशातनाएँ मानी गई हैं।[1] इन दस आशातनाओं से जिनमन्दिर में अवश्य बचना चाहिए।

2. मध्यम आशातना– शारीरिक अशुद्धि, विधि अशुद्धि अथवा अनुचित आचरण के कारण कई आशातनाएँ जिनमन्दिर में लगती है। जैनाचार्यों ने ऐसी 40 आशातनाओं का उल्लेख किया है।[2] इन्हें मध्यम आशातना कहा जाता है।

1. मंदिर में लघुशंका (मूत्र) करना 2. मंदिर परिसर में बड़ी शंका

(संडास) करना 3. जूते-चप्पल पहनना 4. पानी पीना 5. भोजन करना 6. शयन, करना 7. मैथुन सेवन करना 8. मुखवास (पान-सुपारी आदि) खाना 9. जुआ खेलना 10. थूंकना 11. जूं-मकड़ी आदि निकालना 12. स्त्री कथा, राजकथा, देश कथा, भक्त कथा (भोजन कथा) आदि विकथा करना 13. पालथी मारकर बैठना 14. पैर लंबे करके बैठना 15. लड़ाई करना 16. हंसी मशकरी करना 17. ईर्ष्या करना 18. सिंहासन कुर्सी बाजोट आदि उच्च स्थान पर बैठना 19. देहविभूषा करना 20. छत्र धारण करना 21. तलवार रखना 22. मुकुट आदि पहनना 23. स्वयं के लिए चामर आदि डुलाना 24. उधार द्रव्य लेकर परमात्म भक्ति करना 25. स्त्री आदि के साथ वचन से कामविकार, हास्य-विनोद आदि करना 26. किसी भी प्रकार की क्रीड़ा आदि करना 27. मुखकोश बांधे बिना जिनपूजा करना 28. अशुद्ध, मलिन या अपवित्र शरीर से जिनपूजा करना 29. पूजा में चित्त को अस्थिर करना 30. सचित्त का अत्याग करना 31. अचित्त का त्याग करना 32. उत्तरासंग आदि धारण नहीं करना 33. परमात्म दर्शन होने के बाद भी हाथ न जोड़ना 34. शक्ति होने पर भी परमात्म पूजा नहीं करना 35. भक्ति-बहुमान रहित पूजा करना 36. तुच्छ, अयोग्य पदार्थ चढ़ाना 37. परमात्म निंदा करने वाले को नहीं रोकना 38. देवद्रव्य का विनाश होते देख उपेक्षा करना 39. शक्ति होने पर भी मंदिर जाने हेतु वाहन का प्रयोग करना 40. बड़ों से पहले चैत्यवंदन आदि करना। इस प्रकार यह 40 मध्यम प्रकार की आशातनाएँ बताई गई हैं जिन्हें टालने का प्रयास प्रत्येक श्रावक को करना चाहिए।

जिनमन्दिर सम्बन्धी उत्कृष्ट 84 आशातनाएँ

श्राद्धविधि प्रकरण के अनुसार जिनालय में 1. नाक का मल डालना 2. जुआ, शतरंज चोपट, ताश आदि खेलना 3. लड़ाई-झगड़ा करना 4. धनुष आदि कलाएँ सीखना 5. कुल्ला करना 6. पान-सुपारी खाना 7. पान का पीक मंदिर में थूकना 8. गाली देना 9. संडास, पेशाब आदि करना 10. हाथ, पाँव, मुख आदि धोना 11. बाल सँवारना 12. नाखून निकालना 13. खून गिराना 14. चढ़ाई हुई मिठाई आदि खाना 15. फोड़े-फुन्सी आदि की सूखी चमड़ी उतारकर फेंकना 16. पित्त गिराना 17. वमन करना 18. दाँत गिरने पर मंदिर में डालना 19. आराम करना 20. गाय, भैंस, ऊँट-बकरे आदि का दमन करना 21-28. दाँत, आँख, नाखून, गाल, कान, नाक, सिर एवं शरीर का मैल डालना 29.

भूत-प्रेत को निकालने हेतु मंत्र साधना करना 30. वाद-विवाद करना 31. अपने घर एवं व्यापार के हिसाब लिखना 32. टैक्स अथवा मांग का बँटवारा करना 33. अपना धन मन्दिर में रखना 34. पाँव पर पाँव चढ़ाकर बैठना 35. गोबर के कंडे (छाणे) थापना 36. कपड़े सुखाना 37. सब्जी आदि उगाना या मूंग-मोठ आदि सुखाना 38. पापड़ सुखाना 39. मन्दिर की छत पर बड़ी, पापड आदि सुखाना 40. राजा आदि के भय से मन्दिर में छुपना 41. रिश्तेदार, स्वजन आदि की मृत्यु के समाचार सुनकर रोना 42. विकथा करना 43. अस्त्र-शस्त्र बनवाना 44. गाय-भैंस आदि रखना 45. आग में तपना 46. निजी कार्य के लिए मन्दिर की जगह रोकना 47. पैसे परखना 48. 'निसीहि' कहे बिना अविधिपूर्वक मन्दिर में प्रवेश करना 49-51. छत्र, खड़ाउ, शस्त्र, चामर आदि मन्दिर में लेकर जाना 52. मन को एकाग्र करने का प्रयास नहीं करना 53. शरीर पर तैल आदि विलेपन लगाना 54. फूल आदि सचित्त वस्तुओं को धारण कर मन्दिर में जाना अर्थात मन्दिर के बाहर उनका त्याग नहीं करना 55. हर रोज पहनने के स्वर्ण आदि के आभूषण पहनकर नहीं जाना अर्थात शोभा विहीन होकर मन्दिर जाना 56. परमात्मा के दर्शन होते ही अंजलिबद्ध नमस्कार नहीं करना 57. उत्तरासंग को धारण नहीं करना 58. मस्तक पर मुकुट आदि पहनकर आना 59. सिर पर पगड़ी, साफा आदि बांधना 60. शरीर विभूषा करने हेतु पुष्पहार, माला आदि धारण करना 61. शर्त लगाना 62. लोग हँसें ऐसी चेष्टा करना 63. अतिथि आदि को प्रणाम करना 64. गुल्ली डंडा खेलना 65. तिरस्कार युक्त वचन बोलना 66. लेनदार आदि को मन्दिर में पकड़कर उनसे पैसा मांगना 67. युद्ध क्रीड़ा करना 68. चोटी आदि करके केशों को वहीं डालना 69. पालथी लगाकर बैठना 70. पैर में लकड़ी के चप्पल पहनना 71. पैर लंबे करके या फैलाकर बैठना 72. पैरों की मालिश करना 73. हाथ-पाँव धोने के लिए ज्यादा पानी गिराकर गंदगी करना 74. पैर, वस्त्र आदि में लगी हुई धूल झाड़ना 75. मैथुन क्रीड़ा करना 76. जूं, खटमल आदि निकालकर मन्दिर परिसर में डालना 77. मन्दिर परिसर में भोजन करना 78. शरीर के गुप्त अंगों को ठीक से नहीं ढँकना 79. डाक्टर वैद्य आदि से दवाई लेना, इलाज करवाना 80. व्यापार या लेन-देन करना 81. बिछौना बिछाना 82. पानी पीना अथवा मन्दिर का पानी उपयोग में लेना 83. देवी-देवताओं की स्थापना करना और 84. मन्दिर में रहना।

इस प्रकार मन्दिर सम्बन्धी यह 84 उत्कृष्ट आशातनाएँ मानी गई हैं।[3] मन्दिर परिसर में इनसे बचने का प्रयास करना चाहिए। उक्त वर्णित छोटी-छोटी क्रियाएँ अविवेक या जाने-अनजाने में करने पर भारी कर्म बंधन का कारण बनती हैं। वर्तमान में इनमें से कई क्रियाएँ श्रावक वर्ग द्वारा करते हुए देखी जाती हैं जैसे कि जूते-चप्पल आदि पहनकर या गाड़ी में पूजा करने जाना एक आम बात है। इसी प्रकार मंदिर में मोबाईल का प्रयोग करना भी आम बात है। उत्तरासंग धारण करने की परम्परा तो प्राय: दर्शनार्थी वर्ग में समाप्त हो चुकी है। दर्पण के माध्यम से तिलक लगाते हुए बाल संवारना, देवद्रव्य के सम्बन्ध में उपेक्षा करना, देवी-देवताओं के प्रति बढ़ती श्रद्धा आदि सामान्य लगने वाली क्रियाएँ भी जिनेश्वर परमात्मा की आशातना है। यदि श्रावक वर्ग चाहें तो सहज रूप में इनसे बच सकते हैं। थोड़ा सा विवेक, उपयोग, जागृति एवं श्रद्धा जिनमंदिर सम्बन्धी आशातनाओं से रक्षण कर सकती है।

आजकल मंदिर परिसर में होते विवाह, सामूहिक भोज आदि के आयोजन आदि भी अनेक आशातनाओं के कारण बनते हैं। अत: श्रावक वर्ग को अवश्य सावधान रहना चाहिए।

सावधानी रखने योग्य मुख्य स्थान

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विवेक और सावधानी आवश्यक होती है। Office में छोटी सी असावधानी या लापरवाही से आपकी नौकरी जा सकती है। कर्मचारी वर्ग के आगे अधिकारों का अतिप्रयोग उन्हें आपका विरोधी बना सकता है या हड़ताल (Strike) की परिस्थिति भी उत्पन्न कर सकता है। इसी प्रकार मंदिर सम्बन्धी क्रिया-अनुष्ठान करते हुए भी परमात्मा के साथ-साथ आराधक एवं कर्मचारी वर्ग से भी व्यवहार करते हुए विवेक रखना अत्यावश्यक है। अन्यथा धर्म आराधना के यह स्थान व्यावहारिक हानि के साथ आध्यात्मिक पतन के भी विशिष्ट कारण बन सकते हैं।

साधर्मिक वर्ग से व्यवहार

नगर का मुख्य मन्दिर या संघ मंदिर सम्पूर्ण संघ के आराधना का स्थल होता है। सामूहिक स्थानों पर सामुदायिक नियमों का पालन जरूरी है। मन्दिर में सैकड़ों लोग दर्शन-पूजन करने आते हैं। यदि व्यवहार का उचित ध्यान न रखें

तो मामला वैसे ही बिगड़ सकता है जैसे कढ़ाई भर हलवा मुट्ठी भर रेत या नमक डालने से बिगड़ जाता है। हम जिनमंदिर जाते हैं विषय-कषाय को क्षीण करने, उन्हें दूर करने, परन्तु यदि हमारी यही क्रियाएँ अपने और दूसरे के बंधन का कारण बनें, उग्रता उत्पन्न करें तो हमारा जिनालय जाना निरर्थक हो जाएगा।

नित्य दर्शन-पूजन करने वालों को उदारता एवं सरलता का परिचय देते हुए नए जुड़ने वालों के प्रति अनुराग दिखाना चाहिए तथा उन्हें प्रत्येक कार्य में प्रमुखता देनी चाहिए। मन्दिर में प्रवेश करने के साथ ही प्रत्येक श्रावक को क्रोध, आवेग, आवेश का त्याग कर देना चाहिए। साथ ही अन्यों के ऊपर रौब, हुक्म आदि भी नहीं चलाना चाहिए, क्योंकि जिनमंदिर में सभी समान रूप से परमात्मा के सेवक हैं। मंदिर परिसर में आने के बाद बाह्य मन-मुटाव को विस्मृत करके आना चाहिए। यदि कोई ऐसी परिस्थिति हो तो वहाँ से हट जाना ज्यादा बेहतर है। अन्य दर्शनार्थी एवं पूजार्थियों की संख्या को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक कार्य चाहे स्नान हो या पूजा शीघ्र निपटाना चाहिए जिससे अन्य दर्शनार्थियों को इससे विक्षेप उत्पन्न न हो। जो लोग आराम से पूजा करना चाहते हैं उन्हें अन्य लोगों को कषाय उत्पन्न न हो उसे ध्यान में रखते हुए पूजा के लिए ऐसा समय नियुक्त करना चाहिए जब अन्य दर्शनार्थी कम आते हों अन्यथा शीघ्र पूजा करके बाहर आ जाना चाहिए।

सम्भव है किसी का इस विषय में उपयोग न रहे और वह अधिक समय लगाए और इधर किसी को इतना समय रुकने की अनुकूलता न हो तो कलह या क्लेश करने की अपेक्षा अन्य अग्रपूजा एवं भावपूजा करके चले जाना चाहिए। यदि हमारे पास समय हो तो पीछे आने वालों को पहले लाभ लेने की प्रार्थना करनी चाहिए।

अधिक द्रव्य के उपयोग से या अधिक समय तक परमात्मा के पास खड़े रहने से अधिक लाभ नहीं मिलता अपितु परिणामों की सरलता, ऋजुता एवं उदारता से अधिक लाभ मिलता है। मन्दिर में उपलब्ध जल, पुष्प या केसर आदि कम हो तो संतोष एवं विवेकपूर्वक कम पदार्थ से ही काम निकाल लेना चाहिए। द्रव्य परमात्मा को ही तो अर्पण करना है, हम करें चाहे कोई और अन्य। उससे क्या फर्क पड़ेगा? किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि घर से अन्य लोग पूजा करते हैं तो वो हमारी तरफ से भी कर लेंगे, हम पूजा नहीं भी करें

तो क्या? परमात्मा को द्रव्य तो अर्पित हो ही रहा है। हर जगह एक ही सिद्धान्त लागू नहीं होता।

परिस्थिति सापेक्ष विवेक पूर्वक निर्णय लेना आवश्यक है। नियम के प्रति कटिबद्धता तो होनी चाहिए परन्तु हठवादिता नहीं। पर्व दिनों में जब मंदिरों में बहुत भीड़ होती है। और कई नए लोग एवं युवा वर्ग भी उस समय पूजा करने आते हैं तब रोज नहीं आने वालों को पहले पूजा करने का मौका देना चाहिए।

कई स्थानों पर देखा जाता है कि नित्य प्रक्षाल आदि के समय उपस्थित रहने वाले लोगों का प्रथम पूजा को लेकर आग्रह होता है और यदि कोई उनसे पहले आकर पूजा कर ले तो कुछ लोग लड़ाई भी करने लग जाते हैं।

पूजा करने का मुख्य हेतु आत्म परिणामों की निर्मलता, परमात्मा का गुणगान, वीतरागता का अंगीकरण आदि है। अत: पूजा के निमित्त द्वेष, अहंकार या मान कषाय का वर्धन अनुचित तथा अनुपयुक्त है। पूजार्थी एवं दर्शनार्थी वर्ग को अत्यन्त विवेक पूर्वक परमात्म भक्ति करनी चाहिए जिससे उनकी भक्ति किसी अन्य के लिए कर्म बंधन का कारण न बने।

कर्मचारी वर्ग से कैसा व्यवहार करें?

वर्तमान समय में मंदिरों के अधिकतर कार्य पूजारी, मैनेजर आदि कर्मचारी वर्ग के भरोसे छोड़ दिए जाते हैं। मंदिर सम्बन्धी प्रत्येक कार्य व्यवस्था श्रावक वर्ग की जिम्मेदारी होती है, परन्तु आज श्रावकों में मंदिरों के प्रति इतनी सजगता एवं कार्यनिष्ठा नहीवत ही देखी जाती है। व्यवस्था का लाभ उठाते समय तो लोग मन्दिर पर अपनी सम्पत्ति के समान अधिकार समझते हैं किन्तु कर्तव्य पालन सिर्फ ट्रस्टियों का जिम्मा समझा जाता है। आज इसी बढ़ती शिथिलता के कारण हम नौकरों के अधीनस्थ हो गए हैं। मंदिर में जाते ही कर्मचारी वर्ग पर प्रत्येक व्यक्ति अपना रौब जमाना शुरू कर देता है।

"यह नहीं किया" "वह नहीं हुआ", "अमुक वस्तु कहाँ है?" आदि। कई लोग तो पुजारी आदि पर इस तरह अधिकार जमाते हैं कि मानो वे उनके पर्सनल नौकर हों। वे जब पूजा करने पहुँचें तो पुजारी उनके लिए सामान लेकर तैयार रहना चाहिए। कई लोग तो मंदिर के पुजारी से अपने घर की सब्जी लाने आदि के कार्य भी करवाते हैं। ध्यान रहे कि पुजारी मंदिर का कर्मचारी है और उसके खर्च का वहन भी मंदिर खाते से ही किया जाता है। अत: व्यक्तिगत कार्य

हेतु पुजारी का सहयोग लेने से हमें देवद्रव्य भक्षण का दोष लगता है तथा कर्मचारी वर्ग के मन में भी हमारी छवि धूमिल होती है। जीव मात्र के प्रति संवेदना का संदेश देने वाले परमात्मा के दरबार में उनके सेवकों के प्रति हमारा अमानवीय व्यवहार कैसे उचित हो सकता है?

मंदिर में हम परमात्मा के सेवक बनकर जाते हैं। उस दरबार में मालिक के समान व्यवहार करना श्रावकाचार के प्रति अजागरूकता और लापरवाही का सूचन है। इससे हृदय में रहे प्रेम, करुणा, सौहार्द, मैत्री आदि के भाव क्षीण होते हैं और शिथिलता बढ़ती है। यदि इस संबंध में सावधानी बरती जाए तो मंदिर में कदाच किसी प्रकार की अव्यवस्था भी होगी तो हमें क्रोध नहीं आएगा, नौकरों पर हुक्म चलाने की बात मन में ही नहीं आएगी। अन्यथा प्रत्येक कार्य के लिए उन पर मोहताज रहना पड़ता है। यदि पुजारी ने अंगलुंछन नहीं किया है या केसर घोटकर तैयार नहीं किया है तो हम दस मिनट इधर-उधर घूमकर उसका इंतजार करते हैं, परन्तु स्वयं उस कार्य को करने की चेष्टा नहीं करते। इससे परमात्मा के प्रति श्रद्धा में कभी पूर्णता नहीं आती। मन्दिरों में अव्यवस्था एवं चोरी आदि की अवांछित घटनाएँ भी इसी कारण बढ़ रही हैं। अत: मन्दिर कर्मचारियों के साथ हमारा व्यवहार भद्रतापूर्ण एवं सम्मानजनक होना चाहिए। इससे कर्मचारी वर्ग के मन में परमात्मा एवं परमात्म भक्तों के प्रति अनुराग तो बढ़ेगा ही। इसी के साथ जैन धर्म एवं जैन धर्म अनुयायियों की अच्छी एवं नैतिक छवि भी समाज के अन्य वर्ग के समक्ष बनेगी।

पदाधिकारियों द्वारा रखने योग्य विवेक

हमारे पूर्वजों ने मंदिरों को सुव्यवस्थित एवं संरक्षित रखने की अपेक्षा से मन्दिरों को शुद्ध सार्वजनिक संपत्ति माना, जिससे प्रत्येक श्रावक उसे अपना समझकर उसका लाभ उठा सके तथा उसकी व्यवस्था एवं सुरक्षा में सहायक बन सकें। करोड़ों का खर्च कर मंदिर निर्माण करने वालों का भी उस पर कोई आधिपत्य नहीं रहता। चाहे मंदिर की व्यवस्था संभालने वाले पदाधिकारी हों या मंदिर की व्यवस्था में अर्थ सहयोगी दान-दाता सभी को अपने आप को भाग्यशाली मानकर परमात्म भक्ति के महान लाभ को अर्जित करना चाहिए।

वर्तमान समाज व्यवस्था में पदाधिकारी मंदिरों पर अपना एकाधिकार समझते हैं तथा सामान्य जनता मंदिर व्यवस्था को मुखिया वर्ग का कर्तव्य

समझकर उसे गौण कर जाती है। आज मंदिर सम्बन्धी कार्य व्यवस्था पुजारियों के भरोसे तथा अर्थव्यवस्था पदाधिकारियों के भरोसे रखकर कुछ लोग टीका-टिप्पणी करके मात्र आनंद लेते हैं तो कुछ लोग मूक दर्शक बन सब कुछ देखते रहते हैं। इन परिस्थितियों में पदाधिकारियों का दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। पदव्यवस्था का गठन मंदिरों के सुसंचालन तथा देवद्रव्य आदि के सम्यक उपयोग एवं संचय हेतु किया जाता है। अत: पदाधिकारी वर्ग में जागरूकता, गंभीरता, कर्तव्यनिष्ठा, नि:स्वार्थ वृत्ति आदि परमावश्यक है। पदाधिकारियों को अपने पद का अभिमान या अन्य स्थानों पर उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। आजकल व्यक्ति अधिक से अधिक स्थानों का ट्रस्टी बनना चाहता है ताकि समाज में उसका वर्चस्व (Reputation) बढ़े। परन्तु क्या वह अपने दायित्वों के प्रति भी उतना ही जागरूक है? युवा वर्ग का मानना है कि पदाधिकारी लोग अपना पद छोड़ना ही नहीं चाहते, इसी कारण युवा वर्ग धर्म के क्षेत्र में अपनी नई सोच एवं तकनीकों के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं ला सकते। वहीं अनुभव प्राप्त मुखिया वर्ग यह मानता है कि यदि अल्पज्ञ या स्वार्थी लोगों के हाथ में मन्दिरों की बागडोर चली जाएगी तो महा अनर्थ हो जाएगा। यदि वे लोग नहीं संभाल पाए तो व्यवस्था गड़बड़ हो जाएगी, समाज का पतन होगा तथा देवद्रव्य की भी हानि होगी। इसलिए न चाहते हुए भी वे पदों पर आरूढ़ हैं। किन्तु उनके जाने के बाद भी तो वह परिस्थिति बनेगी ही, अत: बेहतर तो यही होगा कि अपने सामने ही समाज के लिए योग्य कर्णधार उन्हें तैयार कर देने चाहिए। युवा वर्ग को आगे लाने का प्रयास करना चाहिए। पद पर आसीन होने से कोई योग्य नहीं कहलाता है तथा पद छोड़ देने से समाज में वर्चस्व कम होता हो ऐसा नहीं है अपितु दूसरों को पद सौप कर उन्हें योग्य बनाने से समाज की नींव अधिक मजबूत होती है। अत: उन्हें उदार बनकर समाज के उत्थान में सहायक बनना चाहिए।

मुखिया बनना कभी लक्ष्य नहीं होना चाहिए। यदि समाज आग्रहपूर्वक जिम्मेदारी दे भी दें तो उसे प्रभु चरणों की सेवा समझकर नि:स्वार्थ एवं निरभिमान भाव से उसका निर्वाह करना चाहिए।

आज मंदिरों में बढ़ते देवद्रव्य की उचित व्यवस्था भी एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। ट्रस्टी वर्ग को मात्र बैंक बैलेंस बढ़ाने की अपेक्षा वर्तमान

समयानुसार द्रव्य को जीर्णोद्धार, तीर्थ रक्षा आदि कार्यों में अवश्य उपयोग करना चाहिए। मंदिरों का पैसा बैंक आदि में जमा नहीं करवाना चाहिए। यदि कहीं कारणवश जमा हो तो ट्रस्टियों को उसके क्रेडिट आदि के आधार पर लोन नहीं उठाना चाहिए। देवद्रव्य का व्यय गुरु भगवंतों के निर्देशानुसार आगमोक्त रीति से करना चाहिए।

पदाधिकारियों का आचरण भी समाज के लिए प्रेरक होना चाहिए। अन्य कई स्थानों पर उनके आचरण से ही सम्पूर्ण समाज की छवि बनती है। ट्रस्टी बारह व्रतों का धारक होना चाहिए और यदि सभी व्रत धारण न कर सके तो भी कम से कम एकाध व्रत अवश्य ग्रहण करना चाहिए। रात्रि भोजन, अभक्ष्य आदि का त्याग तो अवश्य करना ही चाहिए।

जिनपूजा, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि श्रावक के आवश्यक कर्तव्यों का पालन एवं परिवार में सुसंस्कारों का निर्माण करते हुए समाज को भी धर्म मार्ग पर प्रेरित करना चाहिए। साधु भगवंतों के समागम का अधिक से अधिक लाभ लेना चाहिए तथा उनकी समुचित व्यवस्था करने का प्रयास भी करना चाहिए।

चढ़ावे आदि की रकम स्वयं को जल्दी से जल्दी जमा कर अन्य लोगों से भी जल्दी प्राप्त कर लेनी चाहिए। यदि कोई बोली की राशि देने में विलम्ब करे तो उनके साथ किसी भी प्रकार का अभद्र व्यवहार नहीं करना चाहिए। पारस्परिक वैर-विरोध को धर्म क्षेत्र में नहीं लाना चाहिए। मांसाहार, मदिरा,जुआ आदि सप्तव्यसनों का सेवन तो कदापि नहीं करना चाहिए। डिस्को, क्लब आदि धर्म प्रध्वंसक प्रवृत्ति वाले स्थानों पर जाने से बचना चाहिए।

पदाधिकारियों को अपना कुछ समय नियत रूप से मंदिर की व्यवस्था हेतु देना चाहिए। पेढ़ी पर बैठकर बही-खाते आदि की जाँच करनी चाहिए। मैनेजर या कर्मचारियों के भरोसे मंदिर का हिसाब-किताब छोड़कर मात्र पेढ़ी पर बैठकर बातें नहीं करनी चाहिए।

पदाधिकारियों को अपनी व्यवस्था के अनुसार उत्सव-महोत्सव आदि का आयोजन नहीं करना चाहिए। समस्त आयोजन संघ-समाज की व्यवस्थानुसार करना चाहिए। अनुष्ठानों के आधार पर समाज में मतभेदों का पोषण मुखिया वर्ग को नहीं करना चाहिए।

मंदिर के कर्मचारियों का चयन भी छानबीन पूर्वक करना चाहिए। अभक्ष्य

भोजी, मांसाहारी, मदिरा सेवी कर्मचारियों को मंदिरों में नहीं रखना चाहिए। मंदिरों में प्रयुक्त होने वाले कीमती सामान ट्रस्टियों को अपने अधिकार में रखना चाहिए।

मंदिरों में पूजन पद्धति आदि के विषय में किसी परम्परा विशेष का आग्रह पदाधिकारियों को नहीं रखना चाहिए। इस प्रकार मंदिर के साथ संघ-समाज को योग्य दिशा मिले, किसी के मन में जिन धर्म के प्रति हीन भाव उत्पन्न न हो उस तरह पदाधिकारियों को वैर-विरोध का त्याग करते हुए विवेक पूर्वक समस्त कार्य करने चाहिए।

जिनपूजा में वरख का प्रयोग करना चाहिए या नहीं?

जैन मन्दिरों में आंगी आदि हेतु वरख का प्रयोग पूर्व समय से होता रहा है। भारतीय परम्परा में मिठाईयों को सजाने एवं पूजा आदि में भी इसका प्रयोग बहुतायात में होता है।

वरख सोने या चाँदी की एक पतली पन्नी होती है। सोना और चाँदी उत्तम कोटि के एवं शुद्धिकारक द्रव्य माने जाते हैं। इसी कारण आंगी रचाने में इनका प्रयोग होता है।

कई लोगों का मानना है कि वरख निर्माण एक हिंसक प्रवृत्ति है। वरख के निर्माण में बछड़ों के ताजे चमड़े का प्रयोग होता है अत: अहिंसा प्रधान जैन धर्म में इसका प्रयोग कैसे उचित हो सकता है?

यह बात सत्य है कि किसी समय में वरख का निर्माण इस प्रक्रिया से होता था। 'इलस्ट्रेटेड विकली ऑफ इंडिया' में मेनका गांधी एवं कई अन्य शोध-कर्ताओं के अनुसार वरख एक जानवर स्रोत नहीं है। परन्तु बैल की आंत के एक महत्त्वपूर्ण अंग से इसका निर्माण किया जाता है, जो कि कसाई खाने से प्राप्त होता है। बैल की आंत के इस हिस्से को बड़ी निर्ममता पूर्वक वरख बनाने हेतु ही निकाला जाता है।

चाँदी के पतरे से पतली पन्नी बनाने हेतु चमड़े के बीच पत्तरे को रखकर आठ घंटों तक उसे हथौड़े से पीटा जाता है ताकि वह अपेक्षित मोटाई को प्राप्त कर सके। उसके बाद उस पतली सी पन्नी को उतारकर कागज के टुकड़ों के बीच रखकर बेचा जाता है। यद्यपि चमड़े का प्रयोग धोकर किया जाता है परन्तु कहीं न कहीं खून का अंश आदि उसमें लगे रहने की पूर्ण संभावना रहती है और वह

उस वरख में भी लग सकता है। अत: जिनपूजा आदि में इसका प्रयोग कैसे हो सकता है? इस कारण भी कई लोग वरख को मांसाहारी पदार्थ मानकर उसे वर्जित करते हैं।

उपरोक्त तथ्य पूर्ण रूपेण सत्य है परंतु चमड़े पर निर्माण होने से वरख मांसाहारी पदार्थ नहीं हो जाता। कई आचार्यों एवं विशेषज्ञों का मत है चाँदी अशुद्धि को ग्रहण नहीं करती अत: वरख मांसाहारी पदार्थ नहीं है।

वर्तमान में अधिकतर बड़ी कम्पनियों में वरख का निर्माण मशीनों द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान की बढ़ती वरख की खपत को प्राचीन रीति से पूर्ण करना असंभव है। निर्माण प्रक्रिया ही बदल जाने से वरख को निषिद्ध करने का कारण ही समाप्त हो जाता है।

आज भी कुछ स्थानों पर प्राचीन प्रक्रिया से वरख बनाया जाता है। इस विषय में श्रावक खरीदते समय अपना उपयोग रखें तो इस दोष से बचा जा सकता है। कई लोगों का कहना है कि वरख के अति प्रयोग का दुष्प्रभाव मूर्तियों पर विशेष रूप से देखा जा रहा है। मूर्तियों की चमक कम हो गई है एवं पत्थर में खुरदरापन आदि आने लगा है। कई बार वालाकुंची का प्रयोग मात्र वरख को निकालने हेतु करना पड़ता है। अत: मूर्तियों पर वरख का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

"अति सर्वत्र वर्जयेत्" किसी भी वस्तु का अतिप्रयोग हानिकारक होता है। आंगी का विधान मूढ़ एवं प्रथम श्रेणी के जीवों को आकर्षित करने हेतु किया गया है। परमात्मा की आंगी विविध द्रव्यों से बनाई जाती है परन्तु वरख द्वारा निर्मित आंगी का एक विशिष्ट आकर्षण एवं प्रभाव होता है। आंगी को देखकर चित्त में परमात्म भक्ति के विशिष्ट भाव उमड़ते हैं। परमात्मा जो तीन लोक के नाथ हैं, समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ जिनके चरणों में आलोडन करती हैं, उन्हें विशिष्ट बहुमूल्य पदार्थों से ही अलंकृत करना चाहिए। अत: आंगी में वरख का उपयोग सर्वथा उचित है। आजकल मिलावट वाले वरख भी मार्केट में आने लगे हैं जिनकी वजह से मूर्तियों पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है, अत: वरख खरीदी के समय श्रावकों को सचेत रहना चाहिए।

मूर्तियों को अन्य पदार्थों के हानिकारक प्रभावों से बचाने हेतु आंगी को खोखे पर बनाना चाहिए। केसर आदि का प्रयोग भी मौसम के अनुसार करना चाहिए।

इस प्रकार वर्तमान प्रचलित वरख निर्माण की विधि को देखते हुए आंगी आदि में वरख का प्रयोग कर सकते हैं। जहाँ तक मूर्तियों पर इनके दुष्प्रभाव की बात है तो उस हेतु श्रावकों को अवश्य सावधान हो जाना चाहिए। इसी के साथ आंगी के बढ़ते हुए प्रचलन के विषय में भी विज्ञ श्रावकों को विचार अवश्य करना चाहिए।

जिनपूजा श्रावक वर्ग की एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण क्रिया है। इस पंचम काल में जिनपूजा एवं जिनभक्ति को ही मुक्ति का परम आधार माना है। परंतु यह क्रियाएँ मुक्ति का आधार तब ही बन सकती है जब इन्हें समुचित रूप से किया जाए। इनमें की गई छोटी सी अविधि या प्रमादाचरण इन्हें आराधना के स्थान पर आशातना का कारण बना देता है। चर्चित अध्याय के माध्यम से श्रावक वर्ग को जिन मन्दिर में आचरण योग्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यों से परिचित करवाने का लघु प्रयत्न किया है ताकि हमारी क्रियाएँ सम्यक रूप में मुक्ति साधना में सहायक बन सकें।

संदर्भ-सूची

1. *तंबोल पाण भोयण, पाणहत्थीभोग सुअण निट्ठिवणो।*
   मुतुच्चारं जूअं, वज्जइ जिण मन्दिर स्संतो॥
   (क) चैत्यवंदन कुलक, गा. 14, चैत्यवंदन कुलक, पृ. 99
   (ख) श्री श्राद्धविधि प्रकरण, पृ. 172
2. *वही, पृ. 172-173*
3. *(क) वही, पृ. 173*
   (ख) निट्ठीवणमिति निष्ठोवन। चैत्यवंदन कुलक, पृ. 214

●

अध्याय-6

पूजा उपकरणों का संक्षिप्त परिचय एवं ऐतिहासिक विकास क्रम

किसी भी कार्य की सिद्धि हेतु उसमें प्रयुक्त द्रव्य सामग्री का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि साधनों की अनुपस्थिति में साधना की सम्पूर्णता संभव नहीं है और उसके अभाव में कार्य की सफलता नामुमकिन है। प्रत्येक कार्य के लिए कुछ आवश्यक साधन-सामग्री का विधान तत्सम्बन्धी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। जैसे सामायिक की साधना करने हेतु आसन, चरवला, मुँहपत्ति को आवश्यक माना है। पंच महाव्रतधारी साधुओं के लिए रजोहरण, कंबली, आसन, पात्र आदि कुछ आवश्यक साधन माने गए हैं। खाना बनाने हेतु चुला या stove, gas cylinder, तवा, बर्तन आदि कुछ आवश्यक उपकरण माने गए हैं। इसी प्रकार जिन मन्दिर एवं जिनपूजा उपयोगी सामग्री का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यद्यपि आगमकाल से अब तक इसमें बहुत से परिवर्तन आए हैं, कई साधनों का प्रयोग बढ़ गया है तो कई उपकरण अब मात्र ग्रन्थों का विषय बनकर रह गए हैं। इनमें से कई उपकरणों से हम परिचित हैं तो कई उपकरण ऐसे हैं जिनका हम नित्य प्रयोग तो करते हैं किन्तु उसके स्वरूप के विषय में अनभिज्ञ है। इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखकर इस अध्याय में जिनपूजा सम्बन्धी उपकरणों का स्वरूप एवं उनकी ऐतिहासिकता के विषय में अनुशीलन किया जा रहा है।

पूजा उपकरणों का स्वरूप एवं उनका प्रयोजन

जिनपूजन में सहयोगी सामग्री को हम सामान्य रूप से पूजा उपकरण नाम से जानते हैं। उपकरण यह एक जैन पारिभाषिक शब्द है। धर्मसाधना से जुड़े क्रियानुष्ठानों में आवश्यक सामग्री उपकरण कहलाती है। इनमें भी जो वस्तु मात्र एक बार ही उपयोग की जा सकती है वह उपादान कहलाती है तथा जिनका उपयोग बार-बार किया जाए वे उपकरण कहलाते हैं। वर्तमान प्रचलित अनेकश:

पूजा उपकरणों का स्वरूप इस प्रकार है–

मोरपिच्छी (लोमहस्तक)– मोर के पंखों से निर्मित एक प्रकार का छोटा झाड़ू जिससे जिनबिम्ब की प्रमार्जना की जाती है, इसे मोरपिच्छी या लोमहस्तक कहते हैं। जिनबिम्ब पर रहे हुए फूल आदि निर्माल्य, वासक्षेप, सूक्ष्म जीव-जन्तु आदि दूर करने के लिए मोरपिच्छी का प्रयोग किया जाता है। पूर्व काल में इसे लोमहस्तक कहा जाता था। मोरपंख अत्यंत मृदु एवं कोमल होने के कारण जीवों को पीड़ा पहुँचाए बिना उन्हें दूर करता है तथा किसी भी प्रकार की बाह्य अशुद्धि को ग्रहण नहीं करता। दिगम्बर मुनियों के द्वारा रजोहरण के स्थान पर मयूरपिच्छीका ही प्रयोग किया जाता है।

पूंजनी– ऊन या सुतली से निर्मित छोटा सा चरवला या झाड़ू जैसा उपकरण पूंजनी कहलाता है। जिन प्रतिमा के आस-पास पबासन आदि की सफाई एवं जीवों की जयणा हेतु पूंजनी का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रयुक्त ऊन आदि रेशमी एवं कोमल होने से जीवों की जयणा में सहायभूत बनते हैं।

संमार्जनी– गर्भगृह एवं रंगमंडप आदि के भूमितल या जमीन की प्रमार्जना के लिए जिस कोमल झाड़ू का प्रयोग किया जाता है उसे संमार्जनी कहते हैं। आम बोल-चाल की भाषा में इसे झाड़ू कहा जाता है। भूमि प्रमार्जन हेतु प्रयोग किया जाने वाला यह झाड़ू कोमल एवं मृदु होना चाहिए ताकि चींटी आदि जीवों को जयणा पूर्वक हटाया जा सकें।

वासक्षेप मंजूषा– प्रात:काल में जिन प्रतिमा का प्रक्षाल करने से पूर्व वासचूर्ण या गंध से जिनपूजा की जाती है। उस वासचूर्ण को रखने हेतु जिस डिब्बी का प्रयोग किया जाता है उसे वासक्षेप मंजूषा कहते हैं। वासक्षेप रखने हेतु प्लास्टिक की डिब्बी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। चाँदी या सोने से निर्मित छोटी-छोटी डिब्बी मंजूषा के रूप में उपयोग में लेनी चाहिए।

भृंगार कलश– सोने-चाँदी आदि से निर्मित नाली युक्त उपकरण को कलश या भृंगार कलश कहा जाता है। इसका प्रयोग जल, दूध, पंचामृत आदि से परमात्मा का अभिषेक करने हेतु करते हैं। इसे नालीदार कलश, भृंगार कलश या कलश भी कहा जाता है।

वृषभ कलश– वृषभ आकृति का चाँदी आदि से निर्मित उपकरण जो कि कलश रूप में प्रयुक्त किया जाता है उसे वृषभ कलश कहते हैं। स्नात्र पूजा के

दौरान सौधर्मेन्द्र द्वारा वृषभ रूप धारण कर परमात्मा के अभिषेक करने का वर्णन करते समय इसका प्रयोग किया जाता है।

तांबा कुंडी– तांबे का कुंडीनुमा एक बरतन विशेष तांबा कुंडी कहलाता है। परमात्मा का अभिषेक जल एकत्रित करने हेतु तथा शान्ति स्नात्र आदि करते समय इसी में कलश आदि रखा जाता है।

अंगलूंछन वस्त्र– सूती मलमल का मुलायम प्रमाणोपेत कपड़ा जिससे जिनप्रतिमा का लुंछण किया जाता है उसे अंगलूंछण वस्त्र कहते हैं। जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है इस वस्त्र को अभिषेक करने के बाद जिनप्रतिमा पर रहे हुए जल को सुखाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

पाटलूंछण– पबासन आदि को पोछने के लिए प्रयोग में लिए जाने वाला मोटा वस्त्र पाटलूंछण कहलाता है। मुख्यतया नेपकिन आदि का प्रयोग पाटलूंछण के रूप में होता है।

वालाकुंची (खसकुंची)– वाला या खस नामक सुगंधित घास अथवा उसकी सुगन्धित जड़ों को एकत्रित करके छोटा झाड़ूनुमा बनाया गया उपकरण वालाकुंची या खसकुंची कहलाता है। इसका प्रयोग जिनप्रतिमा पर लगे हुए केशर, वरख, चिकनाहट आदि को दूर करने के लिए किया जाता है। उपयोग करने से पूर्व इसे 10 मिनट तक पानी में भिगाकर रखना चाहिए।

शलाका– चाँदी या तांबे की पतली तार शलाका कहलाती है। संधि स्थान या छोटी गहरी जगह जहाँ से पानी सोंखना सम्भव नहीं होता वहाँ पर शलाका द्वारा वस्त्र डालकर पानी को सुखाया जाता है।

आदर्श (दर्पण)– Frame किया हुआ छोटा काँच या दर्पण आदर्श कहलाता है। जिनप्रतिमा के तेजोदिप्त मुखमंडल एवं आँखों को साक्षात न देख सकने के कारण उसे दर्पण में देखा जाता है। परमात्मा को हृदय में स्थापित करने के प्रतीक रूप में भी दर्पण के द्वारा परमात्मा के दर्शन किए जाते हैं। दर्पण पूजा के समय इसका प्रयोग किया जाता है।

तालवृन्त (पंखी)– चाँदी आदि धातु से निर्मित छोटी पंखी तालवृन्त या पंखी कहलाती है। परमात्मा के समक्ष पंखी आदि करके 56 दिक्कुमारियों का अनुकरण किया जाता है। इसी के साथ विनय, बहुमान एवं सेवकत्व भावों की अभिव्यक्ति की जाती है।

चामर– ऊपर में चाँदी आदि की डंडी एवं नीचे में सफेद प्लास्टिक जैसे धागों के गुच्छक वाला उपकरण चामर कहलाता है। परमात्मा के समक्ष नृत्यपूजा करने एवं चामरयुगल रूप परमात्मा के अतिशय की अभिव्यक्ति हेतु इसका प्रयोग किया जाता है।

थाली– पूजा उपयोगी सामग्री जैसे– पुष्प, कटोरी आदि रखने के लिए उपयोग किया जाने वाला उपकरण थाली कहलाता है। भिन्न भिन्न साइज की थालियों का प्रयोग भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए होता है। जैसे कि पूजा करने हेतु कटोरी आदि रखने के लिए छोटी थाली एवं पंच धातु की प्रतिमाओं एवं नवपद गट्टाजी आदि को एक जगह से दूसरी जगह पर लाने-ले जाने तथा आरती आदि करने हेतु बड़ी थालियों का उपयोग होता है।

तासली (कटोरा)– चाँदी आदि की बड़ी कटोरी, कटोरा या बड़ा Bowl तासली कहलाता है। घिसा हुआ केशर, बरास आदि रखने के लिए इसका प्रयोग होता है।

कटोरी– परमात्मा की विलेपन पूजा हेतु केसर, बरास आदि रखने के लिए उपयोगी चाँदी आदि की छोटी वाटकी कटोरी कहलाती है।

पुष्प चंगेरी (पुष्पछाब)– चाँदी, बाँस आदि से निर्मित पुष्पों को रखने की टोकरी या पात्र पुष्प चंगेरी कहलाता है। पूजा हेतु उपयोगी पुष्प इसमें रखे जाते हैं। इसे फूल छाब भी कहते हैं।

सिंहासन– चाँदी, अन्य धातु या काष्ठ आदि से निर्मित राज्य सिंहासन के समान छोटी चौकी सिंहासन कहलाती है। कहीं-कहीं पर समवसरण की प्रतिकृति रूप त्रिगड़े को भी सिंहासन कहते हैं। यदि किसी मन्दिर में त्रिगडा नहीं हो तो सिंहासन पर भी स्नात्र पूजा पढ़ाई जाती है। मुख्य रूप से इसका प्रयोग पंच धातु प्रतिमाओं की पूजा, अंगरचना या पूजन आदि में उन्हें विराजमान करने हेतु किया जाता है।

छात्र– जिनप्रतिमा के ऊपर छत्रि के समान सोने या चाँदी का अर्ध गोलाकार उपकरण छत्र कहलाता है। समवसरण में साक्षात अरिहंत परमात्मा के ऊपर तीन छत्र होते हैं। उसी की प्रतिकृति रूप जिन प्रतिमा के ऊपर भी एक या तीन छत्र लटकाए जाते हैं। यह परमात्मा के त्रिलोक पूज्यता प्रतीक माने जाते हैं।

धूपकडुच्छुय (धूपदानी)– रजत, पीतल आदि से निर्मित धूप रखने का

स्टैण्डयुक्त कटोरी वाला विशेष उपकरण धूपकडुच्छुय या धूपदानी कहलाता है। परमात्मा के समक्ष धूप पूजा करने हेतु एवं प्रज्वलित धूप को रखने हेतु इसका प्रयोग होता है।

घंटा– अभिषेक , आरती आदि के समय तथा जिनदर्शन से प्राप्त आनंद की अभिव्यक्ति हेतु बजाया जाने वाला पीतल का उपकरण विशेष घंटा कहा जाता है। प्राय: सभी धर्म के मन्दिरों में घंटा होता है। इसकी ध्वनि को विशेष प्रभावी माना जाता है।

दीप पात्र– दीपक रखने का उपकरण विशेष। जिसमें घी डालकर दीपक प्रकट किया जा सकता है उसे दीप पात्र कहा जाता है। यह दीपक पूजा हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

मंगलदीपक पात्र– हाथों में पकड़ सकें ऐसा स्टैण्ड युक्त दीपक जो मंगल दीपक करते समय प्रयुक्त होता है उसे मंगल दीपक पात्र कहते हैं। आरती के बाद मंगलदीपक के समय इसका प्रयोग होता है।

आरात्रिक पात्र (आरती)– पाँच दीपक या 108 दीपक वाला स्टैण्ड युक्त विशेष उपकरण आरात्रिक पात्र कहलाता है। आरती के समय इसका प्रयोग किया जाता है।

कंदील वाला दीपक– चारों तरफ कांच लगा हुआ दीपक रखने का विशेष उपकरण, कंदील वाला दीपक कहलाता है। हवा के वेग से दीपक बुझ न जाए इस हेतु इसका प्रयोग किया जाता है। जैन मन्दिरों में इसी प्रकार के दीपक विशेष रूप से प्रयुक्त किए जाते हैं।

झालर– कांसी की थाली एवं लकड़ी का छोटा डंडा या बेलन जो थाली बजाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इन दोनों का सम्मिलित रूप झालर कहा जाता है। पूजन आदि में इसका विशेष प्रयोग होता है।

मृदंग (डफली)– परमात्म भक्ति हेतु उपयोगी एक विशेष वाद्य उपकरण। यह थाली के समान गोल होता है। पूरे गोलाकार घेरे में या किनारी में मधुर ध्वनि प्रस्तुत करने हेतु छोटी-छोटी सिक्के जैसी दो-दो प्लेट लगी होती है। पूजन-भक्ति आदि में इसका विशेष प्रयोग किया जाता है।

कलश– चाँदी या सिल्वर पॉलिश (झरमट) का कुंभाकार कलश जिसका प्रयोग शांति स्नात्र आदि में किया जाता है। इसे मंगल कलश के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है।

ढोलक– एक प्रकार का वाद्य उपकरण जिसे पूजा-भक्ति आदि में प्रयुक्त किया जाता है।

जींजें (कांस्यताल)– कांसी के बने हुए प्यालिये जिनकी जोड़ी बजाने हेतु प्रयुक्त की जाती है। इनका प्रयोग पूजन, प्रभु भक्ति, भजन आदि में किया जाता है।

पूजा पेटी– अष्टप्रकारी पूजा योग्य सामग्री को रखने एवं मन्दिर में ले जाने की छोटी पेटी या डिब्बी विशेष जो श्रावकों द्वारा प्रयुक्त की जाती है। वर्तमान में पेटी की अपेक्षा बटुआ या मन्दिर बेग का प्रचलन ही अधिक देखा जाता है। लोहे, प्लास्टिक या स्टील की पेटी का प्रयोग पूजा हेतु नहीं करना चाहिए।

ओरसिया– पत्थर की गोल शिला जो चंदन-केसर आदि घिसने के लिए प्रयोग में ली जाती है उसे ओरसिया कहा जाता है।

सुखड (चंदन)– चंदन की लकड़ी (मुठिया) जिसे ओरसिया (पत्थर) पर घिसकर केशर, चंदन आदि का मिश्रित विलेपन तैयार किया जाता है उसे सुखड या चंदन कहा जाता है।

जलवटा– स्टैण्ड युक्त कटोरी का ऐसा उपकरण जिसमें न्हवण जल रखा जाता है उसे जलवटा कहते हैं।

पुष्पगृह (फूलघर)– परमात्मा को विराजमान करने के लिए पुष्पों से बना हुआ चंवरी जैसा घर फूलघर कहलाता है। सत्रहभेदी पूजा पढ़ाते समय परमात्मा को पुष्पगृह में विराजमान करते हैं उस समय इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

भंडार– गृहस्थ श्रावकों द्वारा परमात्मा की भक्ति स्वरूप चढ़ाया गया द्रव्य पैसा आदि जिसमें एकत्रित किया जाता है उसे भंडार कहते हैं। अक्षत आदि चढ़ाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह चाँदी, लकड़ी या Silver Polish आदि से बने हुए होते हैं।

त्रिगड़ा– अरिहंत परमात्मा के समवसरण की प्रतिकृति रूप चाँदी आदि से निर्मित तीन गढ युक्त एक उपकरण जिसमें स्नात्र पूजा एवं अन्यपूजन हेतु परमात्मा को विराजमान किया जाता है उसे त्रिगड़ा कहते हैं। इसमें तीन गढ़ या

level होने से भी इसे त्रिगड़ा कहा जाता है। कई स्थानों पर जहाँ त्रिगड़ा नहीं होता वहाँ एक के ऊपर एक ऐसे तीन चौकियाँ रखकर भी इसकी स्थानपूर्ति की जाती है।

चन्दरवा-पुंठिया– वेलवेट आदि उत्तम Quality के वस्त्रों पर हाथ की कढ़ाई या सोने-चाँदी के तार आदि द्वारा जिनेश्वर परमात्मा के जीवन दृष्टांतों का आलेखन किया हुआ वस्त्र जो त्रिगड़े आदि के ऊपर या प्रवचन करते समय गुरु महाराज के ऊर्ध्व एवं पृष्ठ भाग पर लगाया जाता है उसे चन्दरवा-पुंठिया कहते हैं। कहीं-कहीं पर इसे पिछवाई भी कहा जाता है।

शंख– एक बड़ा घोंघे की तरह का बाजा या वाद्य उपकरण शंख कहलाता है। आरती करते समय, स्नात्रपूजा के दौरान एवं आने वाले दर्शनार्थियों द्वारा भी इसका नाद करवाया जाता है। शंखनाद से वातावरण की पवित्रता बढ़ती है।

सरपोस– पीतल आदि से निर्मित छिद्रयुक्त ढक्कन सरपोस कहलाता है। यह आरती को ढँकने के लिए प्रयुक्त होता है।

इसी प्रकार के अन्य छोटे-बड़े सामान भी जिनमन्दिर में प्रयोग किए जाते हैं जैसे कि पीतल की बाल्टी, घड़े, तिलक लगाने हेतु दर्पण, केशर आदि लेने का चम्मच, बाजोट, पाटा आदि जो जिनमन्दिर की व्यवस्था या जिनपूजा में सहयोगी बनते हैं। मन्दिर व्यवस्थापकों को इन सभी सामग्रियों की व्यवस्था का ध्यान रखना चाहिए।

जिनपूजा उपकरण आगम काल से अब तक

प्रत्येक क्रिया के विविध पक्ष होते हैं। उन सभी के समन्वय से ही वह क्रिया पूर्णता को प्राप्त करती है। इन्हीं में से एक विशिष्ट पहलू है क्रिया में उपयोगी साधन-सामग्री। हर कार्य में कुछ मुख्य साधन प्रयुक्त किए जाते हैं जो उस क्रिया के शिखर तक पहुँचने में मुख्य सोपान होते हैं। जैसे Doctor के लिए Operation के औजार, Injection आदि। Photographer के लिए Camera, Tailor के लिए कैंची, सुई, धागा इत्यादि। इन साधनों के बिना कुशल से कुशल व्यक्ति भी तत्सम्बन्धी क्रियाओं को सम्पन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकार धर्म साधना से जुड़े क्रियानुष्ठानों में कई आवश्यक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। जैन पारिभाषिक शब्दावली में उन्हें उपकरण कहा गया है। जिनपूजा

हेतु ऐसे अनेकशः उपकरणों का प्रयोग होता है। इनमें से जो वस्तु एक बार उपयोग में ली जाती है उसे 'उपादान' कहते हैं जैसे– पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि तथा जो वस्तु बार-बार प्रयोग में ली जाती है उसे उपकरण कहा जाता है।

यदि आगमकाल से अब तक की उपकरण विकास यात्रा पर दृष्टिपात करें तो पूर्वकाल से ही अनेक उपकरणों की चर्चा प्राप्त होती है। देश-कालगत परिस्थितियों के कारण कई उपकरणों का स्वरूप बदला है तो कई उपकरणों का अस्तित्व अब नहीवत रह गया है तो कई नए उपकरणों का प्रवेश भी वर्तमान में हुआ है।

आगमों में ज्ञाताधर्मकथासूत्र, राजप्रश्नीय सूत्र, जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र आदि में सूर्याभदेवता, द्रौपदी आदि द्वारा कृत पूजा के वर्णन में अनेक प्रकार के उपकरणों का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य के अनुशीलन के आधार पर जिनपूजा सम्बन्धी उपकरणों की सूची इस प्रकार है–

जिनपूजा सम्बन्धी उपकरण एवं उपादान सूची

	पूर्वकाल में उपयोगी उपकर	मध्यकाल में उपयोगी उपकरण	अर्वाचीन काल में उपयोगी उपकरण
1.	लोमहस्तक (मोरपिच्छी)	लोमहस्तक	मोरपिच्छी
2.	सुवर्ण कलश	स्वर्ण कलश	×
3.	रूप्य कलश	रूप्य कलश	चाँदी कलश
4.	मणिमय कलश	×	×
5.	सुवर्ण रूप्य कलश	×	×
6.	स्वर्ण मणिमय कलश	×	×
7.	रूप्य मणिमय कलश	×	×
8.	सुवर्ण रूप्य मणिमय कलश	×	×
9.	भौमेय (मृन्मय-मिट्टी) कलश	×	×
10.	चंदन कलश	×	×
11.	भृंगार (नालीदार) कलश	भृंगार कलश	कलश
12.	आदर्श (दर्पण)	आदर्श	दर्पण
13.	थाल	थाली	थाली
14.	पात्री (तासली-केशर रखने का पात्र)	तासली	कटोरा

15.	सुप्रतिष्ठक	×	×
16.	मनगुटिका	×	×
17.	रत्नकरण्डक	×	×
18.	हयकंठक	×	×
19.	वात करण्डक	×	×
20.	गज कंठक	×	×
21.	पुष्पचंगेरी	पुष्पछाब	फूलछाब
22.	लोमहस्तक (मोरपिच्छी की छाब)	×	×
23.	वृषभ कंटक	×	×
24.	पुष्प पटल (फूलों की	×	×
	टोकरी या टोकरी का ढक्कन)	×	×
25.	सर्वपटल (सर्व चंगेरी का ढक्कन)	×	×
26.	तैल समुद्गक (तेल की डिब्बी)	×	×
27.	सिंहासन	सिंहासन	सिंहासन
28.	छत्र	छत्र	छत्र
29.	चामर	चामर	चामर
30.	धूप कडुच्छय	धूपदाण	धूपदानी
31.	तालवृन्त (पंखी)	पंखा	पंखी
32.	घंट	घंटा	घंटा
33.	सर्व चंगेरी (सम्पूर्ण पूजा	×	×
	सामग्री रखने का पात्र)		
34.	सर्षप समुद्गक (घी का पात्र)	×	×
35.	×	मुखकोश	मुखकोश
36.	×	दीपक पात्र	दीप पात्र
37.	×	मंगलदीपक पात्र	मंगलदीपक पात्र
38.	×	आरात्रिक (आरती) पात्र	आरती पात्र
39.	×	छोटी कटोरी	छोटी कटोरी
40.	×	तांबा कुंडी	तांबा कुंडी
41.	×	झालर (थाली-घंटा)	झालर

42.	×	मृदंग (डफली)	मृदंग
43.	×	×	वालाकुंची
44.	×	×	सिल्वर पॉलिश (झरमट) के कलश
45.	×	×	अगलूंछण वस्त्र
	पूर्वकालीन उपादान सामग्री	**मध्यकालीन उपादान सामग्री**	**अर्वाचीन कालीन उपादान सामग्री**
1.	सुरभिजल (सुगंधयुक्त)	सुगन्धित जल	पंचामृत या शुद्ध जल
2.	गंध कषायी	चन्दन विलेपन	केशर चंदन विलेपन
3.	गोशीर्ष चंदन विलेपन	तिलकार्थ गौरोचन	×
4.	देवदुष्य युगल	×	×
5.	सर्वगंध	पुटपाक गंध	×
6.	पुष्प	पुष्प (कुसुम)	फूल
7.	पुष्पमाला	कुसुम माला	फूलमाला
8.	चूर्णक	×	×
9.	वर्णक	×	×
10.	वस्त्र	विचित्र वस्त्र परिधान	विचित्र वर्ण की आंगी
11.	आभरण	आभरण	आभूषण
12.	पुष्पगृह	पुष्पघर	फूल घर
13.	पंचवर्णी पुष्प पुंज	×	×
14.	अष्टमंगल	अष्टमंगल	अष्टमंगल
15.	धूप	धूप	धूप
16.	तीर्थोदक (तीर्थों का जल) अभिषेक	×	×
17.	तीर्थ मृत्तिका (मिट्टी)	×	×
18.	तअरे पदार्थ	×	×
19.	कमल पुष्प	पुष्प	पुष्प
20.	सर्वौषधि	×	×
21.	सिद्धार्थक	×	×
22.	×	यक्ष कर्दम	

23.	×	वास	वास
24.	×	नैवेद्य	नैवेद्य
25.	×	स्वादुशीतल जलपात्र (आचमनार्थ)	×
26.	×	दीपक	दीपक
27.	×	अक्षत	अक्षत
28.		दुग्ध	दुग्ध (दूध)
29.	×	दधि	×
30.	×	घृत	घृत
31.	×	कंचन माला	×
32.	×	मौक्तिक माला	×
33.	×	रत्नमाला	×
34.	×	आरती	आरती
35.	पाटलुंछण	×	×
36.	×	×	टोकरी
37.	×	×	ढोलकी
38.	×	×	जींजें (कांस्यताल)
39.	×	×	पूजापेटी या बटुआ
40.	×	×	ओरसिया (चंदन घीसने का पत्थर)
41.	×	×	सुखड (चंदन)
42.	×	×	स्टैण्ड वाला दीपक
43.	×	×	कलात्मक कलश
44.	×	×	वासक्षेप मंजूषा
45.	×	×	कंदील वाला दीपक
46.	×	×	जलवटा
47.	×	×	दीपक स्टैण्ड
48.	×	×	शलाका
49.	×	×	सरपोस

50.	×	×	त्रिगड़ा
51.	×	×	चंदरवा पुंठीया
52.	×	×	शंख
53.	×	×	बीजोरा
54.	×	×	अष्टमंगल पाटली
55.	×	×	पूजा की जोड (ड्रेस)
56.	×	×	तोरण
57.	×	×	नाडाछडी (मोली)
58.	×	×	मुकुट
59.	×	×	हार
60.	×	×	कुंडल
61.	×	×	बाजूबंद
62.	×	×	नवग्रह पट्टा
63.	×	×	दश दिक्पाल पट्टा
64.	×	×	पीतल बाल्टी
65.	×	×	पीतल घड़ा
66.	×	×	फानस
67.	गीत	गीत	गीत
67.	×	वाद्य	वाद्य
68.	×	नृत्य	×
69.	×	सुन्दर फल	फल
70.	×	×	मंगलदीपक
71.	×	×	वरास
72.	×	×	बरख
73.	×	×	बादला
74.	×	काश्मीरज	केशर
75.	×	×	कपूर

यहाँ पूर्वकालीन पूजा 'उपकरण' और 'उपादान' सामग्री की सूची ज्ञाताधर्मकथा, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रों के आधार

पर दी गई है। इनमें भी कहीं-कहीं पर अंतर परिलक्षित होता है। जैसे कि जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में वर्णित भगवान ऋषभदेव के जन्माभिषेक में प्रयुक्त कुछ पदार्थ सिद्धायतन की जिनप्रतिमाओं की पूजा में नहीं आते जैसे तीर्थोदक, तीर्थमृत्तिका, सर्वौषधि, सिद्धार्थक और तुअरे पदार्थ। शेष सभी उपादान सामग्री पूर्वकालीन पूजा विधानों में समान ही होती थी ।

मध्यकाल में पूजा संबंधी उपादान सामग्री के अन्तर्गत यक्षकर्दम, गोरोचन, सर्वौषधि, सिद्धार्थक, तीर्थोदक, तुअरे पदार्थ, तीर्थ मृत्तिका इन वस्तुओं का उपयोग प्राण प्रतिष्ठा आदि विशेष प्रसंगों पर ही होता था। धीरे-धीरे विक्रम की आठवीं शती से सर्वौषधि, सिद्धार्थक, गोरोचन का सर्वोपचारी पूजा में भी प्रयोग होने लगा।

बारहवीं सदी के कुछ आचार्यों द्वारा पंचामृत से अभिषेक करने का उल्लेख प्राप्त होता है। दिगम्बर परम्परा में आज भी पंचामृत से अभिषेक किया जाता है।

अर्वाचीन पूजा पद्धति में पूर्वकाल की अपेक्षा अनेक नए उपकरण एवं उपादान सामग्री का समावेश हो चुका है। कई प्राचीन उपकरण वर्तमान में प्रयुक्त नहीं होते। कुछ का प्रयोग सत्रहभेदी पूजा, अठारह अभिषेक आदि विशेष प्रसंगों पर ही होता है। मध्यकाल में प्रातः काल के समय वासपूजा करने का अटल नियम था। वह अर्वाचीन समय में नहीवत रह गया है। मध्यकाल तक जिनबिम्ब का अभिषेक करने हेतु प्रक्षाल योग्य जल को केसर, कस्तूरी, कपूर आदि मिलाकर सुगन्धित करते थे वहीं वर्तमान में शुद्ध सादे जल में थोड़ा दूध या पंचामृत मिलाकर प्रक्षाल कर लिया जाता है। अंगलूंछन हेतु भी पूर्व काल में शुद्ध, नवीन एवं सुगन्धित वस्त्र का प्रयोग होता था वहीं वर्तमान में नित्य प्रक्षाल के कारण तीन अंगलूंछन वस्त्र एवं वालाकुंची का प्रयोग होने लगा है।

पूर्वकालीन पूजा पद्धति में आरती, दीपक और मंगलदीपक का प्रयोग नहीं होता था वहीं मध्यकाल में उपादान सामग्री के बढ़ने से आगमों में उल्लेखित चौदह प्रकार की पूजा के भेद चौदह से बढ़कर सत्रह हो गए हैं।

पूर्वकाल में प्रचलित विविध प्रकार के कलश, रत्नकरंडक आदि का प्रयोग मध्यकाल में ही बंद हो गया था। वहीं मध्यकाल में पंचोपचारी एवं अष्टोपचारी पूजाओं के प्रारंभ होने से अनेक नए उपकरण एवं उपादान सामग्री का समावेश हुआ।

इस प्रकार उक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि पूर्वकाल से अब तक उपकरण एवं उपादानों की संख्या में ह्रास एवं विकास दोनों ही परिलक्षित होता है। वर्तमान में पूजा सामग्री की संख्या में बढ़ोत्तरी अवश्य हुई है परन्तु Quality में दिनोंदिन गिरावट ही आई है। अत: उपकरण एवं उपादान वर्ग की Quality की तरफ श्रावक वर्ग को अवश्य ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

●

अध्याय-7

जिन पूजा विधि की त्रैकालिक आवश्यकता एवं अनुभूतिजन्य रहस्य

पूजोपासना का महत्त्व प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय में रहा हुआ है। किसी न किसी रूप में इसका आलंबन मनुष्य के लिए परमावश्यक है। जिनपूजा, जिनमन्दिर एवं जिनप्रतिमा यह आत्मोत्थान के विशिष्ट सहायक तत्त्व हैं। परमात्म दशा को उपलब्ध करने में Reservation का कार्य करते हैं क्योंकि गुणीजनों का आदर-सम्मान गुणवृद्धि में हेतुभूत बनता है। इसीलिए कहा गया है–

गुणी से गुण नहीं भिन्न है, जिनपूजा गुणधाम।
गुणी पूजा गुण देत है, पूर्ण गुणी भगवान।।

जीवन में सन्मार्ग को प्राप्त करने एवं उस पर निरंतर गतिशील रहने हेतु धर्म का आश्रय जरूरी है। जिंदगी के दुविधापूर्ण क्षणों में सत्यबोध, समाधि एवं समाधान देने में जिनपूजा एक आवश्यक चरण है।

कई लोग कहते हैं कि जिनप्रतिमा तो जड़ है, वह कुछ भी देने में असमर्थ है तो फिर जिनपूजा की आवश्यकता क्यों? जिनप्रतिमा जड़ है, अत: वह हमें कुछ दे नहीं सकती। यह जितना सत्य है उतना यथार्थ यह भी है कि जिनप्रतिमा के दर्शन मात्र से आत्म-परिणामों में शुद्धता, विचारों में पवित्रता, भावों में निर्मलता एवं वैराग्य भाव का वर्धन अवश्य होता है।

सुज्ञ साधक वर्ग भगवान को प्रसन्न करने अथवा लौकिक लाभ की दृष्टि से जिनपूजा कभी नहीं करते। उनका प्रमुख उद्देश्य मात्र जैनत्व एवं जिनत्व की प्राप्ति हेतु मनोभूमि को तैयार कर उसे तद्योग्य बनाना है। जिनपूजा के माहात्म्य आदि विषयक चर्चा शास्त्रकारों ने अनेक स्थानों पर की है। परमात्मा के अगणित आकारों को व्यक्त करने का माध्यम जिनपूजा है। इसके द्वारा कृतज्ञता, लघुता, गुणानुरागिता आदि गुणों का विकास होता है एवं जीवन जीने की सही दिशा प्राप्त होती है।

जिनपूजा की पारमार्थिक महत्ता

जिनपूजा श्रावक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। इसका महत्त्व बताते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि जिस प्रकार महासमुद्र में फेंकी गयी जल की एक बूंद का भी नाश नहीं होता उसी प्रकार जिनेश्वर परमात्मा के गुणरूपी समुद्र की पूजा अक्षय ही होती है।[1]

षोडशक प्रकरण में जिनपूजा को सदनुष्ठान कहते हुए मुख्य पाँच सूत्रों का निर्देश इस प्रकार किया गया है– 1. जिनपूजा केवल सूत्र से नहीं अपितु भावार्थ एवं परमार्थ सहित सुननी चाहिए, क्योंकि सूत्र की अपेक्षा अर्थ अधिक बलवान है। 2. आचरण के द्वारा ज्ञान सार्थक एवं सफल बनता है और श्रद्धा के द्वारा मजबूत। 3. आचार के आधार पर ही शासन की शाश्वतता रहती है। 4. जिनपूजा सदनुष्ठान का अनंतर एवं अव्यभिचारी कारण है 5. सदनुष्ठान होने से यह उत्तमगति एवं मोक्ष प्राप्ति में सहायक बनता है। अत: निश्चय से यह अनुष्ठान श्रावक को अर्थ एवं भाव की विचारणा पूर्वक करना चाहिए।[2]

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, पूजन एवं स्तुति नहीं करते उनका जीवन निष्फल है तथा उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।[3]

आचार्य सोमदेव के अनुसार जो गृहस्थ जिनेश्वर की पूजा और मुनियों की उपचर्या किए बिना अन्न ग्रहण करता है, वह सातवें नरक के कुम्भीपाक बिल में दुख भोगता है।[4]

चतुर्निकाय के देव अष्टाह्निका दिवसों में उत्सव सहित मेरु आदि पर्वतों पर जिन प्रतिमा की पूजा करते हैं।[5] शाश्वत जिनालयों में देवताओं के द्वारा पूजन महोत्सव करने का उल्लेख जैनागमों में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।

धवला के अनुसार अरिहंत परमात्मा पूजार्थी के पापों का विनाश नहीं करते क्योंकि ऐसा होने पर तो वीतरागता का अभाव आएगा। अत: जिनपूजा में परिणत भाव एवं जिनगुणों से उत्पन्न परिणामों को पाप का विनाशक स्वीकार करना चाहिए।[6]

जिनेश्वर परमात्मा को किया गया वन्दन अथवा पूजन प्रत्येक आत्मा में रहे हुए जिनत्व गुण को प्रकट करता है अत: 'वन्दे, तद्गुण लब्धये' के भावों से जिनपूजा करनी चाहिए। इस तरह जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर हमारी भावनाओं को शुद्ध करने का बाह्य साधन है।

श्रीराम आचार्य के अनुसार मूर्तिपूजा भावनाओं को केन्द्रीभूत करती है। जिस प्रकार छोटे बच्चे को 'क' से कबूतर और 'ख' से खरगोश पढ़ाना पड़ता है, उसी प्रकार मूर्तिपूजा के माध्यम से अध्यात्म का प्रारंभिक शिक्षण दिया जाता है। मूर्तिपूजा प्रारम्भिक चरण है जिसके सहारे भगवान को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त होता है।

आज हम यदि किसी भी युवा के कमरे में जाएं तो किसी न किसी खिलाड़ी, व्यवसायी (Businessman), नेता, अभिनेता या फिर किसी सफल व्यवसायी का फोटो अवश्य लगा हुआ मिलेगा, ऐसा क्यों? क्योंकि वह युवा उसे चाहता है, उसका सम्मान करता है, उसे अपने जीवन का आदर्श (Role Model) मानता है। अपने आपको उसी के जैसा बनाना चाहता है। उस फोटो या पोस्टर को देखकर उसे हर समय प्रेरणा और एक प्रकार की Positive energy प्राप्त होती रहती है। इसी प्रकार जिनप्रतिमा का दर्शन-पूजन करते हुए अंत:करण में जो श्रद्धा प्रकट होती है वह साधक को स्व-स्वरूप प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हुए अपने आत्मदेव के प्रति सजग रखती है। ऐसे ही अनेक पहलू हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि जिनपूजा साधक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंश है।

सर्वांगीण विकास का महत्त्वपूर्ण चरण जिनपूजा

मनुष्य को एक बुद्धिमान प्राणी समझा जाता है। इसी कारण प्रत्येक कार्य करने से पूर्व वह सर्वप्रथम उसके लाभ एवं हानि विषयक चिंतन करता है। अनेकश: आचार्यों, चिंतकों, शरीर विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों ने जिनपूजा के विविध पक्षों पर भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्यों में अध्ययन कर इसके रहस्यों को प्रकट किया है।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने पंचाशक प्रकरण में जिनपूजा की लाभ विषयक चर्चा करते हुए कहा है कि देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने से उनके प्रति सम्मान प्रकट होता है। तीर्थंकर, गणधर, इन्द्र, चक्रवर्त्ती आदि उत्तम पदों की प्राप्ति होती है और उत्कृष्ट धर्म की प्रसिद्धि होती है। पूजा करने से प्रकृष्ट पुण्य कर्म का बंध और अशुभ कर्मों का क्षय होता है। परिणामस्वरूप वीतराग अवस्था की प्राप्ति होती है। पूजा करने से पूज्य को लाभ हो या न हो पर पूजक को लाभ अवश्य होता है। जैसे मन्त्रविद्या आदि की साधना से मन्त्र आदि को

लाभ नहीं होने पर भी साधक को लाभ अवश्य होता है। औषधि सेवन से औषध या डॉक्टर को लाभ हो या न हो पर मरीज को लाभ अवश्य होता है वैसे ही जिनपूजा करने से जिनेश्वर देव को कोई लाभ हो या न हो परन्तु पूजा करने वाले को लाभ अवश्य होता है।[7]

जिनपूजा के द्वारा विशेष रूप से भाव विशुद्धि होती है। सम्यग्दर्शन आदि गुणों की प्राप्ति होती है। इसी भाव विशुद्धि के कारण चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम होने से चारित्र की प्राप्ति भी हो सकती है, जिससे हिंसाजनित कार्यों से सर्वथा निवृत्ति मिल जाती है। जितने समय तक जिनपूजा की जाती है उतने समय तक हिंसा का आरम्भ-समारम्भ नहीं होता तथा शुभ भाव उत्पन्न होते हैं।[8] जो भव्य प्राणी उत्कृष्ट भाव से जिनेश्वर परमात्मा का पूजन, दर्शन और स्तुति करते हैं वे तीनों लोकों में स्वयं ही दर्शन, पूजन और स्तुति के योग्य बन जाते हैं, अर्थात परमात्मा बन जाते हैं।[9]

परमात्मा की पूजा-भक्ति करने से अनुचित कार्यों के त्याग की भावना जागृत होती है। और निजी कर्त्तव्यों का बोध होता है। इससे हृदय परिवर्त्तन में सहायता मिलती है। किसी अज्ञात आचार्य ने त्रिकाल पूजा के लाभ का सुन्दर चित्रण करते हुए कहा है–

जिनस्य पूजनं हन्ति, प्रातः पाप निशा भवम्।
आजन्म विहित मध्ये, सप्त जन्मकृतं निशि।।

अर्थात जिनेश्वर परमात्मा का प्रातःकाल में किया हुआ पूजन रात के पापों का नाश करता है। दोपहर का पूजन इस भव के पापों का नाश करता है तथा सन्ध्या के समय किया गया पूजन सात जन्मों के पापों का नाश करता है।

मानव के चरित्र निर्माण एवं आत्मोत्थान के लिए एक ऐसे आदर्श की आवश्यकता है जिससे वह स्वयं पतित अवस्था से उत्थान पाते-पाते, ऊँचे उठते-उठते क्रमशः उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम अवस्था को प्राप्त कर सकें। जिनेश्वर परमात्मा ऐसे ही उच्च आदर्श हैं जिन्होंने प्रत्येक सामान्य जीव की भाँति निगोद से ही अपनी विकास यात्रा प्रारंभ की एवं अथक पुरुषार्थ के द्वारा शुद्ध आत्म अवस्था को प्राप्त किया। उन्हें आदर्श के रूप में मानते हुए उनकी पूजा आराधना करने पर मन में यह विश्वास होता है कि हम भी उस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। अतः जिनपूजा के माध्यम से यह आत्मा विशुद्ध

अवस्था को प्राप्त करने के उद्देश्य में अग्रसर हो सकता है। अतः जिनपूजा जिनत्व प्राप्ति के मार्ग को सरल बनाती है। आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं–

जिनपूजनसत्कारयोः करणलालसः।
खल्वाद्यो देशविरति परिणामः ।।

परमात्मा की पूजा एवं सत्कार की लालसा देशविरति जीवन का आद्य परिणाम है अर्थात श्रावक के श्रावकत्व का प्रारंभ सर्वप्रथम जिनेश्वर देव की पूजा-उपासना से होता है। परमात्मा की पूजा के बिना श्रावक जीवन के आगे के गुण नहीं खिलते, सर्व विरति नहीं मिल सकती।

भौतिक पदार्थों के राग में डूबे हुए भोगियों के लिए जिनपूजा राग-विरक्ति एवं त्याग का सोपान बनती है। इसी सोपान के माध्यम से जीव जिनत्व रूपी उत्तुंग शिखर पर पहुँच सकता है।

शारीरिक स्वस्थता एवं जिनपूजा

जिनपूजा का मुख्य हेतु यद्यपि शुद्ध आत्मिक अवस्था अर्थात मोक्ष की प्राप्ति है। परन्तु जैसे खेती करते हुए गेहूँ, चावल आदि धान्य प्राप्ति का उद्देश्य मुख्य होने पर भी घास आदि स्वतः प्राप्त हो जाती है वैसे ही जिनपूजा के द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और भौतिक लाभ स्वयमेव ही प्राप्त हो जाते हैं।

जिनपूजा हेतु शारीरिक स्वच्छता को महत्त्व दिया गया है। जैसे– देह शुद्धि, वस्त्रशुद्धि, मुखशुद्धि आदि। इसी प्रकार पूजा उपयोगी सामग्री एवं स्थान की शुद्धता को महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन सबका हमारे स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव देखा जाता है। जिनपूजा में प्रयुक्त सुगन्धित द्रव्य जैसे कि फूल, इत्र, चन्दन, केसर आदि का शारीरिक निरोगता एवं मानसिक प्रसन्नता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके कारण अनेक रोगों से अनायास ही रक्षा हो जाती है।

पंचामृत के स्पर्श से नखों का विष हल्का पड़ जाता है। चन्दन और बरास का स्पर्श होने मात्र से कई प्रकार के विषाक्त परमाणुओं का प्रभाव नष्ट हो जाता है। फूलों की सुगंध से मस्तिष्क सम्बन्धी रोग उत्पन्न नहीं होते। धूप विषैले जीवों से बचाव करता है तथा वातावरण की शुद्धि करता है। शिखरजी, पालीताना आदि पहाड़ों की चढ़ाई से रक्तशुद्धि होती है तथा रक्तचाप नियन्त्रित रहता है। जिन दर्शन एवं पूजन से शरीर में जो उत्साह एवं रोमांच उत्पन्न होता है उससे

एक प्रकार की प्रभावशाली विद्युत लहरें तरंगित होती हैं जो शरीर के कष्ट एवं पीड़ाओं को दूर करती है। सामूहिक बृहद् अनुष्ठानों के अवसर पर सैकड़ों लोगों के एक स्थान पर एकत्रित होने से वायु में श्वास-उछ्वास की दुर्गन्ध आदि के कारण जी मचलना एवं शरीर में रोग आदि उत्पन्न होने की संभावना रहती है किन्तु पूजा विधानों में प्रयुक्त द्रव्यों एवं शुद्धता आदि के नियमों के कारण ये सभी समस्याएँ प्रकट ही नहीं होतीं।

अनामिका अंगुली के द्वारा पूजा करने से हृदय शक्तिशाली बनता है एवं तत्सम्बन्धी रोगों का निदान होता है। जिनपूजा हेतु पैदल नंगे पैर चलने से पूरे शरीर का एक्युप्रेशर हो जाता है। पूजा में प्रयुक्त विविध मुद्राएँ भिन्न-भिन्न चक्रों को विशेषरूप से प्रभावित करती हैं तथा ग्रन्थितंत्रों आदि का सन्तुलन बनाए रखती हैं। पूजा के दौरान उत्पन्न प्रेम, भक्ति, समर्पण आदि की आन्तरिक अनुभूतियाँ एक विशिष्ट आनंद का अनुभव करवाती हैं तथा शारीरिक स्वस्थता एवं स्फूर्ति में सहायक बनती हैं।

भावपूजा के दौरान प्राणिधान त्रिक की परिपालना करते हुए शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक एकाग्रता के कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का स्राव एवं उनके कार्यों का नियमन होता है तथा सकारात्मक शारीरिक ऊर्जा वलय का निर्माण होता है जो शरीर को तेजस्वी, ओजस्वी एवं प्रभावी बनाता है। कहते हैं 'पहला सुख निरोगी काया' अत: व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक जगत में सफलता को प्राप्त करने के लिए शारीरिक स्वस्थता परम आवश्यक है। जिनपूजा के द्वारा यह सहज प्राप्त हो जाती है।

तनावमुक्ति का अनुभूत प्रयोग-जिनपूजा

शारीरिक स्वस्थता हो या आध्यात्मिक उत्कर्षता या फिर बौद्धिक स्थिरता इन सभी का विकास तभी संभव है जब व्यक्ति का मन स्वस्थ, स्थिर और सकारात्मक विचार शक्ति से युक्त हो। मन:स्थिति शान्त एवं प्रसन्न हो तो व्यक्ति विपरीत एवं विकट परिस्थितियों में भी अपना मार्ग शोधन कर सफलता प्राप्त कर लेता है। चित्त प्रफुल्लित हो तो काटना, नोंचना आदि बाल सुलभ चेष्टाएँ व्यक्ति को प्रसन्न करती हैं, वहीं खिन्नता होने पर यही क्रीड़ाएँ क्रोध एवं चिड़-चिड़ापन उत्पन्न करती है। इन मानसिक क्रीड़ाओं का प्रभाव हमारी ग्रन्थियों पर भी पड़ता है। अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला रस प्रसन्नता में शक्तिवर्धक तथा तनाव में शक्तिनाशक होता है।

जिनपूजा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड की ऊर्जा को आकर्षित किया जा सकता है। पूजादि में प्रयुक्त विभिन्न मुद्राओं के द्वारा आंतरिक शक्तियों को जागृत कर मनवांछित कार्य की सिद्धि की जा सकती है। पूजा के द्वारा मानसिक एकाग्रता एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है। जैसे माता-पिता, मित्र-स्वजन आदि का चित्र देखते ही अन्तरंग में सम्मान एवं आत्मीयता के भाव स्वयमेव जागृत होते हैं, वैसे ही परमात्मा का बिम्ब देखते ही जिनधर्मानुरागी के मन में वीतराग परमात्मा के प्रति अनायास प्रीति उमड़ आती है। इसे ही शास्त्रों में प्रीति अनुष्ठान कहा गया है।

एक बार तो जिनप्रतिमा का दर्शन होने के बाद व्यक्ति कितना भी तनाव में हो वह उससे मुक्त हो जाता है। परमात्मा को द्रव्य समर्पित करते हुए मन में जो श्रद्धा भाव जागृत होते हैं उसके कारण विचारों एवं भावों में निर्मलता आती है। पुष्प, धूप, चंदन आदि सुगन्धित द्रव्यों की खुशबू से दर्शनार्थी को आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है। द्रव्य अर्पण करने से द्रव्य के प्रति रहा हुआ आसक्ति भाव न्यून होता है। वर्तमान में द्रव्य अधिकरण को लेकर बढ़ता हुआ व्यक्तिगत एवं पारिवारिक मन-मुटाव और मानसिक हलचल को न्यून करने का यह एक सार्थक उपाय है।

चैत्यवंदन आदि क्रिया करते हुए जीव के स्वाभाविक गुणों जैसे करुणा, दया आदि सद्वृत्तियों का विकास होता हैं। परमात्मा की प्रशान्त मुखमुद्रा क्रोध, आवेश, ईर्ष्या, घृणा आदि मलिन भावों को दूर कर मन में मैत्री भाव का सिंचन करती है।

जिनपूजा एक ऐसी मनोवैज्ञानिक विधि है जिसका सम्यक परिपालन मानसिक स्थिरता एवं भावनात्मक निर्मलता को प्राप्त करवाती है। परमात्म भक्ति के जरिए प्रायश्चित्त करके हृदय को पवित्र कर सकते हैं। चित्त में उत्पन्न होने वाली अतृप्त कामनाओं का नाश जिनपूजा के द्वारा ही संभव है। जब हम भावों के दर्पण में विनम्रता रूपी थाली, क्षमा की आरती, प्रेम का घृत, दृढ़ विश्वास का नैवेद्य आदि द्रव्य समर्पित करते हैं तो प्रायश्चित्त रूपी आरती में अहंकार रूपी राक्षस जलकर भस्म हो जाता है। इस तरह जिनेश्वर परमात्मा की पूजा विघ्नों का नाश करती है, उपसर्गों का शमन करती है और निजत्व में जिनत्व का दर्शन करवाती है।

जिनपूजा के अचिंत्य प्रभाव से कई बार शारीरिक एवं मानसिक रोगों का उपशमन होते हुए भी देखा गया है। यथार्थत: जब हमारे भीतर में श्रद्धा प्रस्फुटित होती है तब हमारी अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से ऐसे स्राव निकलते हैं जो शरीरस्थ रसायनों के असंतुलन एवं मानसिक अस्थिरता का निवारण करते हैं।

परमात्मा का दर्शन-पूजन करने से जीव को परमात्म शक्ति का अवबोध होता है, जिससे आत्महीनता, मनोबल या आत्मविश्वास की कमी आदि दोषों का शमन होता है। अत: अस्त-व्यस्त जीवन व्यवस्था को व्यवस्थित करने हेतु जिनपूजा एक आवश्यक चरण है।

आध्यात्मिक उत्कर्ष में जिनपूजा की सदाशयता

यदि आध्यात्मिक दृष्टि से जिनपूजा की महत्ता के विषय में चिंतन किया जाए तो इसका मुख्य उद्देश्य ही पूजक को पूज्यता प्राप्त करवाना है, आत्मा को परमात्मा बनाना है। चित्त की प्रसन्नता के साथ की गई भगवान की पूजा हमें अनेक गुणा लाभ की प्राप्ति करवाती है। जैसे पाँच कोड़ी से खरीदे पुष्पों के द्वारा भाव से पूजा करने वाला पल्लिपति जयताक अगले भव में अठारह देश का अधिपति कुमारपाल महाराजा बना। गीतार्थ आचार्यों के अनुसार–

नरिंद देवे सर पुइयाणं पूयं कुणंतो जिणं
चेइयाण दव्वेण भावेण सुहं चिणेई

नरेन्द्र एवं देवेन्द्रों से पूजित जिनेश्वर भगवान की सुगंधित द्रव्य एवं भाव से जो पूजा करते हैं, उनके मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का नाश होता है।

महानिशीथ सूत्र के अनुसार चैत्यालय में एकाग्रता से भावसहित स्तुति, स्तवन, पूजा, अर्चना करने वाला निश्चित रूप से मनोवांछित फल प्राप्त करता है।

देवाधिदेव वीतराग परमात्मा के दर्शन-वन्दन-पूजन से स्वयं का आत्मदर्शन होता है। जैसे ज्योति से ज्योति प्रकट होती है। उसी तरह जिन दर्शन एवं पूजन से यह आत्मा परमात्मा बनती है। इसी के साथ श्रद्धा, आस्था, भक्ति एवं समर्पण से की गई परमात्मा की पूजा दु:ख एवं दरिद्रता का नाश करते हुए समस्त सुखों की प्राप्ति करवाती है।

परमात्मा की अक्षत पूजा करने वाले तोता-मैना के युगल को भावपूर्वक पूजा करने से देवलोक की प्राप्ति हुई। पार्श्वनाथ भगवान की मनोयोग पूर्वक पूजा

करने वाला हाथी मरकर कलिकुंड तीर्थ का अधिष्ठायक देव बना। ऐसे कई उदाहरण हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि अहोभाव पूर्वक परमात्मा की पूजा-भक्ति आदि करने से इहलौकिक एवं पारलौकिक सुख-सम्पत्ति एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

शास्त्रों के अनुसार–

दर्शनाद् दुरित ध्वंसी, वन्दनात वांछित प्रदः।
पूजनात पूजकः श्रीणां, जिनः साक्षात सुरद्रुमः।।

अर्थात जिनेश्वर भगवान के दर्शन मात्र से ही सभी पापों का क्षय हो जाता है। वन्दन करने से वांछित की प्राप्ति होती है, प्रतिदिन अष्टप्रकारी पूजा करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा साक्षात जिनेश्वर परमात्मा का दर्शन कल्पवृक्ष के समान सकल मनोवांछित को पूर्ण करने वाला है। परमात्मा के दर्शन-पूजन करते समय मन-वचन-काया के समस्त विषय-विकारों का त्याग होने से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन होता है, जिससे शक्तियों का केंद्रीकरण होता है। खाद्य पदार्थों का त्याग होने से तप होता है। और तप ही एकमात्र कर्म निर्जरा का साधन है।

आज की व्यस्त जीवनशैली में जिनपूजा के माध्यम से सांसारिक झंझटों से छुटकारा प्राप्त कर आत्मिक शान्ति के अप्रतिम क्षण प्राप्त किए जा सकते हैं। जिनदर्शन एवं जिनपूजा के समय पाँच अभिगम, दसत्रिक आदि का पालन करने से तथा जिनपूजा हेतु उत्तम द्रव्यों का प्रयोग करने से चित्त में उत्तम भावों का जागरण होता है। इसी के साथ शुद्ध आत्मस्वरूप प्राप्ति की रुचि जागृत होती है तथा संसार के नशे में बेभान हुए जीव को स्वदशा का भान होता है। इस विषम पंचम काल में आत्मोद्धार हेतु जिनबिम्ब एवं जिनागम ही एक मात्र आधार है अत: उनका दर्शन, वंदन एवं पूजन करना आवश्यक है। इसके द्वारा हमारे भीतर प्रभु के गुणों का अवतरण होता है।

कई लोग कहते हैं कि परमात्मा तो वीतराग है तो फिर उनमें प्रेम, मैत्री आदि के भाव कैसे हो सकते हैं?

भगवान राग रहित हैं, प्रेम रहित नहीं। दर्शन मोहनीय का क्षय होने से भगवान में अनंत प्रेम का प्रगटीकरण होता है। रागभाव और प्रेमभाव में अंतर है। राग किसी एक वस्तु के प्रति अत्यधिक मूर्च्छा है जो अन्य के प्रति द्वेष उत्पन्न करती है किन्तु प्रेम तो सभी के प्रति समान अर्थात Universal होता है।

जिनपूजा के माध्यम से प्रभु आकर्षण से प्रारंभ हुई अध्यात्म उत्कर्ष की प्रक्रिया अंततोगत्वा मोक्ष को उपलब्ध करवाती है। परमात्मा की जल पूजा कर्ममल को दूर करती है। चंदन पूजा के द्वारा विभाव दशा में भटक रहा जीव स्वाभाविक शीतलता आदि गुणों को प्राप्त करता है तथा विषय कषाय आदि से विरक्त होता है। पुष्प पूजा के माध्यम से कुटिल वृत्तियों का उन्मूलन होकर कोमलता, संवेदनशीलता, मानवीयता जैसे श्रेष्ठ भावों का जागरण होता है। धूप पूजा इस आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसरित होने की प्रेरणा देती है। दीपक पूजा से अनंतकाल का अज्ञान रूपी अंधकार दूर होकर सम्यक ज्ञान का दीपक प्रज्वलित होता है। इसी प्रकार अक्षत, नैवेद्य, फल आदि के द्वारा की गई पूजा आहार संज्ञा को समाप्त कर अणाहारी पद प्राप्त करवाती है, इस तरह जिनपूजा यह निजरूप को प्राप्त करने का मुख्य सोपान है।

जिनदर्शन के विविध चरण एवं उनकी लाभ परम्परा

जिनदर्शन एवं प्रभुपूजन को लाभ कमाने का अप्रतिम अवसर माना गया है। इसका एक-एक चरण अनन्य लाभ का उपार्जन करवाता है। गीतार्थ परम्परा के अनुसार मात्र परमात्म दर्शन की इच्छा करने से जिनपूजा का शुभ फल मिलना प्रारंभ हो जाता है, जो क्रमशः बढ़ते-बढ़ते मोक्ष रूपी परमोच्च फल की प्राप्ति भी करवाता है। शास्त्रों के अनुसार–

- जिनमंदिर जाने की इच्छा मात्र करने से एक उपवास का लाभ होता है।
- जिनमंदिर जाने हेतु अपने स्थान से उठने पर दो उपवास का लाभ होता है।
- जिनमंदिर के लिए प्रस्थान करने पर तीन उपवास का लाभ होता है।
- जिनालय के लिए प्रथम कदम उठाने पर चार उपवास का लाभ होता है।
- जिनमंदिर के मार्ग पर चलते हुए पाँच उपवास का लाभ होता है।
- जिनमंदिर के आधे रास्ते को पार करने पर पंद्रह उपवास का लाभ होता है।
- जिनमंदिर के शिखर के दर्शन होने पर तीस उपवास का लाभ होता है।
- जिनमंदिर के निकट पहुँचने पर पाँच मास के उपवास का लाभ होता है।
- जिनालय के द्वार में प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का लाभ होता है।
- परमात्मा की प्रदक्षिणा देते हुए– सौ वर्ष के उपवास का लाभ होता है।
- परमात्मा के भावपूर्वक दर्शन करने से एक हजार वर्ष के उपवास का लाभ होता है।

• परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा करने से लाख वर्ष जितने उपवास का लाभ होता है।

• प्रभु के समक्ष विवेक पूर्वक गीत, नृत्य आदि करने पर अनगिनत उपवासों का लाख होता है।

• स्तुति, स्तोत्र, स्तवन आदि के द्वारा परमात्मा का गुणगान करने से अनंत पुण्य का बंधन होता है।

• पुष्प-पुष्पमाला आदि अर्पण करने से महान लाभ की प्राप्ति होती है।[10] यदि परमात्म भक्ति में अत्यन्त लीन हो जाए तो रावण के जैसे तीर्थंकर नाम कर्म का भी उपार्जन किया जा सकता है। परमात्मा के आलंबन से यदि उत्कृष्ट भाव जागृत हो जाए तो केवलज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है जैसे नागकेतु को पुष्पपूजा करते हुए केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के अनुसार जिनेश्वर देव की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिए क्योंकि दान आदि गुण के समान यह भी परिणाम विशुद्धि का हेतु है।

श्री महाकल्पसूत्र के अनुसार जो पुरुष जिन प्रतिमा की पूजा करता है, उसको सम्यग्दृष्टि समझना और जो जिनप्रतिमा की पूजा नहीं करता उसे मिथ्यादृष्टि समझना चाहिए।

तत्त्वार्थाधिगम सूत्र के अनुसार अरिहंत या तीर्थंकर परमात्मा की पूजा करने से द्वेष आदि दुर्भाव न्यून होते हैं तथा मन प्रसन्न होता है। मन प्रसन्न होने से समाधि एवं ध्यान में एकाग्रता प्राप्त होती है। समाधि की संप्राप्ति से कर्मों की निर्जरा तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अत: अरिहंतों की पूजा करना सर्वथा न्याय संगत एवं युक्तियुक्त है।

इस प्रकार जिनदर्शन एवं जिनपूजा के द्वारा श्रावकों को अनन्य लाभ की प्राप्ति होती है। परमात्मा का दर्शन, पूजन एवं वंदन आदि करने से मति शुभ बनती है, कुमति का नाश होता है एवं दुर्गति का निवारण होता है। परमात्मा की प्रशांत मुखमुद्रा एवं मनमोहक स्वरूप आत्म शांति प्रदायक है, क्योंकि पृथ्वी पर जितने भी शांत परमाणु हैं उन सभी को एकत्रित करके प्रभु के रूप का निर्माण हुआ है। किसी दार्शनिक ने कहा है– One Picture is worth than ten thousand words. अर्थात एक चित्र दस हजार शब्दों का काम करता है।

पूर्व साहित्य के अध्ययन से जो ज्ञान नहीं हो सकता, वह अन्त:ज्ञान हमें जिनबिम्ब के दर्शन से हो जाता है। शास्त्रों में ऐसे कई उदाहरणों का उल्लेख है जैसे- आर्द्रकुमार का दृष्टांत, जिनप्रतिमा आकार के मत्स्य को देखने से जातिस्मरण ज्ञान होना, शय्यंभव भट्ट का जिनप्रतिमा दर्शन से प्रतिबोधित होकर जिन धर्म स्वीकार करना आदि।

अमीर को देखकर गरीब को अपनी गरीबी का भान होता है और उसे अपनी गरीबी खटकने लगती है। यदि वह निर्धनता मिटाने हेतु संकल्पबद्ध होता है तो पुरुषार्थ के द्वारा लक्ष्य भी प्राप्त कर लेता है। ठीक ऐसे ही परमविशुद्ध वीतराग परमात्मा के दर्शन करने से हमें अपनी अशुद्ध आत्म अवस्था का भान होता है। विशुद्ध अवस्था प्राप्ति में बाधक कर्मावरण खटकने लगता है तथा जीव स्व-स्वरूप प्राप्ति हेतु प्रयासरत हो जाता है।

परमात्म स्वरूप से अपनी तुलना करने पर स्वयं की कमियों का ज्ञान होता है। जिनेश्वर परमात्मा ने जिस प्रकार जिनत्व पद की साधना करके मुक्ति का रसपान किया, वैसी ही क्षमता हमारी आत्मा में भी उत्पन्न हो तथा वह भी परमात्म पद की ओर अग्रसर हो, इसी ध्येय से जिनेश्वर देव का पूजन, वंदन, चैत्यवंदन आदि किया जाता है। भाव एवं भक्ति की विह्वलता ही आत्मा को उत्थानक्रम की ओर ले जा सकती है और परमात्म दशा की उपलब्धि करवा सकती है।

महापुरुषों ने कहा है जिस प्रकार छिद्र युक्त हथेली में जल नहीं टिकता वैसे ही जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन से पाप नहीं टिकते। इस प्रकार जिनदर्शन अनंत गुणों का निधान है।

जिनपूजा एक रहस्यमय अभियान

जिनपूजा का यदि आद्यन्त अध्ययन करें तो इसमें सम्मिलित प्रत्येक क्रिया अनुष्ठान अपने आप में अलौकिक एवं अनेकविध रहस्यों से परिपूर्ण प्रतीत होगा। इन विधानों के द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास तथा सामाजिक सौहार्द एवं संस्कारों का निर्माण होता है। इसी के साथ वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और वैश्विक शांति की स्थापना की जा सकती है। पूजा विधानों के अन्तर्गत पाँच अभिगम, दसत्रिक, सप्तशुद्धि आदि बहुविध विधि-विधानों का समावेश होता है जिनके द्वारा जीवन को नई दिशा दी जा सकती है।

निसीहि त्रिक, मर्यादा बोध का अनुपम उपाय कैसे?

निसीहि एक निषेधात्मक शब्द है। जिन दर्शन विधि में तीन अलग-अलग स्थानों पर निसीहि उच्चारण के यथोचित कारण एवं रहस्य हैं। मन्दिर में प्रवेश करते समय प्रथम निसीहि का उच्चारण करने मात्र से ही संसार के समस्त बंधन एवं जंजालों का त्याग हो जाता है। इसी के साथ यह त्रिक मन्दिर के प्रति रहे कर्त्तव्यों के प्रति भी सजग होने की सूचक है।[11] इसी कारण दूसरी निसीहि में मन्दिर सम्बन्धी कार्यों का भी त्याग किया जाता है।

यद्यपि आजकल मन्दिर सम्बन्धी समस्त कार्य पूजारी के कर्त्तव्य माने जाते हैं। यदि बीच में रखे हुए पाटे से आने-जाने वाले को ठोकर लग रही है तो भी उसे उठाएगा पुजारी ही। परमात्मा, मन्दिर एवं श्रावक तीनों ही पुजारी के भरोसे हैं। पुजारीजी मेहरबान तो मन्दिर का उत्थान वरना वहाँ सिर्फ परमात्मा की आशातना ही होती है।

मन्दिर की सार-संभाल करना ही परमात्मा की यथार्थ सेवा भक्ति है। यदि हमारे Boss या कोई मिनिस्टर घर पर आ जाए तो हम उनकी एक-एक सुविधा के प्रति कितने सजग रहते हैं, नौकर का कार्य स्वयं करने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में तीन लोक के नाथ परमात्मा के सामने कोई भी कार्य करना हो तो कैसी शर्म? सिर्फ भगवान को भजना और भगवान के दरबार की सुंदरता आदि के विषय में अथवा जिन आज्ञा की चिंता नहीं करना परमात्मा की सच्ची भक्ति कैसे हो सकती है?

दूसरी निसीहि के द्वारा मन्दिर सम्बन्धी व्यापार का भी त्याग कर दिया जाता है।[12] इससे द्रव्य पूजा के द्वारा प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण आनन्द की अनुभूति एवं रसास्वादन किया जा सकता है।

तीसरी निसीहि परमात्मा के गुणगान हेतु शुभ अध्यवसायों का निर्माण करते हुए भक्त और भगवान को एकतार करती है।[13] किसी भी कार्य में एकाग्रता की वृद्धि हेतु इस नियम का परिपालन श्रेष्ठतम मार्ग है। प्राचीन कहावत है– 'एक साधे सब सधे सब साधे सब जाए।' निसीहि इसी उक्ति को सार्थक करते हुए भक्ति साधना में सहायक बनती है तथा कर्त्तव्यबोध का जागरण करते हुए कर्तृत्व विचारों से ऊपर उठाती है।

प्रदक्षिणा तीन ही क्यों?

प्रदक्षिणा पूजाविधि का एक प्रमुख अंग है। यह विधान प्राय: सभी परम्पराओं में देखा जाता है। व्यवहार में प्रसन्नता आदि को अभिव्यक्त करने हेतु तत्सम्बन्धी व्यक्ति या वस्तु के अगल-बगल चक्कर लगाया जाता है। विश्व में सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम परमात्मा है अत: उनके आदर सम्मान हेतु प्रदक्षिणा दी जाती है। जीवन के प्रत्येक कार्य में परमात्मा को केन्द्र में रखने का निर्देश भी इससे प्राप्त होता है।

प्रदक्षिणा विनय का द्वार है। इसके द्वारा बाहर में भटकते हुए मन को परमात्मा के समीप लाया जाता है। जिससे परमात्मा के प्रति आकर्षण एवं अभिलाषा के संस्कार प्रकट होते हैं। प्रदक्षिणा एक प्रकार का मंगल है। इसके पालन से समस्त कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं।

यहाँ प्रश्न होता है कि प्रदक्षिणा तीन ही क्यों दी जाए?

जब भी किसी तथ्य को निश्चित करना हो या बात को पक्की करनी हो तो उसका तीन बार उल्लेख किया जाता है। तीन प्रदक्षिणा देकर रत्नत्रय की प्राप्ति एवं सांसारिक प्रवृत्तियों के त्याग की भावना को मजबूत किया जाता है। तीन की संख्या समूह की सूचक है। अत: जिसकी शक्ति अधिक प्रदक्षिणा देने की न हो वह तीन प्रदक्षिणा के द्वारा भी क्रिया को पूर्ण कर सकता है।[14]

प्रदक्षिणा दाएं से बाएं देने का रहस्यभूत कारण है कि दाएं से बाएं यह सृष्टिक्रम है। आज तक विरुद्धगति से जीवन गुजारा, उन्मार्ग का सेवन किया पर अब सीधा चलते हुए सन्मार्ग के द्वारा मोक्ष मंजिल को प्राप्त करूं। मंदिर के पवित्र वातावरण में स्थित Electron, Neutron और Proton आदि की गति भी Clockwise (दक्षिणावर्त्त) होती है। इसका प्रभाव दर्शनार्थी के भाव एवं शरीर दोनों पर पड़ता है। शादी के समय पाणिग्रहण, सलाम, भोजन-लेखन आदि मुख्य कार्य दाएं हाथ से ही किए जाते हैं।

संक्षेप में दाहिनी दिशा पवित्र, मुख्य, कार्यसाधक एवं सीधा होने से उसी दिशा से प्रदक्षिणा प्रारंभ की जाती है।

पूजा आदि मांगलिक कार्यों में पूर्व या उत्तर दिशा की प्रमुखता क्यों?

धार्मिक आराधना-साधना हेतु पूर्व एवं उत्तर दिशा का ही उल्लेख प्राय: देखा जाता है। व्यवहार जगत में भी इनकी उपयोगिता सर्वमान्य है। सूर्य पूर्व

दिशा में उदित होता है तथा उदित होते ही सम्पूर्ण जगत को स्फूर्ति, ऊर्जा एवं प्रकाश प्रदान करता है। सीमंधर स्वामी भी पूर्व दिशा में ही माने जाते हैं। पूर्व दिशा में मुख करने से उदय अर्थात विकास या आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त होती है। पूर्व दिशा को जहाँ विकास और गति का सूचक माना है वहीं उत्तर दिशा स्थिरता की प्रेरक है। उत्तर दिशा मुक्ति पथ की दिशा है। जन्म-मरण से मुक्त होकर आत्म स्वभाव में स्थिर रहना यही जीव का परमलक्ष्य है।

पूजा आदि शुभ कार्य आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से किए जाते हैं। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख रहने से अध्यात्म मार्ग में विकास एवं भावों की स्थिरता प्राप्त होती है। अत: मंगल कार्यों की स्थिरता हेतु इन्हीं दिशाओं का विधान किया गया है।

लौकिक परिप्रेक्ष्य में तिलक की महत्ता

सामान्यतया तिलक को सौभाग्य का प्रतीक माना गया है। पूर्वकाल में इसे सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में भी स्थान प्राप्त था। यह जिनाज्ञा एवं परमात्मा के प्रति निष्ठा अभिव्यक्त करने का भी एक साधन है। किसी व्यक्ति के ललाट पर तिलक देखते ही उसके जैन होने का निश्चय हो जाता है। जिस प्रकार किसी भी कंपनी का एक Logo या Symbol उसे सबसे अलग एक विशिष्ट पहचान देता है वैसे ही चंदन का तिलक लाखों की भीड़ में भी एक जैन श्रावक का अलग अस्तित्व बताता है। कई बार इसी तिलक की वजह से अनेक समस्याओं से रक्षण हो जाता है। समाज में प्राय: जैनों को नैतिक, सच्चा एवं सद्विचारयुक्त माना जाता है। जैनत्व के गौरव को अभिव्यक्त करने का यह अनुपम माध्यम है।

जब किसी व्यक्ति का राज्याभिषेक किया जाता है तब राजतिलक के द्वारा ही उसे राजा होने का एहसास करवाया जाता है। इसी प्रकार मस्तक पर लगा हुआ तिलक व्यक्ति को हर समय उसके जैनत्व होने का बोध करवाता है।

समाज में भी स्त्री को योग्य पति मिलने पर उस हर्ष की अभिव्यक्ति रूप वह ललाट पर टीका लगाती है। भक्ति योग में विश्वास रखने वाले लोग भगवान को ही अपना स्वामी या प्रीतम मानते हैं। अत: परमात्मा प्राप्ति के हर्ष को अभिव्यक्त करने के रूप में भक्त भी अपने मस्तक पर तिलक लगाता है। इसके द्वारा वह अपने आप को परमात्म के चरणों में समर्पित कर देता है। इसकी छाप के रूप में भी तिलक लगाता है।

तिलक ललाट के मध्यभाग में आज्ञाचक्र पर किया जाता है। यह हमारी ज्ञान दृष्टि को जागृत, स्वभाव को शांत, विचारों को स्थिर एवं एकाग्र करता है। आज्ञा चक्र पर तिलक करने से हमारी शक्ति का केन्द्रीकरण भी उसी स्थान पर हो जाता है, जिससे शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होता है। इस विधि के द्वारा सुषुप्त मन को जागृत करते हुए शक्ति के प्रवाह को सहस्रार चक्र की ओर गतिशील कर समस्त सिद्धियों को प्राप्त किया जा सकता है।

तिलक चंदन से ही क्यों किया जाता है?

समाधान है कि शरीर में सर्वाधिक संवेदनशीलता तिलक के स्थान पर ही होती है। उस संवेदनशीलता को अधिक गहन बनाने के लिए चंदन श्रेष्ठ द्रव्य है। शरीर में प्रवाहित शक्ति को यह अच्छी तरह खींच सकता है। इससे चेतन तत्त्व को शांति एवं शीतलता का अनुभव होता है। इन्हीं सब गुणों के कारण तिलक हेतु चंदन का प्रयोग किया जाता है।

तिलक क्यों करना चाहिए? तिलक लघुता एवं नम्रता का प्रतीक है। जीवन में विनय, विवेक, शासन समर्पण एवं नम्रता जैसे गुणों का विकास कर यह व्यक्ति को सर्वजन प्रिय बनाता है। प्रसिद्ध उक्ति है कि 'नमे ते सहुने गमे।'

तिलक लगाने से जिन आज्ञा पालन के प्रति सतत जागरूकता बनी रहती है। इसके प्रभाव से गलत कार्य, अनैतिक आचरण एवं अमानवीय प्रवृत्तियाँ आदि करने से पूर्व व्यक्ति का मन अटक जाता है। नैतिक बल में वृद्धि होती है। सज्जनों की संगति स्वयमेव प्राप्त होती है। प्रभु भक्त के रूप में अस्मिता बनती है। इससे मन को साधा जा सकता है। अत: मनोविजयी, कर्म विजयी बनने का आत्मबल जागृत होता है।

तिलक कहाँ और किसलिए किया जाता है? शास्त्रानुसार श्रावकों को परमात्मा की आज्ञा धारण करने हेतु आज्ञाचक्र पर, परमात्मा का गुणगान करने हेतु कंठ पर, परमात्मा को हृदय में स्थापित करने हेतु वक्षस्थल के मध्य भाग पर तथा शक्तियों का संचय करने हेतु शक्ति केन्द्र नाभि पर तिलक किया जाता है। यदि आभूषण न पहने हों तो उनके प्रतीक रूप में हाथों की दो कलाईयों, अंगुलियों एवं कान पर केशर लगाते हुए उसके ऊपर बादला डालकर वीरवलय मुद्रिका आदि बनानी चाहिए।

परमात्मा के प्रति रहे प्रेम एवं समर्पण भाव की अभिव्यक्ति करने हेतु कपाल पर तिलक करते हैं। दान के प्रतीक रूप में हाथों पर तिलक किया जाता

है। परमात्मा को हृदय में स्थापित करने हेतु अप्रमत्त हृदय पर तिलक किया जाता है। कान अप्रमत्त केन्द्र का स्थान है अत: प्रमाद दशा को हटाने के लिए कान पर तिलक किया जाता है।

पुरुषों को बादाम के आकार का बड़ा तिलक करना चाहिए एवं महिलाओं को गोल बिंदी लगानी चाहिए। इससे कामविकारों का शमन होता है।

तिलक का ऐतिहासिक महात्म्य– ललाट पर लगा हुआ तिलक जैनों की आन-बान और शान का प्रतीक माना जाता है। ललाट पर लगे हुए तिलक का इतना प्रभाव था कि न्यायालय में तिलकधारी पर कभी अविश्वास नहीं किया जाता था। व्यापार में व्यवहार करते समय कभी भी उनके द्वारा अविश्वास या धोखाधड़ी की कल्पना भी नहीं की जाती थी। श्रावकों ने तिलक की शान रखने के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान दे दिया। कापर्दी मंत्री एवं उन्नीस जोड़ों का बलिदान इतिहास में शासन समर्पण एवं तिलक की महिमा को अनुगुंजित करता है।

लोक व्यवहार में विविध प्रसंगों पर भिन्न-भिन्न अंगुलियों से तिलक किया जाता है। जैसे रणभूमि की ओर विदा लेते हुए योद्धा को अंगूठे से तिलक करके विदा किया जाता है। श्राद्ध क्रिया के वक्त तर्जनी से वहीं पूजन में मध्यमा अंगुली से, अरिहंत परमात्मा की अनामिका अंगुली से तथा रक्षा बंधन के समय बहन भाई का कनिष्ठिका से तिलक करती है।

वर्तमान के युवा वर्ग को तिलक लगाने में संकोच होता है तो कई लोग मन्दिर से बाहर आते ही तिलक पोछ देते हैं तो कुछ लोग इतना छोटा तिलक लगाते हैं कि वह किसी को दिखे नहीं पर यह सब ना समझी है। हम जिस परमात्मा के अनुयायी हैं उनकी पहचान रूप तिलक लगाने में कैसी शर्म। मस्तक पर लगा हुआ तिलक व्यक्ति की आध्यात्मिकता एवं गंभीरता आदि सद्गुणों का सूचक होता है। जिस प्रकार स्त्री के भाल पर लगा हुआ तिलक उसके सुहागन होने का सूचक है। उसी तरह श्रावक के मस्तक पर लगा हुआ तिलक देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा के स्वामी रूप होने का सूचक है। ऐसे स्वामी का सान्निध्य प्राप्त करने से कभी भी वैधव्य नहीं मिलता। ऐसी ही कई विशेषताओं एवं मूल्यों से युक्त तिलक जैनत्व की मात्र पहचान ही नहीं अपितु जैनत्वपने का निर्माण करता है।

गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर शेर की मुखाकृतियाँ क्यों? मन्दिर शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका प्रत्येक भाग कुछ विशिष्ट रहस्यों का प्रतीक है। इसी शिल्पकला के अन्तर्गत मूलगर्भगृह के प्रवेश द्वार पर शेर के दो मुख बनाए जाते हैं। यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि मन्दिर जैसे शांत-प्रशांत स्थान में सिंह जैसे डरावने और विकराल चेहरे के निर्माण का क्या है? गीतार्थ आचार्यों ने दोनों चेहरों की दो अलग-अलग उपमाएँ दी हैं– 'व्याघ्ररागो द्वेषकेशरी'। दोनों आकृतियों में से एक का मुख शेर जैसा होता है और दूसरे का सिंह जैसा और शेर का मुखराग का सूचक है और सिंह का मुख द्वेष का। परमात्म के मूल गर्भगृह में उन पर पैर रखकर प्रवेश करना चाहिए ऐसा शास्त्रकारों का कथन है।

संसार में दु:ख देने वाले एवं संसार परिभ्रमण बढ़ाने वाले मुख्य दो तत्त्व राग और द्वेष हैं। इनका दमन करके ही परमात्म अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इन दोनों का स्वरूप विकराल सिंह के समान है अत: गर्भगृह के द्वार पर शेर का मुख बनाया जाता है। उनके ऊपर पैर इसी भावना से रखा जाता है कि हमारे जीवन में रहे राग और द्वेष रूपी सिंह का दमन हो सके।

पूजा करते समय मुखकोश क्यों और कैसा बांधना चाहिए?

मानव शरीर को अशुचि का पिंड माना गया है। वह स्वभाव से ही अशुद्ध है। गंदगी और बदबू सदा इसमें उत्पन्न होती रहती है। सर्वत्र परमात्मा की पूजा-आराधना करते हुए यह अशुचि आशातना का कारण न बने इस हेतु विशेष ध्यान रखना चाहिए।

परमात्मा की पूजा करते हुए भी श्वासोच्छ्वास की क्रिया जारी रहती है। बाहर निकलती हमारी गर्म श्वास अशुद्धि और दुर्गन्ध युक्त होती है। परमात्मा की पूजा करते समय हमारे श्वोसोच्छ्वास के स्पर्श से जिन बिम्ब की आशातना हो सकती है। बाहर निकलती हुई गर्म उच्छ्वास इतनी अधिक कीटाणुओं एवं दुर्गन्ध से युक्त होती है कि उसे रोकने हेतु एक दो पट्ट का वस्त्र बांधने से कार्य नहीं हो सकता इसलिए दुपट्टे के किनारे से मुख और नाक पूर्णत: ढंक जाए इस रीति से आठ तहवाला मुखकोश बांधना चाहिए।

पूर्व काल में राजा-महाराजाओं की हजामत करते समय हजाम मुख पर आठ पट्ट वाला मुखकोश बाँधते थे। जिससे उनके मुख की दुर्गन्ध, थूक आदि

राजा पर न पड़े। यदि राजा की सेवा करते हुए इतना विवेक रखा जाता है तो फिर त्रिलोकीनाथ राजराजेश्वर परमात्मा की पूजा-अर्चना-सेवा करते हुए विनय रखना तो परम आवश्यक है अतः मुखकोश बांधना ही चाहिए।

आजकल प्रदूषण, विषाणुओं के संक्रमण आदि से बचने हेतु Doctor, Traffic Police एवं सामान्य जनता भी मुख पर Mask पहनती है। इस तरह यह शारीरिक स्वस्थता में भी सहायक बनता है।

चंदन घिसते समय अथवा अभिषेक आदि करते हुए मुख से थूंक आदि गिरने की भी संभावना रहती है, इससे चंदन आदि अशुद्ध हो सकता है। इसलिए भी मुखकोश बांधना परमावश्यक है।

मुखकोश कब बांधना चाहिए?

जब भी परमात्मा की अंग पूजा करनी हो अथवा तत्सम्बन्धी द्रव्य को तैयार करना हो तब अवश्यमेव मुखकोश का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार आगम आदि ग्रन्थों की पूजा एवं वांचन आदि करते समय मुखकोश का प्रयोग करना चाहिए।

मुखकोश बांधने की विधि

आचार्य हरिभद्रसूरि पंचाशक प्रकरण में कहते हैं कि

वत्थेण बंधिउण णासं अहवा जहासमाहिए।
वज्जेयव्वं तु तदा देहम्मिवि कंडुयणमाई।।

अर्थात वस्त्र से नासिका बाँधकर पूजा करनी चाहिए, जिससे दुर्गन्धयुक्त श्वास आदि प्रभु को न लगे। नासिका बांधने से यदि असुविधा हो तो जिस प्रकार समाधि हो उस प्रकार बांधना चाहिए किन्तु यह अपवाद मार्ग है। यदि किसी को रोगादि के कारण विशेष असुविधा हो तो नासिका को खुली रखते हुए भी पूजा की जा सकती है अन्यथा मुख और नाक दोनों ही बांधने चाहिए।[15]

पुरुषों को खेस (दुपट्टा) के किनारे से ही आठ पट्ट करके मुखकोश बांधना चाहिए। मुखकोश हेतु अतिरिक्त वस्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शास्त्रों में पुरुष वर्ग के लिए दो वस्त्रों का एवं महिलाओं के लिए तीन वस्त्रों का विधान है। अलग से रूमाल के प्रयोग का कहीं भी उल्लेख नहीं है। परन्तु महिलाओं के वर्तमान परिधान (वेश) के अनुसार उनके लिए रूमाल का प्रयोग आवश्यक है।

यदि पुरुष वर्ग शरीर खुला न दिखे इसके कारण से खेस के स्थान पर मुखकोश का प्रयोग करते हैं तो 'थणदोष' नाम की आशातना लगती है।

सिले हुए या रेडिमेड मुखकोश का प्रयोग किया जा सकता है?

वर्तमान में साड़ी आदि के बचे हुए कट पीस आदि से बने हुए रूमाल अधिक प्रचलन में है। परन्तु ऐसे रूमालों का मुखकोश के रूप में प्रयोग करना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि मुखकोश सिला हुआ होने से उसकी पडिलेहन या निरीक्षण संभव नहीं है। यदि मुड़ी हुई सिलाई के भीतर जीव-जन्तु आदि हो तो उसकी जयणा नहीं हो सकती तथा मुख के थूंक, लार आदि से गीला हो जाए तो उसे सुखाना भी मुश्किल है। इससे सूक्ष्म जीवोत्पत्ति की संभावना भी रहती है।

पौषध आदि में कंदोरा बांधा जाता है तब क्या पूजा करते समय कंदोरा बांधना चाहिए या नहीं?

पौषध आदि में जो कंदोरा बांधा जाता है वहाँ सोने-चाँदी के कंदोरे का नहीं सूती कंदोरे का विधान किया गया है। कंदोरा भेट बांधने का प्रतीक है। योद्धा जब रणभूमि में युद्ध हेतु जाते हैं तब कमर पर भेट (पुट्टा) बाँधकर जाते हैं, जिससे उनका उत्साह एक समान बना रहता है।

व्यवहार में भी किसी बड़े या कठिन कार्य को प्रारंभ करने से पूर्व कहा जाता है कि 'कमर कस लो'। कमर कसना या भेट बांधना यह मर्दानगी का प्रतीक माना जाता है। प्रभु पूजा, पौषध आदि धर्म कार्य में प्रवृत्त होने का तात्पर्य है कर्म शत्रुओं का दमन करने हेतु अग्रसर होना। कर्म शत्रुओं से जूझते हुए प्रवृत्त शुभ क्रिया में निरन्तर उत्साह बना रहे तथा प्रमाद आदि विचलित न कर पाएं इस हेतु से पूजा आदि विशिष्ट कार्यों में जुड़ने से पूर्व कंदोरा बांधने का विधान है।

जिनपूजा अनामिका अंगुली से क्यों करनी चाहिए?

जिनपूजा हेतु अनामिका अंगुली का जो विधान किया गया है उसके पीछे कई मुख्य कारण रहे हुए हैं। पाँचों अंगुलियों में अनामिका को सर्वश्रेष्ठ अंगुली माना गया है। अंगूठे का प्रयोग किसी को अंगूठा दिखाने, ठगने आदि के लिए होता है तो तर्जनी अंगुली का प्रयोग किसी को दर्शाने या किसी के दोष बताने के लिए होता है। मध्यमा अंगुली का प्रयोग किसी भी श्रेष्ठ कार्य में नहीं होता क्योंकि बीचौला कभी एक पार नहीं पहुँच पाता तथा कनिष्ठिका अंगुली

लघुशंका या मैत्री तोड़ने आदि की सूचक है। जबकि अनामिका अंगुली का प्रयोग सगाई, विवाह आदि सम्बन्धों में अंगूठी पहनाकर अन्तर हृदय जोड़ने के लिए होता है। परमात्मा एवं भक्त के हृदय तारों को जोड़ने में अनामिका सहायक बनती है।

शोधकर्ताओं एवं चिंतकों के अनुसार अनामिका अंगुली की वाहकता एवं संवेदनशीलता सर्वाधिक होती है। अत: इसके संपर्क आने वाले पदार्थ की संवेदनशीलता स्वत: बढ़ जाती है। इस अंगुली का संबंध सीधा हृदय से है।

जिनपूजा करते समय अनामिका अंगुली एवं परमात्मा का स्पर्श होने से जिनबिम्ब के शुभ परमाणुओं का प्रवाह हमारे भीतर हो जाता है। इससे हृदय एवं भावों का शुद्धिकरण होता है तथा जीवन में शुभ भावों का सृजन, भक्ति संस्कारों का वर्धन एवं पुण्यानुबंधी पुण्य का अर्जन होता है।

ऐसे ही अनेक कारणों से जिनबिम्ब की पूजा अनामिका अंगुली द्वारा की जाती है।

परमात्मा की पूजा हेतु सफेद वस्त्रों का विधान क्यों?

श्राद्ध विधि प्रकरण में जिनपूजा संबंधी तथ्यों का विवरण करते हुए कहा है–'सेयवत्थणिअंसणा' अर्थात श्वेत वस्त्र धारण करके जिनपूजा करनी चाहिए।[16] इसके पीछे कई कारण नजर आते हैं। रंगों का विशेष प्रभाव धर्माचार्यों एवं वर्तमान वैज्ञानिकों ने माना है। रंग चिकित्सा के द्वारा आज कई रोगों का इलाज किया जा रहा है। लाल रंग जहाँ उत्तेजना का प्रतीक है वहीं हरा रंग स्वस्थता का। इसी प्रकार श्वेत रंग शान्ति एवं सात्विकता के गुणों से युक्त है। श्वेत वस्त्र धारण करने से मन में शुभ भावों का संचार होता है। परमात्मा की पूजा के द्वारा जीवन में इन्हीं गुणों का प्रकटन हो, मन्दिर का वातावरण शांति एवं समाधियुक्त बने इसलिए पूजा हेतु श्वेत वस्त्रों का विधान किया गया है।

आचार्य हरिभद्रसूरि षोडशक प्रकरण में कहते हैं– "सित शुभ वस्त्रेणेति" अर्थात शुद्ध श्वेत वस्त्र या फिर अन्य लाल-पीले वस्त्रों का प्रयोग पूजा हेतु कर सकते हैं। किन्तु मुख्य रूप से श्वेत वस्त्रों का ही विधान है।[17]

वर्तमान में विविध रंगों के सिले हुए भिन्न-भिन्न Quality के वस्त्र पूजा हेतु प्रयुक्त होने लगे हैं। परंतु सादगी, सुंदरता और सौम्यता की अपेक्षा से सफेद रंग अधिक प्रभावी सिद्ध होता है।

पूजा के लिए वस्त्र रेशमी हो या सूती?

जैन शास्त्रों में पूजा हेतु सफेद रेशमी वस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। श्री निशीथ सूत्र में उदयन राजा की पट्टरानी प्रभावती के द्वारा श्वेत रेशमी वस्त्रों के प्रयोग का वर्णन है। इसके पीछे अनेक वैज्ञानिक एवं रहस्यात्मक तथ्य जुड़े हुए हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार रेशमी वस्त्र reflective होता है। वह वातावरण में रही अशुद्धि को ग्रहण नहीं करता अर्थात उसे Reject कर देता है। पूर्व काल में माताएँ जब अंतराय (M.C.) में होती थी तो बच्चों को रेशमी वस्त्र पहनाए जाते थे जिससे माता की अशुचि का प्रभाव बच्चों पर नहीं पड़ता था। आजकल भी कुछ लोग यह सावधानी रखते हैं।

अंजनशलाका आदि विधानों में आचार्यों द्वारा रेशमी वस्त्र धारण करने का विधान प्राच्य ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

कई लोग रेशमी वस्त्र की निर्माण प्रक्रिया में होती हिंसा के कारण उसके प्रयोग का विरोध करते हैं। रेशमी वस्त्र के निर्माण में कोसेटा नामक जंतु के लाररस का प्रयोग किया जाता है अत: वह अशुद्ध एवं हिंसक दोनों है। इसी कारण कुछ लोग सूती वस्त्र के प्रयोग का पक्ष रखते हैं।

यदि सूक्ष्मता पूर्वक विचार करें तो पूजा हेतु प्रयुक्त टेरीलीन, टेरीकॉटन, टेरीवूल, नायलोन, रेयोन, कोटन आदि वस्त्र भी पूर्ण रूपेण अहिंसक नहीं होते। सूती कपड़े को मर्सराइज करने के लिए मटन टेलों का प्रयोग होता है। हर वस्त्र के निर्माण में थोड़ी-बहुत हिंसा होती ही है। आजकल मार्केट में Artificial Silk उपलब्ध है जिसके लिए कीड़ों को मारा नहीं जाता। यदि पूजा के वस्त्र निर्माण के निमित्त विशेष रूप से कीड़ों की हिंसा की जाती हो तो उन वस्त्रों का प्रयोग पूजा हेतु नहीं करना चाहिए। Pure Silk के अतिरिक्त मटका, रेशम आदि ऐसे कई वस्त्रों के प्रकार हैं जो बिना जीव हिंसा के भी बनाए जा सकते हैं।

सूती वस्त्र के निर्माण में स्थावर काय जीवों की हिंसा होती है जबकि रेशमी वस्त्र के निर्माण में कोसेटा नामक बेइन्द्रिय जीव की हिंसा होती है। स्थावरकाय की हिंसा से निर्मित वस्त्रों की अपेक्षा त्रसकाय से निर्मित वस्त्रों में शुद्धता का प्रमाण अधिक होता है।

प्राचीनकाल में ऋषि मुनियों द्वारा व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म आदि का प्रयोग किया जाता था। उनकी प्राप्ति भी उन जीवों की हिंसा या मृत्यु के बाद ही होती है। परंतु इनमें अशुद्ध तत्त्वों के परिष्कार की विशेष शक्ति होने से ऋषि-मुनियों

द्वारा इनका उपयोग किया गया था। रेशमी वस्त्र भी ऐसी ही अनेक विशेषताओं से युक्त है।

वैज्ञानिकों के अनुसार रेशम तत्त्व में एक ऐसा बल होता है जो अशुद्ध तत्त्वों को दूर करता है और शुद्ध तत्त्वों को ग्रहण करता है। यह विशेषता सूती वस्त्र में नहीं देखी जाती। अत: आत्मिक अध्यवसायों की शुद्धि निमित्त तथा अशुद्ध तत्त्वों के संरक्षण के रूप में रेशमी वस्त्र का प्रयोग ही पूजा हेतु करना चाहिए।

घंटानाद-शंखनाद आदि का प्राकृतिक स्वरूप एवं कारण

संगीत और मनुष्य का सम्बन्ध पूर्व समय से ही चला आ रहा है। संगीत की ध्वनि से निकलती लहरें मनुष्य के मन एवं मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं। जब व्यक्ति को किसी कार्य में सफलता प्राप्त होती है तब उस आनंद की अभिव्यक्ति हेतु या हर्ष को अभिव्यंजित करने हेतु वह संगीत, नृत्य आदि का सहारा लेता है। कभी तालियों के द्वारा तो कभी घंट, शंख, नगाड़ा, ढोलक, झालर आदि के माध्यम से अपने आनंद को प्रकट करता है। व्यवहार में भी पुत्र जन्म आदि पर थाली बजाने की परम्परा है।

भगवान के दर्शन होने पर भक्त को भी अत्यंत आनंद होता है जिसे उद्घोषित करने के लिए भक्त भी ऐसे मंगलनाद करता है। जब राजा-महाराजाओं का विजयोत्सव मनाया जाता है तब शंखनाद किया जाता है तो फिर राज राजेश्वर तीर्थंकर परमात्मा के पूजन, आरती आदि के समय तो मधुर स्वरों का मंगलनाद होना ही चाहिए।

संगीत की लहरों का प्रभाव वातावरण पर भी पड़ता है। हम देखते हैं कि जैसे ही गरबा की धुन बजती है लोगों के हाथ-पैरों में अनायास ही गति आ जाती है। मार्चिंग बैण्ड की आवाज सुनते ही सैनिकों के चलने की लय बदल जाती है। Disco के संगीत पर युवाओं के पैर थिरकने लग जाते हैं। इस प्रकार संगीत का नाद मनुष्य के मानस पटल पर विशेष प्रभाव डालता है।

जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन के अनुभूत आनंद को प्रतिघोषित करने हेतु तथा भगवान की आरती-पूजा के अनुरूप दिव्य वातावरण की उपस्थिति हेतु भी घंटे आदि का नाद किया जाता है। प्रभु पूजन और दर्शन द्वारा निर्मित अध्यवसाय, भाव विशुद्धि एवं सत्संस्कारों का प्रभाव जीवन में बना रहे इस ध्येय से भी घंट की मंगल ध्वनि की जाती है।

'परमात्मा के दर्शन करने से मेरा आज का दिन सफल हुआ' इस हर्ष की अभिव्यक्ति एवं जिनशासन की जय-जयकार का सूचन करने हेतु भी घंटनाद आदि किया जाता है।

जिनमन्दिर में घंट आदि बजाने का एक विशेष क्रम नियत है, जिसके कुछ विशेष कारण जैनाचार्यों द्वारा बताए गए हैं।

• सर्वप्रथम मंदिर में प्रवेश करते समय तीन बार घंट बजाया जाना चाहिए। यह मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को बाहरी तत्त्वों से हटाकर प्रभु पूजा में जोड़ने का सूचक है।

• दूसरी बार परमात्मा के अभिषेक के समय घंटनाद करना चाहिए। यह तीर्थंकर परमात्मा के जन्मोत्सव के आनंद की अनुभूति को प्रकट करता है। अभिषेक के समय यह कल्पना भी की जाती है कि परमात्मा स्वयं मेरे हृदय मंदिर में विराजमान हो रहे हैं। घंटनाद के द्वारा इसी अपार आनंद की अभिव्यक्ति की जाती है।

• तीसरी बार द्रव्यपूजा समाप्त होने एवं भावपूजा प्रारंभ होने से पूर्व 27 डंके से युक्त थाली या घंट बजाया जाता है। विशेष रूप से पूजन-महापूजन आदि के समय भी प्रत्येक पूजा के पूर्ण होने पर यह बजाया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मैंने जो द्रव्यपूजा की उसके द्वारा मुझे भावपूजा का अधिकार प्राप्त हुआ अर्थात साधु जीवन की प्राप्ति हुई क्योंकि भावपूजा के मुख्य अधिकारी साधु-साध्वी ही हैं।

• चौथी बार यह घंटनाद जिनमंदिर से निकलते हुए बजाया जाता है। इस समय सात बार घंट बजाते हैं। जिसे सप्तभय पर विजय प्राप्ति का सूचक माना गया है। परमार्थतः वीतराग परमात्मा के दर्शन के बाद जीवन में कोई भय नहीं रहता।

शंख, घंटा आदि के नाद से उत्पन्न ध्वनि मानसिक ही नहीं शारीरिक रोगों का भी निदान करती है। संगीत में ऐसी शक्ति है कि वह दुखी एवं संतप्त मन को भी शांत कर सकता है। मंदिर दर्शन आदि के लिए व्यक्ति मानसिक शांति एवं स्वस्थता की प्राप्ति हेतु भी जाता है अतः जिनमंदिर में शंख, घंट, झालर आदि का वादन किया जाता है।

आरती एवं मंगल दीपक के लौकिक एवं लोकोत्तर लाभ

जिनपूजा यह भगवान को आदर-सम्मान देने एवं उनके प्रति विनय अभिव्यक्त करने का श्रेष्ठ माध्यम है। आरती इसी विधि का एक चरण है। जब घर पर कोई मेहमान आते हैं, तो सर्वप्रथम प्रकाश किया जाता है। उसी प्रकार परमात्मा के स्वागत, बहुमान एवं सम्यक ज्ञान के प्रतीक रूप में आरती-मंगलदीपक आदि करने चाहिए।

आरती का अर्थ करते हुए गीतार्थ आचार्यों ने कहा है– 'आसमन्तात रतिः' अर्थात हे भगवन्! मेरा समग्र प्रेम केवल आपके विषय में हो। इस भाव से भगवान की प्रार्थना करना आरती है।

त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र के अनुसार दुखों को उतारने या हटाने की प्रक्रिया आरती है।

आरती यह संध्यापूजन की सूचक है। प्रसिद्ध गंगा तटों पर संध्या के समय आरती की जाती है।

पूर्वकाल में मंदिरों के गर्भगृह में अंधेरा होता था। भगवान के दर्शन करने हेतु दीपक को परमात्मा के नख से शिखा तक घुमाया जाता था और वही प्रक्रिया आरती के रूप में प्रचलित हुई। इसे करते हुए पूजक यही भावना करता है कि हे परमात्मन्! आपके दर्शन से मेरा जीवन भगवद् भक्ति में अनुरक्त बने तथा मुझे भगवद् स्वरूप प्राप्त हो।

जिस प्रकार आरती में बाती जलती है उसी प्रकार परमात्मा की सेवा में मेरा जीवन समर्पित हो जाए। इस सेवा की ज्योत को अखंड रखने हेतु परमात्मभक्ति रूपी तेल उसमें सदा पूरित रहे।

दीपक के द्वारा परमात्मा की आरती करने से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है, सौभाग्य जागृत होता है, अंधत्व कभी नहीं आता, अज्ञान एवं मोहरूपी अंधकार दूर होता है तथा दीक्षा से लेकर केवलज्ञान तक की प्राप्ति होती है। इसी के साथ आरती के दौरान हो रहा घंटनाद जब गली-गली में सुनाई देता है तो उसकी मंगल ध्वनि सर्वत्र गुंजायमान होने लगती है। इससे विश्वभर के जीव-जंतुओं की भीतरी अशुद्धियों का निवारण होता है।

दीपक को लोकव्यवहार में मंगलरूप माना गया है। दीपावली के अवसर पर आनंद को प्रकट करने हेतु दीपक जलाए जाते हैं। जिनेश्वर परमात्मा के आगे दीपक प्रज्वलित करने का तात्पर्य है उन्नति की श्रेणी मांडना। किसी के

लिए प्रार्थना करनी हो या मंगल कामना उस समय दीपक प्रज्वलित करते हुए परमात्मा के आगे अपने इन भावों को अभिव्यक्त किया जाता है।

आरती की विधि जितनी रहस्यपूर्ण है उतना ही रहस्ययुक्त उसका आकार है। पूर्वाचार्यों ने ज्ञान को दीपक की उपमा दी है। ज्ञान पाँच हैं अत: आरति भी पाँच दीपों से युक्त होती है। पाँच के अंक को मांगलिक माना गया है तथा ज्ञान को भी नंदीसूत्र में मंगलरूप माना गया है अत: पाँच दीपक प्रज्वलित करने चाहिए। आरती में बना हुआ सर्प का आकार मोह रूपी सर्प का सूचक है, जो कि ज्ञान रूपी दीपक की अग्नि को देखकर वहीं रुक जाता है, भयभीत हो जाता है। आरती में दीपक प्रज्वलित करने का एक कारण यह भी है कि जिस प्रकार दीपक जलकर शांत हो जाता है वैसे ही मेरी आत्मा में भड़की कषायों की आग भी दीपक की तरह शांत हो जाए।

मंगल दीपक को स्व-पर मंगलकारी माना जाता है। इसके माध्यम से विश्वमंगल की कामना की जाती है। यह एक मंगलविधि है, प्रकाश का अभिषेक है, तेज की अभिवृष्टि है, अंतर ज्योति को जगाने का महोत्सव है तथा द्रव्य उद्योग के द्वारा भाव उद्योत रूप परमात्मा का स्मरण है।

प्रार्थना का अलौकिक स्वरूप और उसके लाभ

अंतर हृदय से उत्पन्न होता परमात्मा के साथ नीरव संवाद एवं भावात्मक वार्तालाप प्रार्थना कहलाता है। कभी-कभी उन भावों को व्यक्त करने हेतु हम शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। युग-युगान्तर से प्रार्थना के द्वारा परमात्मा के साथ तार जोड़े जाते रहे हैं। प्रार्थना अर्थात प्रभु के लिए प्रेम का स्वीकार। जिसमें समर्पण भाव हो, दासत्व भाव हो, ऊपर उठने के भाव हो, परमात्मा के साथ मिलने की झंखना हो, उसके मनोगत भाव स्वयमेव प्रार्थना के रूप में प्रकट हो जाते हैं। प्रार्थना के माध्यम से भक्त कभी भगवान के प्रति प्रेम भाव व्यक्त करता है तो कभी उपालंभ, कभी वह परमात्मा को प्रीतम मानकर उनसे प्रीति जोड़ता है तो कभी स्वयं को अवगुणी मानते हुए अपनी हीनता एवं दोषों को उनके सामने प्रकट करता है। भक्त के अन्तरहृदय से निकली हुई प्रार्थना निश्चित रूप से पूर्ण होती है। और चंदना के उद्धार के लिए स्वयं भगवान महावीर आए, तो मुनिसुव्रत स्वामी घोड़े को उपदेश देने गए। ऐसे कई उदाहरण शास्त्रों में प्राप्त होते हैं।

प्रार्थना कोई शब्दों की संरचना या सजावट नहीं। यह तो मात्र भावों की अभिव्यक्ति है, अन्तर की पुकार है। पशुओं के पास और मूक लोगों के पास

शब्द नहीं होते फिर भी उनके भाव परमात्मा तक पहुँचते ही हैं। यही भावों की अभिव्यक्ति एक दिन परमात्म स्वरूप की प्राप्ति करवाती है।

प्रार्थना परमात्मा के समक्ष क्यों करनी चाहिए?

प्रार्थना या याचना उसी के समक्ष की जाती है जो उसे पूर्ण करने में सक्षम हो, स्वयं उन गुणों से युक्त हो। जैसे धनवान से ही धन की, ज्ञानवान से ज्ञान की, वैद्य से दवाई की एवं न्यायाधीश से न्याय की याचना की जाती है क्योंकि वे उसे देने का सामर्थ्य एवं योग्यता रखते हैं। परन्तु इन सभी की कुछ सीमाएँ हैं, उसके बाद निश्चित नहीं कि उनके समक्ष याचना करने से भी वे उसे पूर्ण करेंगे या नहीं।

प्रार्थना अपने से अधिक सामर्थ्यवान के आगे की जाती है और परमात्मा के समतुल्य कोई नहीं है। परमात्मा एवं गुरु दोनों में ही आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक विकास करने का पूर्ण सामर्थ्य होता है। उनके समक्ष की गई प्रार्थना निश्चित रूप से फलीभूत होती है। परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्व गुणों के धारक हैं। यद्यपि वे वीतराग एवं सिद्ध अवस्था में होने से हमें कुछ देने वाले भी नहीं हैं। परंतु जैन आगमों के अनुसार "अप्पा सो परमप्पा" हर आत्मा में परमात्मा है और परमात्मा को देखकर परमात्म अवस्था की प्राप्ति का लक्ष्य निर्मित होता है।

परमात्मा के शीतल चरणों में क्या कामना करें?

भक्त परमात्मा के समक्ष बालक की भाँति अपने मनोगत भावों को निश्छल रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। किसी भी प्रकार की याचना कर सकता है किन्तु यह विवेक रखना जरूरी है कि जो जिस कोटि का हो उसके अनुरूप उसके समक्ष प्रार्थना होनी चाहिए। जिनेश्वर परमात्मा जिन्होंने समस्त सांसारिक सुख-ऐश्वर्य आदि को हेय मानकर उसका त्याग कर दिया, उनसे नाशवंत सुखों की प्राप्ति हेतु प्रार्थना करना निरीह मूर्खता है। सुख-दुःख तो स्व-कर्म कृत हैं। इस सम्बन्ध में परमात्मा कुछ नहीं कर सकते। हाँ! प्रतिकूल परिस्थितियों में परमात्मा के जीवन चरित्र का स्मरण करने से समत्व वृत्ति में जीने का अभ्यास होता है। अतः परमात्मा के समक्ष लौकिक सुख-समृद्धि की प्रार्थना नहीं करते हुए जैसे आप समभाव में रहे मैं भी वैसे ही समस्थिति में रहूँ यह प्रार्थना करनी चाहिए। इसी के साथ सांसारिक दुःख एवं मोह माया के जंजाल से मुक्त होकर मोक्ष सुख की उपलब्धि हेतु कामना करनी चाहिए।

इसके उपरांत भी इन सांसारिक दु:खों की वजह से व्यक्ति यदि विचलित हो रहा हो अथवा उस वजह से उसका मन उन्मार्ग की ओर बढ़ रहा हो तो उसे यह सब भी परमात्मा के समक्ष ही अभिव्यक्त कर देना चाहिए। किसी कवि ने कहा है–

चाहू नहीं वैभव प्रभुजी, ना ही झूठी नामना।
जगबंधु अंतरयामी मेरी, एक है यही कामना।।
भवों भव मिले शासन तेरा, प्रभु चरण सेवा पाऊँ मैं।
शीतल चरण की छांह में, वीतराग खुद बन जाऊँ मैं।।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा के समक्ष क्या भाव करने चाहिए। जैनाचार्यों ने अनेक स्थानों पर प्रभु पूजा, प्रभु स्मरण, स्तवन आदि के फल की चर्चा की है। वासुपूज्य स्वामी के स्तवन में देवचंद्रजी महाराज कहते हैं–

आप अकर्ता सेवथी हुए रे सेवक पूरण सिद्धि
निज धन न दिए पण आश्रित लहे रे, अक्षय अक्षर रिद्धि
पूजना तो कीजे रे बारमा जिनतणी रे...

हे परमात्मन्! आपकी सेवा के द्वारा सेवक इच्छित समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। आप अपनी संपदा में से किसी को कुछ नहीं देते किन्तु जो मन से आपका आश्रय ग्रहण करता है वह निश्चय ही अखंड मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। इसलिए भविक प्राणियों! बारहवें जिनराज की पूजा करो।

इससे यह ज्ञात होता है कि परमात्मा के समक्ष मात्र कर्ममुक्ति, स्वरूप प्राप्ति या आत्मसुख की ही प्रार्थना करनी चाहिए।

शेष सुख तो धान्य के साथ घास-फूस की तरह ऐसे ही प्राप्त हो जाते हैं।

यहाँ पुन: प्रश्न होता है कि वीतराग परमात्मा के समक्ष प्रार्थना क्यों की जाए?

प्रार्थना के द्वारा परमात्मा के प्रति प्रेम एवं समर्पण भाव में वृद्धि होती है। अंतर में शुभ भावों का सिंचन होता है। परमात्मा के प्रति रहे प्रशस्त राग एवं प्रेम भाव के कारण अंतर में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सवि जीव करूं शासन रसी' की भावना उत्पन्न होती है। सभी जीवों के प्रति आत्मीय भाव जागृत होता है। राग-द्वेष, ईर्ष्या-माया आदि कषाय भावों का शमन होता है। आंतरिक शांति एवं शारीरिक स्वस्थता की प्राप्ति होती है।

केनेडा के डॉ. रोबर्ट फ्लिक 'Lessons of Living' में लिखते हैं कि 'रोग नाश हेतु शुभ भावना नितांत जरूरी है।' परमात्मा के समक्ष प्रार्थना करने से चिंता-दु:ख-आपदा सभी का निवारण होता है। क्रोध-द्वेष-ईर्ष्या आदि दूर होने से हृदय में निष्काम भगवत प्रेम उत्पन्न होता है। कौटुम्बिक, सामाजिक-व्यावहारिक झगड़े समाप्त होते हैं। इस प्रकार वैयक्तिक एवं सामाजिक सुख-शांति उपलब्ध होती है। विश्व शांति की भावना पल्लवित होती है। उत्कट परमात्म प्रेम उत्पन्न होता है जिसके द्वारा परमात्मा दशा की संप्राप्ति होती है। सार तत्त्व यह है कि वीतराग के समक्ष प्रार्थना करने से वीतराग बनने के मार्ग पर कदम आगे बढ़ते हैं।

कई लोग शंका करते हैं कि परमात्मा के आगे प्रार्थना करने से समस्याओं का समाधान कैसे होता है, क्योंकि परमात्मा तो किसी का कुछ नहीं करते?

एक तरफ हम कहते हैं कि परमात्मा वीतराग हैं। वे किसी का कुछ नहीं करते। सभी अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। तो फिर परमात्मा के आगे प्रार्थना करने से समस्या का समाधान कैसे हो सकता है?

यह अपनी-अपनी श्रद्धा का विषय है। श्रद्धा रखकर प्रयत्न किया जाए तो अवश्य समाधान होता है। वस्तुत: परमात्मा कुछ नहीं करते परंतु भक्त के मन में रहे हुए श्रद्धा एवं समर्पण के भाव ही कार्य सिद्धि में सहायक बनते हैं। वैज्ञानिक भी इस तथ्य को मानते हैं कि जब हमारे भीतर श्रद्धा भाव या प्रेम भाव उत्पन्न होता है तो एक विशेष प्रकार का स्राव हमारी ग्रन्थियों से नि:सृत होता है। इससे कुछ विशिष्ट शक्तियाँ हमारे भीतर जागृत होती हैं, जो कठिनतर कार्यों को भी सहज बना देती है। जैसे– मीरा के श्रद्धा भाव से जहर का प्याला भी अमृत बन गया। श्रद्धावान को ही पत्थर की प्रतिमा में परमात्मा के दर्शन होते हैं और श्रद्धा न हो तो साक्षात परमात्मा भी पत्थर नजर आते हैं। परमात्मा का स्वरूप हमारे समक्ष एक आदर्श होता है। प्रत्येक आत्मा परमात्मा के समान ही शक्ति संपन्न एवं गुण सम्पन्न है। परमात्मा के सामने प्रार्थना करते हुए उसी शक्ति एवं गुणों का जागरण होता है। किसी भी कार्य को करते हुए जब उसके प्रति पूर्ण समर्पण एवं निष्ठा होती है तो वह कार्य अवश्य सिद्ध होता है।

प्रभु दर्शन, तीर्थ यात्रा, जप साधना आदि तो कर्म निर्जरा एवं पुण्य जागरण के साधन हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति भक्ति एवं श्रद्धा भाव से यह कार्य करता

है, वैसे-वैसे उसकी आंतरिक शक्तियाँ अधिक जागृत होती हैं। स्वयं से ही स्वयं की समस्याओं का समाधान होता है और भक्त हृदय उसे परमात्मा की कृपा मानता है। परमात्म भक्ति तो मात्र निमित्त बनती है, उपादान तो व्यक्ति का अपना ही होता है।

प्रार्थना करते हुए मन में इन्हीं विशिष्ट शक्तियों का जागरण होने से समस्याओं का समाधान होता है। अत: पूर्ण आत्मसमर्पण एवं जागृति के द्वारा शरीर के रोम-रोम एवं हृदय से की गई प्रार्थना सदैव निश्चित रूप से फलीभूत होती है।

जिन दर्शन एक लाभपूर्ण अनुष्ठान

जिन दर्शन की महिमा का शास्त्रों में सर्वत्र गुणगान किया गया है। आगमों में जिनप्रतिमा को साक्षात जिनेश्वर की उपमा दी गई है। जिनेन्द्र दर्शन को स्वर्ग का सोपान माना गया है। शास्त्रकारों के अनुसार समस्त गुणों के धारक श्री अरिहंत परमात्मा के गुणों का भक्तिभाव पूर्वक गुणगान-कीर्तन-दर्शन आदि करने से आत्मा में रहे हुए ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण एवं आंतरिक निधि प्रकट होती है। जिन मूर्ति हमारे निज स्वरूप का दर्पण है। परमात्म दर्शन से आत्मा में सुप्त रूप से रही हुई पूर्णता प्रकट रूप से अनुभव में आती है। प्रभु के नाम का स्मरण एवं गुणगान प्रभु धाम को प्राप्त करने का सुलभ रास्ता है।

प्रभु के स्मरण एवं गुणगान द्वारा सर्व पापों का क्षय तथा विघ्न एवं दुखों का सर्वथा अंत होता है।

भक्ति वृद्धि का राजमार्ग त्रिकाल पूजा

हर क्षेत्र के लिए कुछ कर्त्तव्य, कुछ अधिकार और कुछ मर्यादाएँ अवश्य रूप से निहित होती हैं। श्रावक के आवश्यक कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए आचार ग्रन्थों में जिनपूजा का भी उल्लेख किया गया है। श्रावकों के लिए नित्य त्रिकाल पूजा का विधान किया गया है। गृहस्थ के दैनिक जीवन में परमात्म भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में गृहस्थ जीवन यापन करते हुए भी परमात्मा के साथ भक्त का निरंतर जुड़ाव बना रहे, शुभ भावों में वर्धन हो, जीवन में नैतिकता, समर्पण, निष्ठा आदि सद्गुणों का निर्माण हो तथा आत्म लक्ष्य का भान रहे, इन भावों से त्रिकाल पूजा का विधान किया गया है।

जिस प्रकार डॉक्टर की दवा दिन में तीन बार लेने पर शीघ्र आराम मिलता है, वैसे ही आत्मा में लगे हुए विभाव दशा रूपी रोगों का निवारण करने एवं आत्मा की Battery Charge करने हेतु जिनेश्वर परमात्मा की त्रिकाल पूजा रामवाण औषधि का कार्य करती है।

त्रिकाल पूजा शब्द स्वयं ही सूचित करता है कि यह पूजा तीनों कालों में की जाती है। विशेष रूप से संधि वेला अर्थात दो कालों के बीच का Common या उन्हें जोड़ने वाला समय। सूर्योदय, सूर्यास्त एवं दोपहर में मध्याह्न का समय संधि वेला माना गया है। इन संध्याओं की महत्ता प्राय: सभी धर्मों में रही हुई है। जैनाचार्यों ने भी लोक व्यवहार एवं संधि समय की महत्ता को देखते हुए त्रिकाल पूजा का विधान किया है।

त्रिकाल पूजा की समय सारणी

जैनाचार्यों के अनुसार भगवान की त्रिकाल पूजा 1. प्रात:काल 2. मध्याह्नकाल और 3. सायंकाल में करनी चाहिए।

प्रथम पूजा सुबह में सूर्योदय के बाद, द्वितीय मध्याह्नकालीन पूजा दोपहर में लगभग बारह बजे तथा तृतीय संध्याकालीन पूजा सूर्यास्त के कुछ समय पूर्व करनी चाहिए।

त्रिकाल पूजा करते हुए प्रात:काल में विशेष रूप से परमात्मा की वासक्षेप पूजा, मध्याह्न काल में परमात्मा की अष्टप्रकारी पूजा एवं संध्या काल में परमात्मा की आरती, मंगल दीपक आदि के द्वारा पूजा की जाती है।

प्रात:कालीन पूजा का स्वरूप एवं वासक्षेप पूजा के विचारणीय तथ्य

श्रावक के प्रात:कालीन चर्या की चर्चा करते हुए शास्त्रकारों ने श्रावकों के लिए सूर्योदय से डेढ़ घंटा पूर्व उठने का सूचन किया है। तदनन्तर सामायिक, रात्रि प्रतिक्रमण आदि क्रिया करनी चाहिए। सूर्योदय के पश्चात हाथ-पैर की शुद्धि करके शुद्ध वस्त्र धारण कर जिन मन्दिर जाना चाहिए। दस त्रिक एवं पाँच अभिगम का पालन करते हुए जिन मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए। परमात्मा की प्रदक्षिणा, स्तुति आदि करने के बाद सुगन्धित चंदन चूर्ण से परमात्मा की वासक्षेप पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात धूप-दीप आदि करके यथाशक्ति पच्चक्खाण ग्रहण करना चाहिए।

प्रात:कालीन पूजा वासक्षेप से ही क्यों?

प्रात:काल में वासक्षेप पूजा का विधान कई विशेष रहस्यों को समाहित किए हुए हैं। प्रात:काल यह दिन की शुरूआत होती है और वह परमात्म भक्ति जैसे शुभ कार्य से प्रारंभ हो तो पूरा दिन आनंदपूर्वक बीतता है।

प्रात: वेला में सूर्योदय होने के पश्चात भी सूर्य का प्रकाश इतना तीव्र नहीं होता कि मंदिर के भीतर पूर्ण उजाला हो सके या वातावरण में रहे सूक्ष्म जीवों की रक्षा की जा सके अत: जीव हिंसा की संभावना रहती है। प्रात:काल में श्रावक को अन्य भी कई पारिवारिक-सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना होता है। अष्टप्रकारी पूजा यदि विधिवत करनी हो तो उसमें अधिक समय चाहिए, जबकि प्रात:काल में अन्य कार्यों को सम्पन्न करने की बुद्धि भी रहती है। अत: श्रावक पूर्ण निश्चिंतता के साथ अष्टप्रकारी पूजा सम्पन्न नहीं कर सकता। जिनपूजा हेतु शुद्ध एवं ताजे द्रव्य प्रात:काल में प्राप्त होना कठिन होता है। अत: दोषयुक्त द्रव्य प्रयुक्त होने की संभावना अधिक रहती है। प्रात:काल में स्नानादि कार्य करने में जल्दी होने से अविवेक की संभावना रहती है। मंदिर की साफ-सफाई का भी कार्य श्रावक को स्वयं करना चाहिए। यदि श्रावक पूजा के वस्त्रों में आएगा तो साफ-सफाई करते हुए पसीना आदि से शारीरिक अशुद्धि की भी संभावना रहती है। पूर्व काल में नित्य अभिषेक का विधान नहीं था अत: श्रावक *वासचूर्ण द्वारा ही जिनपूजा करते थे।*

इसी के साथ एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रात:काल में अष्टप्रकारी पूजा जल्दी करना संभव नहीं होता है। ऐसे में श्रावक बिना परमात्मा की पूजा किए अपने दिनचर्या की शुरूआत कैसे करें? इस हेतु शुद्ध वस्त्रों को धारण कर श्रावक वासक्षेप पूजा द्वारा अपना भक्तिभाव परमात्मा के समक्ष प्रदर्शित करता है। जिनबिम्ब के शुभ परमाणुओं का ग्रहण कर अपने आप को शुभ भावधारा में प्रवाहित करता है।

यद्यपि उत्कृष्ट रूप से श्रावक को नित्य एकासण तप करना चाहिए किन्तु शक्ति नहीं होने पर सामर्थ्य अनुसार पच्चक्खाण कर सकते हैं। गृहस्थ दिन की मंगलकारी शुरूआत करने हेतु परमात्मा की वासक्षेप पूजा करता है। जिस प्रकार वासचूर्ण एक सुगंधित द्रव्य है एवं उसकी सुवास से सम्पूर्ण वातावरण निर्मल, मनोरम एवं आह्लादजनक बन जाता है उसी तरह परमात्मा की वासचूर्ण के द्वारा

पूजा करने से श्रावक का जीवन भी परमात्म भक्ति एवं अध्यात्म की सौरभ से परिपूर्ण बनता है।

मध्याह्नकालीन पूजा के सारभूत तथ्य

प्रात:कालीन चर्या पूर्ण करने के पश्चात किन्तु भोजन करने से पूर्व श्रावक के लिए मध्याह्नकालीन पूजा के रूप में अष्टप्रकारी पूजा का सूचन ग्रंथकारों ने किया है। त्रिकाल पूजाओं में मध्याह्न पूजा का सविशेष महत्त्व है। यदि हम अपनी भोजन चर्या का निरीक्षण करें तो हमें ज्ञात होगा कि दोपहर के समय मीठा-नमकीन आदि से युक्त गरिष्ठ भोजन बनाया जाता है। क्योंकि उस समय हम उसे पचाने की क्षमता रखते हैं एवं उस समय तक उन द्रव्यों का निर्माण भी हो सकता है। वैसे ही त्रिकाल पूजाओं में मध्याह्न पूजा अधिक द्रव्य सामग्री एवं अनेक विधि क्रियाओं से युक्त होती है। इसके पीछे कई सारभूत कारण भी हैं।

मध्याह्न पूजा अर्थात अष्टप्रकारी पूजा। पूर्व काल में श्रावकों की जीवनचर्या संतोषपूर्ण होती थी। उनकी एक ही भावना रहती थी कि नैतिकता के द्वारा इतने द्रव्य का अर्जन कर लिया जाए कि गृहस्थी का संचालन सम्यक प्रकार से हो सके तथा आए हुए अतिथि एवं संतजनों की भक्ति हो सके। इससे अधिक लालसा एक श्रावक के जीवन में नहीं होती थी। इस कारण श्रावक अपना अधिकाधिक समय परमात्म भक्ति में व्यतीत कर सकते थे।

मध्याह्न पूजा का समय है दोपहर बारह बजे का। उस समय तक सूर्य की किरणों का प्रभाव सम्पूर्ण वातावरण में फैल जाता है। उसके प्रकाश से सूक्ष्म जीव भी दृष्टिगम्य होने लगते हैं। कृत्रिम रोशनी या Electric Light आदि का प्रयोग जैन मन्दिरों में वर्जित है तथा प्रात:कालीन प्रकाश इतना तीव्र नहीं होता कि उसमें सूक्ष्म जीव दृष्टिगोचर हो सके।

प्राचीन काल में नैवेद्य आदि के रूप में पूर्ण भोजन थाल चढ़ाया जाता था। पूर्ण भोजन सामग्री की तैयारी मध्याह्न काल में ही संभव है। मध्याह्न काल तक श्रावकों को भी शुद्ध एवं उत्तम द्रव्यों की प्राप्ति हेतु समय मिल जाता था। इसी के साथ आवश्यक कार्यों से निवृत्त होने के बाद निश्चिंत होकर प्रभु पूजा में मन को जोड़ा जा सकता है।

मध्याह्न काल में जलपूजा से लेकर फलपूजा तक की अष्टप्रकारी पूजा के

रूप में द्रव्य पूजा तथा चैत्यवंदन के द्वारा भावपूजा की जाती है। विविध द्रव्यों को अर्पण करने से उनके प्रति आसक्ति न्यून होती है तथा तद्गुणों का चिंतन करने से व्यक्ति में उन गुणों का आविर्भाव होता है।

संध्याकालीन पूजा में आरती की महत्ता

श्रावक की दैनिक चर्या के अंतिम पड़ाव में सायंकालीन प्रतिक्रमण से पूर्व संध्याकालीन पूजा का उल्लेख है। जैनाचार्यों का कहना है कि जो श्रावक एकाशन आदि करने में सक्षम नहीं हों उन्हें कम से कम सूर्यास्त से दो घड़ी (48 minutes) पूर्व तो भोजन-पानी आदि का त्याग कर ही देना चाहिए। अपने दिनभर की सुखद पूर्णता का धन्यवाद देने, दिन में सेवित पापों की आलोचना एवं प्रायश्चित्त करने तथा संध्याकालीन प्रत्याख्यान हेतु श्रावक को पुनः परमात्मा की शरण में पहुँचकर अपने आपको निर्मल एवं शुद्ध बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सूर्यास्त का समय निकट होने से संध्याकाल में परमात्मा की अंगपूजा अर्थात जलपूजा आदि करना संभव नहीं है क्योंकि उस समय भी प्रकाश की अल्पता होती है। इसी कारण श्रावक के लिए बार-बार देहशुद्धि भी उचित नहीं है। व्यवहार जगत में संध्या का समय आरती, मंत्रोच्चार आदि का माना जाता है। घरों में भी इस समय दीपक प्रकटाकर रोशनी की जाती है। संध्यापूजन एवं आरती दोनों को सहचर माना गया है।

आरती को "आरात्रिक" भी कहा जाता है। इसका अर्थ है रात्रि के प्रारंभ या संध्या समय में सम्पन्न की जाने वाली प्रक्रिया आरात्रिक है और इसी का प्रवर्तित शब्द रूप आरती है। संध्या के समय अंधेरे के कारण जिनबिम्ब के स्पष्ट दर्शन करना संभव नहीं होता। इस कारण दीपक के माध्यम से श्रावक सम्पूर्ण प्रतिमा का दर्शन करता है। परमात्मा की राज्य अवस्था दर्शाने हेतु यदि जिनबिम्ब की अंगरचना की गई हो तो लोक व्यवहार के अनुसार परमात्मा को नजर न लगे इस हेतु कई परम्पराओं में आरती की जाती है।

संध्या के समय आरती, वाद्ययंत्र, मंत्र आदि का मंगलनाद वातावरण में एक अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करता है। इससे दिन भर की थकान दूर हो जाती है। इससे श्रावक संध्या सम्बन्धी आराधना में अधिक मनोयोगपूर्वक जुड़ सकता है। परमात्मा के समक्ष आरती करने से दुःख, पाप एवं कर्मों का नाश होता है।

आचार्य हेमचंद्रसूरि ने दुखों को उतारने या हटाने की प्रक्रिया को आरती कहा है। ऐसे ही कई कारणों से शाम के समय आरती का विधान किया गया है।

त्रिकाल पूजा के बहुपक्षीय लाभ

पूर्वाचार्यों ने त्रिकालपूजा का विधान अनेक बिन्दुओं को ध्यान में रखकर किया है। जब कोई क्रिया पुन: पुन: की जाती है तो उसके संस्कार गाढ रूप से हमारे भीतर प्रस्थापित हो जाते हैं। प्रत्येक आत्मा का सर्वोच्च लक्ष्य है परमात्मदशा की प्राप्ति और जब हमारा लक्ष्य बार-बार हमारे सामने आता रहे तो उसकी अनुभूति, उसे प्राप्त करने का उत्साह प्रति समय बना रहता है। त्रिकाल पूजा के कारण बार-बार परमात्मा के दर्शन होते रहते हैं। इससे परमात्मा का स्वरूप पूजक के अन्त:स्थल में स्थिर हो जाता है। परमात्मा के त्रिकाल दर्शन करने से अनेक गुणा लाभ की प्राप्ति होती है।

शास्त्रकार कहते हैं–

जिनस्य पूजनं हन्ति, प्रातः पाप निशा भवम्।
आजन्म विहित मध्ये, सप्त जन्मकृतं निशि।।

अर्थात जिनेश्वर परमात्मा का प्रात:काल में किया हुआ पूजन रात के पापों का नाश करता है। दोपहर के पूजन से इस भव के पापों का तथा संध्या के समय किए गए पूजन से सात जन्म के पापों का नाश होता है।

मानसिक स्तर पर परमात्मा के दर्शन से चित्त उपशांत बनता है, आंतरिक आनंद की अनुभूति होती है, परमात्मा के अनंत गुणों का अवतरण हमारे भीतर होता है, उदारता, परदुखकातरता, स्वदोष दर्शन, लघुता, गुणानुराग, धर्मश्रद्धा आदि मानवीय गुणों का विकास होता है तथा निरभिमानता, तत्त्वदर्शिता, मातृभक्ति, कष्ट सहिष्णुता आदि परमात्म गुणों का भी अवतरण होता है। हृदय में रही कलुषिता-कषाय आदि का हरण होता है और मन विकार रहित, शुद्ध एवं निर्मल बनता है।

शारीरिक स्तर पर भी इसका विशिष्ट प्रभाव देखा जाता है। त्रिकाल पूजा हेतु बार-बार मंदिर आने-जाने से शरीर स्वस्थ रहता है। जिनपूजा सम्बन्धी विविध क्रियाओं को विधिपूर्वक करने से शरीर के अंग-प्रत्यंग की कसरत हो जाती है। ध्यान आदि के द्वारा शारीरिक हलचल पर नियंत्रण प्राप्त होता है। घरों में A.C., Cooler या पंखों में रहने वाले लोगों को विपरीत परिस्थितियों में

रहने का अभ्यास होता है। शरीर हर परिस्थिति में रहने का आदी हो जाता है। प्रात: एवं मध्याह्नकालीन पूजा हेतु जाते हुए सूर्य का प्रकाश सीधे शरीर पर पड़ने से शरीर में प्राकृतिक ऊर्जा का संचार होता है। इस तरह त्रिकाल पूजा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जगत का परिष्कार करती है।

वर्तमान समय में त्रिकाल पूजा : एक समीक्षात्मक चिंतन

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि त्रिकाल पूजा के सर्वाङ्गीण स्वरूप का चिंतन करें तो आज त्रिकाल पूजा करने वाले श्रावक नहीं के बराबर रह गए हैं। इसका मुख्य कारण है हमारी वर्तमान यांत्रिक गतिमय जीवनशैली, परमात्म भक्ति के प्रति बढ़ता उपेक्षा भाव तथा पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण।

आजकल अधिकांश लोग प्रात: काल में ही अष्टप्रकारी पूजा सम्पन्न कर लेते हैं और कई लोग तो अष्टप्रकारी पूजा भी नहीं करते, मात्र चंदन पूजा को ही पूजा मानकर खुश होते हैं। कई नगरों में लोगों ने अपनी व्यस्तता के कारण जिनपूजा संबंधी नियमों एवं विधि-विधानों को विस्मृत करते हुए सूर्योदय से पूर्व ही प्रक्षाल करना प्रारंभ कर दिया है, जो कि सर्वथा अनुचित है। आजीविका आदि के कारण श्रावकों को त्रिकाल पूजा में कुछ अपवाद जरूर दिए गए हैं, परन्तु आज अपवाद मार्ग को लोगों ने राजमार्ग बना लिया है। कई लोग तर्क करते हैं कि वर्तमान की Fast प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली में व्यक्ति के पास इतना समय नहीं है कि वह बार-बार अपने कार्य को छोड़कर जिन मंदिर जा सके। आजकल घर, मंदिर और Office आदि के बीच दूरियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि सुबह सात -आठ बजे निकला हुआ व्यक्ति रात को आठ-नौ बजे घर पहुँचता है। ऐसे में उसे एक बार परमात्म दर्शन करना भी भारी लगता है तो वह त्रिकाल पूजा कैसे करे?

पूर्वकाल में लोगों की आवश्यकता एवं इच्छाओं का दायरा कम था। मानव संतोषी वृत्ति का था अत: जो मिलता था उसमें संतुष्ट रहता था। आज के जैसे नित नए आविष्कार भी नहीं होते थे एवं लोगों में पदार्थ भोग एवं संग्रह वृत्ति भी अधिक नहीं थी। लोगों में धर्म के प्रति जागृति थी अत: त्रिकाल पूजा करना उनके लिए संभव था। किन्तु आज माहौल इसके विपरीत है। जॉब और बिजनेस के लिए लोग अपनी मूल मातृभूमि ही नहीं वतन से भी दूर जा रहे हैं। ऐसे में उनमें धर्म संस्कारों का बीजारोपण कैसे संभव है?

समयानुसार या परिस्थिति अनुसार परिवर्तन हर काल में आते हैं किन्तु परिवर्तन का अभिप्राय यह तो नहीं कि हम मूल सिद्धान्तों में ही परिवर्तन कर दें। त्रिकाल पूजा जिनके लिए संभव नहीं है, वे मध्याह्न काल की अपेक्षा प्रात: काल में अष्टप्रकारी पूजा सम्पन्न करें, वहाँ तक मान्य हो सकता है परन्तु अपनी सुविधा अनुसार उनमें मनचाहा परिवर्तन ग्राह्य नहीं है। परिवर्तन का अधिकार मात्र गीतार्थ गुरुओं को दिया गया है श्रावक वर्ग को नहीं।

वर्तमान में लोग त्रिकाल पूजा के मूल प्रयोजन आदि से अनभिज्ञ होने के कारण भी इसे उपेक्षित कर जाते हैं तो कई लोग लापरवाहीवश इसे विस्मृत कर जाते हैं। कहा जाता है कि जहाँ चाह हो वहाँ राह मिल ही जाती है। मुसलमान व्यक्ति चाहे जहाँ हो वह पाँचों समय की नमाज अदा करता ही है। चाहे ऑफिस हो चाहे स्कूल, नमाज पढ़कर ही वह आगे बढ़ता है, क्योंकि उसे अपनी धर्मक्रियाओं के प्रति श्रद्धा एवं आस्था है। रमजान में छोटे-छोटे बच्चे भी महीना भर रोजा रखते हैं और हम संवत्सरी का एक उपवास करने में भी कतराते हैं। क्योंकि हमें परमात्म वाणी के प्रति वह श्रद्धा ही नहीं है। मुम्बई जैसे महानगरों में जहाँ हर क्षेत्र में जिनमंदिर है वहाँ कोई भी व्यक्ति चाहें तो अपने ऑफिस आदि से आते-जाते समय या Off Time में मंदिर जाकर आ सकता है, पूजा आदि भी कर सकता है बशर्ते परमात्मा के प्रति उतना बहुमान होना चाहिए।

हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में त्रिकाल पूजा करना मुश्किल है, परन्तु असंभव नहीं। श्रावक को परिस्थिति अनुसार अपने समय का नियोजन कर जिनपूजा अवश्य करनी चाहिए। कम्प्यूटर की भाँति अधिक जिनबिम्बों की फट-फट पूजा करने की अपेक्षा एक ही जिनबिम्ब की अच्छे से भावपूर्वक पूजा करना श्रेयस्कर है। यदि प्रात:काल में जल्दी जाना हो तो प्रक्षाल का आग्रह न रखते हुए वासक्षेप पूजा के द्वारा संतोष कर लेना चाहिए। सूर्योदय से पूर्व प्रक्षाल आदि करना कर्मनाश की अपेक्षा कर्म बंधन का कारण बनता है।

जिस प्रकार हम बच्चों के School, Meeting party आदि में जाने हेतु उचित समय निकाल लेते हैं वैसे ही परमात्म दर्शन को भी आवश्यक कार्य समझें तो निश्चित रूप से त्रिकाल-दर्शन हेतु भी समय का नियोजन कर सकते हैं।

कदाच भौतिक उत्थान के अनुरागी लोगों को यह क्रिया निष्प्रयोजन, दुष्कर

या अप्रासंगिक प्रतीत हो सकती है। किन्तु अध्यात्म उत्कर्ष के इच्छुक साधकों के लिए वर्तमान के भोगमय एवं पापमय युग में यह क्रिया अध्यात्म मार्ग पर चुंबक का कार्य कर सकती है, भौतिक चकाचौंध में मार्गभ्रष्ट होने से रोक सकती है और परमात्म भक्ति में अग्रसर कर सकती है।

अत: वर्तमान समय में लौकिक परिस्थितियों वश त्रिकाल पूजा करना कठिन अवश्य हो सकता है फिर भी पूर्वकाल की अपेक्षा यह अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है, क्योंकि इस पंचम काल में जिनबिम्ब एवं जिनागम ये दोनों ही संसार सागर पार करने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। जिनागम पढ़ना सभी के लिए संभव नहीं है परन्तु जिनपूजा करना तो संभव है। कुछ समय पूर्व तक जब विकास अपने शिखर पर नहीं था तो भौतिक संसार में फँसने के साधन भी उतने अधिक नहीं थे। पर आज की विषम परिस्थितियों में जहाँ मानसिक अशांति एवं पथभ्रष्ट होने के कारण पग-पग पर मिलते हैं, वहाँ परमात्मा की प्रशान्त-तेजस्वी मुख मुद्रा के त्रिकाल दर्शन हमारे लिए आत्म जागृति में उन्नायक एवं मानवीय गुणों के वर्धक हो सकते हैं। नकारात्मक एवं द्वेषात्मक वातावरण में सकारात्मक भावों का सृजन कर सकते हैं। अत: आत्मोत्थान के इच्छुक जीवों के लिए त्रिकाल दर्शन Vitamin Capsule की भाँति शक्तिवर्धक, गुणवर्धक एवं हितकारक है।

दर्शन किसका और किसलिए?

प्रात:काल में देवाधिदेव श्री तीर्थंकर परमात्मा का नित्य दर्शन करने का उल्लेख जैन शास्त्रों में किया गया है। जैन साधु-साध्वी जो कि आवश्यक कारण उपस्थित होने पर ही गमनागमन करते हैं, उनके लिए गमन के चार मुख्य हेतुओं में जिनदर्शन एक प्रमुख कारण है। अत: जिनदर्शन जैन साधु एवं श्रावक की एक परमावश्यक क्रिया है। शास्त्रों में कहा गया है कि जिनमंदिर होने पर भी यदि कोई जिनदर्शन न करे तो वह प्रगाढ़ अंतराय का बंधन करता है। परमात्म दर्शन न करने पर साधु को दो उपवास का दंड आता है। इससे जिनदर्शन की महत्ता स्वत: प्रमाणित हो जाती है।

प्रभु दर्शन कल्याणकारी एवं मंगलकारी माना गया है। यह भौतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धियों को प्रदान करता है तथा मिथ्यात्व आदि पापों का नाश करता है। कहा भी है–

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सौपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्।।

देवाधिदेव परमात्मा के दर्शन करने से पापों का नाश होता है। जिन दर्शन स्वर्ग का सोपान और मोक्ष प्राप्ति का परम साधन है। जब तक आत्मा के द्वारा परम विशुद्ध सिद्ध अवस्था को प्राप्त न कर लिया जाए, तब तक जिनदर्शन शुभ कर्म बंध एवं स्वर्ग प्राप्ति का अनंतर कारण बनता है। वीतराग परमात्मा के दर्शन के पारम्परिक अंतिम फल के रूप में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जिनदर्शन करते समय जिनप्रतिमा के माध्यम से अरिहंत परमात्मा के साधनामय जीवन की गहराई में उतरते हुए उनके अनंत परमात्म गुणों में लय-लीन होना चाहिए। परमात्मा की प्रशांत मुखमुद्रा एवं वीतराग स्वरूप का दर्शन कर मन को कषायों से उपशांत करने एवं सांसारिक पदार्थों के प्रति रागभाव कम करने का प्रयास करना चाहिए।

महापुरुषों के सत्संग, समागम आदि से हमारे भीतर रहे हुए दुर्गुणों एवं कमियों का भान होता है। उनके सद्गुणों का चिंतन करने से गुणानुरागी वृत्ति का वर्धन होता है। प्रभु उपकारों का सुमिरन करने से कृतज्ञता एवं भक्ति भावों का अभ्युदय होता है। कुसंस्कारों का क्षय होता है। जिस प्रकार दर्पण में मुख देखने पर लगी गंदगी, दाग आदि का स्पष्ट बोध हो जाता है उसी तरह प्रतिमा के दर्शन से जीव को आत्मस्थिति का सही अहसास होता है।

बालक को विद्यालय में भेजने से पूर्व उसे Playgroup, K.G. आदि प्रारंभिक कक्षाओं में प्रविष्ट करवाया जाता है ताकि भविष्य की पढ़ाई एवं परिस्थितियों के लिए योग्य बन सके। इसी प्रकार जब तक आत्मगुणों में पूर्णता न आ जाए तब तक जिनदर्शन प्रमाद अवस्था से मुक्त करने में सहायक बनता है। अत: स्व को जानने, जगाने एवं परमोच्च लक्ष्य तक पहुँचाने हेतु जिनदर्शन परमावश्यक है।

परमात्म दर्शन बार-बार क्यों करना चाहिए?

लौकिक जगत पर यदि दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि जौहरी लोग जो कि रत्नों के पारखी होते हैं, वे एक ही हीरे को कई बार कई दिनों तक देख-देखकर उसका मूल्य निश्चित करते हैं। जिस हीरे की कीमत पहले दिन वह पाँच हजार करते हैं उसी की कीमत दूसरे दिन पचास हजार करते हैं। इसी प्रकार

प्रतिदिन परमात्मा के दर्शन करने से परमात्मा का स्वरूप हमारे भीतर अवस्थित हो जाता है। इसी तरह परमात्मा जो कि कोहिनूर हीरे से भी अधिक मूल्यवान, जगत चिंतामणि हैं ऐसे परमात्मा की सच्ची पहचान करने के लिए स्थिरतापूर्वक उनके दर्शन करना आवश्यक है। परमात्मा की सच्ची पहचान हो जाए तो साधक अपने आत्मस्वरूप के दर्शन कर सकता है।

कैसे जाएँ परमात्मा के दरबार में?

त्रिलोकीनाथ जगतवंद्य परमात्मा के दरबार में दर्शनार्थी एवं पूजार्थी वर्ग किस प्रकार पहुँचे? इसका उल्लेख शास्त्रकारों ने अनेक स्थानों पर किया है। जो जिस वर्ग का हो उसे अपनी ऋद्धि एवं ऐश्वर्य के अनुसार जिनमन्दिर जाना चाहिए, जिससे अन्य लोगों को जिनमन्दिर जाने हेतु प्रेरणा एवं अनुमोदन का अवसर प्राप्त हो। जिनधर्म का जयनाद एवं जयकार सर्वत्र गुंजायमान हो। प्रत्येक के हृदय में जिनधर्म का सम्मान हो। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए राजा, नागरश्रेष्ठि, सामान्य श्रावक आदि के मन्दिर जाने की रीति का वर्णन इस प्रकार है–

राजा कैसे जाएं?

जिनधर्मानुरागी राजा-महाराजा आदि को चार प्रकार के सैन्यबल के साथ छत्र, चामर आदि राजचिह्नों को धारण करते हुए सुंदर वस्त्र, अलंकार आदि से सुसज्जित होकर, आडंबर सहित, सपरिवार गाजते-बाजते जिनमन्दिर जाना चाहिए। इस प्रकार जाने से सम्पूर्ण नगर में जिनधर्म की प्रभावना होती है। कई लोग दर्शन की इस प्रक्रिया का अनुमोदन कर भव्यत्व को प्राप्त करते हैं तो कई जन जिनधर्म की प्रशंसा, अनुमोदना, गुणगान आदि करके बोधि को प्राप्त करते हुए आत्म श्रेयस् के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। राजा के समान उनके अमात्य, मंत्री आदि को भी योग्य रीति से दर्शन करने जाना चाहिए।[18]

नगरसेठ एवं श्रीमंत श्रेष्ठि किस प्रकार जाएं?

प्रतिष्ठित श्रीमंत श्रेष्ठियों को सम्पूर्ण सामग्री सुंदर रूप से सजाकर, ठाठ-बाट पूर्वक सपरिवार जिनमन्दिर जाना चाहिए। इस विधि से जिनालय की ओर प्रस्थान करने पर भावोल्लास में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और परमात्म भक्ति में विशेष वेग बनता है। मार्ग में स्थित लोगों द्वारा इस प्रक्रिया को देखे जाने पर

उनके मन में भी परमात्मा दर्शन की भावना उत्पन्न होती है। इसी के साथ मार्ग में दान देते हुए जिनमन्दिर जाना चाहिए। इससे अन्य लोगों के मन में जिनशासन के प्रति बहुमान पैदा होता है। करन-करावन और अनुमोदन इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक जीव कल्याण मार्ग पर आरूढ़ होते हैं।[19]

सामान्य श्रावक किस प्रकार दर्शन करने जाएँ?

सामान्य श्रावक को स्व परिस्थिति अनुसार वस्त्र, अलंकार आदि धारण करके स्वजन, मित्र, परिवार आदि के साथ उल्लासपूर्वक एवं परमात्मा की जय-जयकार करते हुए जिनमन्दिर जाना चाहिए।[20]

शास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार जिनदर्शन हेतु जाने से परमात्म भक्ति में निरन्तर उत्साह बना रहता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समूह में रहना उसका स्वभाव है। सामूहिक रूप से दर्शन आदि करने पर नए लोगों को सहायता मिलती है। अनेक अज्ञजनों को भक्ति का मार्ग प्राप्त होता है। सर्वत्र जिनधर्म की प्रभावना होती है। परमात्म दर्शन के भाव अन्य लोगों के मन में भी जागृत होते हैं। इससे सर्वत्र जिनधर्म की महिमा प्रसरित होती है तथा अन्य धर्मानुयायियों के हृदय में जिनधर्म के प्रति अहोभाव बढ़ता है। अत: यथासंभव परमात्म दर्शन हेतु सामूहिक रूप से एवं आडम्बर सहित जाना चाहिए। सपरिवार जाने से बालक एवं युवावर्ग में भी परमात्म भक्ति के संस्कार दृढ़ होते हैं। इसी के साथ समाज में एक धार्मिक, सदाचारी, नैतिक व्यक्ति के रूप में पूजार्थी की छवि बनती है। इससे लौकिक एवं लोकोत्तर कल्याण भी निश्चित रूप से होता है।

एकाकी दर्शन करने वाले श्रावकों को भी मार्गस्थ दीन-दुखियों पर अनुकंपा करते हुए पाँच अभिगम आदि के पालन पूर्वक जिनदर्शन हेतु जाना चाहिए।

प्रतिमा पूजन का उद्देश्य विविध परिप्रेक्ष्य में

जिनपूजा करते हुए विवेक परम आवश्यक तत्त्व है। यहाँ प्रमाद, असावधानी, विषय-विकार आदि को किसी प्रकार का स्थान प्राप्त नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र में हिंसा के स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहा है–

'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा' अर्थात प्रमाद के वशीभूत होकर कार्य करना ही जीव हिंसा है।[21] प्रमाद से ही प्राणों को क्षति पहुँचती है अत:

पूजन हेतु द्रव्य एकत्रित करते हुए एवं पूजन विधान सम्पन्न करते हुए अप्रमत्त रहना आवश्यक है।

कई लोग कहते हैं कि द्रव्य चढ़ाने में हिंसा होती है अत: द्रव्यपूजा हिंसा युक्त है। परंतु उपरोक्त परिभाषा से यह सिद्ध हो जाता है कि द्रव्य चढ़ाने से कदापि हिंसा नहीं होती, यह एक भ्रान्त मान्यता है।

जिनपूजा के द्वारा उत्कृष्ट निर्वद्य अहिंसा का पालन होता है। चढ़ाए जाने वाले द्रव्यों को अभयदान मिलता है। नि:स्वार्थ भक्ति से मोक्ष प्राप्त होता है। पूजा में वही द्रव्य परमात्मा के समक्ष चढ़ाए जाते हैं जिनका प्रयोग श्रावक अपने दैनिक कार्यों हेतु भी करता है। इनका प्रयोग करते हुए मन में त्याग एवं समर्पण भावों का वर्धन होता है। परमात्म गुणों का स्मरण एवं चिंतन करने से आत्मा में परमात्म गुणों का उद्भव होता है। भक्ति में तल्लीनता आती है। चारित्र एवं सम्यक्त्व की निर्मलता बढ़ती है।

एक उच्च अधिकारी, मिनिस्टर या किसी बड़े पदधारी व्यक्ति के पास हम खाली हाथ नहीं जाते क्योंकि इससे उनका अविनय होता है, तो फिर विश्व में सर्वश्रेष्ठ त्रिलोकीनाथ परमात्मा के दरबार में खाली हाथ कैसे जा सकते हैं? यह एक सामान्य लोकव्यवहार एवं परमात्मा का आवश्यक विनय है।

परमात्मा को द्रव्य अर्पण करते हुए श्रावक पदार्थजन्य राग से मुक्त होने एवं अनाहारी पद को प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। जिनपूजा पाँचों इन्द्रियों के प्रति विषयासक्ति को न्यून करती है तथा निजस्वभाव में रमण करवाती है।

स्वयं के भोगोपभोग हेतु द्रव्य प्रयोग जहाँ कर्मबंधन में हेतुभूत बनता है वहीं जिनपूजा आदि शुभकार्यों में किया गया द्रव्य प्रयोग कर्म मुक्ति का कारण बनता है।

प्रश्न हो सकता है कि एक ही द्रव्य कर्म मुक्ति एवं कर्म बंधन दोनों का हेतु कैसे बन सकता है?

पानी की एक बूंद जब सांप के मुँह में जाती है तो विष बन जाती है और वही पानी की बूंद स्वाति नक्षत्र में सीप के भीतर जाने पर मोती का रूप ले लेती है। Doctor के हाथों में जो छुरी प्राण रक्षा के लिए उपयोग में आती है वही छुरी कसाई या डाकू के हाथ में जाने पर प्राण हरण में निमित्त बनती है। ठीक इसी प्रकार श्रावक के द्वारा स्वयं के उपभोग में प्रयुक्त द्रव्य संसार सर्जन एवं आसक्ति

वर्धन का हेतु होने से कर्मबंधन का कारण बनता है वहीं परमात्मा के चरणों में अर्पित द्रव्य परमात्म भक्ति, गुरु भक्ति आदि के रूप में प्रयुक्त होने से आराधना में सहायक बनता है और संसार के प्रति मूर्च्छा भाव को क्षीण करता है अत: कर्म मुक्ति में कारणभूत बनता है।

जिनप्रतिमा पूजन की आज्ञा आगमोक्त है। तत्सम्बन्धी विधि-विधानों की चर्चा आगम, चूर्णि, निर्युक्ति आदि में प्राप्त होती है। तीर्थंकर, गणधर एवं पूर्वाचार्यों द्वारा मान्य होने से जिनाज्ञा का पालन होता है। आज्ञा पालन में ही धर्म और तप की साधना है ऐसा आगम वाक्य है– **'आणाए धम्मो आणाए तवो'**

कई लोग कहते हैं कि मूर्ति पूजा में द्रव्य चढ़ाने से यदि धर्म होता है तो साधु के लिए द्रव्य पूजा का निषेध क्यों? साधु के लिए जो क्रिया पाप का कारण है, वह श्रावक के लिए पुण्य का कारण कैसे हो सकती है?

वस्तुत: मूर्ति पूजा का मुख्य हेतु मन को आलंबन देना है। Stage या श्रेणी अनुसार व्यक्ति की आवश्यकता भी बदलती है। जिसने स्कूल जाना प्रारंभ किया हो उस बच्चे को प्रारंभिक A,B,C,D आदि वर्णमाला का ज्ञान करवाया जाता है किन्तु इसका अभिप्राय यह तो नहीं कि पाँचवीं या दसवीं में पढ़ने वाले बच्चों को भी यह पढ़ाया जाए। चश्मे की आवश्यकता कमजोर आँख वाले को है, जिसकी आँख ठीक है उसे चश्मे की क्या आवश्यकता? इसी प्रकार श्रावक और साधु के stage में भी अन्तर है। जैसे केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद जीव को परमात्मा के आलंबन की आवश्यकता नहीं रहती, शुक्लध्यान प्राप्ति के बाद धर्मध्यान की जरूरत नहीं रहती और सिद्ध होने के बाद देह की आवश्यकता नहीं रहती। इसका अभिप्राय यह तो नहीं कि भगवान का नाम जपना, धर्म-ध्यान करना या मनुष्य देह पाना सभी के लिए हानिकारक है या अनावश्यक है। जिन्हें इसकी जरूरत नहीं उनके लिए वह जरूर हानिकारक हो सकता है। जैसे कि जिसकी आँख कमजोर नहीं है उसके लिए चश्मे या दवाई का प्रयोग अवश्य हानिकारक है। इसी प्रकार भाव जगत में स्थित मुनिराज को ऊँचे पहुँच जाने के कारण द्रव्य पूजा की आवश्यकता नहीं रहती और यदि वे अपनावें तो उन्हें हानि ही होगी। ठीक वैसे ही जैसे पाँचवीं कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी यदि परीक्षा के समय दूसरी कक्षा की पढ़ाई करने जाए तो उसे हानि ही होगी।

इसी प्रकार द्रव्य पूजा किसी हद तक परमात्मा से अनुराग उत्पन्न करती है और द्रव्य में संलिप्त प्राणियों की आसक्ति कम करती है। किन्तु परमात्मा के गुणों के पूर्ण रागी और द्रव्यों की आसक्ति से बिल्कुल परे जो भाव साधु बन गए हैं उनकी श्रेणी द्रव्य पूजा करने वालों से बहुत ऊँची है। द्रव्य के त्यागी होने से अर्पण करने के लिए द्रव्य भी उनके पास नहीं है। उनके भावों में इतनी अधिक उच्चता होती है कि द्रव्य पूजा उनके लिए श्रेष्ठता की अपेक्षा घाटे का ही कार्य करती है। द्रव्य पूजा का ध्येय भाव पूजा में आरोहण करना है और जो भाव पूजा में स्थित हो चुके हैं वह द्रव्यपूजा क्यों अपनाएँ? तलहटी से शिखर पर जाने हेतु सीढ़ियाँ आवश्यक हैं परन्तु जो शिखर पर पहुँच चुका है वह पुन: सीढ़ियों पर क्यों जाए। अत: साधुओं के लिए द्रव्यपूजा अनावश्यक मानी गई है।

श्रावक़ वर्ग जिनका पूर्ण दिवस द्रव्य के इर्द-गिर्द ही गुजरता है, उनके लिए द्रव्य का सदुपयोग करने हेतु एवं स्वयं को उच्च भाव श्रेणी में आरोहित करने हेतु द्रव्य प्रयोग आवश्यक एवं सहायक है।

चंचल मन का वशीकरण मंत्र जिनपूजा

प्रत्येक कार्य का एक लक्ष्य होता है। लक्ष्य को सामने रखकर किया गया कार्य शीघ्र सफलता देता है। मूर्ति स्थापना एवं उसकी पूजा करने का भी एक ध्येय है। मनुष्य मन की चंचलता सर्वत्र प्रसिद्ध है। चंचल मन, जो कि स्वभाव से ही विषयासक्त और कामी है, उसे शुद्ध गुणों की ओर प्रेरित करने हेतु किसी विशेष आलंबन की आवश्यकता रहती है। जिन प्रतिमा के सहारे इस चंचल मन को सुधार कर सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है।

मूर्तिपूजा के द्वारा चंचल मन को परमात्मा के गुणों में तन्मय करके परमात्मा के प्रति बहुमान एवं अनुराग बढ़ाया जाता है। इससे मनुष्य सत्पथगामी एवं गुणानुरागी बनता है। सांसारिक भोग-वांछाओं में लिप्त रहने वाला साधक अनुरागपूर्वक जब परमात्म गुणों का स्मरण एवं अनुमोदन करता है तो उन गुणों को जगाने का ध्येय दृढ़ हो जाता है। प्रागैतिहासिक काल से जिनप्रतिमा की स्थापना, उनका पूजन आदि होता रहा है। इसके आलंबन से मिथ्यादृष्टि से लेकर सर्वविरति निर्ग्रन्थ मुनियों ने भी अपना आत्म कल्याण किया है। वर्तमान में भरत क्षेत्र में तीर्थंकरों का साक्षात अभाव होने से मूर्ति के द्वारा ही उनकी साक्षात अनुभूति की जाती है। आगमों के अनुसार तिर्यंच, मनुष्य, इन्द्र, देवी-

देवता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष,त्यागी साधु-साध्वी आदि सभी ने जिनप्रतिमा की उपासना करके अपना आत्मकल्याण किया है।

मानव सभ्यता और जिन प्रतिमा

भारतीय संस्कृति एवं अन्य विश्व संस्कृतियों में मन्दिर आदि प्रार्थना स्थलों के निर्माण का मुख्य हेतु मानव जगत का आध्यात्मिक विकास एवं आत्मोत्थान रहा है। उनकी कारीगरी, खंड-उपखंड, प्रतिमा आदि सभी की समुचित व्यवस्था एवं निर्माण इसी तथ्य को ध्यान में रखकर किया जाता है।

जब भी कोई मुमुक्षु प्रभु भक्ति में मदमस्त हो जाता है तो वह निश्चित रूप से धर्मध्यान में संलग्न हो जाता है। इससे शुभ भावधारा निरंतर बढ़ती रहती है। साधक का जीवन सद्गुणों से युक्त एवं दुर्गुणों से मुक्त होने लगता है।

अरिहंत परमात्मा की शान्त-प्रशान्त मुखमुद्रा को देखने मात्र से हृदय में उनके गुणों की श्रृंखला तरंगित होने लगती है। चंचल मन सांसारिक भावों से दूर होकर सद्भावों में रमण करने लगता है। तीर्थंकर परमात्मा 18 दोषों से रहित तथा 34 अतिशय एवं बारह गुणों से शोभायमान हैं। वे वीतराग सर्वज्ञ सर्वश्रेष्ठ एवं विश्वपूज्य हैं। ऐसे परमात्मा का स्मरण करने मात्र से उनके गुणों का सिंचन होने लगता है। अनादिकाल से भटकते हुए जीव को परमात्म अवस्था उपलब्धि का मार्ग प्राप्त होता है। विधिपूर्वक जिनेश्वर देव की पूजा करने से पूजक स्वयं पूज्यता की ओर अग्रसर हो जाता है।

भारत में जिनमन्दिरों के निर्माण के पीछे कई वैज्ञानिक रहस्य भी अन्तर्भूत हैं जो साधक की मनस् चेतना के परिवर्तन में विशेष सहायता प्रदान करते हैं। भारतीय मंदिरों का आकार एवं चारों ओर से उनके बंद होने के कारण मन्दिरों की ग्राहकता (रिसेप्टिवीटी) बनी रहती है। संतों एवं साधकों द्वारा उत्पन्न हुई आध्यात्मिक ऊर्जा एवं शुभ विचारधारा आदि की तरंगें वहाँ प्रवाहित रहती हैं। मंत्रोच्चारों की ध्वनि का प्रभाव भी वहाँ निरंतर रहता है। इस वातावरण में आने वाले व्यक्ति के हृदय पर उस पवित्र शांत-उपशांत वायुमण्डल का प्रभाव अवश्य पड़ता है। चित्त के अशुभ विचार आदि इस परिसर में आते ही बदल जाते हैं।

मंदिर की भाँति मूर्तियों का भी विशिष्ट प्रभाव मनुष्य के मानस पटल पर परिलक्षित होता है। मानव का मन आकार से अधिक प्रभावित होता है। अंतर

के शुभाशुभ भावों में आकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आकार के आकर्षण के कारण ही घरों के शो केस आदि में विविध प्रकार के खिलौने, मूर्तियाँ आदि रखी जाती हैं। वर्तमान समय में तो विज्ञापनों का मुख्य आधार ही आकृति, उसकी सुंदरता, मन मोहकता आदि है। प्रारंभिक शिक्षा के दौरान बच्चों के अक्षरज्ञान के लिए चित्र ही उपयोगी बनते हैं। पिरामिड में रखी गई लाशें वर्षों तक नहीं सड़ती थी, इसका मुख्य कारण उसका आकार ही है। जिनेश्वर देव की प्रतिमा विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं शुद्ध आकार है। प्रभु की आत्मा विश्व में सबसे ऊँची है, इसीलिए उन्हें परमात्मा का संबोधन दिया गया है। इसी प्रकार प्रभु का जीवन, प्रभु के गुण,प्रभु के अतिशय, प्रभु की महिमा, प्रभु का नाम और प्रभु की प्रतिमा का आकार सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि है, जिसकी बराबरी दुनिया में कोई नहीं कर सकता। जिन प्रतिमा को एक टक निहारने तथा उसका ध्यान करने से अशांत मन को शांति, भटकते हुए मन और आँखों को एक सुंदर आलंबन तथा मार्ग भ्रष्ट जीवों को सन्मार्ग की प्राप्ति होती है। किसी कवि ने बहुत ही सुंदर कहा है–

दादा तारी मुखमुद्रा देखी, अमीय नजरे निहाली रहयो।
तारा नयनो मांथी झरतुं, दिव्य तेज थी झीली रहयो।।
क्षण भर आ संसारनी माया, तारी भक्तिमां भूली गयो।
तुज मूर्तिमां मस्त बनीने, आत्मिक आनंद भाली रहयो।।

जिन प्रतिमा का अंग-प्रत्यंग भक्त हृदय में नवीन शक्ति का संचार करता है। संसार की समस्त विपदाओं, राग-द्वेष, दुख-दर्द आदि को दूर करता है। विकार रहित परमात्मा की मूर्ति साधक के मन को विषय-विकारों से मुक्त कर वैराग्य रस से आप्लावित करती है। आनंदघनजी विमलनाथ भगवान के स्तवन में कहते हैं–

अमीय भरी मूर्ति रची रे, उपमा न घटे कोय।
शांत सुधारस झीलता रे, निरखत तृप्ति न होय।।

परमात्मा की मूर्ति इतनी शीतल-शांत-मोहक एवं अमृत रस बरसाने वाली है, विश्व में उसे देने योग्य कोई उपमा ही नहीं हैं। जिन प्रतिमा का आकार भी यदि मन-मस्तिष्क में स्थापित हो जाए तो उस आकार की स्मृति भी कई बार जीव के आत्म कल्याण में निमित्त बनती है। इस विषय में जिनबिम्ब के आकार

के मत्स्य को देखकर जलचर जीवों के प्रतिबोधित होने के दृष्टांत शास्त्रों में वर्णित हैं। जब जिनप्रतिमा का आकार मात्र ही आत्मोत्थान में सहायक हो सकता है तो फिर साक्षात जिनप्रतिमा मनुष्य को आध्यात्मिक सोपान से मुक्ति शिखर तक क्यों नहीं पहुँचा सकती है। अत: जिनप्रतिमा एवं जिनमंदिर मानव को महा मानव बनाने एवं आध्यात्मिक उत्थान करने में परम सहायक तत्त्व है।

जिनदर्शन निजदर्शन करने का National Highway

पर्वत के शिखर पर पहुँचने के लिए सीढ़ी का आलंबन चाहिए। समुद्र पार करने के लिए जहाज या भुजाओं का सहारा चाहिए। पतित को पावन होने के लिए योग्य आलंबन रोग निवारण के लिए उचित औषधि चाहिए उसी तरह परमात्म स्वरूप को प्राप्त करने के लिए जिन प्रतिमा का आधार चाहिए। आचार्य मानतुंगसूरि भक्तामर सूत्र में कहते हैं–

सम्यक प्रणम्य जिन पाद युगं युगादा।
वालंबन भवजले पततां जनानाम्।।

जिनेश्वर देव के चरण युगल में योग्य रीति से भावपूर्वक किया गया प्रणाम पतित जनों के लिए भवजल प्राप्त होने का श्रेष्ठ आलंबन है।

जिनप्रतिमा अर्थात निराकार परमात्मा का साकार रूप। साकार संसार में निराकार परमात्मा को प्राप्त करने हेतु साकार आलम्बन परम आवश्यक है। संसारी जीव ममत्व आदि के बंधन में बंधा हुआ है। इस बंधन से मुक्ति हेतु समत्व का आलम्बन चाहिए। जिनप्रतिमा, समत्व का प्रत्यक्ष एवं श्रेष्ठ उदाहरण है। परमात्मा का वंदन-पूजन करने से साधक अपने स्वरूप में तन्मय होकर परमात्म स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है।

हमारे सामने जैसा लक्ष्य होता है, हम वैसे ही बनते हैं। चित्रकार के सामने अथवा कल्पना में जैसा चित्र होता है, वैसा ही चित्र वह चित्रित करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए परम वीतरागी तीर्थंकर परमात्मा की साधना-उपासना परम आवश्यक है। इसी के द्वारा आत्मकल्याण के प्रशस्त पथ को प्राप्त किया जा सकता है।

तीर्थंकर प्रतिमा का श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वंदन, दर्शन, पूजन आदि करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। उसके उत्तरोत्तर निर्मलता एवं पवित्रता में वृद्धि होती है तथा अन्त में क्षायिक सम्यक्त्व उपलब्ध कर पूर्णता को प्राप्त करता है।

परमात्मा का वंदन, पूजन आदि करना एक प्रकार का विनय है। मुनि उदय वाचक विनय की सज्झाय में कहते हैं कि

नाण विनय थी पामियेजी, नाणे दर्शन शुद्ध।
चारित्र दर्शन थी हुए जी, चारित्र थी गुण सिद्ध।।

अर्थात विनय से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से दर्शन की शुद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन से सम्यग्चारित्र की भावना जागृत होती है और चारित्र के आचरण से मुक्ति मिलती है।

मुक्ति का मूल है सम्यग्दर्शन तथा दर्शन शुद्धि के लिए आवश्यक है जिनदर्शन का सम्यक आचरण। साक्षात तीर्थंकर परमात्मा की अनुपस्थिति में प्रतिमा की आराधना से ही सम्यग्दर्शन एवं मोक्ष की उपलब्धि हो सकती है।

अत: यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि साक्षात तीर्थंकर परमात्मा अथवा उनकी अनुपस्थिति में उनकी प्रतिमा की उपासना से ही जीव की मुक्ति संभव है।

प्रभु दर्शन, अर्चन आदि का मुख्य उद्देश्य है परमात्मा के गुणानुरागी बनकर उनके गुणों को ग्रहण करना एवं अपने जीवन से दुर्गुणों का विध्वंस करना। मूर्ति पूजा जीवन को उज्ज्वल करने का पुष्ट आलंबन है। जिनेश्वर देव की पूजा से पुण्य का बंध होता है तथा अशुभ कर्मों के क्षय रूप निर्जरा होती है। अप्रत्यक्ष रूप से मूर्ति पूजा करने पर दान, शील, तप और भाव इन चार धर्मों की आराधना होती है। अष्टप्रकारी पूजा करते हुए अक्षत, फल, नैवेद्य आदि चढ़ाने से दान धर्म, ब्रह्मचर्य का पालन करने से शीलधर्म, देव दर्शन के समय चारों आहार का त्याग होने से तप धर्म और वीतराग परमात्मा का स्तुति स्तवनादि द्वारा गुणगान करने से भाव धर्म का पालन होता है। इस प्रकार जिनपूजा के द्वारा चतुर्विध धर्म का पालन होता है।

श्री जिनेश्वर देव के दर्शन करने से आठो प्रकार के कर्मों का क्षय होता है। जैसे कि मूर्ति के सन्मुख चैत्यवंदन आदि द्वारा गुण स्तुति करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय, जिन प्रतिमा का भावपूर्वक दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म, जिन दर्शन के समय सभी जीवों के प्रति समभाव आदि की भावना रखने से अशाता वेदनीय कर्म, मूर्ति के समक्ष अरिहंत और सिद्ध के गुणों का स्मरण करने से मोहनीय कर्म, जिनेश्वर परमात्मा के नाम स्मरण से नाम कर्म, वीतराग दर्शन एवं पूजन से नीच गोत्र कर्म, जिन दर्शन एवं पूजन

के समय शुभ अध्यवसायों से आयुष्य कर्म की पूजा में, जिनेश्वर देव तन-मन-धन की शक्ति, समय और अन्य द्रव्यों का सदुपयोग करने से अंतराय कर्म का क्षय होता है। इस प्रकार जिन दर्शन एवं पूजन अष्टकर्म निवारण का श्रेष्ठ, सरल एवं अनुपम साधन है। जिनपूजन-वंदन आदि से पुण्य का बंध, कर्मों की निर्जरा, भवोभव में जिन शासन की प्राप्ति तथा अंततः मोक्षसुख उपलब्ध होता है।

चैत्यवंदन-भावपूजा का महत्त्वपूर्ण चरण

आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार

चैत्यवन्दनतःसम्यक्, शुभो भाव प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयं सर्वं, ततः कल्याण मश्नुते।।

सम्यक प्रकार से चैत्यवंदन करने से शुभ भाव उत्पन्न होते हैं। शुभ भावों से कर्मों का क्षय होता है और कर्मक्षय से आत्मकल्याण होता है। चैत्यवंदन के द्वारा परमात्मा की भावपूजा की जाती है। कई लोग मात्र अष्टप्रकारी पूजा या द्रव्यपूजा को ही पूजा मानते हैं, जबकि द्रव्यपूजा तो मात्र भावपूजा की तैयारी रूप है। चैत्यवंदन में परमात्मा के गुणों की स्तवना द्वारा आत्मभावों की विशुद्धि होती है और रागादि के संस्कार नष्ट होते हैं। वर्तमान में अनेक लोग भावपूजा की महत्ता को न जानने के कारण उसे गौण कर जाते हैं परन्तु इसकी उपेक्षा करना योग्य नहीं है।

संयोगवश द्रव्यपूजा तो कम-ज्यादा हो सकती है, हर किसी के पास तद्योग्य सामग्री हो यह भी जरूरी नहीं है, किन्तु भाव पूजा को व्यक्ति चाहे तो सुंदर से सुंदर रूप में सम्पन्न कर सकता है। शुभ भाव जागरण का यह अमोघ साधन है। चैत्यवंदन अर्थात जिनमूर्ति की स्तुति, वंदना आदि करना। इसके द्वारा चित्त रागादि संक्लेश से रहित एवं निर्मल बनता है। मन को पाप का त्याग, सम्यक साधना एवं सुकृत करने की प्रेरणा मिलती है। तीर्थंकर के गुणों के चिंतन-मनन, उनके प्रति आकर्षण, अहोभाव आदि के द्वारा तद्योग्य गुणों का जीवन में बीजारोपण होता है। परमात्म स्तुति में तल्लीन मन अशुभ भावों से बच जाता है तथा पुराने अशुभ कर्मों को नष्ट करता है।

शुभ भाव से किए गए विधिपूर्वक चैत्यवंदन से शुद्ध भाव जागृत होते हैं। परिणाम स्वरूप कर्मों का क्षय होता है और अंततः अक्षुण्ण मोक्ष सुख की प्राप्ति

होती है। चैत्यवंदन के फल की चर्चा करते हुए आचार्य कहते हैं कि शुद्ध भाव, शुद्ध वर्णोच्चारण एवं अर्थचिंतन आदि द्वारा की गई वंदना खरे सोने और असली छाप वाले रुपये के समान होती है। ऐसी वंदना यथोचित गुणवाली होने से निश्चित रूप से मोक्षदायक है।

चैत्यवंदन करने का एक मुख्य कारण यह भी है कि चैत्यवंदन तीर्थंकर परमात्मा को वंदन करने तथा उनकी स्तुति करने का अनुष्ठान है। तीर्थंकरों का जीवन शुद्ध, निष्पाप एवं साधनामय होता है तथा कैवल्य प्राप्ति के बाद वे सर्वज्ञ बनकर भव्यजीवों को सत्य तत्त्व और शुद्ध मार्ग का उपदेश देते हैं। निर्वाण प्राप्ति के बाद सिद्ध-बुद्ध, निरंजन-निराकार बनकर मोक्षधाम के सुख को अनुभूत करते हैं। साथ ही एक जीव को निगोद से निकलने में कारणभूत बनते हैं।

चैत्यवंदन के विविध सूत्र एवं उनके अर्थ आदि के चिंतन से परमात्मा के प्रति अहोभाव जागृत होते हैं तथा सूत्रकार गुरुभगवंतों के प्रति बहुमान एवं आदरभाव उत्पन्न होता है। विविध मुद्राओं को धारण करने से शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है।

अपने नाम के अनुरूप यह भावपूजा, भावविशुद्धि में विशेष सहायक बनती है।

जिनपूजा, ध्यान-साधना आदि क्रियाओं में भावना प्रमुख है तो फिर ऐसी क्रियाओं में बाह्योपचार या द्रव्य क्रिया की आवश्यकता क्यों?

साधक के जीवन में जब तक शुद्ध भाव पूर्णत: जागृत न हो तब तक सम्यक भावों को जगाने, उन्हें स्थिर करने तथा उनके सतत अनुभव के लिए क्रिया का आलंबन अत्यंत आवश्यक है।

उच्च आत्मदशा की प्राप्ति के बाद यद्यपि स्थूल क्रिया का महत्त्व कम हो जाता है, परन्तु मन अति चंचल होने से उसकी स्थिरता निश्चित नहीं है। द्रव्य क्रिया में जुड़े रहने से भावों की एकाग्रता एवं स्थिरता उस विषय में बनी रहती है।

द्रव्यपूजा के द्वारा परमात्मा के प्रति श्रद्धा और विशेष कर हमारे भटकते हुए मन को परमात्म गुणों पर टिकाने का श्रेष्ठ आलम्बन मिलता है।

अल्पज्ञ, अन्यमति और भावी पीढ़ी जो इन सबसे अनभिज्ञ हैं, उन्हें धर्म

मार्ग से जोड़ने में ये क्रियाएँ सहायभूत बनती हैं। जिन धर्म का वर्चस्व बढ़ता है। परमात्मा का अभिषेक करते हुए और उन्हें पुष्पादि अर्पित करते हुए मन में अत्यंत भावोल्लास एवं आह्लाद् भाव उत्पन्न होते हैं। गुणवानों की भक्ति, प्रशंसा एवं उनके गुणानुराग का अवसर प्राप्त होता है। द्रव्य चढ़ाने से द्रव्य के प्रति आसक्ति कम होती है और भावजगत में उतनी ही अधिक रमणता बढ़ती है।

हम अपने दैनिक व्यवहार में भी देखते हैं कि जब किसी वस्तु का बाह्य स्वरूप सुन्दर होता है तो हमारा भाव जगत भी उतना ही अधिक जुड़ता है। यही कारण है कि जिनपूजा आदि भावप्रधान क्रिया होते हुए भी भावोल्लास को वृद्धिंगत रखने हेतु द्रव्य क्रिया भी अत्यंत आवश्यक है। जैसे मात्र खाना खाने का भाव करने से पेट नहीं भर जाता, पेट भरने के लिए भोजन करने की क्रिया भी करनी ही पड़ती है। वैसे ही भाव जगत में उतरने के लिए द्रव्य क्रिया का आलंबन प्रारम्भिक चरण में लेना ही पड़ता है। जैसे किसी भाषा को सिखने के लिए पहले उसके वर्णाक्षरों को सीखा जाता है, तब उस भाषा के बड़े ग्रंथों को भी पढ़ा जा सकता है। भले ही 'अ से अनार' उस समय उपयोगी नहीं है किन्तु उसको जाने बिना ग्रंथों को पढ़ना भी असंभव है। भाव रूपी महल के निर्माण में द्रव्य पूजा नींव या Base का कार्य करती है। अत: भाव क्रियाओं के साथ द्रव्य क्रिया करना भी आवश्यक माना गया है।

पंचामृत अभिषेक के वैज्ञानिक तथ्य

जल के द्वारा अभिषेक करने का वैशिष्ट्य प्राय: सभी परम्पराओं में देखा जाता है। जल कल्याण, संवेदना एवं शीतलता का प्रतीक है। परमात्मा को जल अर्पित करने से हमारे भीतर इन्हीं गुणों का विकास होता है। पंचामृत को पूजा में विशेष स्थान प्राप्त है। जब परमात्मा जन्म धारण करते हैं तब देवता मेरू पर्वत पर विविध नदियों के जल द्वारा भावविभोर होकर परमात्मा का अभिषेक करते हैं। विभिन्न समुद्रों द्वारा लाया गया जल अनेक गुणों से सम्पन्न होता है। वर्तमान में अलग-अलग समुद्रों का जल एकत्रित करना संभव नहीं है अत: पंचामृत द्वारा ही काम चलाया जाता है। पानी में दूध-दही-घी एवं शक्कर मिलाकर पंचामृत तैयार किया जाता है। पंचामृत में इन पाँचों द्रव्यों का समावेश कर एक ही जल में उन सभी गुणों को आरोपित करने का प्रयत्न किया जाता है।

मूर्तियाँ पाषाण, धातु आदि विविध द्रव्यों से निर्मित होती है। वातावरण के

प्रभाव से उनमें कई प्रकार के दोष आने की या उन्हें हानि पहुँचाने की संभावना रहती है। दूध-दही-घी आदि के द्वारा प्रतिमा की बाह्य वातावरण से रक्षा होती है। अभिषेक के द्वारा परमात्मा की वीतराग मुद्रा और भी अधिक देदिप्यमान हो उठती है। इन पाँचों द्रव्यों के गुण पूजक में संक्रमित होते हैं। पंचामृत में एक सकारात्मक शक्ति होती है जो वातावरण में भी विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है। इन सब द्रव्यों के मिश्रण से मिश्रित जल में भी एक विशिष्ट प्रकार का रासायनिक परिवर्तन आता है जो प्रतिमा को विशेष रूप से प्रभावित करता है। इस प्रकार प्रतिमा को वातावरण के दूषित परमाणुओं से बचाने, उसके तेज आदि में वर्धन करने तथा देवों का अनुकरण करने के उद्देश्य से स्वशक्ति अनुसार पंचामृत से अभिषेक करने की परम्परा है।

जिनपूजा में विधि एवं क्रमिकता की आवश्यकता क्यों?

विधि के पथ पर चलकर ही सदा कार्यसिद्धि होती है। छोटे से छोटा कार्य भी करना हो तो उसकी विधि का पालन किया जाता है, जिससे इच्छित परिणाम की प्राप्ति हो सके। एक प्याली चाय भी बनानी हो तो उसकी सम्पूर्ण विधि का ज्ञान आवश्यक है। मात्र चाय की पुड़िया लाने से चाय तैयार नहीं होती। चाय की पुड़िया के साथ शक्कर, दूध, पानी, गैस सिलेण्डर, चूल्हा, छननी, बरतन आदि सब कुछ होना आवश्यक है। एक भी द्रव्य का अभाव हो तो चाय नहीं बन सकती। सभी सामग्री सामने हो परन्तु चाय बनाने की विधि ज्ञात नहीं हो तो भी चाय नहीं बन सकती। चाय बनाने की विधि ज्ञात हो किन्तु उसका क्रमानुसार पालन नहीं किया जाए तो भी व्यवस्थित चाय नहीं बन सकती और यही नियम प्रत्येक कार्य हेतु लागू होता है।

जिनपूजा एक विशिष्ट प्रकार की अद्भुत प्रक्रिया है। सिद्धि प्राप्त करने की अनुपम विधि है। जिस प्रकार संसार के सामान्य व्यवहार में विधि आवश्यक प्रतीत होती है। उसी प्रकार जैनाचार्यों ने जिनपूजा की भी विशिष्ट विधि क्रम का उल्लेख किया है।

इस पूजा विधि के सम्यक अनुपालन के द्वारा अनेक उपलब्धियाँ हो सकती हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसके द्वारा विकास किया जा सकता है। दिव्य शक्तियों को जीवन में अनुप्राणित करने का Procedure जिनपूजा है।

विधि में अव्यवस्था, क्रम उल्लंघन, मर्यादा खंडन आदि होने के कारण

आज मंदिरों आदि का प्रभाव निस्तेज होता जा रहा है। पूजा करने वालों को भी उसका यथोचित्त लाभ प्राप्त नहीं होता। पूजा की विधि का सम्यक पालन करने से पापों का क्षय, दु:खों का नाश एवं विघ्नों का हरण होता है।

विधिक्रम होने पर पूजा करने वाले का मन भी उसमें सम्यक प्रकार से जुड़ता है। पूजक को उसकी आदत हो जाती है। भावों का प्रवाह भी बना रहता है। कोई नया व्यक्ति यदि उस क्रिया को कर रहा हो तो वह भी उसे जानकर स्वयमेव ही कर सकता है। मंदिर के कार्यों में अव्यवस्था नहीं होती।

कल्पना कीजिए कि यदि पूजा विधि का कोई क्रम न हो तो मंदिर में आनेवाला एक व्यक्ति परमात्मा की चंदन पूजा करेगा और दूसरा व्यक्ति आकर परमात्मा का अभिषेक करने लगेगा। सोचिए कितनी मुश्किल हो सकती है। वहीं एक सम्यक विधि होने से मंदिर में आने वालों को कोई असुविधा नहीं होती।

क्रमानुसार विधि होने से सभी विधियों एवं क्रियाओं का पालन भी हो सकता है। अक्रम होने से विधि पालन में विस्मृति हो सकती है। क्रमश: विधिपूर्वक कार्य करने से आंतरिक आनंद की भी अनुभूति होती है। अन्य देखने वालों को भी हमारी क्रिया समझ में आती है। अन्य लोगों में भी वह क्रिया करने के भाव उत्पन्न होते हैं। इसी कारण मंदिर सम्बन्धी विधि-विधानों का एक क्रम उल्लेखित किया गया है। प्रत्येक धर्म में तत्संबंधी धार्मिक विधि-अनुष्ठानों का एक विधि क्रम इसी कारण से है। नमाज अदा करने का एक विधि क्रम है। मंत्र साधना, ध्यान आदि की भी एक विशिष्ट प्रक्रिया है। Doctor के Operation करने का एक तरीका एवं क्रम होता है और वह उसे विधिपूर्वक करे तो ही उसमें सफलता प्राप्त होती है अन्यथा मरीज के प्राणों का हरण भी हो सकता है। वैसे ही पूजा कार्य में अविधि करने से शुभ फल की जगह अशुभ फल की प्राप्ति हो सकती है।

जिनपूजा में नियम-मर्यादाओं का विधान कितना सार्थक?

पूजा सम्बन्धी नियमों का विधान आचार्यों द्वारा सोच-विचारकर पूजक वर्ग की सुविधा एवं आत्मोद्धार हेतु किया गया है। नियम परिणामात्मक एवं भावात्मक दोनों प्रकार के होते हैं। भावनात्मक नियमों का असर परिणामों पर पड़ता है। यद्यपि तत्समय परिलक्षित नहीं होता परन्तु वह व्यक्ति के अंतर मानस को सूक्ष्म रूप से प्रभावित करता है। एक सैनिक का मुख्य कार्य तो देश की रक्षा

करना होता है किन्तु उसके लिए एक विशेष ड्रेस, कर्नल आदि बड़े अधिकारियों का सम्मान, मार्चिंग आदि की आवश्यकता क्यों? इन नियमों से सैनिक के बाह्य जीवन में ही नहीं अपितु अंतर मानस में भी अनुशासन के संस्कार घर कर जाते हैं, जो उसे युद्ध की कठिन परिस्थितियों में सफलता दिलाने में सहायक बनते हैं।

इसी प्रकार एक साधक के जीवन में भावों की जागृति, स्थिरता एवं उनकी निरंतर अनुभूति हेतु नियमों का पालन अत्यंत आवश्यक है तथा जिनके जीवन में नियम एवं अनुशासन का पालन होता है वे ही दूसरों के लिए आदर्श बन सकते हैं।

जीवन उत्कर्ष का मुख्य आधार नित्य पूजा

परमात्मा अथवा अपने इष्टदेव की नियमतः प्रतिदिन पूजा करना नित्य पूजा कहलाता है।

हमारे जीवन में जिनका भी उपकार हो, जिन्होंने हमें सन्मार्ग दिखाया हो उनके उपकारों का हम सदैव स्मरण करते हैं। इन विचारों से जीवन में लघुता, नम्रता, कृतज्ञता आदि गुणों का विकास होता है। अन्यों को सहायता करने की वृत्ति उत्पन्न होती है। परमात्मा का हमारे जीवन पर विशेष उपकार है। वे जगत जीवों के प्रति समभाव रखते हुए कल्याण का मार्ग बताते हैं। सच्चा आदर्श जीवन के लिए प्रस्तुत करते हैं। स्वयं मोक्ष को प्राप्त कर अन्यों को मोक्ष मार्ग की प्रेरणा देते हैं। मानव को मानवता का मार्ग बताते हैं। उन्हीं को देखकर प्रत्येक आत्मा को परमात्म लक्ष्य की प्राप्ति होती है। ऐसे परम उपकारी वीतराग परमात्मा के उपकार स्मरण हेतु उनके प्रति कृतज्ञता एवं अहोभाव अभिव्यक्त करने हेतु तथा उनके गुणों को स्वयं के जीवन में अंगीकार करने हेतु परमात्मा की पूजा की जाती है। यदि प्रभु की पूजा आदि नियमित रूप से नहीं की जाए तो मानव इन सबको क्षणैः-क्षणैः विस्मृत कर सकता है। यदि जीवन को शुभता के मार्ग पर अग्रसर रखना हो एवं उच्च स्थिति को उपलब्ध करना हो तो परमात्मा आदि जिनके भी प्रति हमारे मन में श्रद्धा एवं कृतज्ञ भाव हो उनका नित्य स्मरण आवश्यक है। ऐसे परमात्मा आदि के चित्र, मूर्ति आदि की प्रतिदिन नियम से पूजा करना ही नित्यपूजा है।

इसे करने से भक्त और भगवान का नित्य मिलन होता है। परमात्मा के

समीप्य का अनुभव होता है। कई लोग कहते हैं कि नित्य पूजा करने पर भी भावों का जुड़ाव हर दिन हो यह आवश्यक नहीं? और यदि भाव न जुड़े तो क्रिया करने का क्या महत्त्व?

जहाँ व्यक्ति की रुचि होती है, व्यक्ति के भाव उसमें स्वयमेव ही जुड़ जाते हैं। इसी प्रकार जिनकी रुचि परमात्म भक्ति में हो उनके भाव तो जुड़ ही जाते हैं परन्तु बाल जीव जिनका जुड़ाव परमात्मा से नहीं हुआ है, उन्हें क्रिया में भावशून्यता आ भी जाए तो कभी न कभी तो करते-करते भाव जुड़ेंगे भी। दीपक, बत्ती, घी, माचिस आदि हो तो कभी न कभी दीपक में ज्योति प्रकट की जा सकती है। यदि कोई यह कहे कि मुझे तो मात्र ज्योति चाहिए दीपक आदि की मुझे क्या जरूरत और वह दीपक को तोड़ दे तो क्या कभी ज्योति प्रकट की जा सकती है। यदि नहीं तो फिर भाव न जुड़ने के कारण यदि द्रव्य क्रिया का ही त्याग कर दिया जाए तो फिर भाव कैसे उत्पन्न होंगे। वरना द्रव्य क्रिया करते हुए भावोत्पत्ति की संभावना तो रहेगी। अतः क्रिया अनुष्ठान में जिनके भाव नहीं जुड़ते उन्हें क्रिया को छोड़ने की अपेक्षा उनमें किसी भी प्रकार से भावों को जोड़ने हेतु प्रयास करना चाहिए।

जिनपूजा में प्रयुक्त मुद्राओं के हेतु एवं लाभ

जिनपूजा-जिनदर्शन करते हुए विविध मुद्राओं के प्रयोग का निर्देश जैन ग्रन्थकारों ने किया है। प्रत्येक क्रिया से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट मुद्राएँ हैं जिनका मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक जगत पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है।

मुद्रा अर्थात Action। शरीर, हाथ, पैर आदि को विशिष्ट आकार या स्थिति में रखना मुद्रा कहलाता है। मुद्राओं का महान विज्ञान है। भिन्न-भिन्न मुद्राओं का भिन्न-भिन्न रहस्य बताया गया है। सामान्य व्यवहार में भी देखते हैं कि ट्राफिक पुलिस चारों ओर दौड़-भाग करते हुए हाथ के इशारों के आधार पर ही गाड़ियों का नियंत्रण करते हैं। मुद्राओं की सहायता से ही वे बिना बोले हाथ के विविध संकेतों द्वारा हजारों लोगों को एक साथ नियंत्रित कर सकते हैं। क्रिकेट मैच में अम्पायर के इशारों के आधार पर एक क्रिकेटर का भविष्य एवं मैच परिणाम निर्भर करता है। उसके द्वारा की गई एक छोटी सी गलती मैच के परिणामों को बदल सकती है।

मूक-बधिर लोग अपने भावों को समझाने के लिए सांकेतिक भाषा का ही प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार परमात्मा के समक्ष अपने भावों को प्रकट करने का श्रेष्ठ माध्यम है मुद्रा। इनके प्रयोग से एक विशिष्ट शक्ति का निर्माण होता है तथा मन में दुष्ट विचार प्रविष्ट नहीं होते। जिन दर्शन पूजन करते हुए विविध मुद्राओं के द्वारा विविध क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। जैसे कि भावपूजा या चैत्यवंदन क्रिया के दौरान योगमुद्रा, जिनमुद्रा एवं मुक्ताशुक्ति मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। वहीं अष्ट प्रकारी पूजा करते हुए विविध द्रव्यों को अर्पण करते हुए भिन्न-भिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है।

इन मुद्राओं के प्रयोग से विनय, नम्रता, स्थिरता, भक्ति आदि सद्गुणों का जागरण होता है। शारीरिक रोगों का निवारण एवं ग्रंथिस्राव आदि का संतुलन होता है। चैतसिक एकाग्रता एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है।

योगमुद्रा– यह मुद्रा विशेष रूप से विघ्नों का नाश करती है। अहंकार का दमन करती है। विनय एवं लघुता गुण का वर्धन करती है। शारीरिक तत्त्वों का संतुलन कर शारीरिक स्वस्थता में सहायक बनती है।

मुक्ताशुक्ति मुद्रा– मुक्ताशुक्ति मुद्रा अर्थात मोती की सीप की भाँति हाथों की मुद्रा बनाना। इस मुद्रा के पीछे कई रहस्य अन्तर्भूत हैं। जिस प्रकार सीप में गिरा हुआ जल बिन्दु मोती के स्वरूप को प्राप्त करता है, उसी प्रकार प्रार्थना रूपी जलबिन्दु हृदयरूपी सीप में जब उतर जाए तब आत्मा को सर्वोच्च अवस्था रूप मोती प्राप्त हो जाता है। इन सूत्रों के द्वारा हृदय रूपी सीप में मन की प्रार्थनाओं को मोती का रूप दिया जाता है। ललाट पर यह मुद्रा स्थापित करने से आज्ञा चक्र प्रभावित होता है। इससे मानसिक शांति, बौद्धिक एकाग्रता, आत्मिक आनंद आदि की अनुभूति होती है। हृदय में समर्पण भाव जागृत होते हैं।

जिनमुद्रा– जब तीव्र क्रोध आ रहा हो तब जिनमुद्रा या कायोत्सर्ग मुद्रा में कुछ समय तक स्थिर रहने से अंत:करण में जागृत क्रोध स्वयमेव ही शांत हो जाता है। पद्मासन मुद्रा में बैठने से वासना का दमन होता है। जीव को सर्वाधिक प्रिय अपनी काया होती है। जिनमुद्रा के द्वारा काया के प्रति रहे ममत्व का त्याग करने का प्रयास किया जाता है। प्रिय वस्तु का त्याग करने पर अधिक शीघ्रता से इच्छित फल की प्राप्ति होती है।

पंचांग प्रणिपात मुद्रा– पंचांग प्रणिपात मुद्रा वीतराग परमात्मा एवं गुरु भगवन्तों को नमस्कार करने की मुद्रा है। इसके द्वारा समर्पण, नम्रता, विनय, लघुता आदि गुणों में विकास होता है। श्रद्धा में प्रगाढ़ता आती है। इस विधि के द्वारा कृतज्ञभाव अभिव्यक्त किया जाता है। शरीर के मुख्य पाँच अंगों में हलन-चलन होने से समस्त शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ता। जिससे जोड़ों के विकार, मोटापा आदि दूर होते हैं और शरीर लचीला बनता है।

इसी तरह द्रव्य समर्पित करते हुए जल पूजा के समय समर्पण मुद्रा श्रद्धा, आस्था एवं भक्ति के पुट का वर्धन करती है। इसी के साथ संसार के प्रति रही आसक्ति एवं राग भाव को न्यून करने में यह मुद्रा सहायक बनती है।

पुष्प पूजा करते हुए अर्धखुली अंजलि मुद्रा में पुष्प धारण कर परमात्मा को अर्पित किए जाते हैं। यह हृदय में अहोभाव, करुणाभाव, आदरभाव को उत्पन्न करती है।

धूप पूजा उत्थितांजलि मुद्रा में की जाती है। इसके द्वारा पाँचों अंगुलियों पर Pressure पड़ता है, जिससे शरीरस्थ जल आदि पाँचों मुख्य तत्त्व प्रभावित होते हैं।

दीपक पूजा एवं फल पूजा हेतु विवृत्त-समर्पण मुद्रा का प्रयोग होता है। इसके द्वारा आन्तरिक ज्ञान जागृत होता है।

अक्षत पूजा के संदर्भ में चतुर्दल मुद्रा एवं शिखर मुद्रा का वर्णन किया गया है। चतुर्दल मुद्रा जहाँ यह चारों गति को चूरने एवं उनकी वक्रता की सूचक है, वहीं शिखर मुद्रा दृढ़ता, विश्वास एवं मंगल कामना की सूचक है। यह जीव को संसार पार होने की प्रेरणा देती है। तर्जनी मुद्रा के द्वारा चारों गतियों की हेयता एवं मोक्षगति की उपादेयता का सूचन किया जाता है। नैवेद्य पूजा हेतु संपुट मुद्रा का उल्लेख शास्त्रकारों ने किया है। यह आहार संज्ञा को वश में करने की प्रेरणा देती है। किसी वस्तु को वश में करने या नियंत्रित करने हेतु उसे हम अपनी हथेलियों में दबा देते हैं, वैसे ही संपुट मुद्रा में नैवेद्य को धारण कर आहार संज्ञा को नियंत्रित करने की भावना की जाती है।

इस प्रकार विविध मुद्राओं के प्रयोग के द्वारा जहाँ मानसिक एवं आध्यात्मिक जगत का निर्मलीकरण और परिष्कार किया जाता है वहीं विभिन्न ग्रन्थियों एवं शरीरस्थ चक्रों को प्रभावित कर शारीरिक निरोगता एवं स्वस्थता को भी प्राप्त किया जा सकता है।

ये मुद्राएँ तत्सम्बन्धी क्रियाओं के हेतुओं को लक्ष्य में रखकर सूचित की गई है। अत: उनकी परिणाम सिद्धि में भी सहायक बनती है। क्रिया में अधिक तल्लीनता आती है एवं भावों का जुड़ाव होता है। विशिष्ट क्रियाओं के संबंध में अर्थ पूर्ण मुद्राओं का प्रयोग करने से अज्ञेय व्यक्ति भी उसे देखकर समझ-सीख सकता है। इस प्रकार मुद्रा प्रयोग के पीछे अनेक रहस्यपूर्ण तथ्य रहे हुए हैं और इसीलिए गीतार्थ आचार्यों ने क्रिया अनुष्ठानों में मुद्राओं का निर्देश किया है।

प्रश्न– व्यवहार में कई बार लोगों को कहते हुए सुनते हैं कि हम तुम्हारा पल्लू या चरण पकड़ कर तिर जाएंगे? क्या किसी एक की धर्म क्रिया का फल किसी दूसरे को मिल सकता है?

समाधान– धार्मिक क्रिया हो या सामान्य क्रिया, जो क्रिया जिसके द्वारा की जाती है उसके परिणाम उसी को प्राप्त होते हैं। माता, पिता, पत्नी, परिवार या मित्र की क्रिया कभी भी हमें लाभान्वित नहीं कर सकती। वाल्मीकि ऋषि जो कि पहले लूटेरे थे। उन्हें जब इस सत्य का ज्ञान हुआ कि जिस परिवार के लिए मैं इतनी पाप क्रियाएँ कर रहा हूँ उसके दुखमय परिणाम भोगने के समय कोई मेरा साथ नहीं देने वाला। दूसरों की बात छोड़िए हमारे खुद के शरीर में हम अपने एक अंग की पीड़ा दूसरे अंग में नहीं भोग सकते। तो फिर किसी अन्य के द्वारा किए हुए धार्मिक कार्य या सद्कार्यों का परिणाम हमें कैसे प्राप्त हो सकता है, जब हमारा उसमें कोई योगदान ही न हो।

हम खाना खाएंगे तो पेट हमारा भरेगा। प्यास हमें लगी है तो पानी भी हमें ही पीना होगा, किसी अन्य के द्वारा दस ग्लास पानी पीने पर भी हमारी प्यास नहीं बुझ सकती। यदि सही परिणाम प्राप्त करने हैं तो पुरुषार्थ हमें ही करना होगा। हम पढ़ेंगे तो हमारा ज्ञान बढ़ेगा, हम खाएंगें तो हमारी भूख मिटेगी और इसी तरह हम धर्म क्रिया करेंगे तो हमें उसके उत्तम परिणामों की प्राप्ति होगी। इसीलिए धार्मिक कार्य व्यक्तिगत स्तर पर करने चाहिए।

पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट है कि जब हम स्वयं परमात्मा की पूजा करेंगे तभी तत्सम्बन्धी आनंद की अनुभूति हमें हो सकती है। पूजा आदि अनुष्ठानों के द्वारा ही मानसिक शांति, शारीरिक स्फूर्ति एवं आन्तरिक प्रसन्नता का संचार हो सकता है तथा शुभ संस्कारों का जागरण एवं स्थिरीकरण हो सकता है।

वीतरागत्व एवं आत्मस्वरूप प्राप्ति की प्रेरणा स्वयं के द्वारा क्रिया अनुष्ठान करने पर ही प्राप्त होती है।

जिनपूजा– यह परमात्मा से Personal Connection जोड़ने का अभूतपूर्व साधन है अत: जैनाचार्यों ने पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठान वैयक्तिक रूप में करने का ही विधान किया है।

अष्टमंगल का वैश्विक स्वरूप

मनुष्य एक संवेदनशील एवं समझदार प्राणी माना जाता है। सुख, सौभाग्य, सफलता, समृद्धि एवं सुमंगल की भावना सदा उसके मन में अनुगुंजित होती रहती है। जीवन में प्रगति के सहपथिक या संबल के रूप में उसे किसी कल्याणमित्र रूप मंगल की आवश्यकता रहती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय ऋषि-मनीषियों ने मानव कल्याण, जीवन विकास, आत्म सुरक्षा एवं लोकहित की भावना से आप्लावित होकर मंगल चिह्नों की प्ररूपणा की।

प्रत्येक धर्म एवं संप्रदाय में वस्तु, व्यक्ति या चिह्न विशेष को मंगलकारी (Lucky) या प्रगति का प्रतीक माना गया है। लोक व्यवहार में भी देखें तो शकुन-अपशकुन आदि की जो धारणा है वह मंगल या अमंगल का ही एक रूप है। व्यक्ति जब भी किसी कार्य की शुरूआत करता है तो जैसी वस्तुएँ दिखती हैं वैसी ही उसकी मानसिकता बन जाती है, जो कि उसकी सफलता या असफलता का मुख्य हेतुभूत तत्त्व बनती है। जो सफलता की सूचक या निमित्त बन जाए उसे ही मंगल रूप स्वीकार कर लिया जाता है। इन मंगल वस्तुओं की संख्या यद्यपि अनगिनत हो सकती है परंतु जैन, बौद्ध, सिक्ख एवं हिन्दू परम्परा में आठ वस्तुओं को मंगल रूप माना गया है। जिसे अष्टमंगल के नाम से भी जाना जाता है। इनमें से कुछ चिह्न समान रूप से सभी के द्वारा स्वीकार किए गए हैं तो कुछ में मत वैभिन्य भी परिलक्षित होता है।

आठ शुभ प्रतीकों के समूह को अष्टमंगल कहा जाता है। इन आठ मांगलिक चिह्नों को कहीं पर इष्टदेवता तो कहीं शिक्षण उपकरण के रूप में माना गया है। ऐसी मान्यता है कि ये आठ विशिष्ट चिह्न अतीन्द्रिय ज्ञानी या सर्वज्ञ के ज्ञान और गुणों के अलंकार रूप में होते हैं। भारत में इन चिह्नों का प्रयोग राज्याभिषेक अलंकरण के प्रतीक रूप में किया जाता था। बौद्ध धर्म में इन्हें

अच्छी किस्मत का प्रतीक माना गया है तथा शाक्यमुनि बौद्ध के आत्मज्ञान प्राप्ति के प्रतीक के रूप में इन्हें देवताओं के द्वारा प्रदर्शित किया गया था।

जैन मान्यता अनुसार तीर्थंकरों के केवलज्ञान प्राप्ति के बाद ये अष्टमंगल सदा उनके साथ रहते हैं।

परमात्मा के प्राकृतिक स्वागतकर्ता– अष्टमंगल

जैसा कि अष्टमंगल नाम से ही ज्ञात होता है, ये आठ चिह्न मंगल के प्रतीक हैं। ये चिह्न विशेष रूप से देवी-देवताओं के साथ अथवा आत्मज्ञान को प्राप्त करने वाले विशिष्ट धर्म प्रवर्तकों के सम्मान स्वरूप सदा उनके साथ रहते हैं। जैन ग्रन्थकारों के अनुसार तीर्थंकर परमात्मा 34 अतिशय से युक्त होते हैं जिनमें से कुछ देवकृत, कुछ कर्मक्षय कृत और कुछ मूल अतिशय रूप होते हैं। यह सब उनके पुण्य एवं विश्व में सर्वोत्कृष्ट होने के सूचक हैं। इसी प्रकार अष्टमंगल भी परमात्मा के विश्वमंगलकारी होने के बोधक हैं।

जिस प्रकार लोक व्यवहार में गुरुजन, नई दुल्हन, अतिथि आदि का स्वागत मांगलिक वस्तु जैसे कि कलश आदि के द्वारा किया जाता है वैसे ही प्रकृति परमात्मा का स्वागत सर्वोत्कृष्ट मंगल प्रतीक रूप आठ मांगलिक चिह्नों से करती है।

ये आठ जहाँ भी रहते हैं वहाँ पर किसी भी प्रकार का उपद्रव, महामारी आदि नहीं होते। अतिवृष्टि, महामारी, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाएँ भी वहाँ पर नहीं होतीं। इसी कारण उन्हें अष्टमंगल कहा गया है।

अष्टमंगल की रचना कब और कैसे?

जैनाचार्यों के अनुसार तीर्थंकर परमात्मा के विचरण काल में अष्टमंगल सदा उनके आगे चलते हैं। इसीलिए रथयात्रा आदि के अवसर पर परमात्मा के साथ अष्टमंगल पट्ट भी बाहर लाया जाता है। पूर्वकाल में अखंड अक्षतों के द्वारा अष्टमंगल का आलेखन परमात्मा के समक्ष किया जाता था।[22] आलेखन विधि को सर्वजन सुगम बनाने हेतु लकड़ी के पट्टों पर उन आकृतियों को उकेरा जाने लगा। वर्तमान में इनका स्थान पीतल की छोटी पाटलियों ने ले लिया है। यह मूल गर्भगृह में परमात्मा के समक्ष रखी जाती है। वर्तमान में इनके अक्षत आलेखन की विधि प्राय: नहींवत ही रह गई है।

अष्टमंगल पूजनीय है या नहीं?

अष्टमंगल एक पवित्र प्रतीक है जिनका मात्र आलेखन ही किया जाता है। श्राद्धदिनकृत्य के अनुसार पहले अक्षतों के द्वारा अष्टमंगल का आलेखन करने के बाद पाट के ऊपरी दो कोनों में थापे (छापे) देकर फूलों से बंधाना चाहिए।[23] अष्टमंगल की पूजा करने का विधान कहीं भी देखने में नहीं आया है। जिस प्रकार तीर्थंकर की माता को आने वाले स्वप्न मंगलकारी हैं वैसे ही अष्टमंगल मंगलकारी है। परंतु जैसे चौदह सपनों की पूजा नहीं की जाती वैसे ही अष्टमंगल भी पूजनीय नहीं है।

विविध परम्पराओं में अष्टमंगल की मान्यता

किसी न किसी रूप में मंगल की मान्यता प्रत्येक धर्म में रही है। कई संप्रदायों में जैन धर्म के समान ही मांगिलक चिह्नों की संख्या आठ मानी गई है।

बौद्ध परम्परा में मान्य अष्टमंगल के नाम ये हैं– 1. शंख 2. श्रीवत्स 3. मीन युगल 4. कमल 5. छत्र 6. कलश 7. धर्मचक्र और 8. विजय पताका।

उत्तर भारतीय परम्परा में मान्य अष्टमंगल के नाम निम्नवत है– 1. शेर 2. बैल 3. हाथी 4. जलपात्र या जवाहरात से भरा जहाज 5. चंवर 6. ध्वजा 7. तुरही और 8 दीपक।

दक्षिण भारत में मान्य अष्टमंगल के नाम इस प्रकार हैं– 1. चँवर 2. फूलदान 3. दर्पण 4. अंकुश 5. ढोल 6. दीपक 7. ध्वजा और 8. मीन युगल।

जैन धर्म की दिगम्बर परम्परा में मान्य अष्टमंगल के नाम निम्न प्रकार है– 1. छत्र 2. कलश 3. चँवर 4. झारी 5. धर्मध्वजा 6. पंख (प्रशंसक) 7. स्वस्तिक और 8 दर्पण।

कहीं-कहीं स्वस्तिक के स्थान पर भद्रासन का उल्लेख है।

जैन धर्म की श्वेताम्बर परम्परा में उल्लेखित अष्टमंगल के नाम अग्रलिखित है– 1. स्वस्तिक 2. श्रीवत्स 3. नंद्यावर्त 4. वर्धमानक 5. कलश 6. भद्रासन 7. मीनयुगल और 8. दर्पण

अष्टमंगल का प्रतीकात्मक स्वरूप एवं उनके रहस्य

जैन धर्म में स्वस्तिक का स्थान

स्वस्तिक एक शुभ चिह्न है। मात्र भारतीय सभ्यता में ही नहीं अपितु विश्व

की विभिन्न सभ्यताओं में यह सर्वाधिक प्राचीन एवं श्रेष्ठ चिह्न के रूप में मान्य है। स्वस्तिक को सूर्य का प्रतीक एवं जीवन में स्वस्ति भाव का प्रेरक माना गया है।

जैन दर्शन में इसे चार गति का सूचक मानते हैं। इसी के साथ यह विकास, सफलता एवं सौभाग्य का प्रतीक भी माना जाता है। धार्मिक एवं मांगलिक अनुष्ठानों में मंगलकारक के रूप में इसका आलेखन विशेष रूप से किया जाता है। यह वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को अभिव्यक्त करता है। इसकी चार रेखाओं को अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवलि प्ररूपित धर्म का प्रतीक भी माना जाता है। पूजाविधि करते हुए अक्षतपूजा के अन्तर्गत स्वस्तिक का आलेखन किया जाता है। सुपार्श्वनाथ भगवान का लंछन भी स्वस्तिक ही है।

अन्य संप्रदायों में स्वस्तिक की महत्ता

देवपूजन, विवाह, व्यापार, शिक्षारंभ, मुंडन संस्कार आदि में स्वस्तिक आलेखन आवश्यक माना गया है। स्वस्तिक की दो रेखाओं को पुरुष और प्रकृति का प्रतीक माना गया है। भारतीय संस्कृति में स्वस्तिक को विष्णु, सूर्य, सृष्टि, चक्र तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना जाता है। कुछ विद्वान इसे गणेश का प्रतीक मानते हुए परम वंदनीय मानते हैं। पुराणों में इसे सुदर्शन चक्र का प्रतीक माना गया है। कुछ विद्वान इसकी चार भुजाओं को चार वर्णों का प्रतीक मानते हैं। एक पारम्परिक मान्यता अनुसार स्वस्तिक व्रत करने से महिलाओं को वैधव्य का भय नहीं रहता।

बौद्ध धर्म में भगवान बुद्ध की प्राचीन प्रतिमाओं पर स्वस्तिक का आलेखन मिलता है। चीन में स्वस्तिक को सुख और सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है, वहीं तिब्बत में मृतकों के पास स्वस्तिक चिह्न रखने की परम्परा है।

आधुनिक काल में जर्मनी के तानाशाह हिटलर ने स्वस्तिक को जर्मनी का राष्ट्रचिह्न बनाया। उसके अनुसार स्वस्तिक एक प्राचीन आर्य प्रतीक हैं, जो समृद्धि और विजय प्रदान करता है।

दक्षिणावर्त स्वस्तिक को शुभ और प्रगति का सूचक माना जाता है वहीं वामावर्त्त स्वस्तिक को अशुभ माना जाता है। कुछ चिंतकों के अनुसार वामावर्त या उल्टा स्वस्तिक रक्षक होता है। इस विषय में लोकोक्ति है कि हिटलर के ध्वज में उल्टा स्वस्तिक होने से उसकी पराजय हुई। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि

हिटलर गले में उल्टा स्वस्तिक पहनता था और जिस दिन उसकी मृत्यु हुई उस दिन उसके गले में वह स्वस्तिक नहीं था।

इस प्रकार स्वस्तिक सार्वत्रिक एक मंगल प्रतीक है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे पूज्य, सम्माननीय एवं प्राचीन माना गया है।

विश्वप्रेम का पावन प्रतीक श्रीवत्स

श्रीवत्स अर्थात श्रीपुत्र या लक्ष्मी पुत्र। यह अंत रहित गांठ या विशेष रत्न के रूप में भी जाना जाता है। विष्णु सहस्त्रनाम के अनुसार यह विष्णु का एक नाम है। जैन तीर्थंकरों एवं विष्णु के वक्षस्थल पर तथा बुद्ध के चरण में यह चिह्न होने का उल्लेख शास्त्रकार करते हैं।

जैनाचार्यों के अनुसार यह चिह्न सभी तीर्थंकरों के हृदय पर होता है। यह उनके हृदय में रही अनंत करुणा, निश्छल मैत्री एवं विश्व प्रेम का प्रतीक है।

जैन, हिन्दू एवं बौद्ध इन तीनों धर्मों में इसे अष्टमंगल चिह्नों में से एक माना गया है। जो शणै: शणै महापुरुषों के लक्षण के रूप में परिवर्तित हो गया। श्री पुत्र होने से हिन्दू धर्म में इसे सम्पन्नता एवं समृद्धि का सूचक माना है। बौद्ध धर्म में इसे प्रेम, बुद्धि एवं भावों के सामंजस्य का प्रतीक माना है। यह शून्यता, प्रतीत्य समुत्पाद, प्रज्ञा,करुणा आदि का भी सूचक है।

श्रीवत्स की आकृति चतुर्दल पुष्प के रूप में, नाग मिथुन रूप में या एक ऐसी आकृति जिसका आदि अंत ज्ञात न हो पाए उस रूप में देखी जाती है।

श्रीवत्स के दर्शन मात्र से हृदय में दया, करुणा, मैत्री, प्रेम, सामंजस्य आदि के भाव जागृत होते हैं अत: सभी के प्रति मंगल भावना उत्पन्न करने के कारण यह मंगलरूप है। यह सार्वभौमिक कल्याण एवं भावों का द्योतक है। 'श्री' शब्द को वैसे भी मंगल एवं कल्याण का सूचक माना है। इस प्रकार श्रीवत्स एक मांगलिक चिह्न है जो विश्वकल्याण के भावों का वर्धन करता है।

देवविन्यास का सूचक नंद्यावर्त्त

नंद्यावर्त्त यह स्वस्तिक का एक पवित्र किन्तु जटिल रूप है और उच्च ध्येय का सूचक है। इसे गहुंली भी कहा जाता है। जैन धर्म में विशेष प्रसंगों पर स्वस्तिक के स्थान पर नंद्यावर्त्त का आलेखन किया जाता है। यह नौ कोण से युक्त होता है जो कि देवत्व के कोनों द्वारा गठित विन्यास का प्रतीक है।

नंद्यावर्त्त को विभिन्न आकारों में बनाया जाता है यद्यपि उसका बीच का आकार वही रहता है तथा इसकी Line कहीं भी टूटती या किसी अन्य कोने से जुड़ती नहीं है। चारों किनारे अलग ही रहते हैं। इसका प्रचलन मात्र जैन धर्म में ही है। इसे मंगल एवं कल्याण का सूचक भी माना जाता है। प्रतिष्ठा आदि महोत्सवों में नंद्यावर्त्त महापूजन करवाया जाता है जो इसकी महत्ता एवं वैशिष्ट्य का सूचक है।

वृद्धि का प्रेरक वर्धमानक

अष्ट मंगल में चौथे स्थान पर वर्धमानक है। इसे वर्धमान भी कहा जाता है। यह सम्पुटाकार होता है। एक सीधे रखे हुए शराव या सिकोरे पर उल्टा सिकोरा रखने से वर्धमानक का चिह्न निर्मित होता है। इसे दीपक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। मंदिर के प्राचीन उपकरणों में वर्धमानक का नाम प्राप्त होता है। यह परमात्मा के आत्मज्ञान रूपी उजाले एवं अज्ञान तिमिर के विनाश का सूचक है।

दीपक को प्रकाश, उन्नति, समर्पण एवं अंधकार विनाश का प्रतीक माना है। वर्धमान का अर्थ है बढ़ते रहना अत: यह मंगल चिह्न अध्यात्म में उन्नति का सूचक है और इसीलिए वर्धमानक को मंगल रूप मानकर अष्टमंगल में सम्मिलित किया गया है।

पूर्णता का मंगल उद्बोधक मंगल कलश

पत्र-पुष्पों से अलंकृत एवं जल से भरा हुआ घड़ा कलश कहलाता है। इसे पूर्ण कुंभ, भद्रकलश, पूर्ण कलश आदि भी कहा जाता है। पूर्वकाल से लेकर आज तक इसे सर्वोत्तम मंगल का प्रतीक माना गया है।

यह चिह्न आध्यात्मिक समृद्धि, ज्ञान सम्पूर्णता एवं सद्गुण सम्पन्नता का सूचक है। इसका मुख अखण्डता, सतह भाग नए स्वरूप को धारण करने एवं कंठ भाग पुराने स्वरूप को त्याग करने का सूचक है। कलश के आस-पास में दो आँखें सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की सूचक हैं। बौद्ध, वैदिक एवं जैन इन तीनों परम्परा में इसे अष्टमंगल में से एक मंगल के रूप में स्वीकार किया गया है। किसी भी मंगल कार्य का प्रारंभ, गृह प्रवेश, नवीन प्रतिष्ठान की स्थापना आदि के अवसर पर सर्वप्रथम कलश की स्थापना की जाती है। जल से भरे हुए कलश को मंगल का सूचक माना गया है। आम्रपल्लव लगाने से यह पूर्णहार

बनता है। यह जीवन की निरंतरता का सूचक भी है। यही कारण है कि मृत्यु होने पर जीवन समाप्ति के प्रतीक रूप में घट फोड़ा जाता है।

कलश को पूर्णता का प्रतीक भी माना जाता है। इसीलिए मंदिर की पूर्णता होने पर शिखर के ऊपर कलश की स्थापना की जाती है। चौदह स्वप्न में भी कलश का स्थान है। इससे यह निश्चित है कि कलश एक महामंगलकारी चिह्न है। कलश के दर्शन मात्र से आनंद एवं प्रमोद के भाव उत्पन्न होते हैं। इसीलिए गुरु महाराज आदि के प्रवेश के प्रसंग पर तथा रथयात्रा आदि में भी महिलाएँ कलश को धारण करती हैं। इस तरह कलश एक मंगलकारी चिह्न है।

पवित्रता का पुंज भद्रासन

भद्रासन या सिंहासन भी एक मांगलिक चिह्न है। यह बैठने का पवित्र उच्च स्थान है। राजा-महाराजाओं के बैठने की राजगद्दी भद्रासन कहलाती है। यह मुक्ति प्राप्त आत्माओं के पवित्र एवं पूजनीय आसन का प्रतीक है। अरिहंत परमात्मा समवसरण में इसी पर बैठते हैं।

अरिहंत परमात्मा के बारह गुणों में सिंहासन का भी समावेश है। उच्च पद के धारक या सर्वोत्तम व्यक्ति को सदा उच्च या सर्वश्रेष्ठ आसन पर बिठाया जाता है। भद्रासन को भी इसलिए श्रेष्ठ आसन मानकर इसे अष्टमंगल में समाविष्ट किया गया है। तीर्थंकर परमात्मा समवसरण में इसी आसन पर बैठकर अपनी मधुर वाणी से जन-मानस को आंदोलित एवं प्रवर्तित करते हैं तथा धर्म मार्ग की स्थापना करते हैं। धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा गया है। अरिहंत परमात्मा महामंगलकारी एवं विश्व कल्याणकारी हैं अत: परमात्मा के बैठने का स्थान भी मंगलकारी होना चाहिए। इसलिए भद्रासन को भी अष्ट मांगलिक चिह्नों में अन्तर्भूत किया है।

प्रगति का प्रेरणास्रोत मीन युगल

दो मछलियों के युग्म को मीन युगल कहा जाता है। बौद्ध, हिन्दू एवं जैन इन तीनों संप्रदाय में मीन युगल को मंगल रूप स्वीकार किया गया है।

सफलता, सौभाग्य एवं शुभ शकुन के रूप में मीन युगल एक प्रतिष्ठित मांगलिक प्रतीक है। मछली को निश्छल, निष्कपट, सच्चे प्रेम का प्रेरक भी माना है। मीन विपरीत परिस्थितियों में भी गति करते रहने का गति प्रसूचक है। मछली हमेशा जल प्रवाह की विपरीत दिशा में गति करती है, इसी कारण

जापान में प्रगति के प्रतीक एवं आदर्श के रूप में मछली का चिह्न द्वार पर लटकाया जाता है। मत्स्य को शुभ शकुन मानते हुए यात्रा आदि से पूर्व इसके दर्शन को शुभ एवं सर्वोत्तम माना गया है। हिन्दू मतानुसार भगवान विष्णु ने मत्स्य रूप में प्रथम अवतार लिया था और प्रलयकाल में इसी ने मनु और सृष्टि की रक्षा नाव का रूप लेकर की।

बौद्ध परम्परा के अनुसार मीन संसार समुद्र में दुखी और भ्रमण कर रहे प्राणियों को निर्भयता एवं स्वतंत्रता पूर्वक जीने का सदुपदेश देने की सूचक है, ठीक वैसे ही जैसे मछली निर्भय होकर स्वतंत्रता पूर्वक समुद्र में घूमती है। मीन युग्म को बुद्ध की दो आँखों का भी प्रतीक माना जाता है, तो इसे गंगा-यमुना इन दो नदियों, सूर्य एवं चंद्र स्वर या प्राण का भी सूचक माना जाता है। जैनाचार्यों के अनुसार यह परम शक्ति या दिव्यशक्ति के प्रवाह का सूचक है। इसे प्रसन्नता और स्वतंत्रता का सूचक भी माना गया है।

इस तरह मीन युगल को एक मंगल चिह्न के रूप में सर्वत्र स्थान प्राप्त है जो जीवों को संसार प्रवाह के विरुद्ध अध्यात्म मार्ग पर गति करने की प्रेरणा देता है।

आत्मस्वरूप का दर्शन दर्पण

आठवें मंगल के रूप में श्वेताम्बर संप्रदाय में दर्पण का वर्णन है। हिन्दू एवं जैन परम्परा में दर्पण को मंगल रूप में स्थान प्राप्त है।

दर्पण वस्तु के सच्चे स्वरूप को प्रतिबिम्बित करता है। दर्पण स्वयं मंगल रूप है। इसके समक्ष जो वस्तु जैसी आती है वैसी ही प्रतिबिम्बत हो जाती है। दर्पण स्वच्छता, निर्मलता एवं सच्चाई का प्रतीक है।

हमारा हृदय भी दर्पण की भाँति स्वच्छ एवं निर्मल बने तथा उसमें परमात्मा का वास हो, यह इसकी प्रेरणा भी देता है। दर्पण के द्वारा जीवन को स्वच्छ एवं निश्छल बनाने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। कई स्थानों पर लोक व्यवहार में दर्पण दर्शन को शुभ शकुन माना जाता है। दर्पण के सामने कोई प्रकाश किरण आ जाए तो वह दुगुने वेग से उसे परावर्तित कर स्वस्थान को पुनः प्राप्त करवाता है परन्तु वह अंधकार को कभी परावर्तित नहीं करता वैसे ही हमारा जीवन भी होना चाहिए। हम दूसरों के उपकार एवं सद्गुणों को दुगुने वेग से परावर्तित करें तथा किसी के अवगुण आदि को अपने भीतर ही समाहित

कर लें। इन्हीं कारणों से दर्पण को अष्ट मंगल में कल्याण रूप माना गया है।

अष्टमंगल मानव जगत को एक ईश्वरीय वरदान

मंगल की स्थापना किसी न किसी रूप में प्रत्येक संप्रदाय एवं समाज में की जाती है। कहीं पर गणेश को मंगल माना गया तो, कहीं पर किसी यंत्र विशेष को, कहीं पर लाफिंग बुद्धा Lucky माना जाता है, तो कोई पुराने सिक्के को मांगलिक मानते हैं। कहने के लिए शब्द अलग हो सकते हैं मानने का तरीका अलग हो सकता है किन्तु ध्येय एक ही है कि जीवन से विपदाओं का नाश हो तथा सुख, सौभाग्य एवं समृद्धि का वर्धन हो। जीवन में सफलता एवं उन्नति का साक्षात्कार हो। कई लोग कहते हैं कि कर्म के अनुसार ही जब व्यक्ति को जीवन में सब कुछ मिलता है तो फिर मंगल की आवश्यकता क्यों? तो कई लोग कहते हैं कि पुरुषार्थ के अनुसार व्यक्ति को सब कुछ प्राप्त होता है। मंगल आदि व्यक्ति को पुरुषार्थ हीन बताते हैं। कर्म के अनुसार एवं पुरुषार्थ के बल पर व्यक्ति को अवश्य सब कुछ प्राप्त होता है परन्तु जैन दर्शन के अनुसार कर्मों में परिवर्तन भी होता है और पुरुषार्थ समान होने पर भी सभी को एक समान परिणाम मिले यह आवश्यक नहीं।दोनों का समन्वय एवं भाग्य का सहयोग सभी मिलकर कार्य सिद्धि में सहायक बनते हैं।

पूर्वाचार्यों एवं विद्वानों ने मंगल चिह्नों को आध्यात्मिक उत्थान हेतु जहाँ आवश्यक माना वहीं वैज्ञानिकों ने इनके शारीरिक, मानसिक एवं वातावरण के प्रभाव पर चिंतन किया है।

ये मंगल चिह्न आदर्श रूप भी होते हैं और व्यक्ति के सामने जैसा आदर्श, जैसी प्रेरणा होती है वैसा ही उसका जीवन बनता है। मंगल प्रतीक सामने होने से हृदय में विश्व कल्याण, मैत्री आदि के उत्तम भाव ही उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर भी इनका विशिष्ट प्रभाव देखा जाता है। मनुष्य के मन एवं जीवन पर आकार का विशेष प्रभाव पड़ता है। स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त्त आदि जो अष्ट मंगल के चिह्न हैं इन्हें परमात्मा के समक्ष रखने का ध्येय, परमात्मा के लिए मंगल की कामना करना नहीं है अपितु परमात्मा के माध्यम से स्वयं के जीवन के लिए मंगल का विस्तार करना है। तीर्थंकर परमात्मा के आगे यह अष्टमंगल इसलिए चलते हैं कि प्राणी मात्र को परमात्मा की उच्चता, श्रेष्ठता आदि का बोध हो। सामान्यतया जिन्हें मंगल या कल्याण का सूचक

मानकर मानव जगत उनकी पूजा करता है, वे चिह्न परमात्मा का सम्मान, बहुमान, विनय आदि करते हैं अत: ऐसे परमात्मा जगत वंदनीय हैं। परमात्मा की सर्वश्रेष्ठता दर्शाने हेतु ही सर्वोत्तम आठ मांगलिक चिह्न उनके समक्ष आलेखित किए जाते हैं।

जीवन निर्माण का प्रमुख सूत्र– अष्टमंगल

अष्टमंगल में वर्णित आठ चिह्नों का प्रभाव विविध प्रकार से व्यक्ति के जीवन में देखा जाता है। अष्टमंगल का आलेखन ही नहीं उसका चित्रदर्शन, मुख्यद्वार आदि पर उसके पट का अंकन आदि भी अपना प्रभाव डालते हैं। परमात्मा के समक्ष अष्टमंगल का आलेखन करने से जीवन में मंगल एवं कल्याण की श्रृंखला आरंभ हो जाती है। इनके आकार आदि का प्रभाव जीवन में परिलक्षित होना प्रारंभ हो जाता है। उदाहरणत: लाश का स्वभाव है सड़ना-गलना आदि किन्तु जब वह पिरामिड में रखी जाती है तो वर्षों तक खराब नहीं होती यह उसके आकार का ही प्रभाव है। वैसे ही स्वस्तिक का आलेखन चारों गति से मुक्त होने के भाव उत्पन्न कर 'शिवमस्तु सर्व जगत:' की भावना को जागृत करता है। श्रीवत्स हृदय में सार्वभौम दयालुता, विश्व प्रेम, करुणा आदि के भावों का वर्धन करता है। साथ ही आंतरिक एवं बाह्य संपत्ति तथा समृद्धि को बढ़ाता है। नंद्यावर्त्त ध्यान में स्थिरता का विकास करता है, आनंद एवं प्रमोद भाव को उत्पन्न करता है तथा विशिष्ट आध्यात्मिक शक्ति का संचरण करता है। भद्रासन का आलेखन करते हुए परमात्मा के सर्वोच्च स्थान की प्रतीति होती है। ऐसे भव्य आसन पर बैठने के बाद भी परमात्मा के मन में कभी अहंकार या मान कषाय आदि जागृत नहीं होता और न ही वे अपने पद का अभिमान या दुरुपयोग करते हैं। इससे मानव को भी दर्प से मुक्त होने की प्रेरणा मिलती है। उच्च स्थान पर स्थिरता तभी रहती है जब हृदय में सरलता हो। भद्रासन इसी का संदेश देता है। वर्धमानक अर्थात सम्पुटाकार दीपक। यह परमात्मा के अनंत ज्ञान प्रकाश का सूचक है। सम्पुट अर्थात किसी वस्तु को एक सीमित दायरे में नियंत्रित रखना, अनुशासन में रखना। इसी प्रकार मन को नियंत्रित एवं अनुशासित रखते हुए आत्मज्ञान को जागृत करने की प्रेरणा भी वर्धमानक देता है।

जिस प्रकार दीपक की ज्योति निरंतर ऊर्ध्वगामी रहती है वैसे ही हमारे शुभ भाव भी निरंतर ऊर्ध्वगामी बनें। कलश को महामंगलकारी एवं पूर्णता का

प्रतीक माना गया है। इसे शुभ शकुन मानकर प्रत्येक मांगलिक या शुभ प्रसंग पर महिलाओं द्वारा धारण किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठान, पूजन आदि में भी यह प्रयुक्त होता है। यह सौभाग्य वृद्धि कारक माना जाता है तथा आत्मा की पूर्ण अवस्था प्राप्त कर आत्मिक ऋद्धि एवं समृद्धि की प्रेरणा देता है।

मत्स्य को शोभा, सफलता, सौभाग्य का प्रतीक माना गया है। मीन सच्चे एवं निष्कपट प्रेम का सूचक है। यह हृदय को निश्छल एवं निष्कपट बनाने की प्रेरणा देता है। इसी के साथ संसार के प्रवाह के विरुद्ध जाकर अनादि काल से कर्म युक्त आत्मा को कर्म रहित बनाने की प्रेरणा भी इसी के द्वारा प्राप्त होती है। मीनयुगल का आलेखन करते हुए उसके विशिष्ट गुणों को अपनाने के भाव प्रकट किए जाते हैं।

समाहारत: यह आठों ही चिह्न आत्मा को निरंतर बढ़ते रहने की प्रेरणा देते हैं। साथ ही नकारात्मकता का हरण कर सकारात्मक, ऊर्जावान वातावरण का निर्माण करते हैं।

आज का युग तार्किक युग है। युवा वर्ग को प्रत्येक कार्य के पीछे एक सार्थक कारण चाहिए। वे मात्र परम्परा अनुकरण, श्रद्धा या जिन आज्ञा समझकर किसी भी कार्य को करना नहीं चाहते। इस अश्रद्धावृत्ति का प्रमुख कारण है आज की पाश्चात्य जीवन शैली एवं भौतिक विचारधारा तथा दूसरा कारण है धार्मिक क्रियाओं के प्रति घटता रुझान एवं अज्ञानता। इस कारण से उन क्रियाओं के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न ही नहीं होते। इसी मानसिकता को ध्यान में रखते हुए जिनपूजा सम्बन्धी प्रत्येक विधान का हेतु एवं उसके रहस्यात्मक पक्षों का इस अध्याय में विवेचन किया गया है जिससे पाठक वर्ग अवश्य लाभान्वित होगा।

सन्दर्भ-सूची

1. *एक्कंपि उदगबिंदू जह, पक्खित्तं महासमुद्दम्मि।*
   जायइ अक्खमेवं, पूया जिणगुणसमुद्देसु॥

   पंचाशक प्रकरण, 4/47

2. *इति जिनपूजा धन्य: श्रृण्वन्, कुर्वंस्तदोचितां नियमात्।*
   भवविरहकारणं खलु, सदनुष्ठानं द्रुतं लभते॥

   षोडशक प्रकरण, 9/16

3. ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, धिक् च गृहाश्रमम्॥
पं.वि. 6/15, उद्धृत– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, पृ. 75

4. उक्तं सोमदेव स्वामिना-अपूजयित्वा यो देवान् मुनीननुपचर्य च।
यो भुंजीत गृहस्थः सन् च भुंजीत परं तमः।
(क) बोध पाहुड टीका, 17/85
(ख) अमितगति श्रावकाचार, 1/55

5. एवं आगंतुणं, अट्ठमिदिवसेसु मंदरगिरिस्स।
जिणभवणेसु य पडिमा, जिणिंद इंदाण पूयंति॥
ज.प. 5/112
उद्धृत– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

6. ण ताव जिणो सगवंदणाए परिणयाणं चेव जीवाणं पावस्स पणासओ, वीयरायत्तस्साभावप्पसंगादो।
...परिसेसत्तणेण जिणपरिणय भावो च पावपणासओ त्ति इच्छियव्वो, अण्णहा कम्मक्खयणुववत्तीदो। धवला, 9/4, 1, 1/8/7

7. उत्तमगुणबहुमाणो, पयमुत्तम सत्तमज्झयारम्मि।
उत्तमधम्मपसिद्धी, पूयाए जिणवरिंदाणं॥
पंचाशक प्रकरण, 4/48

8. असदारंभपवत्ता, जं च गिही तेण तेसि विन्नेया।
तन्निव्वित्तिफलच्चिय, एसा परिभावणीयमिणं॥
पंचाशक प्रकरण, 4/43

9. यः पुष्पैर्जिन मर्चति स्मित सुरस्त्रीलोचनैः सौऽर्च्यते,
यस्तं वंदत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वंद्यते।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्तदमनस्तोमेन स स्तुयते।
यस्तं ध्यायति क्लृप्त कर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः॥
सिन्दूर प्रकरण, गा-12

10. मंगलं जिनशासनम्, पृ. 11

11. अग्गद्दारे (क) चैत्यवंदनभाष्य, गा. 8
जिण भवणाइ पवेसे निसेह। (ख) चैत्यवंदन कुलक, गा.4, पृ. 97

12. (क) मज्झे। चैत्यवंदनभाष्य, गा. 8
    (ख) जिन गृह व्यापार निषेध रूपां द्वितीयां नैषधिकीं। धर्मसंग्रह वृत्ति, पृ. 41
    (ग) चैत्यवंदन कुलक, पृ. 48
13. तइया चिइवंदणासमए। (क) चैत्यवंदन भाष्य, गा. 8
    (ख) चैत्यवंदनकुलक, पृ. 98
14. चैत्यवंदन कुलक, पृ. 98
15. पंचाशक प्रकरण, 4/20
16. (क) श्राद्ध विधि प्रकरण, पृ. 117
    (ख) क्षीरोदकादिकं श्वेतमव कार्यम्। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 17
17. (क) षोडशक प्रकरण, 8
    (ख) श्राद्ध विधिप्रकरण, पृ. 117
18. (क) मंगलं जिनशासनम्, पृ. 12
    (ख) श्राद्धविधि प्रकरण, पृ. 124
19. वही
20. श्राद्धविधि प्रकरण, पृ. 123
21. तत्त्वार्थ सूत्र, 7/8
22. अक्षतैश्चाखण्डै रौप्यसौवर्ण: शालेयैर्वा जिनपुरतो दर्पण 1 भद्रासन 2 वर्द्धमान 3 श्रीवत्स 4, मत्स्ययुग्म 5 स्वस्तिक 6 कुम्भ 7 नन्दावर्त्त8 रूपाष्टमंगलानालेख्येत। धर्मसंग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति, पृ. 24
23. श्राद्धदिनकृत्य, पृ. 134

●

अध्याय-8

जिनपूजा की प्रामाणिकता ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय संदर्भों में

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने और जीने के लिए उसे विविध आलंबनों की आवश्यकता रहती है। जैसे जन्म और पालन-पोषण के लिए माता-पिता की, पढ़ाने के लिए Teacher की, इलाज के लिए Doctor की, रहने के लिए घर की तो, पढ़ने के लिए School और व्यापार के लिए Office की। इसी तरह साधना-उपासना के क्षेत्र में आलंबन का सहयोग लेकर ही आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इसी आत्मोकर्ष के भाव से विविध साकार एवं निराकार आलंबनों का प्रादुर्भाव अलग-अलग समय में हुआ।

साकार आलम्बन का बदलता स्वरूप

जैन धर्म में आत्मोत्थान हेतु विशेष रूप से देव, गुरु और धर्म रूपी तत्त्वमयी का आलम्बन स्वीकार किया जाता है। अरिहंत परमात्मा देव रूप हैं और उनके आज्ञापालक साधु-साध्वी आदि गुरु रूप हैं। केवलज्ञान की प्राप्ति होने के पश्चात तीर्थंकर परमात्मा चतुर्विध संघ रूप धर्म तीर्थ की स्थापना करते हैं। इसी के साथ अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए धर्म की प्रभावना करते हैं। साक्षात तीर्थंकर परमात्मा जिन-जिन क्षेत्रों से देशना देकर विहार कर देते थे, वहाँ के लोग उनकी पुण्य स्मृति रूप चित्रपट्ट फलक (Paintings) का निर्माण करवाकर अपने-अपने घरों में लगाते थे। कालान्तर में उन्हीं वस्त्र पट्ट और फलक आदि का स्थान विकसित होते-होते धातु, रत्न, पाषाण आदि से मूर्ति रूप में शिल्प आकृतियाँ बननी प्रारंभ हुईं। मूर्तियों के साथ उनके अष्टप्रातिहार्य का भी चित्रण होने लगा। कालान्तर में भक्ति स्वरूप उन प्रतिमाओं के समक्ष वंदन, पूजन, चैत्यवंदन आदि किया जाने लगा। क्षणैः-क्षणैः प्रतिमा पूजन एक आत्म श्रेयस्कर दैनिक प्रवृत्ति बन गई। यद्यपि प्रतिमा पूजन को किसी न किसी

रूप में सभी धर्मों में स्वीकृत किया गया है परन्तु भ्रमित मानसिकता एवं दूषित विचारधारा के कारण इसका विरोध कभी हिंसा, कभी आडंबर, कभी जड़ता तो कभी अंधविश्वास के नाम पर हुआ। अपने मत की पुष्टि के लिए कई बार आगमोक्त वचनों का अर्थांतरण करके उत्सूत्र प्ररूपण भी किया गया। कई आगमों का अस्वीकार भी कुछ परम्पराओं में इसी कारण किया गया। वर्तमान में यही आलम्बन Mobile और Laptop के Wallpaper का रूप ले चुका है क्योंकि आज की Fast Speed की जिंदगी में व्यक्ति हर चीज को अपने समीप लाना चाहता है। मन्दिर आदि जाने का समय व्यक्ति के पास है नहीं तो वह इन्हीं को अपना आलंबन बनाता है।

आलम्बन का अर्थ एवं उसकी आवश्यकता

आलम्बन का सामान्य अर्थ है सहारा या आधार। हर कार्य या लक्ष्य की सिद्धि में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं जो कार्य सिद्धि में आधार बनते हैं या एक बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। जैसे– खाना बनाने में खाने की Recipie, यात्रा करने में वाहन, बोलने में जुबान आदि। इन आलंबनों के सहारे ही तत्सम्बन्धी कार्यों को पूर्णता दी जा सकती है।

व्यवहार जगत में भी हम देखते हैं कि किसी भी Goal या लक्ष्य को पाने के लिए उस क्षेत्र में पारंगत व्यक्ति का मार्गदर्शन अथवा उसके जीवन का अनुभव ज्ञान कार्य सिद्धि में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। इसी कारण हमारे कमरों में इस तरह की कोई न कोई Photo, पुस्तके आदि मिल ही जाएंगी। हर युवा के कमरे में किसी न किसी Actor, Cricketer, Business Tycoon आदि की photo लगी हुई होती है क्योंकि वह उसका आदर्श या लक्ष्य है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि आलंबन की आवश्यकता क्यों है? वह लक्ष्य सिद्धि में कैसे आधार बनता है?

आलंबन का मुख्य हेतु है लक्ष्य पर चित्र को एकाग्र करना। जैसे कि एक निशाने बाज अपने लक्ष्य का भेदन करने से पहले लक्ष्य पर अपना ध्यान एकाग्र करता है तब वह लक्ष्य के किसी एक भाग को अपना आलंबन बनाता है। उस लक्ष्य पर पूर्णरूप से ध्यान केन्द्रित होने पर ही वह लक्ष्य के मेन प्वाइंट का भेदन कर पाता है। इसी प्रकार एक सफल Business man बनने की चाह रखने वाला व्यक्ति किसी बड़े Business man को अपना आदर्श या Role model

बनाकर उसके हर आचरण एवं कार्य का अध्ययन एवं समीक्षा कर उसे Follow करता है। तभी वह व्यवहार जगत में एक सफल इंसान बन सकता है।

इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत में आत्मा के उत्कर्ष के लिए भी जीव को किसी न किसी आलंबन की आवश्यकता होती है। जिन प्रतिमा एवं जिनमन्दिर को तद्हेतु उत्कृष्ट आलंबन माना गया है। यहाँ कई लोग तर्क करते हैं कि आलंबन का हेतु है मन को एकाग्र करना। तो मन को अन्य उपायों से भी एकाग्र किया जा सकता है। जैसे कि व्यापारी जब नोट गिनता है तो मन एकाग्र रहता है, T.V. पर Film देखते हुए या कोई Novel या उपन्यास पढ़ते हुए चित्त उसी में तल्लीन हो जाता है। एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करके भी एकाग्रता बढ़ाई जा सकती है, तो फिर जिन मन्दिर एवं जिनप्रतिमा में क्या विशेष है? क्यों उनका निर्माण किया जाए या उन स्थानों पर जाया जाए? यह कार्य तो घर में भी हो सकता है।

यह बात एकदम सही है कि चित्त की एकाग्रता इन सब माध्यमों से भी साधी जा सकती है। परंतु यदि सूक्ष्मतापूर्वक चिंतन किया जाए तो इन सब कार्यों से मन तो एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है किन्तु इनसे अध्यवसायों की शुद्धता संभव है? आध्यात्मिक क्षेत्र का मुख्य लक्ष्य है परिणामों की शुद्धता। यदि परिणाम अच्छे नहीं हैं और चित्त एकाग्र है तो भी ऐसे लोग विश्व के लिए विनाशकारी हो सकते हैं।

नोट गिनते हुए यदि एक नोट कम हो जाए तो मन में उथल-पुथल मच जाती है। Film में Sad scene या लड़ाई का Scene आते ही हमारा मन विषाद आदि भावों से भर जाता है, तो फिर बिना शान्त वातावरण के एकाग्रता की साधना कैसे हो सकती है? बाह्य कार्यों में तो व्यक्ति की रुचि के कारण उसका मन कुछ समय के लिए स्थिर हो जाता है।

एक तथ्य यह भी है कि चित्र आदि के द्वारा जितनी सरलता एवं सहजता से विषय को समझा जा सकता है, उतना शब्दों के माध्यम से नहीं, इसीलिए किसी विचारक ने कहा है– One picture worth more than thousasnd words । इसी प्रकार मूर्ति के द्वारा अपने लक्ष्य की अनुभूति जितनी सहज रूप से होती है, शेष आलम्बनों से उतना सहज नहीं होता। फिर वह आकृति मूर्ति, चित्र, Photo आदि किसी भी रूप में हो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

जिन प्रतिमा एक सर्वश्रेष्ठ आलम्बन कैसे?

आचार्य देवेन्द्र मुनि शास्त्री का कहना है कि "जो मन में भी नहीं वह पवित्रता मन्दिर में निवास करती है। मन्दिर पवित्रता का प्रतीक है। जिस दिन सहज ही पवित्रता का संयोग हो जाएगा उस दिन स्वयं मानस-मन्दिर बन जाएगा। अतएव साध्य को प्राप्त करने के लिए साधना का आलंबन होना आवश्यक है।"

मानव को जीवन जीने की सही दिशा देने के लिए तथा उसके सामने एक श्रेष्ठ आलंबन प्रस्तुत करने हेतु जिनप्रतिमा एक उत्तम माध्यम है। जिस प्रकार रिमोट कंट्रोल से टी.वी. के चैनल बदले जाते हैं, Mouse के द्वारा, Computer Screen को Control किया जाता है। उसी तरह आत्मा को बाहरी संसार से स्व स्वरूप की उपलब्धि करवाने का कार्य जिन प्रतिमा करती है। शुद्ध आत्म अवस्था की प्राप्ति के लिए एक विशुद्ध आत्मा का आलंबन होना भी परमावश्यक है। वस्तुत: जिनप्रतिमा मनुष्य के दिव्य चिंतन का ही मूर्त्त रूप है। आत्मा में समाहित सहिष्णुता, करुणा, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य आदि गुणों का साकार रूप है। उसे देखने मात्र से मन चिंतामुक्त होकर शुभ भावयुत हो जाता है। जिन रूप को देखकर स्वयं के भीतर छिपी हुई परमात्म शक्ति की अनुभूति होती है। नर से नारायण बनने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

जिन प्रतिमा की प्रशान्त एवं मनमोहक मुखमुद्रा साकारात्मक ऊर्जा का निर्माण करती है। उस वायुमण्डल के परिसर में जाने वाला व्यक्ति उन परमाणुओं के प्रभाव से ही उपशान्त बन जाता है। अत: चित्त की एकाग्रता, शुभ भावों में तल्लीनता एवं अध्यवसायों के शुद्धिकरण में जिनप्रतिमा ही सर्वश्रेष्ठ आलम्बन है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में जिनपूजा

जिन प्रतिमा एवं प्रतिमा पूजन का वर्णन हमें प्रागैतिहासिक काल से ही प्राप्त होता है। भगवान आदिनाथ के समय में भरत ने अष्टापद तीर्थ पर वर्तमान चौबीसी के तीर्थंकरों की रत्नमय प्रतिमाएँ स्थापित की थी। इसी प्रकार आगम शास्त्रों में भी अनेक स्थानों पर जिन प्रतिमा का वर्णन आता है। अतीत चौबीसी के नौवें तीर्थंकर दामोदर के समय में शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा का निर्माण हो गया था। यदि जैन श्रुत साहित्य का अवलोकन करें तो प्राच्य काल से अब

तक अनेकश: रचनाएँ इस विषय पर की गई हैं। लाखों वर्ष प्राचीन जिन प्रतिमाएँ एवं हजारों वर्ष पुराने आगम शास्त्र जिन प्रतिमा की शाश्वतता के मुख्य प्रमाण हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से मंथन करें तो विविध आगमों में भिन्न-भिन्न हेतुओं से जिनप्रतिमा का उल्लेख प्राप्त होता है। मुख्य रूप से महाकल्प सूत्र, भगवती सूत्र, उववाईसूत्र, आचारांगसूत्र, ज्ञातासूत्र, उपासकदशांग सूत्र, कल्प सूत्र, व्यवहार सूत्र, आवश्यक सूक्त, शालीभद्र चारित्र, राजप्रश्नीय सूत्र, स्थानांगसूत्र, महानिशीथ सूत्र, औपपातिक सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, समवायांग सूत्र, सूत्रकृतांग सूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र, जीवाभिगम सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, जीतकल्प सूत्र आदि इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्यों में मूर्तिपूजा आदि से सम्बन्धित उल्लेख अन्य जैनागम, उनकी निर्युक्ति एवं भाष्य में भी प्राप्त होता है। यदि मध्यकालीन साहित्य के विषय में चिंतन करें तो इस काल में विशेष रूप से चैत्यवास परम्परा के कारण बहुत से परिवर्तन जिनपूजा के संदर्भ में हुए। इसी के साथ इस विषय पर विस्तृत साहित्य सर्जन भी हुआ। हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्राचार्य, जिनप्रभसूरि आदि अनेकश: आचार्यों ने इस विषय पर बृहद कार्य किया है।

आचार्य हरिभद्रसूरि कृत पूजाष्टक, पूजाविधि विंशिका, ललितविस्तरा षोडशक प्रकरण, पंचाशक प्रकरण, योगबिन्दु, पंचवस्तुक, धर्मबिन्दु प्रकरण आदि।

आचार्य उमास्वाति रचित पूजा प्रकरण, शालिभद्रसूरि द्वारा रचित चैत्यवंदन भाष्य, शांतिसूरिजी रचित चैत्यवंदन महाभाष्य, देवेन्द्रसूरि द्वारा कृत लघु चैत्यवंदन भाष्य, धर्मघोषसूरिजी द्वारा रचित संघाचारवृत्ति, संघदासगणि कृत व्यवहार भाष्य, धर्मदासगणि कृत उपदेशमाला, हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित योगशास्त्र एवं त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र, पूर्व चिरंतनसूरिकृत श्राद्धदिन कृत्य, वर्धमानसूरिकृत धर्मरत्न करंडक एवं आचारदिनकर, रत्नशेखरसूरि कृत श्राद्धविधि प्रकरण एवं आचार प्रदीप, अभयदेवसूरिकृत सामाचारी प्रकरण और नव अंग टीकाएँ, जिनप्रभसूरिकृत आत्मप्रबोध, आचार्य रविषेण कृत पद्मचरित्त एवं सर्वोपचारी पूजा, चंद्रप्रभसूरि कृत दर्शनशुद्धि प्रकरण, सोमप्रभसूरि कृत

कुमारपाल प्रतिबोध चरित्र, सुंदरगणिकृत आचारोपदेश, उपाध्याय मानविजयजी कृत धर्म संग्रह जिनदत्तसूरि कृत चर्चरी प्रकरण, संवेगरंगशाला आदि अनेकानेक ग्रन्थों में जिनपूजा विषयक चर्चा की गई है।

अर्वाचीन साहित्यकारों के द्वारा भी इस विषय में पूर्व परम्परा का अनुकरण करते हुए ही कार्य किया गया एवं देशकाल-परिस्थिति के अनुसार कुछ परिवर्तन भी किए गए।

यदि दिगम्बर साहित्य की गवेषणा करें तो अनेक स्थानों पर जिन प्रतिमा एवं जिनपूजा विषयक चर्चा प्राप्त होती है। नरेन्द्रसेन भट्टाचार्य, प्रभाकर सेन एवं आशाधर कृत विविध प्रतिष्ठा पाठ योगेन्द्र कृत श्रावकाचार, भगवत्देव कृत जिनसंहिता विधि में अनेक प्रकार के पूजा विधानों का वर्णन है। इसी प्रकार आदिपुराण, अजितनाथ पुराण, पद्मनन्दी पच्चीसी, षटकर्मोपदेश माला, हरिवंशपुराण, द्रव्यसंग्रह, भावसंग्रह, ज्ञानपीठ पुष्पांजलि पूजा संग्रह, बृहत कथा कोश, आराधना कोश, व्रत तिथि निर्णय, व्रतकथा कोश, श्रीपाल चारित्र, राजवार्तिक, जिनसंहिता, रयणसार धवला, शांतिपाठ आदि अनेक कृतियों में जिनपूजा का उल्लेख है।

प्रश्न हो सकता है कि जब आगमों एवं पूर्वाचार्यों द्वारा रचित साहित्य में इतने स्थानों पर जिनपूजा एवं जिनप्रतिमा सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है, तो फिर कुछ परम्पराएँ जिनपूजा का विरोध क्यों करती हैं?

जैन दर्शन अनेकांतवादी दर्शन है। यहाँ प्रत्येक बात को सापेक्ष रूप से कहा जाता है। किसी भी वस्तु को समझाते समय कितने ही वचन उत्सर्ग रूप में, कितने ही अपवाद रूप में तो कितने ही विधिवाक्य एवं कितने ही अपेक्षा वाक्य होते हैं। सूत्रों में रहे हुए गंभीर आशय को ग्रहण करना हर किसी के लिए शक्य नहीं होता। कालक्रम की अपेक्षा एवं बाह्य वातावरण के अनुसार कई परिवर्तन प्रत्येक क्रिया में होते रहते हैं। जिनपूजा आदि में भी कुछ ऐच्छिक एवं अनैच्छिक परिवर्तन आए और कुछ अनैतिक प्रवृत्तियाँ भी प्रविष्ट हो गईं। उन कुरीतियों का विरोध करने के बदले अन्य मतों से प्रभावित होकर कुछ आचार्यों ने जिनपूजा एवं जिनमूर्ति का ही विरोध प्रारंभ कर दिया। जिस कारण जैनों में भी मूर्तिपूजक और अमूर्तिपूजक आम्नायों का विभागीकरण हुआ। जिन-जिन आगमों में मूर्ति पूजा आदि के विशेष उल्लेख थे, स्वमत पुष्टि हेतु उन आगमों

को ही अमान्य कर दिया। परंतु उन्हीं लोगों के द्वारा मान्य नन्दीसूत्र में अन्य आगम सूत्रों की सूची भी प्राप्त होती है। स्वमान्य आगम ग्रन्थों का विशद अर्थ करने हेतु अमान्य आगमों की टीका आदि का सहारा फिर क्यों लिया जाता है? जिनप्रतिमा को अमान्य करने वाले यही लोग गुरु की फोटो आदि मानते हैं एवं इस पंथ का अनुयायी वर्ग जिनेश्वर परमात्मा के स्थान पर मिथ्यात्वी देवी-देवताओं को मानने एवं पूजने लगे हैं। अत: सुज्ञ आचार्यों को स्वयं विचार करना चाहिए।

आगम साहित्य के आलोक में जिनपूजा

कई लोग यह कहते हैं कि जिन पूजा शास्त्र सम्मत नहीं है? कई लोग कहते हैं कि जैन धर्म अहिंसा प्रधान है एवं जिनपूजा हिंसा प्रधान। परंतु उनकी यह मान्यता गलत है। आगम ग्रन्थों में विविध प्रसंगों में जिनपूजा का उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। जहाँ तक मूल आगमों का प्रश्न है, उसमें निम्न वर्णन मिलता है।

प्रथम अंग आगम श्रीआचारांग सूत्र में भगवान महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ को पार्श्व अनुयायी बताते हुए कहा है कि उन्होंने श्री जिनेश्वर देव की पूजा के लिए लाखों रुपए खर्च किए और जिनप्रतिमा की पूजा की। इस अधिकार में ''आयअ'' शब्द देव पूजा के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1]

स्थानांगसूत्र के तीसरे स्थान में तीन प्रकार के 'जिन' का वर्णन है– **1. तओ जिणा पण्णत्तं तं जहा-ओहिनाण जिणे, मण पज्जवनाण जिणे, केवल नाण जिणे। 2. तओ अरहा पण्णत्तं तं जहा-ओहिनाण अरहा, मण पज्जवनाण अरहा, केवल नाण अरहा।** जिन तीन प्रकार के होते हैं– 1. अवधिज्ञानी जिन 2. मन: पर्यवज्ञानी जिन 3. केवलज्ञानी जिन।

अरिहंत तीन प्रकार के कहे गये हैं– 1. अवधिज्ञानी अरिहंत 2. मन: पर्यवज्ञानी अरिहंत 3. केवलज्ञानी अरिहंत।[2]

यहाँ पर 'जिन' या 'अरिहंत' शब्द का उल्लेख तीर्थंकर के लिए हुआ है। स्थानकवासी आचार्य श्री अमोलकऋषिजी ज्ञाताधर्मकथा में उल्लिखित 'जिनप्रतिमा' शब्द का अर्थ कामदेव की मूर्ति करते हैं। परंतु जैन आगमों में जिन प्रतिमा का अर्थ कामदेव नहीं है। यह स्थानांग सूत्र के इस वर्णन से सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार चौथे स्थान में हिंसा की चतुर्भंगी का उल्लेख है–[3]

1. सावद्य व्यापार और सावद्य परिणाम
2. सावद्य व्यापार और निरवद्य परिणाम
3. निरवद्य व्यापार और सावद्य परिणाम
4. निरवद्य व्यापार और निरवद्य परिणाम

इसमें प्रथम विभाग मिथ्यात्व के आश्रित है। दूसरा विभाग सम्यग्दृष्टि एवं देशविरति श्रावक संबंधी है क्योंकि श्रावक के लिए देवपूजा, गुरु दर्शन आदि धार्मिक कार्य दिखने में यद्यपि सावद्य प्रतीत होते हैं, परंतु गृहस्थ के परिणाम हिंसा के नहीं होने से वहाँ केवल स्वरूप हिंसा होती है। यह पाप आकाश-कुसुम की तरह आत्मा को लग ही नहीं पाता। तीसरा विभाग प्रसन्नचंद्र राजर्षि जैसे का जानना चाहिए और चौथा विभाग सर्वविरति साधु सम्बन्धी है। इससे स्पष्ट है कि देवपूजा आदि कार्यों में मात्र स्वरूप हिंसा ही होती है। इसी सूत्र में कर्म बंधन (आस्रव) के पाँच द्वारों का वर्णन है।[4]

पंच आसवदारा पन्नता, तं जहा– 1. मिच्छत्तं 2. अविरई 3. पमाओ 4. कसाय 5. जोगा।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। ये पाँच आस्रव द्वार हैं। जिनपूजा करते समय चित्त शान्त, अप्रमत्त, सम्यक्त्व सहित होता है। विधिपूर्वक क्रिया होने से मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय का उदय नहीं होता अत: अशुभ कर्म बंधन नहीं होता। शुभ योग होने से पुण्यबंध ही होता है। स्थानांगसूत्र में प्राप्त इन उल्लेखों से जिनपूजा हिंसाजन्य नहीं है, यह सुसिद्ध हो जाता है।

समवायांगसूत्र के समवसरण अधिकार में भगवान महावीर को केवलज्ञान होने के पश्चात उत्पन्न होने वाले अष्टप्रतिहार्यों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।[5] समवसरण में अरिहंत स्वयं रत्नजड़ित सिंहासन पर पूर्वाभिमुख विराजकर देशना देते हैं तथा शेष तीन दिशाओं में इन्द्रों के द्वारा उनके तीन प्रतिबिम्बों की स्थापना की जाती है। उन दिशाओं से आने वाले लोग प्रतिबिम्बों को साक्षात प्रभु मानकर वन्दना आदि करते हैं। परमात्मा इन अष्टप्रातिहार्यों का भोग करते हुए भी भोगी नहीं कहलाते, क्योंकि भोगीपन बाह्य पदार्थों से नहीं आन्तरिक मोह एवं आसक्ति से सम्बन्धित है।

भगवतीसूत्र में तुंगिया नगरी के श्रावकों की चर्चा करते हुए उनके द्वारा जिनपूजा किए जाने का उल्लेख करते हुए कहा गया है "ण्हाया कय बलिकम्मा" अर्थात स्नान करके देवपूजा की।[6] इसी सूत्र में जंघाचारण और विद्याचरण मुनियों द्वारा नन्दीश्वर द्वीप एवं मानुषोत्तर पर्वत की शाश्वत जिनप्रतिमाओं को तथा भरतक्षेत्र की अशाश्वत जिन प्रतिमाओं को वंदन करने का वर्णन मिलता है।[7]

इसी सूत्र में चमरेन्द्र के अधिकार में तीन शरण की चर्चा करते हुए अरिहंत परमात्मा के चैत्य एवं भावित आत्मा से युक्त अणगार साधुओं का वर्णन है।[8]

छठवाँ आगम ज्ञाताधर्मकथासूत्र में सम्यग्दृष्टि श्राविका द्रौपदी द्वारा शादी के पहले जिनप्रतिमा की सर्वोपचारी पूजा करने का वर्णन सोलहवें अध्याय में प्राप्त होता है।[9]

इस सूत्र में द्रौपदी को सम्यग्दृष्टि श्राविका कहा गया है क्योंकि वह प्रतिदिन परमात्म पूजा करती थी। यहाँ तक कि अपने विवाह के प्रसंग पर भी उसने जिनप्रतिमा की पूजा को प्रथम कर्त्तव्य समझा। अन्त:पुर में आए मिथ्यात्वी नारद ऋषि को वह वन्दन नमस्कार नहीं करती है तथा पद्मोत्तर राजा के द्वारा अपहरण किए जाने पर बेले के पारणे आयम्बिल करती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान नेमिनाथ के समय में भी जिनपूजा का विधान और स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही पूजा का अधिकार होता था।

सातवें अंग आगम उपासकदशासूत्र में आनंद आदि दस श्रावकों के द्वारा जिनप्रतिमा को वन्दन पूजन करने का उल्लेख करते हुए अन्य तीर्थों (चरकादि) के देव एवं उनके द्वारा गृहीत अरिहंत चैत्य को वंदन करना वर्जनीय बताया गया है।[10]

श्री अनुत्तरोपपातिकसूत्र एवं अन्तकृतदशासूत्र में द्वारिका नगरी के अधिकार में जिनप्रतिमा एवं जिनमंदिर का उल्लेख है।[11]

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र के तीसरे संवर द्वार में जिन प्रतिमा को कर्म निर्जरा का हेतु बताते हुए साधुओं को उसकी वैयावच्च करने का निर्देश दिया हैं।[12] विपाकसूत्र में सुबाहु आदि के द्वारा जिनप्रतिमा की पूजा करने का उल्लेख है।[13]

आगमों के साथ उपांग सूत्रों में भी जिनप्रतिमा पूजन के अनेक विवरण प्राप्त होते हैं।

प्रथम उपांग श्री औपपातिकसूत्र में चम्पानगर में स्थित अनेकशः सुन्दर जिनालयों का वर्णन किया गया है।[14] इसी प्रकार अन्य नगरों में भी मन्दिरों का बहुतायत में उल्लेख है। इससे सिद्ध होता है कि आगम काल में इन नगरों की गली-गली में जिनमन्दिर थे।

इसी सूत्र में अम्बड श्रावक एवं उनके 700 शिष्यों का वर्णन करते हुए अन्य तीर्थों द्वारा गृहीत जिन प्रतिमा को अवन्दनीय कहा गया है, परन्तु अरिहंत एवं अरिहंत प्रतिमाओं को वन्दनीय माना है।[15]

श्री राजप्रश्नीय सूत्र में जिनप्रतिमा एवं जिनपूजा सम्बन्धी विशद वर्णन प्राप्त होता है। सूर्याभ देवता द्वारा स्वनिकाय में रहे हुए शाश्वत जिनबिम्बों की पूजा का इसमें विस्तृत विवेचन है।[16]

इसी उपांग सूत्र में गुणवर्मा राजा के सत्रह पुत्रों द्वारा सत्रह-सत्रह प्रकार की पूजा करने एवं मोक्ष जाने का वर्णन है।[17] इसी के साथ इसमें प्रदेशी राजा एवं उनके सारथी द्वारा किए गए जिन प्रतिमा पूजन का भी उल्लेख है।[18]

श्री जीवाभिगम सूत्र में विजय देव एवं उसके सहयोगी देवों द्वारा सत्रहभेदी पूजा करने का वर्णन है।[19]

श्री जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में यमक आदि देवों के द्वारा 269 शाश्वत पर्वतों पर स्थित मन्दिरों में जिनपूजा करने का वर्णन उपलब्ध होता है।[20] श्री चन्द्रप्रज्ञप्ति एवं सूर्यप्रज्ञप्ति में चन्द्र एवं सूर्य विमान में जिनप्रतिमा का वर्णन है।[21]

श्री निरयावलिका सूत्र में 19 से 23 तक के नगरादि अधिकार में जिन प्रतिमा का उल्लेख है।[22]

श्री कल्पसूत्र में अनेक स्थानों पर जिन पूजा एवं जिन प्रतिमा का वर्णन मिलता है। सिद्धार्थ राजा के द्वारा की गई द्रव्य पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सिद्धार्थ राजा दस दिन तक महोत्सव के रूप में कुल मर्यादा का पालन करते हैं। हजार अथवा लाख द्रव्य लगे ऐसे अरिहंत भगवान की प्रतिमा की पूजा करते हैं, औरों से करवाते हैं तथा बधाई को स्वयं ग्रहण करते हैं एवं सेवकों द्वारा ग्रहण करवाते हैं।[23]

श्री उत्तराध्ययन सूत्र[24] के दसवें अध्ययन में गौतमस्वामी द्वारा स्वलब्धि से अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने का वर्णन है। इसी के अठारहवें अध्ययन में

उदायन राजा की रानी प्रभावती के ग्रह मंदिर का वर्णन है तथा उन्तीसवें अध्ययन में चैत्यवंदन के फल की चर्चा है। इसी में थुई (स्तुति) मंगल के अन्तर्गत स्थापना को वंदन करने का वर्णन है।

श्री आवश्यक सूत्र में भी जिन प्रतिमा पूजन का विवेचन करते हुए पुरिमताल नगर के वग्गुर श्रावक द्वारा मल्लिनाथ भगवान का मंदिर बनाने का वर्णन है।[25] इसी सूत्र में भरत चक्रवर्ती के द्वारा अष्टापद पर्वत पर सौ भाई के सौ स्तम्भ, चौबीस तीर्थंकरों के जिनमंदिर तथा सभी तीर्थंकरों की उनके वर्ण एवं शरीर प्रमाण के अनुसार प्रतिमाएँ स्थापित करने का वर्णन है।[26] सिंधु सौवीर के राजा उदयन की पट्टरानी प्रभावती द्वारा अन्त:पुर में चैत्यघर (जिनभवन) बनवाने एवं उसमें त्रिकाल पूजा करने का उल्लेख है। पूजा करते समय कई बार रानी नृत्य करती और राजा स्वयं वीणा वादन करते थे।[27] साधुजन कायोत्सर्ग करते वक्त सर्व लोक में रहे हुए श्री अरिहन्त प्रतिमा का कायोत्सर्ग बोधिबीज की प्राप्ति के लिए करे– ऐसा फरमाया है।[28]

राजा श्रेणिक के द्वारा प्रतिदिन 108 सोने के जवों से जिनप्रतिमा की पूजा करने संबंधी अनेक विवरण इस सूत्र में प्राप्त होते हैं।[29]

श्री बृहत्कल्प सूत्र में नागरिकों के अधिकार में जिनप्रतिमा का वर्णन है।[30] श्री व्यवहार सूत्र के प्रथम उद्देशक में साधु द्वारा जिनप्रतिमा के समक्ष आलोचना करने का उल्लेख है।[31] इसी में सिद्ध परमात्मा की पूजा का फल बताते हुए कहा है कि सिद्ध भगवान की वैयावच्च करने से महानिर्जरा होती है। और मोक्ष की प्राप्ति होती है।[32] निशीथ सूत्र में भी जिनप्रतिमा के समक्ष प्रायश्चित्त लेने का विधान है।[33] श्री महानिशीथ सूत्र के अनुसार पृथ्वी को जिनमन्दिरों से सुसज्जित करके श्रावक उत्कृष्ट अच्युत बारहवें देवलोक तक जा सकता है।[34]

श्री जीतकल्पसूत्र में कहा गया है कि यदि साधु-साध्वी जिनमन्दिर के दर्शन नहीं करने जाए तो प्रायश्चित्त आता है।[35]

श्री नन्दीसूत्र में विशाला नगरी स्थित मुनिसुव्रत तीर्थंकर के स्तूप को महाप्रभावी माना है।[36]

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में चार निक्षेपों की चर्चा करते हुए जिन प्रतिमा को स्थापना निक्षेप के रूप में स्वीकार किया है।[37]

श्री महाकल्पसूत्र[38] में भगवान महावीर एवं गौतम के संवाद में बताया है कि साधु या पौषधधारी श्रावक को जिनमंदिर प्रतिदिन जाना चाहिए। यदि न

जाए तो छट्ठ का प्रायश्चित्त आता है। इसी सूत्र में तुंगी, सावत्थी आदि नगरों के श्रावकों की चर्चा करते हुए शंख, शतक, सिलप्पवाल आदि प्रमुख श्रावकों द्वारा पर्व तिथि के दिन पौषध, साधु-साध्वी को सुपात्र दान एवं जिनप्रतिमा की त्रिकाल पूजा करने का उल्लेख है। यह कृत्य करने वाला श्रावक ही सम्यग्दृष्टि होता है।[39]

आगमिक साहित्य में ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनसे जिनपूजा एवं जिनप्रतिमा की शाश्वतता स्वयं सिद्ध हो जाती है। इसी के साथ वर्तमान में जिनपूजा एवं जिनमूर्ति से सम्बन्धित जो शंकाएँ एवं तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं उनका भी समाधान हो जाता है। जहाँ तक आगमिक व्याख्या साहित्य का प्रश्न है उनमें अनेक स्थानों पर इस विषयक चर्चा दृष्टिगत होती है।

आचारांग निर्युक्ति में शाश्वत तीर्थ-अशाश्वत तीर्थ, आचार्य आदि के सम्मुख जाने, उनका सत्कार आदि करने को सम्यक्त्व निर्मलीकरण का हेतु बताया गया है।[40]

श्री सूत्रकृतांग सूत्र की निर्युक्ति में आर्द्रकुमार को जिनप्रतिमा देखकर जातिस्मरण ज्ञान हुआ इसकी चर्चा है। साथ ही अभयकुमार द्वारा भेजी गई जिनप्रतिमा से प्रतिबोधित होकर जब तक दीक्षा ग्रहण नहीं की तब तक हर दिन जिनपूजा करने का भी उल्लेख है।[41]

श्रीकल्पसूत्र की स्थिविरावली टीका के अनुसार दशवैकालिक सूत्र के रचियता शय्यंभवसूरि भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा के दर्शन से प्रतिबोधित हुए थे।[42]

द्वीपसागर प्रकीर्णक[43] एवं हरिभद्रसूरिकृत आवश्यक टीका के अनुसार जिनप्रतिमा के आकार की मछलियाँ समुद्र में होती हैं। जिन्हें देखकर अनेक भव्य मछलियों को जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होता है और बारह व्रत धारण कर वे सम्यक्त्व सहित आठवें देवलोक में जाती हैं। इसी प्रकार तिर्यंच पशु-पक्षियों को भी जिनप्रतिमा के आकार मात्र के दर्शन से अनुपम लाभ की प्राप्ति होती है फिर तो फिर मनुष्य को लाभ होने के विषय में कैसे शंका हो सकती है?

गौतम स्वामी की मोक्ष प्राप्ति सम्बन्धी शंका का निवारण करते हुए आवश्यक निर्युक्ति में कहा गया है कि जो व्यक्ति आत्मलब्धि से श्री अष्टापद तीर्थ की यात्रा करते हुए वहाँ भावपूर्वक पूजा स्तवना करता है वह उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है।[44]

श्री भद्रबाहुस्वामी आवश्यकनिर्युक्ति में फरमाते हैं कि देशविरति श्रावक को पुष्पादि के द्वारा द्रव्यपूजा अवश्य करनी चाहिए। यह द्रव्यपूजा कुँए के दृष्टांत के समान संसार को पतला करने वाली है।[45]

आचार्य हरिभद्रसूरिकृत आवश्यकवृत्ति के अनुसार जिनपूजा से पुण्य का अनुबन्ध और बहुनिर्जरा होती है।[46]

श्री भद्रबाहुस्वामी आवश्यकनिर्युक्ति में कहते हैं कि तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों का स्पर्श करने से निश्चित रूप से सम्यक्त्व दृढ़ होता है।[47]

श्री आवश्यकसूत्र की बृहद्वृत्ति के द्वितीय खण्ड में सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार किसी नए नगर में पर्याप्त जल के अभाव में बहुत से लोग प्यास से व्याकुल होकर कुँआ खोदते हैं उस समय उन्हें अधिक प्यास लगती है, कीचड़ और मिट्टी से शरीर, कपड़े आदि भी मलिन हो जाते हैं, किन्तु कुँआ खुद जाने के बाद प्यास कम हो जाती है और कीचड़ भी दूर हो जाता है। इससे भविष्य काल के लिए खोदने वाला एवं अन्य लोग सुख की अनुभूति करते हैं। उसी प्रकार द्रव्यपूजा में स्वरूप हिंसा दिखाई देती है, परन्तु उस पूजा से परिणामों की जो शुद्धि होती है उससे अन्य संताप भी क्षीण हो जाते हैं। इस हेतु देशविरति श्रावक के लिए जिनपूजा शुभानुबंधी एवं निर्जरा फल को देने वाली है।[48]

बृहत्कल्पभाष्यकार लिखते हैं कि पूर्वकाल में स्नान, अनुयान आदि महोत्सवों में साधुवर्ग सम्मिलित होता था, उसमें साधु के लिए आधाकर्मिक दोष टालने का निर्देश था। इससे यह स्पष्ट होता है कि अभिषेक, रथयात्रा आदि में सम्मिलित होना साधु के लिए दोष पूर्ण नहीं है।[49]

आचार्य अभयदेवसूरि समवायांग टीका में स्नान उत्सव, रथयात्रा, पट्टयात्रा आदि के प्रसंगों में जहाँ बहुत साधु इकट्ठे मिलते है उसको समवसरण कहा है।[50]

उक्त प्राचीन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि जैन पूर्वधरों के काल में भी रथयात्रा, जिनजन्माभिषेक, पट्टयात्रा आदि धार्मिक कृत्य प्रचलित थे।

इनके अतिरिक्त अनेक जैन सूत्रों में यानरथ, अनुयानरथ, अष्टाह्निकामहिमा, समवसरण, काल समवसरण, प्रथम समवसरण, द्वितीय समवसरण आदि शब्द

दृष्टिगोचर होते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि इन प्रसंगों में जिनमूर्तियों के स्नान महोत्सव भी हुआ करते थे। इन्हीं स्नान महोत्सवों से कालान्तर में सर्वोपचारी पूजा का जन्म हुआ होगा जो कि पर्व आदि विशेष प्रसंगों में ही हुआ करती थी। सर्वोपचारी पूजा के प्रमाण राजप्रश्नीय, ज्ञाताधर्मकथा आदि आगम ग्रंथों में भी उपलब्ध होते हैं। आवश्यक भाष्य में वर्णित जिनपूजा अधिकार के अन्तर्गत भाष्यकार ने संविग्न द्वारा प्रयोज्य वस्तुओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि कपूर, चन्दन, कस्तूरी, केसर आदि द्रव्यों से जिनबिम्ब का परम भक्ति पूर्वक विलेपन करें और विभवानुसार यदि पूजा करें तो सुगंधित पुष्पों से अथवा सुवर्ण, मौक्तिक, रत्न आदि विविध प्रकार की मालाओं से सिद्धार्थक, दही, अक्षत, खाजे, उत्तम लड्डू आदि द्रव्यों से तथा आम आदि सुपक्व फलों सहित संविग्न भावनायुक्त होकर नैवेद्य चढ़ावें। पूजा आदि प्रसंगों में विविध उत्तम द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए यह इससे प्रमाणित हो जाता है।[51]

इसी के उत्तरभाग में कहा है कि द्रव्यस्तव पुष्पादि से होता है। आदि शब्द से वस्त्र, गंध, अलंकार आदि का ग्रहण करना चाहिए।[52] आवश्यक चूर्णि में भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित 'सिंहनिषद्या चैत्य' का विस्तृत वर्णन है।[53]

श्री जीतकल्पभाष्य[54] में तीर्थंकर प्रतिमा की पुष्प आदि पूजा करने के सम्बन्ध में आक्षेप करने का प्रायश्चित्त बतलाते हुए भाष्यकार कहते हैं– "तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर और महर्धिक की अभिनिवेश (दुराग्रह) के वश होकर बार-बार आशातना करने वाला आचार्य पारांचित प्रायश्चित्त का भागी होता है। इसी प्रकार अन्य आशातनाएँ करता हुआ और त्रिलोक-पूजनीय तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का प्रतिरूप विनय न करते हुए विपरीत आचरण करें जैसे– वन्दन नहीं करना, स्तुति आदि नहीं करना। यह तीर्थंकर की आशातना है। इस प्रकार तीर्थंकरों की आशातना करने वाला भी पारांचित प्रायश्चित्त का भागी होता है।

आगम सूत्रों एवं व्याख्या साहित्य में आए इन उल्लेखों से यह सुसिद्ध है कि जिन प्रतिमा पूजन का विधान वर्तमान प्रचलित कोई नवीन उपक्रम नहीं है यह तो एक प्राचीन अनुष्ठान है। शाश्वत तीर्थों एवं प्राचीन प्रतिमाओं के प्राप्त विवरणों के आधार पर उनकी त्रैकालिक शाश्वतता एवं प्रासंगिकता स्वत: ही स्पष्ट हो जाती है।

मध्यकालीन साहित्य और जिनपूजा

मध्यकाल के दौरान जैन धर्म में विशेष परिवर्तन एवं नवीन क्रिया-विधियों का आविर्भाव परिलक्षित होता है। आचार पक्ष की अपेक्षा से देखा जाए तो चैत्यवास का प्रभावी काल होने से चारित्र पक्ष में तो अवनति ही परिलक्षित होती है किन्तु वाद-विवाद, खंडन-मंडन आदि की प्रचुरता होने से श्रुत साहित्य में विशिष्ट विकास परिलक्षित होता है। निवृत्तिमार्गी जैन धर्म में मध्यकाल से ही विधि-विधान सम्बन्धी क्रियाकांड आदि का विशेष प्रचलन प्रारंभ हुआ। इसी के साथ पूजा सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ भी इस काल में हुई। आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य जिनप्रभसूरि आदि ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया जिससे हमें जिनपूजा सम्बन्धी निम्न विवरण प्राप्त होते हैं।

आचार्य हरिभद्रसूरिकृत अष्टक प्रकरण में अशुद्ध और शुद्ध के भेद से दो प्रकार की अष्ट पुष्पी पूजा का वर्णन है। जो क्रमश: स्वर्ग और मोक्ष साधिनी है। अष्ट अन्तराय से मुक्त एवं सर्व दोषों से रहित जाई आदि पुष्पों को आठ गुणों की समृद्धि के लिए परमात्मा के चरणों में चढ़ाना अशुद्ध अष्ट पुष्पी पूजा है। यह पूजा पुण्य बंध में निमित होने से स्वर्ग साधिनी कहलाती है।[55] पूजा विधि विंशिका में भी पूजा के विविध प्रकारों की चर्चा की गई है। इसमें मुख्य रूप से द्रव्यपूजा और भावपूजा ये दो भेद करते हुए दोनों को एक दूसरे से युक्त माना है। मन, वचन और काया के आधार पर द्रव्य पूजा के तीन भेद किए गए हैं। ग्रन्थकार ने आदर सहित परमात्मा की द्रव्यपूजा करने का निर्देश दिया है क्योंकि यही संसार समुद्र में परम नौका रूप है।[56]

ललितविस्तरा टीका में चार प्रकार की पूजा एवं उसके कर्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पुष्प, आमिष (नैवेद्य), स्तोत्र, आत्म समर्पण इन चार प्रकार की पूजाओं में उत्तरोत्तर एक दूसरी का प्राधान्य है। 'आमिष' शब्द का तात्पर्य यहाँ प्रणीत भोजन है अर्थात सुन्दर और सरस पक्वान्न यथाशक्ति चढ़ाने चाहिए। देशविरत श्रावक को चारों प्रकार की पूजायें करनी चाहिए और सराग संयमी सर्वविरत साधु के लिए स्तोत्र और प्रतिपत्ति ये दो पूजा करना अचित्त है। इससे द्रव्य एवं भाव पूजा दोनों की महत्ता सिद्ध हो जाती है।[57]

श्री षोडशक प्रकरण में प्रतिष्ठा होने के बाद आठ दिन पर्यन्त उस प्रतिमा की निरन्तर पूजा करने एवं शक्ति अनुसार सर्व जीवों को दान देने का उल्लेख किया गया।[58]

इस प्रकरण के अन्तर्गत विघ्नोपशमनी, अभ्युदय-प्रसाधनी और निर्वाण साधनी इन तीन प्रकार की पूजाओं का वर्णन करते हुए उन्हें नाम के अनुसार फल देने वाली बताया है। पूजा करने वाला श्रावक पहली विघ्नोपशमनी पूजा में सुन्दर पुष्पादि देकर सेवा करता है और दूसरी अभ्युदयप्रसाधनी पूजा में पुष्पादि स्वयं तो लाता ही है किन्तु दूसरे से भी अच्छे-अच्छे पदार्थ मंगवाता है। अंतिम निर्वाण साधनी पूजा करते हुए सम्पूर्ण गुणों में उत्तम ब्रह्मचर्य पालन में तत्पर होकर सकल सृष्टि के सुन्दर पदार्थों का मन से सम्पादन करता है।[59]

पंचाशक प्रकरण में पूजा सम्बन्धी विविध चर्चाओं का उल्लेख करते हुए पूजा निमित्त स्नान आदि हिंसक प्रवृत्ति भी कैसे लाभकारी हो सकती है तथा पूजा निमित्त कैसे संसाधनों का प्रयोग करना आदि के विषय में कहते हैं कि विधिपूर्वक की जाने वाली जिनपूजा उभयलोक का हित करने वाली है अत: पूजा हेतु पवित्र होकर, विशुद्ध पुष्पादि से विधिपूर्वक सारगर्भित स्तुति स्तोत्रों द्वारा जिनपूजा करनी चाहिए। स्नान आदि के द्वारा द्रव्यशुद्धि तथा अवस्थोचित्त विशुद्धवृत्ति से भावशुद्धि करनी चाहिए। जयणा पूर्वक किए गए स्नानादि आरंभमय कार्य भी शुभभाव का हेतु होने से लाभसंचार में सहायक बनते हैं। पूजा कार्य को हिंसक मानकर उसकी निन्दा करने वाले को भवान्तर में बोधि दुर्लभ हो जाती है।[60]

श्रेष्ठ पूजा संसाधनों के प्रयोग से भावों में भी श्रेष्ठता आती है तथा उत्तम उपयोग पूजा विधि हेतु ही हो सकता है अत: पूजक को अन्य चेष्टाओं से मुक्त होकर अपने वैभव के अनुरूप श्रेष्ठ जिनपूजा करना चाहिए। पूजा में आशातना से बचने हेतु वस्त्र से नासिका को बांधकर, मन में समाधि रहे उस प्रकार के विधान से पूजा करनी चाहिए तथा अपने शरीर में खुजली आदि उस समय नहीं करनी चाहिए।

पूजा में उपयोगी साधनों की चर्चा करते हुए इसी में आचार्य हरिभद्रसूरि ने सुगंधी धूप, सर्वौषधि, सुगन्धित जल आदि विचित्र पदार्थों, सुगंधी विलेपनों, श्रेष्ठ पुष्पमालाओं, नैवेद्य, दीपक, सिद्धार्थक, दधि, अक्षत, गोरोचन आदि में से जो प्राप्त हो उनसे अथवा सुवर्ण आभूषण, मौक्तिक माला, रत्न माला आदि से जिनपूजा करने का उल्लेख किया है।[61] योगबिन्दु एवं समरादित्य कथा में भी

पूजा सम्बन्धी द्रव्यों का वर्णन प्राप्त होता है। शोभन पुष्पों, नैवेद्यों, वस्त्रों और स्तोत्रों से शौच एवं श्रद्धा पूर्वक देव-पूजन करना चाहिए।[62]

हरिभद्रीय समरादित्य कथा में भी पुष्पवृष्टि, पुष्प पूजा, धूप पूजा, दीप पूजा का निर्देश है। इनमें जल पूजा का विधान नहीं है। वहीं पंचवस्तुक में गन्ध, धूप, जल, सर्वौषधि, कुंकुम, विलेपन, सुगंधी पुष्पमाला, विविध नैवेद्य, आरती आदि से द्रव्यपूजा एवं भावपूजा में विधिपूर्वक चैत्यवंदन गायन, वादन, नर्तन, दान आदि करने का भी उल्लेख है।[63] धर्मबिन्दु प्रकरण में श्रावक को जिनपूजा पूर्वक भोजन करने का उल्लेख है। भोजन का समय होने पर श्रावक जिनप्रतिमाओं की पुष्प, धूप आदि से तथा साधु एवं साधर्मिक को अन्न-पान आदि प्रदान करके उनकी पूजा भक्ति करें।[64]

इसमें त्रिकाल पूजा का जो विधान है उसके अन्तर्गत मध्याह्न काल में अष्ट द्रव्य से पूजा करने की विधि भी प्राचीन परिलक्षित होती है। आचार्य रविषेण ने पद्मचरित में सुगन्धी जल और स्थलज पुष्पों से पूजा करने का फल, पुष्पक देव विमान की प्राप्ति बताया है। पुष्पपूजा के अतिरिक्त सर्वोपचारी पूजा का भी निरूपण इस ग्रंथ में उन्होंने विस्तार पूर्वक किया है।[65] आचार्य जीवदेवसूरि ने इन्द्रकृत जिनजन्माभिषेक के आधार पर लिखी स्नात्र विधि में सर्वोपचारी पूजा का रूप निर्दिष्ट किया है। यह स्नात्र विधि हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। इसी के आधार पर वर्तमान प्रचलित स्नात्र विधियाँ लिखी गई हैं।[66]

आचार्य श्री जिनचंद्रसूरि ने संवेग रंगशाला में गृहमंदिर एवं संघ मंदिर में शक्ति अनुसार श्रेष्ठ साधकों से पंच अभिगम पूर्वक द्रव्य भाव युक्त त्रिकाल पूजा का वर्णन किया है। प्रात:काल में श्रावक सर्वप्रथम गृह मन्दिर में सामर्थ्य अनुरूप पूजा पूर्वक प्राभातिक चैत्यवंदन करें। तत्पश्चात आवश्यक गृह कार्य ना हो तो देह एवं वस्त्र शुद्धि पूर्वक परिजनों के संग श्रेष्ठ पूजा सामग्री लेकर संघमंदिर में पाँच अभिगम पूर्वक उदार भाव से पूजा करें। भोजन के समय भी घर आकर पुष्प, नैवेद्य, वस्त्र एवं स्तोत्र पूर्वक चतुर्विध पूजा करें। संध्या के समय में पुन: परमात्मा की पूजा करके सारगर्भित स्तोत्र-स्तुति पूर्वक गृह मन्दिर में चैत्यवंदन करें।[67]

पूजा प्रकरण जो कि उमास्वाति जी की रचना के नाम से प्रसिद्ध है पर इसकी रचना शैली के आधार पर यह तेरहवीं शती की रचना होनी चाहिए।

इसमें 25 संस्कृत पद्यों के रूप में इक्कीस प्रकारी पूजा का वर्णन किया गया है।[68] इसका उल्लेख विंशति स्थानक विचार एवं श्राद्धविधि कौमुदी में प्राप्त होता है। इसमें इक्कीस प्रकार की पूजाओं का निर्देश करते हुए सूत्रकार का कहना है कि यह पूजा देव-दानवों के द्वारा सदाकाल की जाती है। कलिकाल के प्रभाव से कई मनुष्य इसका खण्डन करते हैं अत: भोक्ता की भावना अनुसार इसमें पदार्थों का उपयोग करना चाहिए अत: श्रावक स्व सामर्थ्य एवं श्रद्धानुसार इसमें वर्णित द्रव्यों का प्रयोग करते थे। वे द्रव्य इस प्रकार हैं–

1. स्नान 2. विलेपन 3. आभरण 4. पुष्प 5. वास 6. धूप 7. दीप 8. फल 9. अक्षत 10. पान 11. सुपारी 12. नैवेद्य 13. जल 14. वस्त्र 15. चामर 16. छत्र 17. वादिंत्र 18. गीत 19. नाटक 20. स्तुति 21. कोश वृद्धि।

यहाँ कोश वृद्धि नामक पूजा देवद्रव्य के विधान का भी सूचन करती है।

श्री वर्धमानसूरिकृत धर्मरत्नकरंडक में भी उत्तम पुष्प, नैवेद्य आदि से द्रव्य एवं स्तोत्र पूजा करने का उल्लेख है। उस समय के कई आचार्य पुष्प गंध आदि से अष्टप्रकारी पूजा का भी समर्थन करते हैं। पुटपाक आदि गंधों से पूजा करने वाला जीव रत्नसुन्दर की भाँति शीघ्रमेव सिद्धि को प्राप्त करता है। इसमें विशेष रूप से सुगंधित जल द्वारा अभिषेक करने एवं उत्तम जल से भरे कलश को भगवान के आगे रखने का वर्णन है।[69]

चैत्यवंदन महाभाष्य में शान्तिसूरिजी ने पंचोपचारी, अष्टोपचारी एवं सर्वोपचारी पूजा का आख्यान किया है। पुष्प, अक्षत, गन्ध, धूप, और दीपक से पंचोपचारी तथा इसी के साथ फल, नैवेद्य और जल को सम्मिलित करने पर अष्टोपचारी पूजा होती है। ऋद्धि विशेष के योग से पर्वादि में अथवा ऋद्धिमान श्रावक द्वारा नित्य भी सर्वोपचारी पूजा की जाती है। इसमें स्नान, चन्दन आदि से विलेपन तथा नाट्य गीत आदि विविध प्रकार से भक्ति की जाती है।[70]

दोघट्टी टीका में भी पुष्प, नैवेद्य और स्तुति से तीन प्रकार की अथवा फल, जल, धूप, अक्षत, वास, कुसुम, नैवेद्य और दीपक इन आठ प्रकार की पूजा का उल्लेख है।[71]

कथारत्नकोष में देवभद्रसूरिजी ने पुष्प, धूप, गन्ध, अक्षत, दीपक, बलि फल और जलपात्र इन आठ पदार्थों द्वारा जिनपूजा करने का निर्देश किया है। यदि सामर्थ्य न हो तो इनमें से किसी एक प्रकार की पूजा भी परम अभ्युदय का

हेतु है।[72]

प्रकरणसम्मुच्चयांतर्गत एक प्रकरण में श्रावक के चातुर्मासिक नियमों का वर्णन करते हुए लिखा है कि महीने में चार बार अष्टोपचारी पूजा, चार महीनों में एक वस्त्र पूजा, गृह मंदिर अथवा गाँव मंदिर में एक बार प्रक्षाल, अष्टमी-चतुर्दशी के दिन मन्दिर की प्रमार्जना करना और प्रदक्षिणा देना, जिनभवन सम्बन्धी दश आशातनाओं को टालना, गाँव में रहते प्रतिदिन शुद्ध वस्त्र पहनना, ज्ञान पंचमी के दिन विशेष पूजा करना और एक ज्ञानपूजा करना चाहिए।[73]

इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि उस समय में स्नान विलेपन आदि विशेष दिनों में ही होता था।

आचार्य श्री नेमिचन्द्रसूरिकृत प्रवचनसारोद्धार में निसीहि त्रिक पूर्वक पुष्प, अक्षत एवं स्तुति द्वारा त्रिविध पूजा करने का उल्लेख है।[74] इसी की टीका में आचार्य श्री सिद्धसेनसूरि कहते हैं कि उपर्युक्त गाथा में पुष्पादि उपलक्षणभूत पदार्थों का ही ग्रहण किया है इसलिए अमूल्य रत्न, सुवर्ण, मोती आदि के आभरणों से भगवान को अलंकृत करना, विचित्र पवित्र वस्त्रों से परिधापन करना, परमात्मा के आगे सिद्धार्थक (सर्षप) शाली, तंदुल आदि से अष्ट मंगल का आलेखन करना, श्रेष्ठ नैवेद्य, मंगल दीपक, दधि, घृत, जल प्रभृति पदार्थों को चढ़ाना, भगवान के ललाट में गोरोचन, कस्तुरी आदि का तिलक करना और अन्त में आरती उतारना यह सब समझ लेना चाहिए।[75]

योगशास्त्र में जिनपूजा सम्बन्धी श्रावक कर्तव्यों का वर्णन करते हुए हेमचन्द्राचार्य लिखते हैं कि गृहस्थ सर्वप्रथम पवित्र होकर गृह मन्दिर में पुष्प, नैवेद्य और स्तोत्र द्वारा देवपूजा करके यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे। फिर संघमन्दिर में जायें। वहाँ विधि पूर्वक प्रवेश कर परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा करें और पुष्पादि पदार्थों से पूजा करके उत्तम स्तवनों से गुणगान करें।[76] आचार्य सोमप्रभसूरिजी भी अष्टप्रकारी पूजा का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि श्रेष्ठ पुष्प, गंध, अक्षत, फल, जल, नैवेद्य, धूप और दीपक इन आठ प्रकारों से की जाने वाली जिनपूजा अष्टविध कर्मों का नाश करने वाली है। इनमें से एक प्रकार की भी पूजा करके नन्दन प्रमुख अनेक पुरुष कल्याण की परम्परा को प्राप्त हुए हैं।[77]

कुमारपाल प्रबोध में देवपाल के दृष्टांत के द्वारा जिनमूर्ति एवं जिनपूजा के फल का वर्णन किया गया है। देवपाल गोपालक को गाय चराते-चराते जमीन में से जिन प्रतिमा मिलती है। वह उस मूर्ति को छोटा चबूतरा बनाकर वहाँ विराजमान करता है। कालान्तर में उस प्रतिमा की नित्यपूजा-दर्शन आदि नियम से करने लगा। हमेशा नदी के पास उगे हुए कल्हार, सिन्दुवार आदि के पुष्प चढ़ाना एवं पर्व दिवसों में नदी के जल से मूर्ति को स्नान भी करवाता है। इससे प्रसन्न होकर मूर्ति के अधिनायक देव ने उसे समीपवर्ती नगर का राजा बना दिया। गोपालक राजा होने के बाद भी लोग उसकी आज्ञा को नहीं मानते थे अत: उसने कपूर, अगुरु धूप, सुगन्धी पुष्प आदि से पूजा कर आज्ञैश्वर्य भी प्राप्त किया।[78]

इसी ग्रंथ में कुमारपाल महाराजा द्वारा निर्मित 'कुमार विहारे' की प्रतिष्ठा के समय अन्य श्रेष्ठी जनों के द्वारा पट्टांशुक, सुवर्णाभूषण से जिनपूजा एवं कनक कमलों द्वारा गुरु महाराज के चरण युगल की पूजा करने का उल्लेख है।[79]

आचार्य देवेन्द्रसूरि ने श्राद्धदिनकृत्य में पूर्व आचार्यों का समर्थन करते हुए श्रावक को विधि पूर्वक स्नान करके श्वेत वस्त्र एवं मुखकोश धारण कर गृह मंदिर में प्रतिमा प्रमार्जन करने तथा उत्तम वर्ण एवं सुगंध से युक्त श्रेष्ठ पुष्पों द्वारा अनेक प्रकार की रचनाओं से युक्त जिनपूजा करने को कहा है।[80] देववन्दन भाष्य में अंग, अग्र एवं भावपूजा के रूप में पुष्प, नैवेद्य एवं स्तुति इन तीन प्रकारों से पूजा करने का निर्देश है। इसके अतिरिक्त पंचोपचारी, अष्टोपचारी और सर्वोपचारी पूजा का भी उल्लेख है।[81]

अनंतनाथ चरित्र में भी अष्ट द्रव्यों से जिनपूजा करने का उल्लेख है।[82] पूजा प्रकाश में भी श्राद्धदिनकृत्य का ही समर्थन करते हुए विशेष रूप से सुगन्धित जल द्वारा जिनस्नान, गोशीर्ष चन्दन आदि से विलेपन पूजा, पुष्प, सुगन्धी गन्ध, धूप, दीपक, अक्षत विविध प्रकार के फल एवं जल पात्रों से पूजा करने का वर्णन है।[83] अष्टप्रकारी पूजा के बाद निर्दिष्ट मुद्राविधिपूर्वक वीतराग परमात्मा के सम्मुख चैत्यवंदन करना चाहिए।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने देवपूजाविधि में जल द्वारा प्रक्षाल करने के बाद सरस सुगन्धी चन्दन से जिनेश्वर परमात्मा के दोनों घुटने, दोनों कंधे एवं ललाट इन पाँच अंगों अथवा हृदय के साथ छ: अंगों की पूजा करने का प्ररूपण किया है।[84]

विचारसार प्रकरण में भी श्रेष्ठ गंध, सुगंधित धूप, अखण्ड अक्षत, पुष्प दीप, नैवेद्य, फल और जल से जिनपूजा आठ प्रकार की कही गई है।[85]

मध्ययुग के साहित्य की गवेषणा करें तो उसमें जिनपूजा सम्बन्धी विवरण उपलब्ध ग्रन्थों में लगभग समान है। नित्य अष्टप्रकारी पूजा करने का प्रचलन मध्यकाल के अन्त में आया होगा ऐसा प्रतीत होता है। अंगपूजा में पुष्पपूजा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। वहीं जल पूजा का क्रम अधिकतर अष्टोपचारी पूजा सम्बन्धी उल्लेखों में अन्त में प्राप्त होता है। गृह मन्दिर भी उस समय में सर्वत्र बनाए जाते होंगे, क्योंकि अधिकतर आचार्यों ने प्रथम गृह मन्दिर में जिनपूजा करने का उल्लेख किया है। अंग, अग्र एवं भाव पूजा रूप यह त्रिविध पूजा, पुष्प, नैवेद्य एवं स्तोत्र पूजा के रूप में नित्य की जाती थी। त्रिकालपूजा का प्रवर्त्तन होने के पश्चात प्रात:काल गंध आदि द्वारा, मध्याह्न काल में भोजन से पूर्व पुष्पादि द्वारा एवं संध्या में दीपक आदि द्वारा देवपूजा करने का क्रम परिलक्षित होता है।

अर्वाचीन साहित्य में जिनपूजा का बदलता स्वरूप

अर्वाचीन काल की रचनाओं का अध्ययन करें तो जिनपूजा सम्बन्धी विधि-विधानों में अब तक अनेकश: उतार चढ़ाव आए हैं। अर्वाचीन काल में पूजा उपकरण, विधि-विधान आदि बहुत से परिवर्त्तन परिलक्षित होते हैं।

तत्कालीन श्राद्धविधि प्रकरण में पंचोपचारी आदि पूजाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रावक को पंचोपचारी, अष्टोपचारी एवं ऋद्धि विशेष से युक्त सर्वोपचारी पूजा करनी चाहिए। पंचोपचारी पूजा पुष्प, अक्षत, गंध, धूप और दीपक इन पाँच पदार्थों से होती है। पुष्प, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल और जल इन आठ प्रकार के द्रव्यों से युक्त अष्टोपचारी पूजा आठ कर्मों का नाश करती है। सर्वोपचारी पूजा स्नान, विलेपन, वस्त्र, आभूषण, फल, नैवेद्य, दीपक, नाट्य, गीत, आरती आदि से होती है।[86]

ग्रन्थकार ने सत्रह भेदी पूजा विधि में समाहित सत्रह प्रकार की पूजा का वर्णन भी किया है।

उपाध्याय जिनमण्डन (वि. सं. 1492) द्वारा रचित कुमारपाल प्रबन्ध में जिनपूजा और गुरुपूजा का उल्लेख है। उन्होंने संध्या के समय गृहमंदिर में पुष्पपूजा करने का वर्णन किया है।[87]

कुमारपाल महाराजा द्वारा प्रतिदिन सुवर्ण कमलों से गुरु पूजा करने संबंधी नियम का उल्लेख है।[88] शत्रुंजय महात्म्य में जिनपूजा के महत्त्व को दर्शाते हुए भरतचक्रवर्ती द्वारा की गई पूजा का वर्णन किया गया है।[89]

संबोध प्रकरण में त्रिविध पूजा विधियों का प्ररूपण करते हुए विघ्नोपशमिका, अभ्युदयप्रसाधिनी और निर्वृत्तिकारिणी इन तीन पूजाओं का उल्लेख है।[90]

चारित्रसुन्दरगणिकृत आचारोपदेश के अनुसार भृंगार से लाए हुए जल द्वारा जिन प्रतिमा को स्नान करावें तथा अच्छे वस्त्र से पोंछने के बाद आठ प्रकार की पूजा करें।[91] इसमें चंदनपूजा, पुष्पपूजा, धूपपूजा, अक्षतपूजा, फलपूजा नैवेद्य पूजा, दीपपूजा और जलपूजा रूप आठ पूजाओं का विधान है। प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णित क्रम से यह ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ के रचना काल तक यद्यपि जिनप्रतिमा स्नान का विधान सर्वत्र प्रचलित हो चुका था परन्तु अष्टप्रकारी पूजा में उसे स्थान नहीं मिला था। सर्वप्रथम विलेपन पूजा के रूप में चंदनपूजा की जाती थी। जल पात्र को केवल सामने भरकर रखा जाता था। नवांगी पूजा का विवरण भी आचारोपदेश ग्रंथ में प्राप्त होता है। वर्तमान प्रचलित पूजा विधि में इसी का अनुकरण प्रतीत होती है। आचार्य उमास्वाति वर्णित इक्कीस प्रकार की पूजा का वर्णन भी इस ग्रंथ में प्राप्त होता है।

उपाध्याय मानविजयजी ने धर्मसंग्रह में श्राद्धविधि टीका के अनुसार ही सत्रहभेदी पूजा का वर्णन किया है। इसी के साथ नव तिलक से निरन्तर जिनपूजा करने, प्रभात में सर्वप्रथम वासपूजा, मध्याह्नकाल में पुष्पपूजा एवं सन्ध्या में धूप-दीप एवं नैवेद्य से पूजा करने तथा धूप को बायीं तरफ और नैवेद्य को सन्मुख रखने का वर्णन है। नवतिलक पूजा किस द्रव्य से एवं किस समय की जाए इसका कोई उल्लेख ग्रंथकार ने नहीं किया है।[92]

आचार्य जिनलाभसूरि ने भी आत्मप्रबोध में सत्रहभेदी पूजा का वर्णन किया है। श्राद्धविधि में वर्णित सत्रहभेदी पूजा और प्रस्तुत पूजा में परस्पर किंचिद अन्तर है। जैसे श्राद्धविधि में वर्णित दीपक, नैवेद्य, श्रेष्ठ फल आदि का वर्णन इनमें नहीं है तथा अष्टमंगल एवं ध्वज पूजा का वर्णन श्राद्धविधि की सत्रह प्रकारी पूजा में नहीं है।[93]

उपाध्याय श्री सकलचंद्रजी ने पूजा प्रकरण के आधार पर पद्य भाषा में इक्कीस प्रकार की पूजाओं का निरूपण किया है। इसमें वर्णित पूजा प्रकारों में पूजा प्रकरण से भिन्नता है। वे पूजाएँ निम्न हैं–

1. स्नान 2. विलेपन 3. चंदन 4. पुष्प 5. वास 6. चूणा 7. चूर्ण 8. पुष्पमाला 9. अष्टमंगलालेखन 10. दीप 11. धूप 12. अक्षत 13. ध्वज 14. चामर 15. छत्र 16. मुकुट 17. दर्पण 18. नैवेद्य 19. फल 20. नृत्य 21. बाजित्र।[94]

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि श्वेताम्बर परम्परा में आगम काल से लेकर अब तक हर समय में जिनपूजा का प्रवर्त्तन था। यद्यपि उनमें काल सापेक्ष अनेकशः परिवर्तन भी होते रहे। परन्तु उसके अस्तित्व पर उनका कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। अतः यह कह सकते हैं कि जिनपूजा शाश्वत एवं शास्त्र सम्मत विधान है।

दिगम्बर साहित्य में जिनपूजा का महत्त्व

यदि हम दिगम्बर ग्रन्थों का आलोडन करें तो स्पष्ट होता है कि इस परम्परा में भी पूजा विधान पूर्व से ही प्रचलित है। वर्तमान में वहाँ भी तेरहपंथी एवं बीसपंथी परम्परा में पूजा विषयक कई मतभेद हैं तथा तारगपंथ मूर्ति पूजा का विरोधी है। दिगम्बर परम्परा में भी सर्वोपचारी, अष्टोपचारी एवं पंचोपचारी आदि पूजाओं का विधान है, जो निम्न विवरण से सिद्ध हो जाता है।

धवला के अनुसार जिनप्रतिमा का दर्शन करने से निधत्ति और निकाचित जैसे प्रगाढ़ कर्मों का क्षय हो जाता है इसलिए सम्यक्त्व का प्रमुख कारण जिनप्रतिमा को माना गया है।[95]

तिर्यंचों में किन्हीं को जातिस्मरण से, किन्हीं को धर्म श्रवण से और किन्हीं को जिनप्रतिमा के दर्शन से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। मनुष्यों में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।[96]

जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण के अनुसार उत्तमकुल के श्रावक को जिनपदस्पर्शित पुष्पमाला अपने सिर पर धारण करनी चाहिए।[97]

अजितनाथ पुराण में भी भगवान की माता द्वारा बाल्यावस्था में अष्टाह्निका महोत्सव करके श्री अर्हत प्रतिमा का विलेपन करने, पुष्पमाला पहनाने तथा जिन चरण को स्पर्श की हुई माला अपने पिता को देने एवं पिता द्वारा पुनः उसे

पुत्री को देकर उसे विदा करने का वर्णन है। यह प्रसंग विवाह आदि का ज्ञात होता है।[98]

आचार्य पद्मनन्दी ने दीपकों की श्रेणी से जिनप्रतिमा की आरती करने का प्ररूपण किया है।[99] जिनसंहिता में कार्तिक मास के कृतिका नक्षत्र की संध्या के समय जिन प्रतिमा के समक्ष नाना प्रकार के नैवेद्य एवं घृत, कपूर आदि से पूरित दीपक रखने का विधान है।[100] षटकर्मोपदेश माला में त्रिकाल दीपक पूजा करने का उल्लेख है।[101] हरिवंश पुराण में लिखा है कि श्रीजिनेन्द्रदेव के अंग को इन्द्राणी दिव्यानन्ददायी विलेपनों से विलेपित करती है। यह विलेपन भक्तों के कर्मलेप का विघातन करता है।[102] द्रव्यसंग्रह वृत्ति में कपटी ब्रह्मचारी के द्वारा पार्श्वनाथ प्रतिमा पर लगे रत्नों को चुराने का वर्णन है।[103] भावसंग्रह में विलेपन पूजा के फल की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जो भव्य जीव जिनेश्वर प्रभु के चरणों में सुगन्धित चन्दन से विलेपन करता है, वह स्वाभाविक सुगन्ध सहित देवगति में निर्मल वैक्रिय शरीर प्राप्त करता है।[104]

लघु अभिषेक पाठ के अनुसार पवित्र जल, सुगन्धित चन्दन, लक्ष्मी के नेत्रों से सुखकर एवं पवित्र अक्षत, उत्तम सुगन्धी पुष्प, नैवेद्य, भवन प्रकाशी दीपक, सुगन्धयुक्त धूप एवं उत्तम बड़े फलों से जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए।[105] सचित्र पुष्पों से पूजा करने का वर्णन अनेक दिगम्बर आचार्यों ने किया है। श्री सिद्धचक्र पूजा में शुभ तप के लिए श्रेष्ठ मंदार कुन्द और कमल आदि वनस्पति पुष्पों से सिद्धचक्र की पूजा करने का उल्लेख है।[106] सम्यक चारित्र पूजा में भी जाई, मालती आदि श्रेष्ठ सुगन्धित पुष्पों से संसार ताप को दूर करने के लिए अहिंसा आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति एवं पाँच समितियों की हर्ष पूर्वक पूजा करने का वर्णन है।[107]

बृहत्कथाकोष में तेर नगरी के धर्म मित्र सेठ का दृष्टांत है। उसके वहाँ धनदत्त नामक ग्वाला था। एक बार कलनन्द नामक सरोवर से उसने एक फूल तोड़ दिया, यह देखकर सरोवर की रक्षिका देवी रूष्ट हो गई। उसने कहा जो लोक में सर्वश्रेष्ठ है उसकी पूजा इस कमल से करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें योग्य दंड दूंगी। ग्वाला कमल लेकर अपने स्वामी के पास गया। स्वामी वृत्तांत सुनकर राजा के पास गया।राजा सब के साथ दिगम्बर मुनि के पास गया, दिगम्बर मुनि ने उसे जिनेन्द्र देव को चढ़ाने की सलाह दी। ग्वाले ने भक्ति पूर्वक

उसे जिनेन्द्र के चरणों में चढ़ाकर नमस्कार किया और वापिस अपने घर चला गया।[108]

पुण्याश्रव कथाकोष में भी मेंढ़क का दृष्टांत बताते हुए कहा गया है कि पुष्प चढ़ाने के भावों से समवसरण में जाते हुए मेंढक की हाथी के पैरों के नीचे आने से मृत्यु होने पर भी उसको स्वर्ग की प्राप्ति हुई।[109] ऐसा ही दृष्टांत श्वेताम्बर ग्रन्थों में नन्द मणियार के दृष्टांत रूप में मिलता है।

यद्यपि वर्तमान की दिगम्बर परम्परा में आंगी आदि का प्रचलन नहीं है किन्तु प्राचीन शास्त्रों में तद्विषयक उल्लेख मिलते हैं। सिंहनन्दी ने मुकुट सप्तमी व्रत की चर्चा करते हुए कहा है कि श्रावण शुक्ला सप्तमी को आदिनाथ अथवा पार्श्वनाथ प्रभु के कण्ठ में माला और सिर पर मुकुट पहनाकर पूजा एवं उपवास करना– यह शीर्ष मुकुट सप्तमी व्रत है। श्री वीतराग प्रभु के गले में माला और सिर पर मुकुट पहनाने से वीतरागता में हानि नहीं होती। कन्याओं के द्वारा वैधव्य निवारण के लिए यह तप किया जाता है। यह जिनागमोक्त विधि है। जो कोई इस विधि की निन्दा करता है वह जिनागम द्रोही एवं जिनाज्ञालोपी है। इसलिए इस विधि में संदेह नहीं करना चाहिए। सकल कीर्ति आचार्य ने अपने कथाकोष में तथा श्रुतसागर,दामोदर, देवनन्दी और अभद्र आदि ने भी इस विधि का निरूपण किया है अत: यह समीचीन विधि होनी चाहिए।[110]

एक अन्य वर्णन में पार्श्वनाथ भगवान के स्थान पर मुनिसुव्रत स्वामी का उल्लेख है।[111] व्रत कथाकोष में इस व्रत का विषय वर्णन करते हुए आर्यिका श्रेष्ठी पुत्री से कहती है कि इस व्रत को करने से इहलोक-परलोक सम्बन्धी दुर्लभ सुखों की प्राप्ति होती है। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन अर्हद् भगवान की मूर्ति को भक्ति पूर्वक स्नान करवाकर अष्ट द्रव्यों से जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिए। मुकुट को फूलों से सजाकर परमात्मा के मस्तक पर तथा कंठ में पुष्पमाला पहनानी चाहिए।[112] ज्ञानपीठ पूजांजलि में जिनप्रतिमा के जलाभिषेक का वर्णन करते हुए लिखा है कि भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों का मुनि आर्यिका-श्रावक एवं श्राविकाओं के समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए मैं जलाभिषेक करता हूँ।[113]

इसी प्रकार घी, दूध, दही, इक्षुरस, सर्वौषधि, कर्पूर, चंदन, केसर-सुगन्धी जल एवं निर्मल स्वच्छ जल से जिनप्रतिमा को स्नान करवाने का वर्णन है। यह

पूजाएँ विभिन्न फलों को देने वाली है।[114]

जिनप्रतिमा की जलधारा से अर्घ्यपूजा एवं उसमें प्रयुक्त सामग्री की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए लिखा है कि जलधारा देने योग्य झारी चंद्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल रत्नों से जड़ी हुई हो, मोती, मूंगा, सोना, प्रवाल मणि आदि से जडित कंठ वाली हो और उसमें शास्त्रोक्त पुष्पों, कमल आदि की रज से पीत एवं सुगंधित निर्मल जल भरा हो उसके द्वारा जिनप्रतिमा के आगे तीन धाराएँ दें।[115]

श्री भगवद्देवसंधि विरचित श्रावकाचार में जिन प्रतिमा की नित्य स्नान न करवाने के दुष्प्रभाव बताते हुए कहा है– जो व्यक्ति नित्य पूजा विधान में तीन जगत के स्वामी की एक कलश से भी पूजा नहीं करता वह कलह, कुल नाश आदि को प्राप्त करता है।[116]

फल पूजा की चर्चा करते हुए दिगम्बर आचार्यों जम्बीर (बिजोरा) नारंगी,पके हुए जामुन आदि रसीले उत्तम फलों से सत्य आदि पाँच महाव्रतों, तीन गुप्तियों और पाँच समितियों की मैं पूजा करता हूँ।[117]

स्त्री द्वारा जिनप्रतिमा की अष्टप्रकारी पूजा विधानों का उल्लेख करते हुए श्रीपाल चरित्र में लिखा है– आठ दिनों तक जगत के सारभूत जल, चंदन, फूल, अक्षत, धूप, दीपक, नैवेद्य एवं फल इन आठ प्रकार के द्रव्यों से पूजा करके व्याधि निवारण करने वाले श्री सिद्धचक्र से स्पर्शित जल, चंदन आदि से स्पर्श करवाओ, अपने पति (श्रीपाल) जिससे उसका रोग दूर हो जाएगा। (ऐसा महामुनि मयणासुंदरी से कहते हैं।)[118]

षटकर्मोपदेशमाला में भी रानी श्री के द्वारा सात दिनों तक अभिषेक तथा त्रिसंध्या में जिनेन्द्र देव की चन्दन, अगर, कपूर आदि सुगन्धी द्रव्यों से विलेपन करने का उल्लेख है। श्री जिनेश्वर देव की दीपक पूजा करने से मोह और अन्तराय दोनों कर्म नष्ट हो जाते हैं।[119]

षट्विध पूजा प्रकरण में नाटक से भक्तिपूजा का वर्णन करते हुए कहा है– क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के गरजारव के समान श्रेष्ठ भेरी, करद, काहल, जय घंटा, शंख आदि वाद्यों के गुलगुल शब्द हो रहे हो; तथा तिविल, कांसी, ताल, मंजीर आदि बाजों से झम-झम शब्द हो रहे हो, एवं पटह, ढोल, मृदंग आदि वाजिंत्रों के शब्दों से एक धुन मच रही हो। इस प्रकार से नाटक पूजा करें।[120]

चंदन एवं पुष्पपूजा का वर्णन करते हुए कहा है कि पूजक जिनप्रतिमा में गुणों की स्थापना करने के भाव से बैठे और इष्ट लग्न में जिनप्रतिमा को चंदन से तिलक करें। जिनप्रतिमा के सर्वांगों में मंत्र न्यास करें। फिर विविध प्रकार के पुष्पों द्वारा अनेक प्रकार से पूजा करें।[121]

जिनप्रतिमा की विविध द्रव्यों से पूजा करने का उल्लेख करते हुए सुगंधित जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीपक, धूप, सचित्त पुष्प, अष्टमंगल आदि पूजाओं का उल्लेख है।[122]

जिनप्रतिमा की अवज्ञा आशातना करने के दुष्परिणाम बताते हुए राजवार्तिक में कहा गया है– "श्री जिनमंदिर के पुष्पमाला, धूपादि चुराने वाला अशुभ नाम कर्म का बंध करता है।" इस कथन से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि पुष्प, पुष्पमाला, केसर, चंदन, धूपादि सामग्री दिगम्बर परम्परा में भी अंग-अग्र पूजा हेतु मान्य थी।[123]

वसुनन्दी जिनसंहिता के अनुसार जिनप्रतिमा का कुंकुम आदि (केसर-चंदन कर्पूर) से विलेपन किए बिना अनर्चित चरण युगलों के जो व्यक्ति दर्शन करता है वह ज्ञानहीन है। इससे यह ज्ञात होता है कि विलेपन पूजा न करने वाले को जिनाज्ञा विराधक माना गया है।[124]

जिनपूजा से होने वाली उपलब्धियों की चर्चा करते हुए कहा है– जिनस्तुति, जिनस्नान, जिनपूजा और जिनोत्सव को जो भक्तिपूर्वक करता है उसे मनवांछित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।[125]

समाहारत: पूर्वकाल एवं मध्यकाल में प्राप्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि दिगम्बर परम्परा में भी पंचोपचारी, अष्टोपचारी एवं सर्वोपचारी पूजा का विधान था। वहाँ नित्य अभिषेक भी होता था तथा स्त्रियों को पुरुषों की भाँति जिनपूजा हेतु समान अधिकार भी था। यदि अर्वाचीन समाचारी का अध्ययन करें तो बीस पंथी एवं तेरहपंथी परम्पराओं में कई मुद्दों को लेकर पूजा सम्बन्धी मतभेद है। दोनों परम्पराएँ मात्र केवली अवस्था में ही जिनबिम्ब का स्वीकार एवं उनकी पूजा करती है तथा आंगी आदि से पूजा करने पर भोग-परिग्रह-आडंबर आदि मानकर उसका निषेध करती है। किन्तु प्रतिष्ठा, पंचकल्याणक, रथयात्रा आदि में परमात्मा को वस्त्रालंकार से सुसज्जित करते हैं। बीसपंथी परम्परा सचित्त द्रव्य से पूजा एवं स्त्रियों को भी समान अधिकार देने का समर्थन करती

है, वहीं तेरहपंथी परम्परा में सचित्त द्रव्यों से पूजा करने को हिंसा मानते हुए फूलों के स्थान पर रंगीन चावल, लवंग, गरी गोले के छोटे टुकड़े तथा प्रक्षाल के स्थान पर मात्र गीले वस्त्र से प्रतिमा को पोंछते हैं। यद्यपि तेरहपंथ परम्परा सचित्त द्रव्यों से पूजा करना स्वीकार नहीं करती। यद्यपि पूजा हेतु प्रयुक्त दोहे आदि में सचित्त द्रव्यों का स्वीकार किया गया है। इसी पंथ के संस्थापक भैया भगवतीदास ने ब्रह्मविलास में जिनप्रतिमा की फलपूजा आदि का वर्णन करते हुए विविध पुष्पों, जन्माभिषेक हेतु 108 कलश एवं प्रभु श्रृंगार आदि की चर्चा की है।[126]

दिगम्बर परम्परा के अनुयायी तीर्थंकरों की पिंडस्थ, पदस्थ एवं रूपातीत तीनों अवस्थाओं में पूजा करते हैं। शांतिपाठ, स्वयंभू स्तोत्र आदि में अभिषेक, सुगंधित द्रव्यों से विलेपन, तिलक, अलंकार आदि से तीर्थंकर की जन्मकल्याणक पूजा का वर्णन है।[127]

स्नान, विलेपन, वस्त्र, मुकुट, रत्न एवं पुष्प मालाओं आदि से राज्यावस्था की पूजा; वस्त्र, अलंकार, धूप, दीप, वाजिंत्र, रथयात्रा आदि से दीक्षा कल्याणक की पूजा, आहार, मिष्ठान्न, तीमन, पके चावल, फल आदि अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों से श्रमणावस्था की पूजा कर पिंडस्थ अवस्था की पूजा कर सकते हैं। पदस्थ अवस्था की पूजा हेतु अष्टप्रातिहार्य, पुष्पपुंज, अष्टमंगल, स्वर्ण पुष्प, धूप, नाटक, ध्वजा, धर्मचक्र आदि से केवलज्ञान अवस्था की पूजा की जाती है। रूपातीत सिद्धावस्था की पूजा स्तुति, स्तोत्र, प्रतिपत्ति, वंदन आदि के द्वारा भक्ति पूजा के रूप में की जाती है।

यदि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में प्रवर्तित पूजा विधियों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करें तो यहाँ पर भी श्वेताम्बर परम्परा की भाँति पंचोपचारी, अष्टोपचारी एवं सर्वोपचारी पूजा का प्रचलन था। वहाँ पर नित्य प्रक्षाल भी होता था। स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति जिनपूजा का समान अधिकार था। यदि वर्तमान प्रचलित पूजा विधानों पर दृष्टिपात करें तो दिगम्बर परम्परा में आंगी का प्रचलन नहीं है क्योंकि वहाँ पर जिनप्रतिमा की मात्र केवली अवस्था मानी जाती है। परंतु प्रतिष्ठा, रथयात्रा आदि में वहाँ भी परमात्मा को वस्त्र-अलंकार आदि से सजाया जाता है। वर्तमान दिगम्बर परम्परा में बीसपंथी परम्परा में सचित्त द्रव्यों से पूजा की जाती है एवं स्त्रियों को भी वहाँ पर श्वेताम्बर

परम्परा के समान पूजा का अधिकार दिया गया है। वहीं दिगम्बर की तेरहपंथी परम्परा में जल, पुष्प, फल, धूप, दीपक, आरती आदि अनेक द्रव्यों को सचित्त मानते हुए उनसे पूजा करने का निषेध करते हैं क्योंकि इन द्रव्यों से पूजा करने में हिंसा होती है। इसी प्रकार मुकुट, कुंडल, रत्न एवं पुष्पमाला आदि से युक्त अलंकार पूजा को भोग एवं परिग्रह का प्रतीक मानकर उसका भी वर्जन किया है। परंतु उन्हीं के आचार्यों की रचनाओं में सचित्त फल आदि का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में प्राय: विधान तो समान है मात्र अंगरचना, सचित्त द्रव्यों से पूजा आदि को लेकर मुख्य भेद परिलक्षित होता है।

इतिहास के दर्पण में जिनपूजा

जिन पूजा एवं जिन मूर्तियों की ऐतिहासिकता आगम प्रमाणों से तो सिद्ध हो ही जाती है। यदि इतिहासवेत्ताओं एवं पुरातत्त्वशोधों की अपेक्षा से विचार करें तो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, बलुचिस्तान, पश्चिमी पंजाब, अफगानिस्तान आदि प्रदेश एवं सिन्धु व्यास आदि नदियों के तटवर्ती इलाकों की खुदाई से जो प्राचीन सामग्री प्राप्त हुई है जिसे हम सिन्धुघाटी की संस्कृति के नाम से जानते हैं। यह सांस्कृतिक संपदा लगभग 3000 वर्ष प्राचीन मानी जाती है। इसमें कई वस्तुएँ जैन धर्म से सम्बन्धित भी प्राप्त हुई है। आर्य समाज प्रवर्त्तक स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार विश्व में सर्वप्रथम मूर्तिपूजा का प्रारंभ जैन संप्रदाय द्वारा ही हुआ है। अन्य धर्मावलम्बियों ने जैनों का अनुकरण करते हुए ही मूर्तिपूजा प्रारंभ की है। यह कथन जैन धर्म में मूर्तिपूजा की ऐतिहासिकता को सिद्ध करता है।

भारत में ही नहीं विश्व के विभिन्न हिस्सों में प्राचीन मूर्तियों के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं।

वर्तमान का अफगानिस्तान प्राचीन समय के गांधार देश का ही हिस्सा था। इसका प्राचीन नाम आश्वकायन भी उपलब्ध है। वहाँ सिर पर तीन छत्र सहित भगवान ऋषभदेव की 175 फुट ऊँची खड़ी मूर्ति एवं 23 तीर्थंकरों की छोटी प्रतिमाएँ पहाड़ को तराश कर बनाई गई थी।

14वीं शती में जिनप्रभसूरि चतुर्विंशति महातीर्थ नामक कल्प में शांतिनाथ तीर्थंकर के महातीर्थ का उल्लेख करते हुए लिखते हैं–

"लंकायां, पाताल लंकायां श्री शांतिनाथ:' अर्थात लंका में और पाताल लंका में श्री शांतिनाथ महातीर्थ है।

कोचीन मुल्क की सीमा पर बहावल पहाड़ की घाटी में बाहुबली की योग मुद्रा में खड़ी प्रतिमा है। बाहुबली का राज इसी क्षेत्र में था जहाँ की राजधानी तक्षशिला थी। इसी मुल्क के बीदमदेश (होबी नगर) में अनेक सिद्ध प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है।

चीन के गिरगम देश ढांकुल नगर में तीर्थंकर के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान इन चार कल्याणकों की गृहस्थ, छद्मस्थ, साधु और तीर्थंकर इन चार रूप में पूजा की जाती है। चीन के ही पैकिंग शहर में अनेक शिखरबद्ध जिनमंदिर हैं। ये सब कीमती रत्नों से जड़े हुए हैं तथा इनमें कायोत्सर्ग एवं पद्मासन मुद्रा में दीक्षा कल्याणक की प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरों में सोने के चित्र बने हुए हैं। छत्र रत्न जड़ित है। मन्दिर में कल्पवृक्ष एवं वनों की रचना भी मिलती है।

तातार देश के सागर नगर में साढ़े तीन गज ऊँची और डेढ़ गज चौड़ी जिन प्रतिमाएँ हैं। यह सभी प्रतिमाएँ चौथे आरे के अन्त की है। इन प्रतिमाओं के दोनों हाथ उठे हुए हैं। यहाँ के जैनों का मानना है कि यह तीर्थंकरों की उपदेश अवस्था की प्रतीक है।

छोटे तिब्बत के मुंगार देश में बजरंगल नगर में 2000 जैन मन्दिर हैं। इन मन्दिरों में कहीं तीन, कहीं पाँच और कहीं-कहीं सात गुम्बज भी हैं। एक-एक मन्दिर पर लगभग सौ-सौ कलश हैं। इन मन्दिरों में मरुदेवी माता की मूर्तियाँ भी विराजमान है। तीर्थंकर की माता द्वारा देखे गए स्वप्नों का चित्रण इनकी दिवारों पर किया गया है। यहाँ पर मुख्य रूप से च्यवन कल्याणक की पूजा की जाती है।

तिब्बत देश के एकल नगर में बीस हजार जैन मन्दिर हैं। यहाँ पर ज्येष्ठ कृष्णा तेरस और चौदस के दिन मेला लगता है। वहाँ 150 गज ऊँचा संगमरमर पर सुनहरे काम वाले पत्थरों का मेरूपर्वत है। यहाँ के मन्दिरों में परमात्मा के जन्म के प्रतीक रूप छोटी-छोटी मुट्ठी बंधी हुई मूर्तियाँ है। जन्म कल्याणक मनाते समय एक व्यक्ति इन्द्र का रूप धारण कर परमात्मा की प्रतिमा को मेरूपर्वत पर ले जाता है तथा अन्य नगरवासी 1008 कलशों द्वारा प्रतिमा का न्हवण करते हैं। तदनन्तर परमात्मा की पाँच कोस लम्बी रथ यात्रा निकाली जाती

है और पाँच दिन का महोत्सव मनाया जाता है।

तिब्बत के ही खिलवन नगर में 104 शिखर बद्ध जिनमन्दिर हैं। सभी मन्दिर रत्नजड़ित है। यहाँ के वनों में तीस मन्दिर हैं। इसलिए ये वनस्थली के नाम से भी प्रसिद्ध है। इनमें नंदिश्वर द्वीप का चित्रण करते हुए 52 जिनालय भी बनाएं गए हैं।

ऑस्ट्रिया के बुडापेस्ट ग्राम के एक किसान के खेत में भूगर्भ से भगवान महावीर की प्रतिमा निकली थी जो वहाँ के संग्रहालय में रखी गई है।

जिनप्रभसूरि रचित विविध तीर्थ कल्प में उल्लेखित 84 तीर्थों में उन्होंने क्रौंचद्वीप, सिंहदीप और हंसद्वीप में श्री सुमतिनाथ भगवान की पादुका होने का उल्लेख किया है। मंगोलिया में कई प्राचीन जैन मूर्तियों एवं मंदिरों के तोरण खंडित रूप से मिले हैं।

अमेरिका में खुदाई करते हुए तांबे के बड़े सिद्धचक्रजी मिले हैं। पेरिस के एक प्रसिद्ध म्युजियम में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा है। यह मूर्ति खडगासन में है। उसके ऊपर तीन छत्र है तथा जिस पादपीठ पर वे खड़े हैं वहाँ पर एक वृषभ की बैठी हुई आकृति है और कंधों पर केश लटक रहे हैं।

ऐसे ही यदि भारतीय ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन करें तो पुरातत्त्व की खोज में जैन धर्म की प्राचीनता को पुष्ट करने वाले अनेकश: उदाहरण प्राप्त होते हैं।

मोहनजोदड़ो में प्रथम तीर्थंकर अर्हत ऋषभ के आकृति वाली मिट्टी की सीलें मिली है।

हड़प्पा की खुदाई में एक नग्न जिनप्रतिमा का धड़ प्राप्त हुआ है। यह मूर्ति पटना के समीप लुहानीपुरा की खुदाई से प्राप्त ऋषभदेव की प्रतिमा से मिलती है।

मथुरा के कंकाली टीले के स्तूप एवं तद समीपवर्ती क्षेत्रों से जटायुक्त भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा, पाँच सर्प फण वाली सुपार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा और भगवान महावीर आदि की अनेक पाषाण प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। इतिहास विशेषज्ञों के अनुसार यह स्तूप ईसा पूर्व 700 वर्ष प्राचीन श्री पार्श्वनाथ के समय की है। इस स्थान पर ईसा पूर्वकाल की अनेक जिनप्रतिमाएँ एवं शिलालेख प्राप्त होते हैं।

प्रभासपाटण के भूमिखनन में प्राप्त एक प्राचीन ताम्रपत्र में बेबीलोन के राजा नेबुचन्द्र नेजर के द्वारा गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ जिनालय का जीर्णोद्धार करवाने का उल्लेख है। इनमें बेबीलोन प्रथम ईसा पूर्व 1140 में (भगवान पार्श्वनाथ से पहले) हुए तथा बेबीलोन द्वितीय ईसा पूर्व 604 से 561 के लगभग (भगवान महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति से पहले) माने जाते हैं। दोनों में से किसी एक ने नाविकों द्वारा प्राप्त करके जुनागढ़ में स्थित अरिष्टनेमि प्रतिमा के पूजन के लिए प्रदान की थी। यह मंदिर भगवान पार्श्वनाथ से पहले का है।

पंजाब (वर्तमान में पाकिस्तान) में जेलम नदी के दक्षिणी तटवर्ती कटास राज्य के निकट मूर्तिगाँव (पूर्व का सिंहपुर) में जैन मंदिरों के खंडहरों की खुदाई से प्राप्त जिनमूर्तियाँ आदि प्राचीन सामग्री भी पुरातत्त्व विभाग के अनुसार ईसा पूर्व की है। यह सामग्री लाहौर म्यूजियम में संग्रहित है।

कांगड़ा (हिमालच) आदि में अनेक नगरों में ईसा पूर्व से लेकर पन्द्रहवीं शती तक की प्रतिमाएँ मिलती है। कांगड़ा किले में महाभारतकालीन कटौच वंशीय राजा शिवशर्म ने आदिनाथ भगवान का मन्दिर निर्मित करवाया था और उन्हीं के वंशज राजा रूपचन्द्र ने अपने राजमहल में चौबीस तीर्थंकरों की रत्नप्रतिमाओं से युक्त जिनमन्दिर बनवाया था। तक्षशिला के खण्डहरों में ईसा पूर्व की अनेक जैन प्रतिमाएँ पुरातत्त्व विशेषज्ञों को मिली है।

उड़ीसा की खंडगिरी एवं उदयगिरि की गुफाओं में राजा खारवेल के शिलालेख प्राप्त होते हैं। इन शिलालेखों में जैन मन्दिरों एवं जैन प्रतिमाओं को स्थापित करने का उल्लेख है।

जैन मूर्तिकला का गौरवपूर्ण इतिहास

पुरातत्त्व विभाग द्वारा जिन प्रतिमाओं की प्राचीनता के विषय में अनेकश: प्रमाण प्राप्त होते हैं। ऐसे ही अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ कई जिनमन्दिरों में भी प्राप्त होती है। जिनका उल्लेख हमें जैन आगम सूत्रों में उपलब्ध होता है। ऐसी ही कुछ प्रतिमाओं का उल्लेख निम्न प्रकार है– मथुरा के कंकाली टीलें में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों प्रकार की जिन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थी। उन पर प्राप्त शिलालेख का वर्णन कल्पसूत्र में वर्णित गण, कुल, शाखा आदि से पूर्णरूपेण मिलता है।

हैदराबाद के समीपवर्ती तीर्थ कुलपाकजी में माणिक्य स्वामी के रूप में पूजनीय प्रतिमा भरत महाराजा द्वारा भराई गई थी। शंखेश्वर पार्श्वनाथ की

अतिशय युक्त प्रतिमा अतीत चौबीसी के नौवें तीर्थंकर के समय में आषाढ़ी श्रावक द्वारा भरवायी गई थी जिसे वर्तमान चौबीसी के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान के समय श्रीकृष्ण द्वारा देवलोक से प्राप्त की गई।

अवंती पार्श्वनाथ के नाम से सुप्रसिद्ध श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा काल के प्रभाव से भूमिगत हो गई थी। राजा विक्रमादित्य के समय में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना करते हुए इसे प्रकट किया था। यह प्रतिमा भगवान महावीर के निर्वाण के 230 वर्ष बाद आर्य सुहस्ति के द्वारा प्रतिष्ठित है। यह प्रतिमा अवन्ती सुकुमाल की स्मृति में उसके पुत्र ने भरवाई थी। भरूच के समडी विहार एवं बंबई के पास अगासी तीर्थ में स्थित मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा मुनिसुव्रत स्वामी के समय में ही बनी हुई है। ओसिया नगर में स्थित महावीर स्वामी की प्रतिमा वीर निर्वाण के 70 वर्ष बाद रत्नप्रभसूरि द्वारा प्रतिष्ठित की गई है।

आन्ध्रप्रदेश स्थित श्री आदोनी पार्श्वनाथ की प्रतिमा 12वीं सदी में निर्मित की गई सिद्ध होती है। गुजरात के कच्छ प्रदेश में रहा हुआ श्री भद्रेश्वर तीर्थ वीर संवत 23 में बनाया ऐसा उल्लेख वहाँ से प्राप्त ताम्रपत्रों में किया गया है। भूकम्प में क्षतिग्रस्त होने के बाद भी कुछ मूर्तियाँ आज भी सुरक्षित है।

सम्राट सम्प्रति ने वीर निर्वाण के 290 वर्ष बाद सवा लाख जिनमन्दिर बनवाएं, 36 हजार मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया, सवा करोड़ संगमरमर एवं 95 हजार पंचधातु की प्रतिमाएँ भरवाई। जिनमें से कई आज भी विद्यमान है।

क्षत्रियकुंड, महुआ एवं नंदी ग्राम में स्थित महावीर स्वामी की प्रतिमा उनके जीवित रहते ही बनाई गई थी। इसी कारण इन्हें जीवित महावीर स्वामी भी कहते हैं।

नेमिनाथ भगवान के शासन काल में उनके 2222 वर्ष बाद गोडवाड के आषाढ़ी श्रावक ने तीन प्रतिमाएँ भरवाई थी। जिनमें से एक स्तंभन पार्श्वनाथ की, दूसरी पाटण शहर में है एवं तीसरी चारूप तीर्थ में आज भी विद्यमान है। उस पर निम्न लेख है–

नमोस्तीर्थकृते तीर्थो, वर्षाद्विक चतुष्ट्यो।
आषाढ़ श्रावको गौडो, कारयेत प्रतिमा त्रयम्।।

ये प्रतिमाएँ लगभग 5,86,772 वर्ष पुरानी है। लंकापति रावण के द्वारा

निर्मित श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की प्रतिमा आज भी महाराष्ट्र के शिवपुर नगर में स्थित है। यह स्थान अंतरिक्ष पार्श्वनाथ के नाम से भी तीर्थ रूप में प्रसिद्ध है।

बीकानेर के मन्दिर में अनेक प्रतिमाएँ 2400 वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। श्रीपाल एवं मयणासुंदरी द्वारा केशरियानाथ की आराधना का वर्णन आता है। यह केशरिया तीर्थ उदयपुर के पास आज भी विद्यमान है। जिसे भीलों के द्वारा कालिया बाबा के रूप में आज भी पूजा जाता है।

खजुराहो में प्राप्त मन्दिरों में काले पत्थर की अनेक खंडित-अखंडित प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। यह प्रतिमाएँ नौवीं से ग्यारहवीं सदी के आस-पास की है।

दक्षिण भारत में स्थित बादामी गुफा में 16 फुट की महावीर स्वामी की प्रतिमा है। यह लगभग 1500 वर्ष प्राचीन गुफा है। मन्दिरों की नगरी शत्रुंजय तीर्थ में लगभग 3000 जिनमंदिर एवं 25000 जिनप्रतिमाएँ है। कुकुट्टेश्वर एवं कलिकुण्ड पार्श्वनाथ की प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ के समय में ही निर्मित की गई थी।

इसी प्रकार गिरनार, आबु-देलवाड़ा, राणकपुर, तारंगा आदि अनेकों तीर्थ ऐसे हैं जिनसे कई प्राचीन दृष्टांत जुड़े हुए हैं। भारत के हर कोने में ऐसे प्राचीन तीर्थ प्राप्त होते हैं जो जैन धर्म की व्यापकता को सिद्ध करते हैं।

जिनशासन के कीर्तिधर महापुरुष

यदि इतिहास के पृष्ठों पर नजर घुमाएँ तो ऐसे अनेक राजाओं-श्रेष्ठियों आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं जिन्होंने अपने कार्यकाल में जिन धर्म की विशेष प्रभावना की।

राजा अशोक के रचयिता राजतरंगिणी कवि कल्हण के अनुसार सत्यप्रतिज्ञ राजा अशोक ईसा पूर्व 1445 में काश्मीर के राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने जैन धर्म को स्वीकार कर कसबा विजवारह में आलिशान मजबूत जिनमंदिर बनवाए शुष्कलेत्र, वितस्तात्र, विस्तारपुर में भी अनेक जिनमंदिर बनवाए।

राजा जलौक– यह अशोक का पुत्र था एवं काश्मीर घाटी में अनेक जैन मंदिरों का निर्माण करवाया।

राजा जैनेह– यह अशोक का भतीजा था और इसने अनेक जैन मंदिरों का निर्माण करवाया।

राजा ललितादित्य– राजतरंगिणी के अनुसार इन्होंने अनेक विशाल जिनमंदिर एवं जिनमूर्तियों की स्थापना करवाई। जैन राजविहार मन्दिर के निर्माण में चौरासी हजार तोला स्वर्ण का उपयोग किया था। 54 हाथ (81 फुट) ऊँचे जैन स्तूप का निर्माण करवाकर उस पर गरूड़ की प्रतिमा की स्थापना की थी। यह गरुड़ प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की शासनदेवी चक्रेश्वरी का वाहन है।

चंकुन मंत्री– इन्होंने तुखार में जैन मंदिर बनवाए थे। चंकुन विहार में एक उन्नत जैन स्तूप का निर्माण करवाकर उसमें स्वर्ण प्रतिमाओं की स्थापना की थी।

चक्रवर्ती महामेघवाहन खारवेल के राज्य का विस्तार उड़ीसा से काश्मीर तक था। उसके वंशजों ने चार पीढ़ी तक राज्य किया एवं इनके अंतिम शासक राजा प्रवरसेन विक्रमादित्य के समकालीन थे। इन्होंने अपने सम्पूर्ण राज्य में जिनमन्दिरों की स्थापना की थी।

महावग्ग बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार भगवान बुद्ध सबसे पहले धर्मोपदेश देने राजगृही नगरी में आए थे एवं वहाँ सुप्पातित्थ (सुपार्श्वनाथ तीर्थ) में रूके थे। इससे यह स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध से पहले भी जिन प्रतिमाओं की स्थापना होती थी।

कुवलयमाला के अनुसार विक्रम की पाँचवी-छठी शती में पार्वतीपुर एवं स्यालकोट (पंजाब) में हूण सम्राट तोरमाण ने अपने राज्य में अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया था।

परमार्हत सम्राट सम्प्रति मौर्य (राज्यकाल ई.पू. 224 से 184)– सम्राट अशोक मौर्य के पौत्र सम्राट सम्प्रति मौर्य का नाम जैन इतिहास में सुविख्यात है। उन्होंने भारत और भारत के बाहर अन्य देशों में सवा लाख जैन मंदिरों तथा सवा करोड़ जिन प्रतिमाओं का निर्माण करवाया। तेरह हजार पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार, अनेक दानशालाओं एवं पौषधशालाओं की स्थापना की।

महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल– वस्तुपाल-तेजपाल ये दोनों सगे भाई थे। धोलका के राजा वीरधवल के राज्य में वस्तुपाल महामंत्री तथा तेजपाल सेनापति थे। इन्होंने राज्य एवं जिनधर्म का खूब विस्तार किया जिसकी यशोगाथा इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में आज भी अमर है।

इन्होंने 1304 नये जैन मन्दिर तथा सवा लाख धातु, स्वर्ण, चाँदी, रत्नों आदि की प्रतिमाएँ बनवाई। इनके द्वारा निर्मित आबु देलवाडा के जैन मन्दिर विश्व की उत्तम कला का नमूना है। इन्होंने उत्कृष्ट शिल्पकला से युक्त 700

हाथीदांत के सिंहासन, धर्म साधना हेतु 984 धर्मशालाएँ, पौषधशालाएँ, उपाश्रय बनवाए, 26000 पुराने जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया, 2500 गृह मंदिर बनवाकर दिए। 24 हाथी दाँत की कारीगरी वाले सुन्दर रथ, 2500 काष्ठ रथ जिनमंदिरों में रथयात्रा हेतु दिए। शत्रुंजय, आबु, गिरनार इन महातीर्थों में एक-एक तोरण बनवाए जिन पर तीन-तीन लाख स्वर्ण मोहरों का खर्चा किया। उस समय में उन्नीस करोड़ रुपए के खर्च से शास्त्र ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ बनवाकर शास्त्र भंडार स्थापित किए। 21 जैन महामुनियों का महोत्सव पूर्वक आचार्य पद विधान करवाया। 3 जैन शास्त्र भंडारों की स्थापना करवाई। 1304 हिन्दू मन्दिरों का जीर्णोद्धार जिसमें सोमनाथ का शिवमंदिर एवं पंजाब का सूर्य मंदिर शामिल है। 302 नूतन विविध हिन्दू संप्रदाय के मन्दिर तथा 64 मस्जिदें मुसलमानों की बनवाई। सार्वजनिक दानशालाएँ, प्याऊ, धर्मशालाएँ एवं अनेक सामाजिक एवं धार्मिक उत्थान के कार्य किए।

पेथडशाह– पेथडशाह ने देश के विभिन्न कोनों में 84 जैन मंदिर बनवाए, गिरनार तीर्थ के श्वेताम्बर-दिगम्बर विवाद में माला का चढ़ावा लेकर तीर्थ पर श्वेताम्बरों का वर्चस्व रखा तथा अनेक छःरी पालित संघ एवं धार्मिक अनुष्ठान करवाए।

राजा कुमारपाल– सोलंकी महाराजा कुमारपाल हेमचंद्राचार्य के परमभक्त थे। गुजरात में अनेकशः जैन मन्दिरों की स्थापना की। प्राचीन ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ बनवाई। शास्त्र भंडार बनवाए। जैन धर्म की विशेष धर्म प्रभावना की।

इसी प्रकार अनेक श्रावक एवं जिनधर्म अनुयायी राजकीय शासक हुए हैं जिन्होंने समय-समय पर जिन धर्म की प्रभावना की। इन ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रागैतिहासिक काल से ही जिनप्रतिमा एवं जिनमंदिर निर्माण की परम्परा जैनों में रही है। आज भी अनेक जिनमंदिरों का निर्माण सुज्ञ श्रावकों के द्वारा आवश्यकता अनुसार समय-समय पर किया जाता है।

जिनपूजा एक शाश्वत विधान है। हर काल में जिन प्रतिमा एवं जिनमन्दिर की अवस्थिति रहती है। शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा का इतिहास, शाश्वत तीर्थ एवं देवलोक में स्थित शाश्वत जिनालय इसी तथ्य को प्रमाणित करते हैं। बदलती हुई देश कालगत परिस्थितियों के कारण आज जिनपूजा एवं

जिनप्रतिमा विषयक अनेक भ्रान्त मान्यताएँ प्रसरित हो चुकी है। उन्हीं भ्रान्तियों का निराकरण तथा जिनप्रतिमा एवं जिनपूजा विषयक जागरण लाने के लिए, जनमानस के हृदय को शंका रहित बनाने के लिए एवं परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा स्थापित करने के लिए यह अध्याय सहायक बनें तथा मानसिक शंकाओं का शास्त्रसम्मत निवारण कर सकें यही आन्तरिक प्रयत्न किया है।

संदर्भ-सूची

1. *जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 67*
2. *स्थानांग सूत्र, संपा. मधुकरमुनि, 3/4/512-514*
3. *वही, स्थान-4*
4. *वही, 5/2/109*
5. *उद्धृत, जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 67*
6. *ण्हाया कय बलिकम्मा। भगवतीसूत्र*
7. *भगवती सूत्र, चतुर्थखंड 20/9/सू. 4*
8. *अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा भावीअप्पणो अणगारस्स।*

   भगवती सूत्र
9. *तए णं सा दोवई रायवरकन्ना.... तेणेव उवागच्छइ।*

   ज्ञाताधर्मकथासूत्र, 16/सूत्र 118
10. *उपासकदशांगसूत्र, 1/58*
11. *तत्त्वज्ञान प्रवेशिका, पृ. 76*
12. *प्रश्नव्याकरणसूत्र, 213/132*
13. *तत्त्वज्ञान प्रवेशिका, पृ. 76*
14. *बहुलाइं अरिहंत चेइआइं। औपपातिकसूत्र*
15. *औपपातिकसूत्र, सू. 99*
16. *राजप्रश्नीयसूत्र, सू. 198-19*
17. *उद्धृत, प्रतिमापूजन, पृ. 134*
18. *उद्धृत, जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 68*
19. *जीवाजीवाभिगमसूत्र, पृ. 108-410*
20. *जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति, सू. 105, 158*
21. *तत्त्वज्ञान प्रवेशिका, पृ. 77*

22. निरयावलिकासूत्र, पृ. 77
23. प्रतिमापूजन, पृ. 110
24. उत्तराध्ययनसूत्र, 10/30
25. तत्तो य पुरिमताले, वग्गुर ईसाण अच्चए पडिमा।
मल्लि जिणायणपडिमा, उण्णाए वंसि बहुगोट्ठी ।।
आवश्यकसूत्र, 490, पृ. 140-141
26. आवश्यकनिर्युक्ति, भा. 1, पृ. 112-113
27. अंतेउरे चेइयहरं कारियं, पभावती ण्हाता, तिसंज्झं अच्चेइ, अन्नया देवी णच्चेइ राया वीणं वायेइ। आवश्यकसूत्र
28. आवश्यकसूत्र, पृ. 198
29. जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 69
30. तत्त्वज्ञान प्रवेशिका, पृ. 77
31. व्यवहारसूत्र, 1/33
32. सिद्धवेयावच्चेणं महानिज्जरा महापज्जवसाणं चेवति।
व्यवहारसूत्र, उद्धृत– प्रतिमापूजन, पृ. 114
33. निशीथसूत्र, उद्धृत-तत्त्वज्ञान प्रवेशिका, पृ. 77
34. काउंपि जिणाययणेहिं, मंडियं सण्वमेइणीवट्टं।
दाणाइचउक्केण सड्ढो, गच्छेज्ज अच्चुयं जाव न परं।।
महानिशीथसूत्र, चौथा अध्ययन
35. जीतकल्पसूत्र, उद्धृत– जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 69
36. नन्दीसूत्र, वही, पृ. 69
37. अनुयोगद्वारसूत्र, पृ. 13
38. से भयवं तहारूवे समणे वा माहणे वा चेइयघरे गच्छेज्जा? हंता गोयमा दिणे-दिणे गच्छेज्जा। से भयवं...गोयमा जहा साहू तहा भणियव्वं छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा।
महाकल्पसूत्र, उद्धृत-प्रतिमा पूजन, पृ. 104
39. वही, पृ. 105
40. आचारांगनिर्युक्ति (निर्युक्ति पंचक) 3/352
41. सूत्रकृतांग निर्युक्ति, 2/6/194-201

42. कल्पसूत्रटीका, पत्र 192
43. (क) द्वीपसागर पन्नति
    (ख) आवश्यक हारिभद्रीय टीका, उद्धृत– प्रतिमा पूजन पृ. 133
44. आवश्यकनिर्युक्ति, वही, पृ. 134
45. अकसिण पवत्तगाणं, विरयाविरयाणं एस खलु जुत्तो।
    संसारपयणु करणो, दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो ॥
    आवश्यकभाष्य, भा. 2, गा. 194
46. आवश्यक हारिभद्रीय टीका, भा. 2, पृ. 2
47. आवश्यक निर्युक्ति, उद्धृत, प्रतिमा-पूजन, पृ. 146
48. आवश्यकभाष्य, 194
49. बृहत्कल्पसूत्र, गा. 1769 की टीका
50. समोसरणं ति जिनस्नपन-रथानुयान-पट्टयात्रादिषु यत्र बहवः साधवो मिलन्ति तत्समवसरणं। समवायांग टीका, उद्धृत-विधि संग्रह, पृ. 12
51. कप्पूरमलयजेहिं, कत्थुरिय कुंकुमाइ दव्वेहिं।
    जिणबिम्बसमालभणं, करेज्ज भत्तीए परमाए ॥
    विहवाणुसारि जो पूण, पुयं विरएज्ज सुरहिकुसुमेहिं।
    कंचण-मोत्तिय-रयणाई, दामएहिं च विविहेहिं ॥
    सिद्धत्थयदहियक्खय खज्जग-वरलड्डुगाइदव्वेहिं।
    अंबगमाइफलेहिं य, विरएज्ज बलिं सुसंविग्गो ॥
    आवश्यकभाष्य, 161, 163, 97 उद्धृत-विधि संग्रह, पृ. 22
52. आवश्यकभाष्य, 191
53. भरहो य तत्थ चेतियघरं कारेति वड्ढति रयणेणं जोयणायामं तिगाउस्सेहं सिंहनिसादि सिद्धायतण पलिभागं अणेगखंभ सयसन्निविट्ठं। एवं जहा वेयड्ढ सिद्धाततणं जंबुद्वीवपन्नतिए जाव झत्ता, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारिदारा सेता वरकणगथुभितागा जाव पडिरूव।
    आवश्यकचूर्णि, उद्धृत–विधिसंग्रह, पृ. 23
54. जीतकल्पभाष्य, गा. 94, 2465-66
55. अष्टक प्रकरण, 3/1-4
56. विंशतिविंशिका, 8/1-20

57. ललितविस्तरा टीका, पृ. 45
58. अष्टौ दिवसान् यावत्, पूजाऽविच्छेदतोऽस्य कर्तव्या।
दानं च यथाविभवं, दातव्यं सर्वसत्त्वेभ्यः ॥
षोडशक प्रकरण, गा. 16
59. विघ्नोपशमन्याद्या, गीताभ्युदय प्रसाधनी चान्या।
निर्व्वाण साधनीति च, फलदा तु यथार्थ संज्ञाभि ॥
प्रवरं पुष्पादि सदा, चाद्यायां सेवते तु तद्दाता।
आनयति चान्यतोऽपि हि, नियमादेव द्वितीयायाम ॥
त्रैलोक्यसुन्दरं यद् मनसा, पादयति तत्तु चरमायाम्।
अखिल गुणादिक सद्योगः, सारसद् ब्रह्मयागपरः ॥
षोडशक प्रकरण, गा. 10-12
60. पंचाशक प्रकरण, गा. 20-21
61. वही, गा. 14-15
62. योगबिन्दु, गा. 116
63. पंचवस्तुक, गा. 1141-1142
64. धर्मबिन्दु प्रकरण, सू. 75
65. पद्मचरित, 156
66. जिनस्नात्रविधि, गा. 37
67. संवेगरंगशाला, 1535-1538, 1543, 1553
68. स्नात्रं-विलेपन-विभूषण-पुष्प-दाम, धूप-प्रदीप-फल-तन्दुल-पत्र पूगैः।
नैवेद्य वारि-वसनैश्चमरा-ऽऽतपत्र, वादित्र-गीत-नटन स्तुति कोश वृद्धया ॥
इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा, ख्याता सुरासुरगणेन कृता सदैव।
खण्डीकृता कुमतिभिः कलिकालयोगाद्यद्यत्रियं तदिह भाववशेन योज्यम् ॥
धर्मसंग्रह, गुजराती भाषान्तर, पृ. 380
69. धर्मरत्नकरण्डक, गा. 48-49, 51
70. चैत्यवंदन महाभाष्य, 209-210, 212
71. पुप्फाभिसत्थुईहिं, तिहाऽहवा पूयमट्ठहा कुज्जा।
फल-जल-धूवक्खय-वास, कुसुम नेवज्ज दीवेहिं ॥
उपदेशमाला दोघट्टी टीका, पत्र 417

72. विधिसंग्रह, पृ. 41
73. प्रकरण समुच्चयः, पृ. 128
74. घर-जिणहर-जिणपूया, वावारच्चायओ निसीहितिगं।
पुप्फक्खवत्थुइहिं, तिविहा पूया मुणेयव्वा ॥

प्रवचनसारोद्धार, गा. 69

75. अत्र च गाथायां पुष्पादीन्युपलक्षणाभूतान्येव श्री भगवतः पूजाविधि प्रतिपादितानि ततो निसप्तमरत्नसुवर्णमुक्ताभरणादिभिरलंकरणं, विचिपवित्रवस्त्रादिभिः परिपाधनं पुरतश्च सिद्धांर्तकशालित मांगलिकालेखनं प्रवरबलि-जल-मंगल दीप-दधि-घृत-प्रभृतिपदार्थतण्डुलादिभिरष्ट ढोकनं भगवतश्च भालतले गोरोचना मृगमदादिभिस्ति लककरणं, तत आरात्रिका द्युत्तारणम्।

प्रवचनसारोद्धार टीका, आ. सिद्धसेनसूरि

76. शुचिः पुष्पामिषस्तोत्रै, र्देवमभ्यर्च्य वेश्मनि।
प्रत्याखानं यथाशक्ति., कृत्वा देवगृहं वजेत् ॥
प्रविश्यविधिना तत्र, त्रिः प्रदक्षिणायेज्जिनम्।
पुष्पादिभिस्तमभ्यर्च्य, स्त्वनैरूत्तमैः स्तुयात् ॥

योगशास्त्र, 123-124

77. कुमारपाल प्रतिबोध, पृ. 129-130
78. वही, पृ. 119
79. वही, पृ. 175
80. श्राद्धदिनकृत्य, गा. 24, 63
81. चैत्यवंदन भाष्य, गा. 10
82. कुसुमक्खय फल-जल-धूप-दीव-नेविज्ज-वास निम्माया।
पूजा जिणेसराणं, सा अट्ठविहा विणिद्दिट्ठा ॥

अनंतनाथ चरित्र, गा. 8

83. पूजा प्रकाश, 23-26, 29
84. विधिमार्गप्रपा (देवपूजा विधि), पृ. 121
85. विचारसार प्रकरण, 43
86. श्राद्धविधि प्रकरण, पृ. 131-132
87. कुसुमाइएहिं घरचेइयाइं अच्चेइ संसाए। कुमारपालप्रबन्ध, गा. 1

88. इत्यादिकवैदेशिक श्राद्धानां तादृग्गुरुभक्तिगर्भवचनेश्च चमत्कृतः। प्रत्यहं मया सौ वर्णकमलैर्गुरूपादौ पूजनीयादित्याभिग्रहं जग्राह। वही

89. इतः श्री भरताधीशः, स्नातो धौतांशुकावृतः।
जगाम देवतागारं, सन्तो मुध्यन्ति न क्वचित्॥
संस्नप्य वृषभ स्वामी, प्रतिमां यक्षकर्दमैः।
विलिलेप महीनाथः, स्वैर्यशोभिरिवावनिम॥
सुगन्धिभिरथानर्च, पुष्पैः सम्पूर्णभक्तिभाक्।
दहाह धूपं चिदुप, स्तुतिकृद्भावतोऽर्हतः॥
शत्रुंजय माहात्म्य, 93-95

90. संबोध प्रकरण, 186-188, 194

91. आचारोपदेश, 14, 28-29

92. धर्मसंग्रह, पृ. 380

93. ण्हवण,[1] विलेपण,[2] वत्थजुगं,[3] गंधारूहणं, च[4] पुप्फरोहणयं[5]।
मालारूहणं[6] वन्नयं[7] चुन्न[8] पडागाण[9] आभरणे[10] ॥27॥
मालाकलावघरं[11], पुप्फपगरं च[12], अट्ठमंगलयं[13]।
धूवक्खेवो[14], गीयं[15], नट्टं[16], वज्जं[17], तहा भणियं ॥28॥
आत्मप्रबोध, उद्धृत-पूजा विधि संग्रह, पृ. 67

94. श्री जिनपूजा विधि संग्रह, पृ. 86

95. कधं जिणबिंब दंसणं पढम सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं? णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादि-कम्मकलावस्स खयदंसणादो॥
जीवस्थान सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका, सूत्र 22 धवला

96. तिरश्चाँ केषाञ्चिज्जाति स्मरणं केषांचिद्धर्म श्रवणं।
केषांचिज्जिनाबिम्ब दर्शनम् मनुष्याणामपि तथैव॥
जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 105

97. आदिपुराण, उद्धृत- जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 93

98. अजितनाथ पुराण, वही, पृ. 93

99. पद्मनन्दी पच्चीसी, वही, पृ. 93

100. जिनसंहिता, वही, पृ. 93

101. षट्कर्मोपदेशमाला, वही, पृ. 93

102. जिनेन्द्रागमथेन्द्राणी, दिव्यानन्ददायिनी विलेपनैः।
अन्वलिप्यत भक्त्यासौ, कर्मलेप विघातनम्॥

हरिवंश पुराण

103. माया ब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारक प्रतिमा लग्न रत्न हरणं कृतमिति।

द्रव्यसंग्रह

104. चंदण सुगन्ध लेओ, जिणवर चलणेसु कुणइ।
जो भविओ लहइ तणु, विक्किरियं सुहावस-सुअधवं विमलं॥

भावसंग्रह, गा. 470-471

105. आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमल-बहुलेनामुना चन्दनेन।
श्री दृक्पेयैरमीभिः शुचिसदक चयैरुदगमैरेभिरूद्भैः॥
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मख भवनमिमै, दीपयद्भिः प्रदीपैः।
धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशंयजामि॥

लघु अभिषेक पाठ ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 19

106. मन्दार कुन्द-कमलादि वनस्पतीनां।
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर सिद्धचक्रम्॥

ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 70-71

107. जात्यादि सत्पुष्प मतल्लिकाभिः, श्री मल्लिकाभिर्भव ताप नुत्यै।
व्रतानि सत्य प्रभृतानि, हर्षाद् गुप्तिर्यजामः समितीश्च पंच॥

ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 281

108. बृहत्कथाकोष, कथा 56, पृ. 7-10

109. भेको विवेक विकलोऽप्यजनिष्ट नाके, दन्तैर्गृहीत कमलो जिनपूजनाय।
गच्छन् सभा गज हतो जिन सन्मते स, नित्यं ततोहि जिनयं विभुमर्चयामि॥

पुण्याश्रव कथाकोष, 1/3

110. व्रत तिथि निर्णय, पृ. 231-32

111. वही, पृ. 189-190

112. व्रत कथा कोष, उद्धृत-जैन धर्म और जिन प्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 97

113. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 20-21

114. वही, पृ. 22

115. जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 11

116. भगवद्देवसंधिकृतश्रावकाचार, गा. 1

117. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 282-283
118. तत्राष्टकपर्यन्तं, प्रपूजय निरंतरं।
पूजाद्रव्यैर्जगत्सारैष्टभदै जलादिकैः ॥
तच्चन्दन सुगन्धं वस्त्रजो व्याधिहराः स्फुटम्। प्रत्यहं भक्त्या।
श्रीपाल चरित्र, उद्धृत–जैन धर्म और जिन प्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 99
119. षट्कर्मोपदेशमाला, गा. 1-2
120. षट्विधपूजा प्रकरण, गा. 1-2
121. वही, 1-2
122. वही, गा. 1-18, उद्धृत–जैन धर्म और जिन प्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 100-104
123. चैत्यप्रदेश गंधमाल्य-धूपादि मोषण.... अशुभस्य नाम्न आस्रवः
तत्त्वार्थ राजवार्तिक , 6/22/4
124. वसुनन्दी जिनसंहिता, वही
125. जिनस्तवनं जिनस्नानं, जिनपूजा जिनोत्सवं।
कुर्वाणो भक्तिती लक्ष्मी, लभते याचितां जन ॥
उद्धृत– जैन धर्म और जिन प्रतिमा पूजन रहस्य, पृ. 105
126. ज्ञानपीठ पूजांजलि, शांतिपाठ पृ. 85
127. वही, स्वयंभूस्तोत्र, पृ. 295

●

अध्याय-9

सात क्षेत्र विषयक विविध पक्षों का समीक्षात्मक अनुशीलन

गृहस्थ जीवन में धर्म का बीजारोपण करने एवं उसे स्थायी रखने के लिए जैनाचार्यों ने अनेक मार्ग बताए हैं। धर्म एवं संघ की उन्नति में भी श्रावक का प्रमुख स्थान होता है। न्याय-नीति पूर्वक अर्जित धन का सत्मार्ग में व्यय करते हुए श्रावक पुण्यानुबंधी पुण्य का उपार्जन तो करता ही है। साथ ही सांसारिक मोह-माया से विरक्त भी होता है।

जिनशासन में मुख्य रूप से ऐसे सात क्षेत्र बताए गए हैं जिनमें श्रावक को अपने अर्थ का सदव्यय करना चाहिए। वे सात क्षेत्र हैं– 1. जिन प्रतिमा 2. जिनमंदिर 3. जिन आगम 4. साधु 5. साध्वी 6. श्रावक और 7 श्राविका। गीतार्थ आचार्यों के अनुसार इन सात क्षेत्रों में विवेक पूर्वक धन का प्रयोग करने से वह पुण्य धन कहलाता है तथा उपजाऊ भूमि में बोए गए फल के समान श्रेष्ठ फल प्रदान करता है।

इन सात क्षेत्रों के माध्यम से एकत्रित द्रव्य चार क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जाता है और उन चार क्षेत्रों में ही इन सात का समावेश हो जाता है। 1. देवद्रव्य 2. ज्ञानद्रव्य 3. गुरुद्रव्य और 4. साधारण द्रव्य। इसी के साथ जीवदया निश्राकृत द्रव्य, कालकृत द्रव्य, शुभ खाता आदि भी कुछ क्षेत्र हैं जो श्रावकों के सहयोग से ही विकसित होकर सुव्यवस्थित रहते हैं।

सर्वप्रथम मन में प्रश्न उठता है कि आखिर यह सात क्षेत्र किसलिए है? इनकी विशेषता क्या है? इनका इतना महत्त्व क्यों है? वस्तुत: ये सात क्षेत्र नदी की सात धाराओं के समान है जो श्रावक के अर्थ को धर्म रूपी समुद्र में ले जाती हैं।

1.जिनप्रतिमा क्षेत्र– जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा के उद्देश्य से जिनप्रतिमा निर्माण, जिनपूजा, लेप-ओप, अलंकार निर्माण आदि के निमित्त

किसी भी श्रावक द्वारा भक्ति पूर्वक अर्पण किया गया द्रव्य जिन प्रतिमा क्षेत्र का कहलाता है।

2. जिनमन्दिर क्षेत्र– जिनमन्दिर के निमित्त से प्राप्त हुआ द्रव्य इसी प्रकार पंचकल्याणक, प्रभु भक्ति, जिनपूजा, आरती, मंगल दीपक, अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव, उपधान आदि की नंदी का नकरा, तीर्थमाला, रथयात्रा आदि के चढ़ावे जो भी तीर्थंकरों के उद्देश्य से बोले जाते हैं वह सभी जिनमन्दिर क्षेत्र का द्रव्य कहलाता है।

उपरोक्त दोनों क्षेत्रों को देवद्रव्य भी कहा जाता है।

3. जिनआगम क्षेत्र– ज्ञान भंडार, आगम आदि शास्त्रों का पूजन, कल्पसूत्र आदि बहराना, पाँच ज्ञान की अष्टप्रकारी पूजा, प्रतिक्रमण सूत्र आदि बोलने का द्रव्य 45 आगम पूजन आदि ज्ञानं से सम्बन्धित जो भी द्रव्य एकत्रित किया जाता है वह जिन आगम क्षेत्र का द्रव्य कहलाता है।

4-5. साधु-साध्वी क्षेत्र– चारित्रधारी साधु-साध्वी की भक्ति वैयावच्च हेतु जो द्रव्य दानवीरों द्वारा प्राप्त होता है। दीक्षार्थी भाई-बहनों की दीक्षा हेतु चारित्र उपकरण बहराने का चढ़ावा। इसी प्रकार गुरु पूजन, कम्बली आदि उपकरण बहराने से सम्बन्धित एकत्रित द्रव्य साधु-साध्वी क्षेत्र का कहलाता है। इसे गुरु द्रव्य या वैयावच्च द्रव्य भी कहा जाता है।

6-7. श्रावक-श्राविका क्षेत्र– श्रावक-श्राविका से यहाँ तात्पर्य सामान्य गृहस्थ से नहीं है। जो भी वीतराग परमात्मा का अनुयायी हो, यत्किंचित् धर्म आराधना करता हो वह श्रावक कहलाता है। इनके निमित्त जो भी द्रव्य साधर्मिक भक्ति हेतु एकत्रित किया जाता है वह श्रावक-श्राविका क्षेत्र का द्रव्य कहलाता है। इनके निमित्त एकत्रित किए गए द्रव्य को साधारण द्रव्य भी कहते हैं।

ये सातों क्षेत्र जिन धर्म की नींव या मुख्य आधार हैं। इन्हीं के ऊपर जिनधर्म रूपी भव्य प्रासाद टिका हुआ है अत: इनका उत्थान जिनशासन का उत्थान है। इन क्षेत्रों में किया गया खर्च एवं समय का उपयोग ही सार्थक एवं अध्यात्म जगत को प्रशस्त करने वाला है।

इन सात क्षेत्रों के अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध क्षेत्र इस प्रकार हैं–

जीवदया क्षेत्र– प्रतिष्ठा, दीक्षा, महापूजन, संवत्सरी प्रतिक्रमण आदि विशेष प्रसंगों पर जीवदया के निमित्त जो टीप की जाती है उसे जीवदया क्षेत्र द्रव्य कहते हैं।

निश्राकृत द्रव्य– जिस कार्य विशेष के लिए धन दिया गया हो, उसी कार्य में उसका उपयोग करना निश्राकृत द्रव्य कहलाता है। यदि द्रव्य राशि आवश्यकता से अधिक हो तो उससे ऊपर-ऊपर के क्षेत्र में उसका प्रयोग हो सकता है।

कालकृत द्रव्य– विशेष रूप से पोषदशमी, अक्षय तृतीया, मन्दिर वर्षगाँठ आदि पर्वों के निश्चित दिन विशेष के लिए श्रावकों द्वारा दिया गया द्रव्य कालकृत द्रव्य कहलाता है। इसका उपयोग तत्सम्बन्धी कार्यों में ही हो सकता हैं।

अनुकंपा द्रव्य– दीन-दुखी, नि:सहाय, वृद्ध, अपंग, आपदा पीड़ित लोगों के लिए अथवा मानव सेवा के लिए अन्न-पानी, वस्त्र, औषधि आदि का दान करना अनुकंपा कहलाता है और तत्सम्बन्धी द्रव्य अनुकम्पा द्रव्य कहलाता है।

आयंबिल खाता द्रव्य– आयम्बिल तप हेतु नकरे, चढ़ावे या कायमी तिथि के नाम पर एकत्रित किया गया द्रव्य आयम्बिल खाता द्रव्य कहलाता है।

शुभ खाता द्रव्य– किसी भी शुभ कार्य के उद्देश्य से एकत्रित हुआ द्रव्य शुभ खाता द्रव्य कहलाता है। इसे सर्व साधारण खाता भी कहते हैं।

जिनशासन की विविध संस्था संचालकों को जिस खाते में जितना ब्याज आदि एकत्रित हुआ हो उसे उसी खाते में विवेक पूर्वक प्रयोग करना चाहिए। द्रव्य आवश्यकता से अधिक हो तो अन्य क्षेत्रों में उसी कार्य हेतु भेज देना चाहिए ऐसा जैनाचार्यों का मंतव्य है। उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, वैयावच्च द्रव्य एवं साधारण द्रव्य यह चार क्षेत्र विशेष रूप से जन प्रसिद्ध हैं।

शंका– देवद्रव्य किसे कहते हैं? इसके कितने प्रकार हैं?

समाधान– द्रव्य सप्ततिका में देवद्रव्य को परिभाषित करते हुए कहा है–

ओहारणबुद्धिए, देवाईणं पकप्पिअं च जया।
जं धणधनप्पमुहं, तं तद्व्वं इहं णेयं।।

सामान्य बुद्धि से जिनेश्वर देव आदि के लिए जो धन धान्यादि पदार्थ जिस समय में कल्पित हो उसे देवद्रव्य कहा गया है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस द्रव्य के लिए यह निश्चित निर्णय किया गया हो कि यह

द्रव्य वीतराग देव आदि के लिए ही प्रयोग में लेना है उसे ही देवद्रव्य मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो पदार्थ मात्र संकल्पित हुआ हो या जिस पर परमात्मा की दृष्टि अनायास ही गिर गई हो वह देवद्रव्य नहीं है।

शास्त्रों में इसे मृग नामक एक ब्राह्मण श्रावक का उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है। एकदा मृग ने कोई नैवेद्य मन्दिर में चढ़ाने हेतु संकल्पित किया था। घर में मुनि महाराज पधारे एवं वह द्रव्य उसने उन्हें बहरा दिया। इस तरह संकल्पित द्रव्य का दान देकर भी उसने अनंत पुण्य का अर्जन किया।

संबोध प्रकरण में देवद्रव्य के मुख्य तीन प्रकार बताए गए हैं– 1. पूजा देवद्रव्य 2. निर्माल्य देवद्रव्य और 3. कल्पित देवद्रव्य।

1. पूजा देवद्रव्य– जिनप्रतिमा की अंग एवं अग्रपूजा के रूप में प्रयोग किया जाने वाला द्रव्य, पूजा देवद्रव्य कहलाता है। इसका उपयोग परमात्मा की अंग एवं अग्र पूजन के लिए तथा अधिक हो जाए तब मंदिर के जीर्णोद्धार एवं नूतन मंदिर निर्माण के लिए हो सकता है।

2. निर्माल्य देवद्रव्य– परमात्मा की भक्ति हेतु प्रयुक्त ऐसी वस्तुएँ जो पुन: प्रयुक्त नहीं की जा सकती उसे निर्माल्य देवद्रव्य कहते हैं जैसे– बरख बादाम, मिश्री, प्रक्षाल आदि। वर्क आदि थोड़े समय में गन्ध वाले हो जाते हैं अत: विगन्धी द्रव्य कहलाते हैं तथा परमात्मा के सम्मुख रखे जाने वाले बादाम, मिश्री आदि द्रव्य अविगन्धी निर्माल्य देवद्रव्य कहलाते हैं। विगन्धी द्रव्य का प्रयोग परमात्मा के आभूषण आदि बनाने में कर सकते हैं। शेष द्रव्य का उपयोग जिनमंदिर निर्माण आदि में हो सकता है।

अपरिहार्य परिस्थिति में इसका प्रयोग जिनपूजा के उपकरण लाने में हो सकता है, ऐसा मुनि पीयूषसागरजी म.सा. का मत है।

कल्पित देवद्रव्य– वह द्रव्य जो कल्पना करके दिया जाए उसे कल्पित देवद्रव्य कहते हैं। जैसे किसी श्रावक ने जिन प्रतिमा भराने हेतु एक लाख रुपया दिया तो वह द्रव्य कल्पित देवद्रव्य कहलाता है। इसका प्रयोग भी देवद्रव्य के रूप में ही होता है। उपाध्याय मणिप्रभसागरजी म.सा. के अनुसार कल्पित देवद्रव्य और पूजार्ह देवद्रव्य के उद्गम का तरीका भिन्न होने से मात्र भेद है अन्यथा दोनों समान है। मुनि श्री पीयूषसागरजी म.सा. के अनुसार जिनमंदिर की समुचित व्यवस्था हेतु श्रेष्ठी दानवीरों द्वारा जो कायमी मिति की व्यवस्था की

जाती है जिससे मंदिर कार्यों का निर्वाह सम्यक प्रकार से होता रहे उसे कल्पित देवद्रव्य कहा जाता है अत: मंदिर व्यवस्था की कल्पना करके जो द्रव्य दिया जाए वह कल्पित देवद्रव्य है।

इसके अनुसार कल्पित देवद्रव्य का प्रयोग केशर, चंदन, बरास, धूप आदि पूजन की सामग्री, जिनमंदिर सम्बन्धी उपकरण बर्तन आदि, पुजारी का वेतन, चौकीदार आदि अन्य अजैन कर्मचारियों का वेतन, जिन प्रतिमा एवं जिनमंदिर सम्बन्धी सुरक्षा के लिए वकील का पेमेंट, जिनमंदिर सजावट, रख-रखाव, वर्षगाँठ सम्बन्धी खर्चे, जिन मंदिर में लाईट-पानी आदि की व्यवस्था, आंगी आदि में हो सकता है। कल्पित देवद्रव्य का प्रयोग सभी प्रकार के देवद्रव्य में हो सकता है। देवद्रव्य के अतिरिक्त क्षेत्रों में इसका उपयोग वर्जित है। महापूजन , वरघोड़ा, प्रतिष्ठा, अंजनशलाका आदि कार्यक्रमों के निमित्त जो बोली या नकरे होते हैं उनका प्रयोग कल्पित देवद्रव्य के रूप में हो सकता है।

शंका– देवद्रव्य की वृद्धि कैसे करनी चाहिए?

समाधान– जैन शास्त्रकारों ने देवद्रव्य वृद्धि के उपाय बताते हुए कहा है कि न्यायनीति पूर्वक अर्जित धन से ही देवद्रव्य की वृद्धि करनी चाहिए। इसकी विशेष चर्चा करते हुए धर्मसंग्रह, आत्मप्रबोध, श्राद्ध विधि प्रकरण आदि में कहा गया है कि पंद्रह कर्मादान संबंधी एवं अविधि द्वारा अर्जित धन का उपयोग देवद्रव्य की वृद्धि के लिए नहीं करना चाहिए। सन्मार्ग, सद्व्यवहार, उचित आचरण द्वारा अर्जित राशि ही देवद्रव्य की वृद्धि हेतु प्रयुक्त की जा सकती है।

श्राद्ध विधि प्रकरण के अनुसार देवद्रव्य की वृद्धि हेतु उचित भाग के प्रक्षेप से या आभूषण आदि रखकर ब्याज पर दूसरों को रकम देने वाला जीव तीर्थंकर पद प्राप्त करता है।

देवद्रव्य वृद्धि के अन्य मार्ग बताते हुए कहा गया है कि देवद्रव्य की वृद्धि संघमाला आदि ग्रहण करके, इन्द्रमाल पहनकर, पहरामणी करके (दूसरों को पहनाकर), धोती आदि वस्त्र अर्पण कर, आभूषण आदि चढ़ाकर या आरती आदि अन्य विधानों के द्वारा भी की जा सकती है। जिनाज्ञा की विराधना हो उस प्रकार द्रव्य वृद्धि करने वाले अज्ञानी जीव संसार परिभ्रमण को बढ़ाते हैं।

शंका– कुछ आचार्यों का कहना है कि इन्द्रमाल आदि के चढ़ावे असुविहित आचार्यों या यतियों के द्वारा प्रारंभ किए गए? यह कितना सत्य है?

समाधान– इन्द्रमाल आदि के चढ़ावों की परम्परा प्राचीन है। इसके उल्लेख कई शास्त्रों में देखने को मिलते हैं। ऐतिहासिक प्रबंध, चरित्र, पट्टावली आदि में इसके उल्लेख प्राप्त होते हैं।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य की निश्रा में कुमारपाल महाराजा ने छरी यात्रा संघ के प्रसंग पर शत्रुंजय, गिरनार एवं प्रभास पाटण में उछामणी (चढ़ावे) के द्वारा तीन संघ माला गृहीत कर पहनने-पहनाने की क्रिया की। यह बारहवीं-तेरहवीं सदी की घटना है। उस समय में यह प्रथा थी और यह राशि तीर्थ के देवद्रव्य खाते में जमा की गई थी।

युगप्रधान गुर्वावाली में चौदहवीं सदी में आयोजित छ:री पालित संघों की तीर्थ यात्रा प्रसंगों में संघ माला के चढ़ावे एवं उस राशि का देवद्रव्य खाते में जमा होने का उल्लेख प्राप्त होता है। श्राद्धविधिप्रकरण, धर्मसंग्रह आदि ग्रन्थों में भी इस बात की पुष्टि की गई है।

उदाहरण– वि.सं. 1329 में पालनपुर से एक संघ निकला था जिसकी इन्द्रमाला से तारंगा में 3000 द्रम्म, पुन: खंभात तीर्थ में 5000 द्रम्म, शत्रुंजय तीर्थ पहुँचने पर 1700 द्रम्म तथा गिरनार के ऊपर 7097 द्रम्म की आवक हुई जो कि गुप्त भंडार खाते में गई।

विविध चढ़ावों से हुई देवद्रव्य की आवक का वर्णन करते हुए कहा गया है–

''शत्रुंजये देवभाण्डागारे उद्देशात: सहस्त्र 20 उज्जयन्ते सहस्त्र 17 संजाता'' शत्रुंजय के देवभंडार में विविध लाभों से 20 हजार द्रम्म और गिरनार में 17 हजार द्रम्म की आवक हुई।

वि.सं. 1380 में दिल्ली से आए संघ ने शत्रुंजय तीर्थ के ऊपर प्रतिष्ठा माला, इन्द्रपद, कलश स्थापना ध्वजा आदि विविध चढ़ावों के द्वारा 50 हजार द्रम्म की राशि आदिनाथ दादा के देवद्रव्य भंडार में जमा करवाई।

इसी प्रकार वि.सं. 1381 में भीलडी से शत्रुंजय तीर्थ पर आए संघ के द्वारा संघ माला के चढ़ावे निमित्त 15 हजार द्रम्म की आवक देवद्रव्य खाते में हुई।

अत: इन्द्रमाल आदि की परम्परा प्राचीन एवं शास्त्र विहित है।

शंका– चढ़ावे के रूपये कितने समय में देने चाहिए?

समाधान– पेथडशाह ने चढावे की रकम देने के बाद पानी पिया था।

चढ़ावे की रकम चढ़ावा बोलने के साथ चुका देनी चाहिए उसके बाद ली गई बोली का लाभ लेना चाहिए ऐसा वर्णन भी कई स्थानों पर मिलता है। अत: यह स्पष्ट है कि चढ़ावे का रुपया शीघ्रातिशीघ्र चुका देना चाहिए। वर्षों तक चढ़ावे की रकम नहीं चुकाने पर श्रावक महादोष के भागी बनते हैं। देरी से चढ़ावे की रकम चुकाने पर उसे ब्याज सहित चुकाना चाहिए।

शंका– देवद्रव्य की वृद्धि अधिक करनी चाहिए अथवा साधारण द्रव्य की?

समाधान– संबोध सप्तति (पृ. 52) के अनुसार

''देवद्रव्यवत् साधारणद्रव्यमपि वर्धनीयमेव, देवद्रव्य साधारणद्रव्योर्हि वर्धनादौतुल्यत्वश्रुतैः।'' देवद्रव्य जैसे साधारण द्रव्य की भी वृद्धि करना चाहिए क्योंकि देवद्रव्य और साधारण द्रव्य को बढ़ाने में शास्त्रों में तुल्यत्व श्रुति है अर्थात दोनों की वृद्धि में सफलता है।

श्राद्धप्रकरण,पृ. 62 (वापी से प्रकाशित) के अनुसार

''धर्मव्ययश्च मुख्यवृत्या साधारण एव क्रियते, यथा-यथा विशेष विलोक्यमानं धर्मस्थाने तदुपयोगः स्यात्। सप्तक्षेत्र्यां हि यत्सीदत् क्षेत्रं स्यात्तदुपष्टम्भे भूयान् लाभो दृश्यते।''

मुख्य रूप से धन का व्यय साधारण खाते में ही करना चाहिए क्योंकि जैसे-जैसे विशेष (द्रव्य) देखने में आए वैसे-वैसे धर्म स्थानों में उसका उपयोग हो सकता है। सात क्षेत्रों में जो क्षेत्र निर्बल हो उसे पुष्ट करने में विशेष लाभ है।

धर्मसंग्रह (पृ. 145) के अनुसार मुख्यतया धर्म के क्षेत्र में धन का व्यय साधारण खाते में ही करना चाहिए क्योंकि उसका उपयोग सभी धर्म कार्यों में होता है। आचार्य कीर्तियशसूरिजी के अनुसार जब भी आवश्यकता हो तो नीचे के क्षेत्र का द्रव्य ऊपर के क्षेत्र में जा सकता है परन्तु नीचे के क्षेत्र में ऊपर के क्षेत्र का पैसा नहीं आ सकता।

अत: देवद्रव्य के साथ-साथ साधारण खाते में यथासंभव सांगोपांग वृद्धि करनी चाहिए।

शंका– देवद्रव्य रक्षा की जवाबदारी किसकी है?

समाधान– साहू उविक्खमणो अणंत संसारिओ भणिओ। (अभिधान राजेन्द्र कोश 3/1284)

देवद्रव्य की सुरक्षा करने की मूल जवाबदारी श्रावक की ही होती है। परंतु यदि साधु भी देवद्रव्य का विनाश होते देख उपेक्षा करे तो वह भी अनंत संसार का परिभ्रमण बढ़ा देता है अत: श्रावक एवं साधु दोनों को देवद्रव्य की सुरक्षा करनी चाहिए।

शंका– देवद्रव्य की उपेक्षा या रक्षा करने के परिणाम क्या आते हैं?

उत्तर– पूर्वाचार्यों के अनुसार–

जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं।
रक्खंतो जिणदव्वं, परित्त संसारिओ होई।।
जिणपवयण वुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं।
भक्खंतो जिणदव्वं, अणंतसंसारिओ होई।।
जिणपवयण वुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसण गुणाणं।
वड्ढंतो जिणदव्वं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो।।

संबोध सत्तरी प्रकरण, गा. 101-103

जिन प्रवचन की वृद्धि करने वाले, ज्ञान दर्शन गुणों के प्रभावक ऐसे जिनद्रव्य अर्थात देवद्रव्य की रक्षा करने से जीव परित संसारी होते हैं अर्थात उनका संसार परिमित हो जाता है तथा जो देवद्रव्य में वृद्धि करता है वह तीर्थंकर नाम कर्म का भी उपार्जन करता है। इसके विपरीत जो जिनद्रव्य का भक्षण करता है वह अनंत संसार के परिभ्रमण को बढ़ाता है।

देवद्रव्य की रक्षा एवं वर्धन करने से तीर्थंकर पद की प्राप्ति की बात दर्शाकर आगमकारों ने देवद्रव्य की महत्ता को उजागर किया है अत: देवद्रव्य के रक्षण आदि के प्रति सभी को अत्यंत जागरूक रहना चाहिए।

शंका– जिनप्रतिमा के निमित्त आया द्रव्य जीर्णोद्धार में प्रयुक्त हो सकता है?

समाधान– जिनपूजा निमित्त दिया गया द्रव्य वर्तमान में जिनपूजा के साथ जीर्णोद्धार हेतु भी प्रयुक्त होता है। यदि जिनप्रतिमा भरवाने की राशि हो तो जीर्णोद्धार हेतु उपयोग में नहीं लेनी चाहिए। परिस्थिति विशेष में उसको भी इस्तेमाल कर सकते हैं क्योंकि देवद्रव्य से जिनमंदिर जीर्णोद्धार हो सकता है। वर्तमान में जिनप्रतिमा और जिनमंदिर को लगभग एक ही खाते में रखा जाता है एवं तत् सम्बन्धी द्रव्य को मंदिर निर्माण, जीर्णोद्धार, जिनप्रतिमा पूजा, बिम्ब संरक्षण एवं अन्य भक्ति कृत्यों में प्रयुक्त किया जाता है।

शंका– देवद्रव्य की राशि श्रावकों को ब्याज पर दे सकते हैं?

समाधान– श्रावकों को देवद्रव्य की रकम ब्याज पर देना उचित नहीं है। क्योंकि उस रकम का स्वयं के कार्यों में प्रयोग करने से श्रावक को देवद्रव्य भक्षण का दोष लगता है। कदाच किसी कारणवश ली हो तो सामान्य ब्याज दर (मार्केट रेट) की अपेक्षा अधिक ब्याज देकर समय से पहले उसे चुकाना चाहिए। देवद्रव्य का उपयोग करने से सुपरिणाम बिगड़ते हैं तथा वे दोष के भागी बनते हैं। यदि देवद्रव्य की रकम ब्याज पर रखनी भी हो तो जैनेतर न्याय नीति युक्त सज्जन लोगों के पास रखनी चाहिए। अधिक राशि एक व्यक्ति के पास नहीं रखना चाहिए। जिसे ब्याज में राशि दी जाए उससे सोना आदि गिरवी रख लेना चाहिए जिससे राशि डूबने का प्रसंग न बने। जहाँ तक संभव हो देवद्रव्य का उपयोग तत्सम्बन्धी कार्यों में कर लेना चाहिए।

शंका– भगवान के वरघोड़े सम्बन्धी द्रव्य किस खाते में जाता है?

समाधान– भगवान के वरघोड़े सम्बन्धी चढ़ावों की राशि देवद्रव्य में जाती है, यह विधान सर्वमान्य है। घोड़े आदि की बोली का द्रव्य रथयात्रा के खर्चे के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है परन्तु किसी भी अन्य कार्य हेतु इसका प्रयोग नहीं होता।

शंका– देवद्रव्य या ज्ञानद्रव्य आदि से चिल्लर (छुट्टा पैसा) लिया जा सकता है?

समाधान– नोट देकर छुट्टे पैसे लेने में कोई दोष परिलक्षित नहीं होता। उतनी राशि तो देनी ही चाहिए और यदि अधिक दी जाए तो भी लाभ ही है। परन्तु अधिक देने का कोई विधान नहीं है।

शंका– आरती और मंगल दीपक की थाली में आए रुपयों पर किसका अधिकार होता है?

समाधान– भगवान की आरती, मंगल दीपक आदि में चढ़ाया गया द्रव्य परमात्मा को ही चढ़ाया जाता है अत: वह देवद्रव्य के खाते में ही जमा करना चाहिए। कहीं-कहीं पर आरती का द्रव्य पुजारी को देने का विधान भी देखा जाता है परंतु यह शास्त्रोक्त विधान नहीं है। ऐसे स्थानों में पुजारियों को अन्य रीति से संतुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।

शंका– धर्म क्षेत्र में किसी एक क्षेत्र की राशि को किसी अन्य क्षेत्र में प्रयोग कर सकते हैं या नहीं?

समाधान– धर्म क्षेत्र की कोई भी आवक धर्म क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य कार्यों में प्रयोग नहीं की जा सकती। धर्म क्षेत्र में भी साधारण द्रव्य का प्रयोग सातों क्षेत्र में हो सकता है। देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधु-साध्वी वैयावच्च द्रव्य, जीवदया, अनुकंपा आदि क्षेत्रों की राशि का प्रयोग अन्य क्षेत्र में नहीं कर सकते। जो कार्य सर्व साधारण (शुभ) खाते से करने के हो उसमें साधारण द्रव्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

संयोग विशेष में श्रावक-श्राविका क्षेत्र की राशि का प्रयोग उससे ऊपर के क्षेत्रों में हो सकता है किन्तु जीवदया, अनुकम्पा या धर्मेतर कार्यों में इसका प्रयोग नहीं हो सकता। अत: यह स्पष्ट है कि नीचे के क्षेत्रों का द्रव्य ऊपरी क्षेत्रों में हो सकता है परंतु ऊपरी क्षेत्रों की राशि नीचे के क्षेत्रों में उपयोग नहीं की जा सकती।

शंका– सात क्षेत्रों की जिम्मेदारी एवं वहीवट (हिसाब) संभालने वाला श्रावक कैसा होना चाहिए?

समाधान– जैनाचार्यों के अनुसार धर्म क्षेत्रों की वहीवट (Account) संभालने वाला श्रावक निम्न गुणों से युक्त होना चाहिए।

1. अनुकूल कुटुम्बवाला अर्थात अच्छे कार्यों में सहयोगी बने ऐसे परिवार वाला हो।

2. न्याय युक्त धनार्जन करके श्रीमंत बना हो।

3. जिसे राजदरबार या न्यायालय में उचित मान-सम्मान दिया जाता हो तथा जो तर्क निपुण एवं विरोधी को शांत करने में समर्थ हो।

4. दान कुशल अर्थात दान देने एवं दूसरों को सहायता करने में रुचिवंत हो।

5. धीर-प्रतिकूल परिस्थिति में भी संतुलन एवं धैर्य बनाए रखता हो।

6. कुलीन-श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न एवं दृढ़ प्रतिज्ञ हो।

7. ज्ञाता– धर्मद्रव्य आदि में वृद्धि करने एवं उसका उपयोग करने आदि रीतियों का जानकार हो।

8. धर्मानुरागी– धर्म के प्रति प्रीति रखने वाला हो।

9. गुरु भक्ति तत्पर हो एवं उनकी आवश्यकताओं आदि का ध्यान रखता हो। शुश्रुषा आदि आठ गुणों से युक्त हो।

10. मतिमान– निर्मल बुद्धि वाला अर्थात आग्रह बुद्धि से रहित हो। उपरोक्त सद्गुणों से युक्त श्रावक ही धर्म क्षेत्र की संपदा का Account संभाल सकता है। ऐसा व्यक्ति ही जो जिन आज्ञा के अनुसार धर्म क्षेत्र का लेखा-जोखा रखता हो वही तीर्थंकर नाम कर्म का बंधन करता है। अल्पसंसारी बनकर मोक्ष को प्राप्त करता है। वही इसके विपरीत जो जाने-अनजाने में सात क्षेत्र के द्रव्य का भक्षण करता है उसकी उपेक्षा करता है या रक्षण नहीं करता, दूसरों को देवद्रव्य का नाश करने देता है ऐसा वही वटदार प्रगाढ़ पाप का बंधन करता है। देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, गुरु द्रव्य या साधारण द्रव्य का गलत तरीके से उपयोग करने वाला अथवा गलत हिसाब बताने वाला व्यक्ति नरक आयुष्य का बंधन करता है। अपने संसार परिभ्रमण को अनंतगुणा बढ़ाता है। देवद्रव्य का दुरुप्रयोग करने वाले को दरिद्र कुल में जन्म, गरीबी, कोढ़ आदि रोगों की पीड़ा, अपकीर्ति, दौर्भाग्य, भूख-प्यास आदि अनेक दुखद परिस्थितियों का अनुभव करना पड़ता है अत: पदाधिकारियों एवं श्रावक वर्ग दोनों को ही इस विषय में सावधान हो जाना चाहिए।

शंका– देवद्रव्य का संचय करना चाहिए अथवा उसका शीघ्रातिशीघ्र उपयोग करना चाहिए। यदि उपयोग करना हो तो किन क्षेत्रों में इसका प्रयोग हो सकता है?

समाधान– प्राचीन विधि एवं उल्लेखों के अनुसार देवद्रव्य का निजी भंडार ही किया जाता था। निजी भंडार अर्थात एक स्थान पर देवद्रव्य की राशि एकत्रित कर उसका वर्धन करना। पूर्वकाल में श्रावक प्रतिदिन सामर्थ्य अनुसार देवद्रव्य में कुछ न कुछ डालकर उसकी अभिवृद्धि करते थे। कुछ ग्रन्थकार उस राशि के नियमित दर्शन करने का उल्लेख भी करते हैं। उसे देखकर श्रावक वर्ग यही भावना करता था कि अभी तो जीर्णोद्धार आदि करवाने हेतु हम समर्थ हैं। जब हमारा सामर्थ्य नहीं होगा या हम नहीं रहेंगे तब परमात्मा के प्रभाव को अक्षुण्ण रखने में यह द्रव्य सहायक बनेगा।

परंतु वर्तमान राजकीय परिस्थिति एवं सरकार की धारा-धोरण नीति के कारण देवद्रव्य राशि का संचय करना संभव नहीं है। Goverment के नियम

कायदों के अनुसार सम्पूर्ण राशि सरकारी भंडारों में चली जाए इससे तो बेहतर यही होगा कि शास्त्र निर्देश अनुसार सुयोग्य क्षेत्रों में उसका उपयोग कर देना चाहिए। सर्वप्रथम तो जहाँ प्राचीन तीर्थों का जीर्णोद्धार कार्य प्रगति पर हो वहाँ उस द्रव्य का सद्व्यय करना चाहिए। तदनन्तर यदि किसी क्षेत्र में नूतन जिनालय बन रहा हो और वहाँ का संघ समर्थवान न हो तो उस जगह देवद्रव्य का उपयोग कर सकते हैं। यह ध्यातव्य है कि जहाँ भी देवद्रव्य की राशि भेंट दी जाए वहाँ उस जिनालय के देवद्रव्य का नाम आना चाहिए। ट्रस्टी या अधिकारियों का नाम देने पर देवद्रव्य भक्षण का दोष लगता हैं। देवद्रव्य का खर्च भी पूर्ण जागरूकता के साथ आवश्यकता अनुसार ही करना चाहिए।

शंका– मन्दिर उपयोगी केशर-चंदन आदि की खरीदी एवं पुजारी आदि की पगार देवद्रव्य में से दे सकते हैं क्या?

समाधान– देवद्रव्य का उपयोग मात्र जिनमन्दिर या जिनप्रतिमा हेतु करना चाहिए। पुजारी, केशर-चंदन आदि की व्यवस्था श्रावक वर्ग अपनी सुविधा के लिए करता है अत: श्रावकों को अपने व्यक्तिगत द्रव्य से ही इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। सामर्थ्यशील श्रावकों को इस विषय में जागृत रहना चाहिए। यदि ऐसी व्यवस्था संभव नहीं हो तो साधारण द्रव्य से इनकी व्यवस्था करनी चाहिए। यदि अज्ञानतावश देवद्रव्य का प्रयोग किया हो तो गुरु भगवंतों से इसका प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

शंका– धर्म क्षेत्र का पैसा बैंक में ब्याज पर या शेयर खरीदने हेतु उपयोग में ले सकते हैं?

समाधान– यह बात पूर्व में भी स्पष्ट कर चुके हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में देवद्रव्य का संचय हानिकारक सिद्ध हो सकता है। देवद्रव्य का संचय या वृद्धि करनी भी हो तो पूर्व निर्दिष्ट शास्त्रोक्त मार्ग अनुसार ही करना चाहिए।

बैंक आदि में ब्याज पर रखने या शेयर खरीदने से शुभ कार्यों हेतु एकत्रित राशि का व्यय अशुभ कार्यों में होता है। बैंक का पैसा कत्लखाने, मुर्गी पालन केन्द्र (Paultry Farm). मछली पालन, शस्त्र निर्माण आदि कार्यों में भी दिया जाता है। यदि हमारा पैसा बैंक में हो तो हम भी इसके बराबर के भागीदार होते हैं। अत: इस प्रकार के तरीकों से मूल धन बढ़ाना श्रावकों के लिए कदापि औचित्यपूर्ण नहीं है अपितु जिन आज्ञा के विरुद्ध है। इस प्रकार धन वृद्धि करने

से हानि अधिक एवं लाभ कम होता है। इसी के साथ सरकार की आर्थिक नीतियों को देखते हुए सम्पूर्ण धार्मिक सम्पत्ति सरकारी कब्जे में जाए उससे पूर्व उसका उपयोग सही क्षेत्र में कर देना चाहिए।

इसी प्रकार अधिक राशि देखकर किसी की नियत बिगड़े या पैसे की हेरा-फेरी हो उससे पूर्व ही उसका सदुपयोग वर्तमान परिस्थितियों में अधिक औचित्यपूर्ण एवं श्रेयस्कर है।

शंका– देवद्रव्य की राशि से उपाश्रय आदि आराधना स्थलों का निर्माण करना चाहिए या नहीं?

समाधान– उपाश्रय आदि आराधना स्थलों को बनाने हेतु देवद्रव्य की राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता। क्योंकि उपाश्रय श्रावकों के लिए उपयोगी स्थान है जबकि देवद्रव्य का उपयोग परमात्मा के कार्यों में ही हो सकता है। यदि कहीं पर देवद्रव्य की राशि से उपाश्रय बना हो तो वहाँ मात्र जिन भक्ति के कार्य हो सकते हैं। अन्य कार्यों में प्रयोग करने से पूर्व उपाश्रय निर्माण में लगी राशि को ब्याज सहित चुकाना जरूरी है। साधारण द्रव्य से उपाश्रय का निर्माण कर सकते हैं।

शंका– ज्ञान द्रव्य किसे कहते हैं?

समाधान– जिनवाणी की सुरक्षा हेतु श्रावकों के द्वारा जिस द्रव्य का सदुपयोग किया जाता है उसे ज्ञान द्रव्य कहते हैं। पूर्व काल में आगम शास्त्र कंठस्थ होते थे। सूत्र पाठों की श्रवण परम्परा ही चलती थी। परन्तु क्षणै:-क्षणै: काल प्रभाव से बुद्धि क्षीण होने लगी एवं आगम पाठ विस्मृत होने लगे। तब उनकी सुरक्षा के लिए उन्हें लिपिबद्ध किया जाने लगा। इस कार्य हेतु जितना भी द्रव्य एकत्रित कर उपयोग किया जाता है उसे ज्ञान द्रव्य कहते हैं। जिन आगम क्षेत्र सम्बन्धी जो भी द्रव्य है वह ज्ञान द्रव्य में ही समाविष्ट किया जाता है।

शंका– ज्ञान द्रव्य में कौन-कौन सी राशि का समावेश होता है?

समाधान– ज्ञान खाते की राशि, ज्ञान पूजा की राशि, कल्पसूत्र पूजन, कल्पसूत्र बहराने की बोली, अन्य कोई भी आगम शास्त्र या चरित्र ग्रंथ सम्बन्धी चढ़ावे, पाँच ज्ञान पूजा, ज्ञान की अष्टप्रकारी पूजा, प्रतिक्रमण सूत्र, दीक्षा के अवसर पर ज्ञानपोथी का चढ़ावा एवं अन्य ज्ञान या पुस्तक निमित्त किसी भी प्रकार का आया हुआ द्रव्य ज्ञान द्रव्य के अन्तर्गत समाविष्ट होता है।

शंका– ज्ञान द्रव्य का उपयोग किन-किन क्षेत्रों में हो सकता है?

समाधान– ज्ञान द्रव्य का उपयोग, प्राचीन एवं अर्वाचीन शास्त्र आदि लिखवाने, छपवाने एवं उनकी सुरक्षा करने, अजैन पण्डितों को पगार देने, ज्ञान भंडार के निर्माण एवं नवीनीकरण आदि, साधु-साध्वी के उपयोगी ज्ञान उपकरण आदि बहराने, साधु-साध्वी के अध्ययनार्थ जिनवाणी के प्रचार में, ज्ञान भण्डार की व्यवस्था में, पाठशाला आदि में, धार्मिक पुस्तकें खरीदने आदि में इस तरह ज्ञान प्रधान क्षेत्रों में हो सकता है। व्यवहारिक शिक्षा अर्थात स्कूल कॉलेज आदि की पढ़ाई में ज्ञान द्रव्य का उपयोग नहीं हो सकता। इसी प्रकार जैन श्रावक-श्राविकाओं को पगार के रूप में भी ज्ञान द्रव्य की राशि नहीं दे सकते।

कारण विशेष होने पर देवद्रव्य के रूप में इसका प्रयोग हो सकता है। अन्य क्षेत्रों में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

शंका– ज्ञान द्रव्य और गुरु द्रव्य को एक साथ रखें तो क्या दोष है?

समाधान– ज्ञान द्रव्य और गुरु द्रव्य दो अलग-अलग क्षेत्र हैं। इनका व्यय भी अलग-अलग क्षेत्रों में ही होता है। जैनाचार्यों ने इनका अलग-अलग विधान किया है इसी से स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें अलग-अलग रखना चाहिए। ज्ञान द्रव्य का उपयोग ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में होता है वहीं गुरु द्रव्य पूर्व काल में तो देवद्रव्य के रूप में ही प्रयुक्त होता था किन्तु वर्तमान में इसका प्रयोग वैयावच्च द्रव्य के रूप में होता है अत: दोनों को अलग-अलग रखना ही श्रेयस्कर है। यदि किसी कारणवश दोनों द्रव्य एक-मेक हो जाए तो नीचे के खाते का द्रव्य ऊपर के खाते में जा सकता है। इस अपेक्षा से गुरु द्रव्य ज्ञान द्रव्य में जा सकता है। इस सम्पूर्ण द्रव्य का प्रयोग ज्ञान द्रव्य-गुरु द्रव्य मिश्र खाते में हो सकता है क्योंकि वैयावच्य द्रव्य को छोड़कर मात्र ज्ञान द्रव्य के रूप में प्रयोग करने से भी दोष लगता है अत: ऐसे द्रव्यों को संभालने का कार्य पूर्ण जागृति के साथ करना चाहिए।

शंका– कल्पसूत्र आदि ज्ञान ग्रन्थों को बहराते समय उनकी अष्टप्रकारी पूजा क्यों करते हैं?

समाधान– आगम ग्रन्थ जिनवाणी रूप होने से जिनेश्वर परमात्मा के समान ही पूज्य हैं अत: उनकी अष्टप्रकारी पूजा करनी चाहिए।

शंका– ज्ञान भंडार का निर्माण किस द्रव्य से करना चाहिए।

समाधान– ज्ञान भंडार का निर्माण श्रावक वर्ग को यथा संभव स्वद्रव्य से करना चाहिए। यद्यपि कारण विशेष उपस्थित होने पर ज्ञान द्रव्य से भी इसका निर्माण किया जा सकता है। परंतु ज्ञान द्रव्य से बने ज्ञान भंडार की जगह साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका निवास नहीं कर सकते तथा वहाँ गोचरी, शयन आदि भी नहीं कर सकते।

ज्ञान द्रव्य से खरीदे गए कपाट आदि में मात्र ज्ञान सम्बन्धी सामग्री रख सकते हैं। साधु-साध्वी के उपकरण या पौषध आदि का सामान रखने हेतु उनका उपयोग नहीं हो सकता। यदि श्रावक वर्ग वर्जित ज्ञान भंडारों का उपयोग करते हैं तो उन्हें उचित नकरा भर देना चाहिए।

शंका– गुरु द्रव्य किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं?

समाधान– साधु-साध्वी की भक्ति, वैयावच्च आदि के निमित्त अथवा दीक्षा के अवसर पर संयम उपयोगी उपकरण बहराने, गुरु पूजन करने, गुरु महाराज को कम्बली आदि बहराने एवं साधु जीवन सम्बन्धी अन्य चढ़ावों से जो द्रव्य प्राप्त होता है उसे गुरु द्रव्य कहते हैं। गुरु वैयावच्च में प्रयुक्त होने से इसे वैयावच्च द्रव्य भी कहते हैं।

कुछ परम्पराओं में गुरु द्रव्य को देवद्रव्य भी माना जाता है तो कुछ परम्पराएँ गुरु द्रव्य को गुरु द्रव्य या वैयावच्च द्रव्य ही मानती है। प्राचीन ग्रन्थों में गुरु द्रव्य को देवद्रव्य माना गया है। जैनाचार्यों ने गुरु द्रव्य के तीन भेद माने हैं– 1. भोगार्ह गुरुद्रव्य 2. पूजार्ह गुरु द्रव्य और 3. लुंछन गुरु द्रव्य।

1. भोगार्ह गुरुद्रव्य– कपड़ा, पातरा, गोचरी, पानी आदि द्रव्य जिसे साधु-साध्वी बोहरकर उपयोग करते हैं, वह द्रव्य या वस्तु भोगार्ह गुरुद्रव्य कहलाती है। इस द्रव्य का उपयोग मात्र भोगार्ह गुरुद्रव्य के रूप में ही किया जा सकता है।

2. पूजार्ह गुरुद्रव्य– जो द्रव्य धन आदि गुरु पूजन के रूप में अथवा गुरु महाराज के समक्ष गहूँली पर रखा जाता है तथा काम्बली ओढ़ाने के चढ़ावें, दीक्षा के समय संयम उपकरण के चढ़ावें, गुरु मूर्ति या चरण की आरती-मंगल दीपक के चढ़ावे, गुरु की पूजा या महापूजन आदि के चढ़ावें, अग्निसंस्कार, गुरु मंदिर निर्माण हेतु भूमिपूजन, शिलान्यास, गुरु चरण प्रतिष्ठा एवं अन्य गुरु

संबंधी चढ़ावों की रकम पूजार्ह गुरु द्रव्य के अन्तर्गत जाती हैं।

इस द्रव्य का उपयोग साधु-साध्वी के आरोग्य संरक्षण हेतु, डॉक्टर, वैद्य औषधि के खर्च में, विहार व्यवस्था, सेवार्थ रखे हुए जैनेतर व्यक्तियों की पगार हेतु, साधु-साध्वी के अध्ययन हेतु, गुरु मंदिर निर्माण एवं तत् सम्बन्धी व्यवस्था में कर सकते हैं। पूजार्ह गुरु द्रव्य का उपयोग देवद्रव्य, ज्ञान द्रव्य, पूजार्ह एवं भोगार्ह गुरु द्रव्य के अलावा अन्य किसी भी द्रव्य में नहीं कर सकंते।

3. लुंछन गुरु द्रव्य– रुपये पैसे आदि को हाथ में लेकर गुरु महाराज के ऊपर से तीन बार गोल घुमाते हुए उन्हें गुरु चरणों में रख देना लुंछन द्रव्य कहलाता है। लुंछन द्रव्य का उपयोग साधु-साध्वी वैयावच्च में, पौषधशाला निर्माण में, देवद्रव्य या ज्ञान द्रव्य में हो सकता है। यदि पूर्व परम्परा से पुजारी या बैण्ड वाले को दी जाती हो तो उसे भी दे सकते हैं। अपवादत: गुरु आदेश के अनुसार अन्य क्षेत्र में भी उपयोग कर सकते हैं। जैसे– जिन शासन के न्याय विशारद, उपाध्याय यशोविजयजी म.सा. ने गुरु पूजन की राशि को स्कूल के बालकों की पुस्तक हेतु खर्च करने का आदेश दिया था। अपवाद मार्ग का सेवन गुरु आज्ञा से ही हो सकता है। गुरु द्रव्य का उपयोग विहारधाम या उपाश्रय की व्यवस्था हेतु नहीं हो सकता। गुरु द्रव्य को देवद्रव्य मानते हुए महोपाध्याय समयसुंदरजी सामाचारी शतक में कहते हैं– "ज्ञानस्व देवस्वं गुरुस्ववत्।" अर्थात ज्ञान द्रव्य देवद्रव्य होता है गुरु द्रव्य की भाँति। यद्यपि वर्तमान में ज्ञान द्रव्य ज्ञान खाते में और गुरु द्रव्य गुरु वैयावच्च खाते में प्रयोग किया जाता है।

द्रव्य सप्ततिका के अनुसार पंचमहाव्रतधारी महापुरुषों के आगे गहुँली, गुरु पूजन एवं तत्सम्बन्धी बोलियों का द्रव्य जिनमन्दिर के जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण में लगाना चाहिए। आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी म.सा. के अनुसार पूजार्ह गुरु द्रव्य का उपयोग गुरु महाराज के किसी भी कार्य में नहीं हो सकता। इसे गुरु महाराज से ऊँचे स्थान जैसे कि जिनमन्दिर निर्माण या जीर्णोद्धार हेतु कर सकते हैं। परमात्मा की अंगपूजा में इस द्रव्य का प्रयोग नहीं हो सकता।

शंका– गुरु द्रव्य का प्रयोग गुरु महाराज की सेवा वैयावच्च आदि में क्यों नहीं कर सकते?

समाधान– गुरु द्रव्य को देवद्रव्य मानने वाले ग्रन्थकारों का कहना है कि पंचमहाव्रतधारी साधु-साध्वी द्रव्य के त्यागी होते हैं अत: उनके निमित्त एकत्रित

द्रव्य का प्रयोग उनके लिए नहीं हो सकता इसलिए उनके ऊपर के क्षेत्र में उपयोग करने रूप देवद्रव्य में इसका प्रयोग होता है।

शंका– ज्ञान द्रव्य साधु-साध्वी से ऊपर का क्षेत्र है तो फिर उनके अध्ययन आदि हेतु ज्ञान द्रव्य का प्रयोग कैसे हो सकता हैं?

समाधान– जिस प्रकार देवद्रव्य से निर्मित जिनालय पूजन, महापूजन आदि अनुष्ठानों के माध्यम से सम्यग्दर्शन आदि गुणों में वृद्धि करता है उसी प्रकार ज्ञान द्रव्य भी पुस्तक आदि के माध्यम से ज्ञानादि गुणों के वर्धन में सहयोगी बनता है।

पुस्तक प्रकाशन आदि में ज्ञान खाते का प्रयोग होता है वह द्रव्यश्रुत है। वहीं अध्ययनशील साधु-साध्वी को जो श्रुतज्ञान प्राप्त होता है वह भावश्रुत है। यह भावश्रुत स्व एवं जन-जागरण में उपयोगी बन सकता है अत: साधु-साध्वी को पढ़ाने वाले अजैन पण्डितों को पगार देने हेतु ज्ञान द्रव्य का उपयोग किया जा सकता है। जीर्ण ग्रन्थों के उद्धार आदि में भी आवश्यकता अनुसार इस द्रव्य का प्रयोग हो सकता है। द्रव्यश्रुत के समान ही भावश्रुत भी वंद्य है अत: साधु-साध्वी के अध्ययन में ज्ञान द्रव्य का उपयोग हो सकता है।

शंका– श्रावक-श्राविका के क्षेत्र संबंधी राशि क्या कहलाती है? और इसका उपयोग कहाँ हो सकता है?

समाधान– उदारमना श्रावकों के द्वारा भक्तिभावपूर्वक साधर्मिक उत्कर्ष एवं भक्ति हेतु दी जाने वाली राशि साधारण द्रव्य कहलाती है। साधर्मिक से यहाँ तात्पर्य सम्यकदृष्टि तथा अणुव्रतधारी श्रावक-श्राविकाओं से है। साधर्मिक द्रव्य का प्रयोग सात क्षेत्रों में कहीं पर भी किया जा सकता है। लेकिन इस द्रव्य का उपयोग जन साधारण, अनुकंपा या जीव दया आदि के क्षेत्रों में नहीं हो सकता।

विशेषत: साधर्मिक को धर्म में स्थिर करने, उनके आवश्यकताओं की पूर्ति करने, पौषधशाला, आयंबिल खाता, पाठशाला आदि के जीर्णोद्धार निर्माण एवं रख-रखाव में भी इसका प्रयोग हो सकता है।

शंका– साधारण खाते में कौन-कौन से द्रव्य का समावेश होता है?

समाधान– साधारण खाता अर्थात गृहस्थ श्रावक-श्राविका से सम्बन्धित द्रव्य। इसके अंतर्गत साधर्मिक भक्ति का नकरा, पारणा आदि की राशि, दीक्षार्थी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, दानवीर आदि के बहुमान सम्बन्धी द्रव्य की राशि,

श्री संघ के मुनीम, फलेचुंदडी, नवकारसी आदि के चढ़ावों का समावेश होता है। सम्यक्त्वी देवी-देवताओं से सम्बन्धित समस्त चढ़ावे की राशि भी साधारण खाते में ही जाती है।

कुछ आचार्यों के अनुसार स्वप्न दर्शन से सम्बन्धित राशि, उपधान माला, तीर्थ माला आदि की राशि का उपयोग साधारण द्रव्य के रूप में किया जा सकता है तथा कुछ आचार्यों के अनुसार इनका समावेश देवद्रव्य में होता है।

शंका– देवी-देवता तो देव रूप हैं फिर उनके निमित्त एकत्रित द्रव्य साधारण खाते में क्यों गिना जाता है?

समाधान– जैन धर्म में सम्यक्त्वी देवी-देवताओं को साधर्मिक की उपमा दी गई है एवं उनका बहुमान भी साधर्मिक के रूप में ही होता है। इसी कारण देवी-देवताओं से सम्बन्धित राशि को साधारण द्रव्य माना गया है।

शंका– स्वप्न दर्शन से सम्बन्धित चढ़ावे की राशि साधारण द्रव्य में जानी चाहिए या देवद्रव्य में?

समाधान– स्वप्नों की राशि के विषय में दो मत प्रचलित है। कई आचार्य इसे देवद्रव्य मानने का समर्थन करते हैं तो कई आचार्य इस द्रव्य को साधारण द्रव्य में शामिल करने के पक्षधर हैं। सपनों की बोली यह कोई शास्त्रीय या प्राचीन परम्परा नहीं है। लगभग दो सौ या तीन सौ वर्ष पूर्व यह परम्परा प्रारंभ हुई अतः इस विषय में कोई आगमोक्त या शास्त्रीय नियम नहीं है।

स्वप्न दर्शन की परम्परा पन्यास सत्यविजयजी महाराज ने समाज की परिस्थितियों को देखते हुए राधनपुर में प्रारंभ करवाई और उस रकम को सातों क्षेत्रों में आवश्यकता अनुसार उपयोग करने का प्रस्ताव भी रखा था। तब से आज तक यह परम्परा चल रही है। इस अपेक्षा से यह राशि साधारण द्रव्य में जानी चाहिए। साधारण द्रव्य में सम्मिलित करने हेतु जो अन्य तर्क दिए जाते हैं वे इस प्रकार है–

1990 में हुए एक सम्मेलन के अनुसार प्रभु के मंदिर में या मंदिर के बाहर प्रभु के निमित्त जो चढ़ावें बोले जाते हैं वे देवद्रव्य में सम्मिलित होते हैं। किन्तु "प्रभु" शब्द की स्पष्ट व्याख्या न होने से कई समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। यदि च्यवन कल्याणक से प्रभु मानते हैं तब यह राशि देवद्रव्य में जाती है। यदि केवलज्ञान कल्याणक के बाद प्रभु रूप माने तो यह द्रव्य साधारण खाते में जा

सकता है। यह चढ़ावा शास्त्रोक्त न होने से परम्परानुसार अनुकरण किया जाता है। प्रवर्त्तित परम्परा में देश-काल-परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन लाया जा सकता है। अत: जहाँ जैसी आवश्यकता और व्यवस्था हो वैसा करना चाहिए।'' संबोध सप्तति आदि ग्रन्थों में देवद्रव्य के समान ही साधारण द्रव्य की वृद्धि करने का निर्देश है।

आचार्य विजयवल्लभसूरि के अनुसार स्वप्नों की राशि को साधारण खाते में रखने में कोई बाधा नहीं है क्योंकि यह संघ की धरोहर है, संघ ठहराव करता है और संघ को ही उस पर अमल करना है। उनके इसी कथन के आधार पर यह राशि साधारण द्रव्य में जमा होने लगी। प्रतिष्ठा अंजनशलाका आदि में नवकारसी, स्वामी वात्सल्य आदि प्रभु के निमित्त होने पर भी वह राशि साधारण खाते में जाती है। इसी प्रकार परमात्मा की अष्टप्रकारी पूजा के नकरे आदि साक्षात प्रतिमा से सम्बन्धित होने पर भी जब साधारण खाते में जमा होते हैं और उस द्रव्य से लाए हुए चंदन आदि से जब श्रावक पूजा कर सकते हैं तो फिर स्वप्न द्रव्य को साधारण खाते में क्यों नहीं ले जा सकते? मुनि पीयूषसागरजी म.सा. के अनुसार इस राशि का उपयोग साधारण में कर सकते हैं।

यद्यपि तीर्थंकर जन्म से ही पूज्य होते हैं परन्तु उनकी अष्ट प्रातिहार्य रूप विशेष भक्ति तो केवलज्ञान प्राप्ति के बाद ही होती है। प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार– ''जिनवरेन्द्र: प्रकृष्ट पुण्यरूपतीर्थंकरनामकर्मोदयात्तीर्थंकर इत्यर्थ:' इसमें भी तीर्थंकर नामकर्म के उदय से ही तीर्थंकर को जिनवर मानने का उल्लेख है। देवद्रव्य यह तीर्थंकर परमात्मा से सम्बन्धित है। स्वप्न दर्शन यह तीर्थंकर बनने से पूर्व होता है। अत: उस अवस्था को प्रभु अवस्था न माने तो स्वप्न राशि को साधारण द्रव्य में ले जा सकते हैं।

वर्तमान में अधिकांश संघ स्वप्न राशि को साधारण द्रव्य में ले जाते हैं। जबकि बहुत से आचार्यों का मानना है कि यह राशि देवद्रव्य में जाना चाहिए। उपाध्याय मणिप्रभसागरजी म.सा. के अनुसार भी यह द्रव्य देवद्रव्य में जाना चाहिए।

इन लोगों की मान्यता है कि यह स्वप्न परमात्मा से ही सम्बन्धित है, जन्मोत्सव परमात्मा का मनाते हैं, स्वप्न परमात्मा की माता के द्वारा देखे जाते हैं अत: स्वप्न सम्बन्धी द्रव्य देवद्रव्य में जाना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वप्न बोली की परम्परा परवर्तीकालीन है। यह देवद्रव्य में जाए या साधारण द्रव्य में इसकी कोई आगमिक मान्यता नहीं है अत: समस्त संघों की सुविधा, व्यवस्था एवं आवश्यकतानुसार इस विषय में गुरुभगवंतो को निर्णय लेना चाहिए। मेरा मानना है कि साधारण द्रव्य में रखने से देवद्रव्य में आवश्यकता होने पर इसका उपयोग वहाँ हो सकता है किन्तु देवद्रव्य की राशि अन्य क्षेत्र में इस्तेमाल नहीं की जा सकती। यदि संघ में प्रत्येक द्रव्य यथोचित मात्रा में हो तो इसे देवद्रव्य में रखा जाए अन्यथा आवश्यकता अनुसार साधारण द्रव्य में रखने के बाद उसे विभाजित किया जाना चाहिए।

शंका– सर्व साधारण (शुभ) खाते में कौन से द्रव्य का समावेश होता है और इसका उपयोग कहाँ हो सकता है?

समाधान– धार्मिक या धर्मादा (Religious or Charitable) किसी भी शुभ कार्य हेतु जो चंदा इकट्ठा किया जाता है वह द्रव्य सर्व साधारण खाते या शुभ खाते में जमा होता है।

चातुर्मास दौरान होने वाले समस्त खर्च, वार्षिक व्यवस्था एवं खर्च राशि कुदरती प्रकोप, राष्ट्रीय एवं सामाजिक आपदा आदि के प्रसंग पर चैरिटी के रूप में इसका प्रयोग हो सकता है। यह द्रव्य सातों क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सकता है। दान-दाताओं ने जिस आशय से या जिस क्षेत्र में प्रयोग करने हेतु धन दिया हो उसका उसी क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिए। साफा चुंदड़ी (फले चुंदडी) के चढ़ावे की आय भी सर्व साधारण क्षेत्र में प्रयुक्त कर सकते हैं।

शंका– साधु-साध्वी रात्रि में होने वाले चढ़ावों में जा सकते हैं?

समाधान– प्रतिष्ठा आदि में होने वाले चढ़ावों में तो देवद्रव्य वृद्धि की अपेक्षा से साधु-साध्वी उपस्थित रहते हैं, परंतु यह चढ़ावे रात्रिकाल में भक्ति आदि के दौरान बोले जाए तो मर्यादानुार साधु-साध्वी को उनमें उपस्थित नहीं रहना चाहिए। परिस्थिति विशेष या उपस्थिति अत्यावश्यक हो तो गुरु आज्ञानुसार वर्तन किया जा सकता है। वैसे सामान्यतया रात्रि के समय साधु-साध्वी चढ़ावों में नहीं जा सकते।

शंका– श्रावकों की तरफ से साधु-साध्वी चढ़ावा बोल सकते हैं?

समाधान– साधु जीवन की अपनी कुछ मर्यादाएँ हैं। साधु-साध्वी को संघ

समाज उत्थान के कार्य उन्हीं मर्यादाओं में रहकर करने चाहिए। चढ़ावा बोलने का अधिकार मात्र श्रावकों को ही होता है। साधु प्रेरणा दे सकते हैं किन्तु चढ़ावा बोल नहीं सकते। इससे कई बार श्रावकों के मन में उनके प्रति हीन भाव भी उत्पन्न हो सकते हैं। श्रावक यदि राशि जमा न कर पाए तो साधु महादोष का भागी एवं जन हीलना का कारण बन सकता है।

शंका– चढ़ावा लेने वाले श्रावक में कोई योग्यता होना आवश्यक है? तथा इस विषय में कोई शास्त्रोक्त उल्लेख प्राप्त होते हैं?

समाधान– अब तक ऐसा कोई उल्लेख पढ़ने में नहीं आया है। हाँ! पर उसमें प्रयुक्त राशि सद्मार्ग से न्याय नीतिपूर्वक अर्जित होनी चाहिए तथा उस राशि का भुगतान उसी समय कर देना चाहिए।

जीत व्यवहार में जिनशासन का प्राथमिक विधान है चढ़ावा। सुज्ञ श्रावकों द्वारा देव-गुरु-धर्म की भक्ति, बहुमान आदि के लिए तथा श्रावक समुदाय में एक निश्चित लाभार्थी तैयार करने के लिए इस विधान का गुंफन हुआ होगा ऐसी विचारणा है। जैन शास्त्रों में वर्णित सात क्षेत्रों की भक्ति एवं तत्सम्बन्धी द्रव्य वृद्धि के लिए यह एक सम्यक विधान है। इसे बोली, चढ़ावा, नकरा आदि विविध नामों से जाना जाता है। विविध क्षेत्र सम्बन्धी चढ़ावों से एकत्रित हुआ द्रव्य किस क्षेत्र में प्रयोग किया जा सकता है, यह एक विषम प्रश्न है? इस विषय में विभिन्न जैन परम्पराओं में ही अनेक प्रकार के मतभेद देखे जाते हैं। यहाँ पर जैन शासन की मुख्य तीन परम्पराओं का तत्सम्बन्धी मन्तव्य दिया जा रहा है। अन्य परम्पराओं का प्रामाणिक विस्तृत वर्णन प्राप्त न होने से तद्विषयक उल्लेख नहीं किया है। श्रावक वर्ग प्रस्तुत सारणी के माध्यम से विविध बोलियों की राशि उपयोग के विषय में समुचित निर्देशन प्राप्त कर सकेगा।

कौनसी बोली किस खाते में?

अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव संबंधी बोलियाँ

क्रम. चढ़ावे/नकरे का नाम	कौन से खाते में भिन्न-भिन्न मान्यता के अनुसार			
	तपागच्छ परम्परावर्ती आ.कीर्तियश सूरिजी म.सा. के अनुसार	खरतरंगच्छ आम्नायवर्ती उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. के अनुसार	मुनि पीयूष सागरजी म.सा. के अनुसार	त्रिस्तुतिक परम्परावर्ती मुनि जयानंद विजयजी म.सा. के अनुसार
1. कुंभ स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	कल्पित देवद्रव्य	देवद्रव्य
2. अखंड दीपक स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	कल्पित देवद्रव्य	देवद्रव्य
3. जवारारोपण	देवद्रव्य	देवद्रव्य	कल्पित देवद्रव्य	देवद्रव्य
4. माणक स्थंभारोपण	देवद्रव्य	देवद्रव्य	कल्पित देवद्रव्य	देवद्रव्य
5. क्षेत्रपाल पूजन	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
6. नंद्यावर्त्त पूजन	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
7. दश दिक्पाल पूजन	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
8. नवग्रह पूजन	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
9. अष्टमंगल पूजन	देवद्रव्य	साधारण	कल्पित देवद्रव्य	
10. सोलह विद्यादेवी पूजन	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
11. 56 दिग् कुमारी के चढ़ावें	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
12. चौसठ इन्द्र के चढ़ावें	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
13. भगवान के माता-पिता बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण

14.	सौधर्मेन्द्र बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
15.	मन्त्रीश्वर बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
16.	नगरसेठ बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
17.	प्रथम छड़ीदार बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
18.	द्वितीय छड़ीदार बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
19.	स्वप्न पाठक बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
20.	ईशानेन्द्र बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
21.	अच्युतेन्द्र बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
22.	हरिणगमेषी देव बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
23.	प्रियंवदा दासी बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
24.	भगवान के भुआ एवं फूफाजी बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
25.	भगवान के सास-ससुर बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
26.	भगवान के मामा-मामी बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
27.	प्रतिमाजी के अठारह अभिषेक का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
28.	भगवान को सूर्य-चंद्र दर्शन करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
29.	दर्पण में प्रभु मुख के दर्शन करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
30.	कुबेर भंडारी बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
31.	पण्डित शिक्षक बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
32.	राज्य पुरोहित बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
33.	पाठशाला के विद्यार्थी बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
34.	राज्यसभा में प्रभुजी का राजतिलक करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण

35. सेनाधिपति बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
36. नौ लोकांतिक देव बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
37. भगवान की कुल महत्तरा बनने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
38. भगवान के ऊपर नमक उतारने का चढ़ावा	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
39. भगवान के विवाह प्रसंग में जो कुछ भेंट तिलक रूप में आता है	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
40. भगवान के नामकरण के समय भुआजी जो कुछ खिलौने आदि लाती है	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण
41. भगवान के मामेरा (मायरा) में आई चीजें	देवद्रव्य	देवद्रव्य	साधारण	साधारण
42. जन्माभिषेक के बाद राजा के घर में आया धन	देवद्रव्य	देवद्रव्य	कल्पित देव	
43. ध्वजदंड एवं कलश का अभिषेक करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
44. ध्वजदंड एवं कलश की चंदनपूजा करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
45. ध्वजदंड एवं कलश की पुष्पपूजा करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
46. ध्वजदंड की आरती	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
47. ध्वजदंड को पोंखण करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
48. जिनमंदिर पर ध्वजा आरोहण का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
49. जिनमंदिर पर कलश स्थापित करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य

50.	जिनमंदिर के द्वारोद्घाटन का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
51.	जिनमंदिर में कुंकुम के छापे लगाने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
52.	मंगलमूर्ति प्रतिष्ठा एवं भराने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
53.	जिनप्रतिमा बनाने (भरवाने) का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
54.	जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
55.	प्रतिष्ठा के समय तोरण बांधने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
56.	प्रतिष्ठा के समय घंटा बजाने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
57.	एक लाख अखंड अक्षत से स्वस्तिक करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
58.	कांसी की थाली में घी भरकर परमात्मा के दर्शन करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
59.	प्रतिष्ठा के बाद अरिहंत परमात्मा की अष्टप्रकारी पूजा करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
60.	मूलनायक परमात्मा को हार-मुकुट आभूषण आदि पहनाने का चढ़ावा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	देवद्रव्य	देवद्रव्य
61.	प्रतिष्ठाचार्य की नवांगी पूजा करने का चढ़ावा	देवद्रव्य	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य

गुरुमंदिर सम्बन्धी बोलियाँ

1.	गुरुमूर्ति/पादुका निर्माण करवाने का चढ़ावा	गुरुमंदिर आदि	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु. गुरुद्रव्य
2.	गुरुमूर्ति/चरण भरवाने का चढ़ावा	गुरुमंदिर आदि	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु. गुरुद्रव्य
3.	गुरुमूर्ति अथवा चरण प्रतिष्ठित करने का चढ़ावा	गुरुमंदिर आदि	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु. गुरुद्रव्य
4.	भंडार भरने का चढ़ावा	गुरुमंदिर आदि	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु. गुरुद्रव्य
5.	गुरुमंदिर की ध्वजा चढ़ाने का नकरा	गुरुमंदिर आदि	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु. गुरुद्रव्य
6.	गुरुमंदिर में कलश(इंडा) चढ़ाने का नकरा	गुरुमंदिर आदि	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु. गुरुद्रव्य

जिनमंदिर खनन एवं शिलान्यास सम्बन्धी बोलियाँ

1.	जिनमंदिर निर्माण के समय उंबर स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
2.	अग्निकोण की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
3.	दक्षिण दिशा की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
4.	नैऋत्य कोण की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
5.	पश्चिम दिशा की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
6.	वायव्य कोण की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
7.	उत्तरदिशा की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
8.	ईशान कोण की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
9.	पूर्व दिशा की शिला स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य
10.	मध्य में मुख्य कूर्म शिला की स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य

11. जिनमंदिर के भूमि पूजन का खनन	देवद्रव्य	देवद्रव्य		
12. जिनमंदिर बारसाख (द्वारशाखा) की स्थापना	देवद्रव्य	देवद्रव्य		
13. जिनमंदिर का खात मुहूर्त्त	देवद्रव्य	देवद्रव्य		

परमात्मा के वरघोडे सम्बन्धी चढ़ावे

1. परमात्मा को रथ में विराजित करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
2. परमात्मा को रथ में लेकर बैठना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह देव.	देवद्रव्य
3. परमात्मा के रथ का सारथी बनना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
4. रथ के दोनों तरफ चामर ढुलाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
5. परमात्मा को पोंखना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
6. इन्द्रध्वजा की गाड़ी में बैठना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
7. हाथी-घोड़ा-बग्गी आदि में सवार होना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
8. परमात्मा के आगे दूध की धार देना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
9. परमात्मा के आगे बाकुला देना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
10. धूप दीपक लेकर चलना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
11. छड़ीदार बनने का	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
12. रथ के आगे थाली (डंका/झालर) बजाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
13. रथ के पीछे रमण दीपक लेकर चलना	देवद्रव्य	देवद्रव्य		

पर्यूषण में जन्म वांचन प्रसंग से सम्बन्धित चढ़ावे

1.	जन्म वांचन के समय सकल संघ पर गुलाबजल छाटना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
2.	संघ के मुनीमजी या मेहताजी बनना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
3.	स्वप्न की बोली लेने वाले परिवार का बहुमान करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
4.	चौदह स्वप्नों को उतारना एवं झुलाना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
5.	चौदह सपनों को पुष्प-सुवर्ण-मोती साधारण आदि की माला पहनाना		साधारण	साधारण	साधारण
6.	पालने में परमात्मा को विराजमान करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
7.	पालना झूलाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देवद्रव्य	साधारण
8.	पालनाजी घर ले जाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देवद्रव्य	
9.	प्रभु जन्म की थाली बजाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य		
10.	पालनाजी के आगे धूप-दीप चामर आदि करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देवद्रव्य	
11.	प्रियंवदा बनकर प्रभु जन्म की बधाई देना	देवद्रव्य		साधारण	साधारण
12.	पालनाजी के आगे आरती उतारना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देवद्रव्य	
13.	जन्म के छापें लगाना		साधारण		साधारण

जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमा से सम्बन्धित कुछ अन्य चढ़ावे

1.	तीर्थमाला, इन्द्रमाला, उपधानमाला	देवद्रव्य	देवद्रव्य	साधारण	साधारण
2.	संघपति, उपधानपति आदि के बहुमान सम्बन्धी चढ़ावें	देवद्रव्य	साधारण	साधारण	साधारण

3.	परमात्मा को नगरप्रवेश एवं गंभारा प्रवेश करवाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजा.देव.	देवद्रव्य
4.	परमात्मा की गादी के नीचे स्वस्तिक, कच्छप आदि रखना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
5.	अरिहंत परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजादेव.	देवद्रव्य
6.	वार्षिक अष्टप्रकारी पूजा के नकरे	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देवद्रव्य	
7.	परमात्मा की अंगरचना करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य		देवद्रव्य
8.	परमात्मा को आभूषण, आंगी चढ़ाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव	देवद्रव्य
9.	आरती मंगलदीपक उतारना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
10.	निर्माल्य द्रव्य को बेचकर प्राप्त की गई राशि	देवद्रव्य	देवद्रव्य	निर्माल्य देवद्रव्य	देवद्रव्य
11.	शांति कलश करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
12.	परमात्मा के सन्मुख रखे भंडार की राशि	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
13.	परमात्मा के भंडार में प्रथम बार द्रव्य पधराना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
14.	जिनभक्ति निमित्त शास्त्रविहित अनुष्ठान करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य		
15.	स्नात्रपूजा करते समय परमात्मा के नीचे सोना-चाँदी पैसा आदि रखना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
16.	शांति कलश आदि के समय डाले जाने वाली राशि	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
17.	आरती, मंगलदीपक की थाली में रखी गई राशि	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
18.	स्नात्र पूजा में 32 करोड़ के समय रखे जाने वाली राशि	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य

19. मंदिर में काजा निकालना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
20. वर्षगाँठ आदि के दिन नूतन ध्वजा आदि चढ़ाना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देव.	देवद्रव्य
21. गृह मंदिर की आवक	देवद्रव्य	देवद्रव्य		देवद्रव्य

देवी-देवता से सम्बन्धित चढ़ावे

1. शासन देवी-देवता एवं सम्यग्दृष्टि देवी-देवता के गोखले बनवाना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
2. शासन देवी-देवता एवं समकित दृष्टि देवी-देवता के मंदिर का भूमिपूजन	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
3. शिलान्यास सम्बन्धी चढ़ावे	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
4. शासन देव-देवी एवं समकिती देवी-देवताओं की आरती और मंगल दीपक आदि के चढ़ावे	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
5. शासन देव-देवी के समक्ष भंडार एवं आरती आदि में रखे पैसे	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
6. शासन देव-देवी एवं समकिती देव-देवी की अष्टप्रकारी पूजा के चढ़ावे	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
7. शासन देव-देवी आदि के महापूजन सम्बन्धी नकरें	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण

आगम ज्ञान सम्बन्धी चढ़ावे

1. श्री कल्पसूत्र आदि धर्म ग्रंथ पूज्यजनों को बहराने का नकरा	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य

2.	श्री कल्पसूत्र आदि धर्मग्रंथ श्रवणा करने का चढ़ावा	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
3.	पाँच ज्ञान की पूजा के चढ़ावे	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
4.	पैतालीस आगम की ज्ञान पूजा के चढ़ावे	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
5.	कल्पसूत्र के अंतर्गत चित्र दर्शन करवाने का चढ़ावा	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
6.	ज्ञान पूजा हेतु पुस्तक के ऊपर रखी राशि	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
7.	प्रतिक्रमण के समय सूत्र बोलने का चढ़ावा	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
8.	आगम ग्रंथों के वरघोड़े सम्बन्धी द्रव्य	ज्ञान खाता	ज्ञान द्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
9.	ज्ञानदाता गुरुभगवंत के पूजन का चढ़ावा	देवद्रव्य	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु द्रव्य	गुरुद्रव्य

दीक्षा प्रसंग पर बोली जाने वाली विविध बोलियाँ

1.	दीक्षार्थी को अंतिम विदाई/ विजय तिलक करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
2.	दीक्षार्थी का श्रीफल, शॉल, माला आदि से बहुमान करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
3.	दीक्षार्थी को अभिनंदन पत्र अर्पित करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
4.	दीक्षार्थी के माता-पिता का बहुमान करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण

दीक्षा-उपकरण सम्बन्धी विविध चढ़ावे

1.	कामली	साधुसाध्वी वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूर्जाह	गुरुद्रव्य गुरुद्रव्य
2.	चोलपट्टा/साडा(अधोवस्त्र)	साधुसाध्वी वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूर्जाह	गुरुद्रव्य गुरुद्रव्य

3. पात्रों की जोड़	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
4. तिरपणी-चेतना	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
5. आसन	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
6. संथारा	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
7. उत्तरपट्टा	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
8. दांडा	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
9. दंडासन	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
10. सुपडी-पूंजनी	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
11. चरवली	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
12. नवकारवाली	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य	ज्ञानखाता		ज्ञानद्रव्य
13. पुस्तक-शास्त्र	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य	ज्ञानखाता		ज्ञानद्रव्य
14. चादर	वैयावच्च	गुरुद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
15. दीक्षा के बाद नूतन दीक्षित का नाम जाहिर करना	देवद्रव्य	देवद्रव्य	पूजार्ह	गुरुद्रव्य	गुरुद्रव्य
16. दीथार्थी के माता-पिता बनना			साधारण		

गुरु पूजन सम्बन्धी चढ़ावे

1. गुरु पूजन की राशि	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
2. गुरु महाराज को कामली बहराना	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
3. गुरु महाराज के सन्मुख गहुंली का द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
4. गुरु महाराज के प्रवेश उत्सव सम्बन्धी विविध चढ़ावे	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
5. गुरु महाराज की नवांगी पूजा करना	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
6. मंगल कलश से बधाना	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य

आचार्य आदि पदस्थापना सम्बन्धी चढ़ावे

1.	आसन आदि उपधि के चढ़ावे	देवद्रव्य	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
2.	स्थापनाचार्यजी बहराना	देवद्रव्य	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
3.	मंत्रपट्ट-मंत्राक्षर बहराना	ज्ञानद्रव्य	ज्ञानद्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
4.	नवकारवाली बहराना	ज्ञानद्रव्य	ज्ञानद्रव्य	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
5.	ताम्लगी लसकाने ता	पूजा देव.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
6.	गुरुपूजन की राशि	पूजा देव.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
7.	नूतन नाम घोषित करना	देवद्रव्य	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य

साधु-साध्वी के कालधर्म से सम्बन्धित चढ़ावे

1.	स्वर्गस्थमुनि के शरीर की वासक्षेप आदि से पूजन करना	पूजा.गुरु.	वैयावच्च द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
2.	पालखी में विराजमान करना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
3.	काम्बली ओढ़ाना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
4.	केशर छांटना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
5.	पालकी के ऊपर पाँच कलश स्थापित करना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
6.	पालखी को कंधा देना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
7.	गुलाल उड़ाना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
8.	अग्नि संस्कार करना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
9.	चन्दन की लकड़ी रखना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
10.	अंतिम यात्रा का वर्षीदान देना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
11.	धृत लेकर चलना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
12.	धूप दीप साथ लेकर चलना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
13.	अग्नि साथ लेकर चलना	पूजा.गुरु.	वै. द्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य

14.	गुरु स्मारक हेतु खनन/ शिलान्यास के चढ़ावे	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
15.	गुरु प्रतिमा/चरण भरवाने का चढ़ावा	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
16.	गुरु प्रतिमा/चरण की प्रतिष्ठा करना	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
17.	गुरु प्रतिमा/चरण की वासक्षेप पूजा करना	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
18.	गुरु प्रतिमा/चरण की अष्टप्रकारी पूजा करना	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
19.	गुरु प्रतिमा/चरण की आरती उतारना एवं मंगलदीपक करना	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
20.	गुरु महाराज का फोटो लगवाना	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य
21.	गुरु मंदिर में रखे भंडार की राशि	पूजा.गुरु.	गुरुद्रव्य	पूजार्ह गुरु.	गुरुद्रव्य

श्रावक-श्राविका क्षेत्र से सम्बन्धी कुछ चढ़ावे

1.	नूतन उपाश्रय आदि के भूमिपूजन खनन एवं शिलास्थापन सम्बन्धी लाभ लेना	उपाश्रय	साधारण	साधारण	साधारण
2.	उपाश्रय का उद्घाटन करना	उपाश्रय	साधारण	साधारण	साधारण
3.	नूतन उपाश्रय में कुंकुम के छापा लगाना	उपाश्रय	साधारण	साधारण	साधारण
4.	उपाश्रय में शय्यातर द्वारा एकत्रित चंदा	उपाश्रय	साधारण	साधारण	साधारण
5.	संघपति, उपधानपति आदि का बहुमान करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण

6. पत्रिका में जय जिनेन्द्र	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
7. पर्यूषण, महापूजन आदि महोत्सव में उपस्थित श्रावक-श्राविका के चरण प्रक्षालन, बहुमान, स्वागत आदि का नकरा	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
8. महोत्सव के लिए संघ की जाजम बिछाने की बोली	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
9. दीक्षार्थी के विदाई तिलक की बोली	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
10. भोजनशाला/आयम्बिल खाते का भूमिपूजन	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
11. भोजनशाला/आयम्बिल खाते का शिलान्यास, उद्घाटन आदि			साधारण	साधारण
12. भोजनशाला/आयम्बिल खाते की कायमी तिथि	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
13. संवत्सरी पर सकल संघ को मिच्छामि दुक्कडम् देने का नकरा	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
14. पाठशाला में बालकों को किसी के हाथों इनाम आदि वितरण करवाना	पाठशाला/ साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
15. स्नात्रपूजा में इस्तेमाल हुए सिंहासन आदि का नकरा	देवद्रव्य	देवद्रव्य	क.देवद्रव्य	देवद्रव्य
16. परमात्मा की अंगरचना का नकरा	आंगीखाता	देवद्रव्य		देवद्रव्य
17. ग्रंथ प्रकाशन एवं विमोचन				
1. ज्ञान खाते से प्रकाशित हो	ज्ञानखाता	ज्ञानखाता	ज्ञानखाता	ज्ञानद्रव्य
2. व्यक्तिगत लाभार्थी द्वारा प्रकाशित हो	पुस्तक प्रकाशन			

18. अठारह अभिषेक सम्बन्धी चढ़ावे	देवद्रव्य	देवद्रव्य		देवद्रव्य
19. लघुशांतिस्नात्र एवं बृहत्शान्तिस्नात्र सम्बन्धी चढ़ावे	देवद्रव्य	देवद्रव्य		
20. उद्यापन (उजमणा) का उद्घाटन करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
21. सिद्धचक्र पूजन आदि के चढ़ावे	देवद्रव्य	साधारण		देवद्रव्य
22. तपस्वी श्रावक-श्राविकाओं को पारणा कराने की बोली		साधारण	साधारण	साधारण
23. दीप प्रज्वलित करना	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
24. मेहन्दी वितरण	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण
25. फलेचुन्दडी, नवकारसी आदि का चढ़ावा	साधारण	साधारण	साधारण	साधारण

जैन धर्म एक Well-managed धर्म है। जैनाचार्यों एवं शास्त्रकारों ने जो भी विधि या मार्ग बताया उसका पूर्ण रूपेण सदुपयोग करने का मार्ग भी उन्होंने निर्दिष्ट किया है। यदि सूक्ष्मतापूर्वक विचार करें तो जैन मन्दिरों की व्यवस्था सनातन मन्दिरों के समान नहीं है। वहाँ न कोई खाता है, न कोई विशेष द्रव्य अत: हर कार्य में हर द्रव्य का प्रयोग कर लेते हैं।

जैन मन्दिरों की अपनी शास्त्रीय व्यवस्था है। देवद्रव्य का उपयोग देवद्रव्य में ही होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में जानना चाहिए। परन्तु आजकल के अधिकांश श्रावक वर्ग एवं पदाधिकारी गण इन सबसे अनभिज्ञ हैं और इसी कारण प्रत्येक द्रव्य का समुचित वर्गीकरण नहीं कर पाते कई बार सब द्रव्य mix हो जाते हैं। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए यहाँ संक्षिप्त में सात क्षेत्र विषयक जैनाचार्यों की मूल अवधारणाओं को प्रस्तुत किया है। जिससे श्रावक वर्ग शास्त्रोक्त आधार पर धार्मिक द्रव्य का सदुपयोग करते हुए जिनशासन की सेवा कर सकें एवं मानसिक संशयों को भी दूर कर सकें।

●

अध्याय-10

श्रुत सागर से निकले समाधान के मोती

जैन धर्म के सिद्धान्त सरिता की एक मुख्य धारा है अनेकान्तवाद। इसे सापेक्षवाद या स्याद्वाद के नाम से भी जाना जाता है। सरल भाषा में कहें तो देश-काल-परिस्थिति के अनुसार विवेक पूर्वक सत्य का आचरण ही अनेकान्तवाद है। एक ही बात हर जगह और हर समय लागू नहीं हो सकती। द्रव्य जगत, भाव जगत आदि पर भी कई निर्णय निर्धारित होते हैं।

जिनपूजा, जिनमंदिर आदि के विषय में भी कई ऐसे प्रश्न हैं जिनके विषय में विवेक पूर्वक परिस्थिति अनुसार निर्णय लेना चाहिए। वहाँ पर किसी एक बात को लेकर लकीर के फकीर नहीं बन सकते। भाव जगत की इसमें एक मुख्य भूमिका होती है। इस विषय में न तो आगम ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है, न ही अद्योपान्त पुस्तकों में, क्योंकि कई बार अपवाद मार्ग को राजमार्ग समझ कर उसे परम्परा बना दिया जाता है। अत: हम यहाँ पर जिन प्रश्नों की चर्चा कर रहे हैं, उनमें मतान्तर हो सकता है अत: दिए गए समाधान को ही राजमार्ग न समझें। अपितु स्वमति एवं विवेकपूर्वक परिस्थिति सापेक्ष निर्णय लें।

उदाहरणतया हम अपने दैनिक जीवन पर ही दृष्टि डालें तो इसे समझ सकते हैं। खांसी या बुखार की दवाई (Syrup) बच्चे-बड़े-युवा आदि को अलग-अलग प्रमाण में दी जाती है। यदि कोई यह कहे कि यह दवाई तो एक ही मात्रा में सबको देनी पड़ेगी तो वह उचित नहीं होगा और उसके बाद रोग का प्रमाण भी देखा जाता है। अत: सभी के लिए या हमेशा एक समान नियम लागू नहीं होते। किसी को भी इन प्रश्नों के समाधान को लेकर कोई शंका हो तो गुरुगम पूर्वक इसका निवारण करें।

शंका– भोमियाजी आदि अधिष्ठायक देवों की देहरी मंदिर के भीतर बनाना चाहिए या नहीं?

समाधान– अधिष्ठायक देव, गुरुमूर्ति आदि की स्थापना मूल गर्भगृह (गभारा) में नहीं हो सकती, रंगमंडप, सभामंडप आदि में कहीं भी हो सकती

है। यद्यपि शासन देव-देवी के गोखले मूल गभारे में भी बनाए जा सकते हैं। प्राचीन कई मन्दिरों में यह विधान देखा जाता है। इनकी आराधना भी परमात्मा के समक्ष कर सकते हैं, परंतु यह विवेक अवश्य रखें की परमात्मा को गौण करके उनकी भक्ति न करें। सर्वप्रथम परमात्मा का स्थान होना चाहिए।

शंका– जिनप्रतिमा के सामने गुरुदेव को वंदन करना या नहीं?

समाधान– इस विषय में दो मत प्राप्त होते हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार भगवान के समक्ष गुरु को वंदन नहीं करना चाहिए क्योंकि परमात्मा का स्थान गुरु से बड़ा होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि परमात्मा के सामने भी गुरु को वंदन कर सकते हैं। नवकार मंत्र में भी पहले देव पद और फिर गुरु पद को वंदन किया गया है। सिद्धचक्रजी के यन्त्र में भी सबको एक साथ स्थान प्राप्त है अत: जिनमूर्ति के समक्ष देवमूर्ति को भी वंदन कर सकते हैं। परंतु मंदिर में यदि गुरुभगवंत दर्शन कर रहे हो तो उन्हें वंदन नहीं करना चाहिए, इससे उन्हें दर्शन करने में बाधा उत्पन्न हो सकती है तथा अन्य लोगों को भी दर्शन-पूजन आदि में विक्षेप हो सकता है।

शंका– यदि गोखलों में या छोटी-छोटी देहरियों में मूर्ति की स्थापना की जा सकती हो तो गुरुमूर्ति को भगवान के समीप विराजमान कर सकते हैं?

समाधान– गुरुमूर्ति को भगवान के निकट अलग देहरी में गभारे के बाहर विराजमान कर सकते हैं। किन्तु परमात्मा एवं गुरु का Level समान नहीं होना चाहिए। गुरुमूर्ति का पबासन परमात्मा से नीचे होना चाहिए। समकक्ष स्तर पर नहीं बिठा सकते।

शंका– पत्रिका, पुस्तक आदि में परमात्मा, गुरु भगवंत आदि का फोटो छपवाना चाहिए या नहीं? तथा पंचमहाव्रतधारी साधुओं के समकक्ष यति, श्रीपूज्यजी आदि के फोटो दे सकते हैं?

समाधान– वर्तमान में पत्र-पत्रिका-पुस्तकों में फोटो का प्रचलन अति में बढ़ गया है। नित नए कार्यक्रम होते हैं और उनकी पत्रिकाएँ छपती है। लोगों के लिए इन सबको संभालकर रखना लगभग संभव नहीं है और न ही उनके मन में परमात्मा के प्रति अहोभाव है। आजकल तो उन्हें रद्दी में बेच दिया जाता है या जलशरण कर दिया जाता है। इन परिस्थितियों में फोटो नहीं देना ही अधिक उचित है। जहाँ तक समाचार देने या Advertisement करने की बात है तो

आजकल Sms, Twitter or e-mail के जरिए त्वरित सूचना प्रसारण किया जा सकता है। अत: आवश्यकता अनुसार ही इनमें खर्च करना चाहिए।

पंच महाव्रतधारी साधुओं का स्थान यति आदि साधकों से ऊपर होता है। संभव है कि यतियों का साधना पक्ष साधुओं से मजबूत हो तो भी तप-त्याग-संयम एवं महाव्रतों की अपेक्षा साधु का स्थान उनसे बड़ा है अत: दोनों की फोटो समकक्ष नहीं होनी चाहिए।

शंका– सिद्धचक्रजी, बीशस्थानकजी आदि के आले के ऊपर आगम पेटी रख सकते हैं?

समाधान– पेटी में यदि आगम ग्रन्थ रखे हुए हो तो उन्हें सिद्धचक्रजी आदि के ऊपर रख सकते हैं क्योंकि जिनवाणी को जिनेश्वर के समान ही पूज्य माना गया है। यदि उस पेटी में ज्ञान का पैसा आदि रखा जाता है तो वह सिद्धचक्रजी आदि के ऊपर नहीं रह सकती।

शंका– अक्षत पूजा करते समय दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ढ़ेरी के स्थान पर उनके चित्रों का आलेखन कर सकते हैं या नहीं?

समाधान– जिस प्रकार हम स्वस्तिक, नंद्यावर्त्त आदि विविध आकारों में बनाते हैं उसी तरह दर्शन, ज्ञान, चारित्र की आकृतियाँ भी बना सकते हैं। कई बार पत्थर, शंख पुष्प आदि वस्तुओं में देव, गुरु आदि की स्थापना की जाती है। इसी तरह तीन ढेरियाँ भी रत्नत्रयी का प्रतीक स्वरूप है। तीन ढेरियाँ बनाना सरलतम मार्ग है। कोई यदि उनके चित्र बनाता है तो उसमें कोई दोष नहीं है।

शंका– हम चैत्यवंदन कर रहे हों और कोई यदि हमारे द्वारा बनाया गया स्वस्तिक आदि हटा दे तो क्या करना चाहिए?

समाधान– स्वस्तिक आदि बनाना द्रव्य क्रिया का एक अंग है। यह क्रिया करते समय हमारी भावना द्रव्य समर्पित करने एवं त्याग करने की होती है। एक बार समर्पित करने के बाद हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। तीसरी निसीहि के उच्चारण के बाद द्रव्यपूजा से सम्बन्ध Cut OFF हो जाता है अत: भावपूजा करते हुए द्रव्यपूजा के सम्बन्ध में किसी प्रकार के विकल्प, चिंतन आदि नहीं करना चाहिए। यदि कोई हमारा स्वस्तिक आदि मिटा दे तो उससे कलह-क्लेश करने अथवा इस विषय में खेद करने से उल्टा कर्म बंधन होता है। शास्त्रों में कोई ऐसा विधान नहीं है कि भाव क्रिया करते समय द्रव्य क्रिया

की सामग्री भी यथावत रखनी चाहिए। मन्दिर में स्थान आदि की कमी होने पर दूसरा उसे हटाए पहले उससे हमें उसे हटा देना चाहिए।

शंका– अभिषेक की क्रिया समापन की ओर हो इधर हमें पहुँचते-पहुँचते विलम्ब हो जाए तो हमें पुन: अभिषेक करना चाहिए या भावों से ही संतोष मान लेना चाहिए?

समाधान– यदि किसी का नित्य प्रक्षाल का नियम हो और किसी कारण विशेष से देरी हो जाए किन्तु अंगलुंछन चल रहा हो तो फिर छोटी प्रतिमाजी की प्रक्षाल करके संतोष कर लेना चाहिए। यदि अभिषेक क्रिया चल रही हो तो अवश्य कर लेना चाहिए परन्तु तकरार आदि करके प्रक्षाल नहीं करना चाहिए। पुण्य लाभ तो भावों से ही मिल जाता है। व्यवस्थापकों को भी आने वाले पूजार्थी के भाव जगत को ध्यान में रखकर निर्णय लेना चाहिए। व्यवस्था बिगड़े ऐसा भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए और किसी के मन में खेद भाव उत्पन्न हो ऐसा भी कार्य नहीं करना चाहिए। पूजार्थी को भी अखेद एवं अद्वेष भाव के साथ शेष क्रिया करनी चाहिए।

शंका– पूजा के वस्त्र पहनने नहीं आते हो तो कुर्ता-पायजामा में पूजा कर सकते हैं या नहीं? पूजा न करने से तो कुर्ता पायजामा में करना ज्यादा हितकर नहीं है?

समाधान– शास्त्रों में पूजा हेतु बिना सिले हुए दो अखंड वस्त्रों का विधान है। इसी कारण पूजा में धोती और उत्तरासन (दुपट्टा) पहना जाता है। इस नियम के द्वारा पाँच अभिगम में से एक उत्तरासंग का पालन भी हो जाता है। जिसके मन में पूजा करने के उत्कृष्ट भाव होंगे वह व्यक्ति उसके नियमों के प्रति भी उतना ही श्रद्धान्वित होगा। जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी मिल ही जाती है। चाह हो तो व्यक्ति एक ही दिन में पूजा के वस्त्र पहनना सीख सकता है। कई लोग इसलिए कुर्ता-पायजामा की बात करते हैं क्योंकि उन्हें धोती दुपट्टा पहन कर मंदिर जाने में शर्म आती है। परन्तु परमात्म भक्ति में कैसी शर्म? एक-दो लोगों ने मन मुताबिक ड्रेस पहनना शुरू किया तो उन्हें देखकर अन्य लोग भी वैसे वस्त्रों का प्रयोग शुरू कर सकते हैं। इससे मूल परिधान का शनैः-शनैः लोप ही हो जाएगा। व्यवहार क्षेत्र में व्यक्ति को जहाँ जाना होता है वह वहाँ के Dress Code का बराबर पालन करता है। उसी तरह पूजा की Dress Code का

पालन भी आवश्यक है।

यदि कोई विशेष परिस्थिति हो अथवा पूजा की ड्रेस कहीं से उपलब्ध नहीं हो पा रही हो तो कुछ समय के लिए कुर्ता-पायजामा का प्रयोग भी विवेक पूर्वक करना चाहिए एवं शीघ्रातिशीघ्र पूजा के वस्त्र मंगवाने का प्रयत्न करना चाहिए। हो सके तो कुर्ते के स्थान पर दुपट्टा पहनना चाहिए।

शंका– मन्दिरों का निर्माण कैसे क्षेत्र में करना चाहिए?

समाधान– मन्दिर निर्माण हेतु शुद्ध, निर्मल एवं शांत वातावरण वाले स्थान का चुनाव करना चाहिए। इसमें मुख्यरूप से यह ध्यान रखना चाहिए कि आस-पास में भक्तिनिष्ठ श्रावकों का निवास हो तथा आने-जाने वालों को सुविधा हो। आजकल बढ़ती आबादी एवं महंगाई के कारण कई बार Outer शांत स्थानों पर मंदिर बना दिए जाते हैं। कई स्थानों पर तो जगह की सुविधा होने पर Garden तालाब आदि भी बनाए जाते हैं परन्तु ऐसे स्थानों पर लोग दर्शन करने कम और पिकनिक मनाने अधिक आते हैं, वह भी छुट्टी के दिन। शेष दिन वहाँ के सभी कार्य मात्र पुजारी के भरोसे छोड़ दिए जाते हैं, जो कि सर्वथा अनुचित है।

आजकल मंदिरों का निर्माण तो बढ़ रहा है किन्तु मंदिर संभालने वालों की संख्या घट रही है। ऐसी स्थिति में जहाँ पहले से जिनालय हो वहाँ नूतन जिनालय का निर्माण करवाने से पूर्व दीर्घदृष्टि से विचार करना चाहिए। यदि पुजारियों के भरोसे सभी क्रियाएँ छोड़नी हो तो मंदिर निर्माण नहीं करवाना ज्यादा उचित प्रतीत होता है।

शंका– समय की अल्पता अथवा अपनी शान-शौकत दिखाने हेतु पुजारियों के द्वारा पूजा की सब तैयारी करवाना कहाँ तक उचित है?

समाधान– आजकल अधिकांश स्थानों पर पूजा के पूर्व की सम्पूर्ण तैयारियाँ पुजारी के द्वारा की जाती है, ताकि सेठ श्रावक लोग आए और फटाफट पूजा का काम निपटा सके। परन्तु अपनी समय बचत के बारे में सोचने से पूर्व क्या कभी यह जायजा लेने का प्रयत्न किया कि पुजारी किस प्रकार काम करता है? परमात्मा आपके आराध्य हैं। आप उनके विषय में बहुत कुछ जानते हैं, फिर भी आपमें श्रद्धा का वह वेग नहीं तो अजैन पुजारी के मन में आशातना रहित परमात्मा भक्ति के भाव कैसे हो सकते हैं? वह तो जैसे-तैसे भगवान को

नहीं परन्तु सेठ एवं ट्रस्टियों को खुश करने के लिए कार्य करता है। कई बार देखा है कि सुबह-सुबह कर्मचारी या पुजारी बिना नहाएं-धोये रात के अशुद्ध वस्त्रों में ही प्रक्षाल-आरती-पूजा आदि की व्यवस्था करना प्रारंभ कर देते हैं तथा किसी प्रकार से जयणा का भी ध्यान नहीं रखते। प्रक्षाल हेतु नलों का पानी बिना छाने ही भर दिया जाता है। यह सब कहाँ तक उचित है? दिन भर शेष कार्यों के लिए तो पुजारी कई बार बिना पूजा के वस्त्र पहने ही मूल गभारे में प्रवेश कर लेता है अथवा बिना शुद्धि किए ही मात्र पूजा के वस्त्र पहनकर कार्य करने लग जाता है। यह सब परमात्मा की आराधना के स्थान पर आशातना में हेतुभूत बनते हैं। इसी कारण मंदिरों का प्रभाव पूर्ववत देखने में नहीं आता क्योंकि हम स्वयं ही आशातना कर-करके उसके शुद्ध परिणाम युक्त वातावरण को दूषित कर रहे हैं। अत: श्रावकों को जागृत होते हुए इस विषय में कोई ठोस कदम उठाना चाहिए। प्रत्येक संघ में एक ऐसा ग्रूप तैयार होना चाहिए जो स्वयं परमात्मा की प्रक्षाल आदि क्रियाएँ उल्लासपूर्वक करें इसी के साथ मंदिर के व्यवस्थापकों को पुजारी की प्रत्येक क्रिया पर ध्यान रखते हुए उन्हें सम्यक प्रकार से क्रिया करने का निर्देश देना चाहिए।

शंका– ऐसे तीर्थ स्थल जहाँ पर श्रावकों का आगमन छुट्टी या पर्व विशेष के अवसर पर ही होता है। वहाँ पर पुजारियों के भरोसे नित्य प्रक्षाल आदि क्रियाएँ होना कितना औचित्यपूर्ण है?

समाधान– ऐसे अनेक तीर्थ स्थल हैं जहाँ पर जैन श्रावकों का नितांत अभाव है तथा वहाँ पर छुट्टी आदि के दिन ही बाहरी तीर्थयात्रियों का आगमन होता है। कुछ ऐसे तीर्थ स्थल भी हैं जैसे पालीताना, जैसलमेर आदि जहाँ पर अनेक यात्रियों का आगमन तो रोज होता है, किन्तु सभी मूलनायकजी या मुख्य मंदिरों की ही पूजा करते हैं। आस-पास में रही शेष सैकड़ों प्रतिमाओं की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। मूलनायकजी की प्रक्षाल के लिए सैकड़ों की लाईन लगती है वहीं उन शेष प्रतिमाओं पर पूजारी जो करे वो ठीक। किसी को वहाँ देखने की भी फुरसत नहीं होती। ऐसी स्थिति में जहाँ प्रतिमाओं की अधिकता हो और पूजा करने वाले न हो वहाँ पूर्व परम्परा के अनुसार नित्य प्रक्षाल नहीं करना ज्यादा उचित है। वहाँ के व्यवस्थापकों को अधिक मूर्तियों का मोह छोड़कर वे मूर्तियाँ अन्य स्थानों पर जहाँ नए मंदिर निर्माण हो रहे हो वहाँ

भेज देनी चाहिए ताकि उनकी उचित सत्कार भक्ति एवं आराधना हो सके।

शंका– पूजा के वस्त्र अधिक समय तक पहनकर नहीं रखना चाहिए। ऐसी स्थिति में प्रश्न होता है कि तब तो शंखेश्वर, पालीताना आदि में पूजा का नम्बर न लगे तब तक पूजा के वस्त्र पहनकर रखने से भी आशातना होती होगी?

समाधान– पसीने आदि से वस्त्र अशुद्ध न हो अथवा अन्य सांसरिक कार्य उनमें सम्पन्न न किए जाए इस हेतु पूजा के वस्त्र अधिक समय तक न पहनकर रखने का नियम है। यदि जिनालय में परमात्मा भक्ति करते हुए या पूजन-महापूजन आदि में चार-पाँच घंटे पूजा के वस्त्र पहने हुए रहते हैं तो उसमें आशातना नहीं होती। उन वस्त्रों को दूसरी बार प्रयोग करने से पूर्व धो लेना चाहिए।

शंका– वर्तमान में मंदिर परिसर के अन्तर्गत बनते स्नानघर, पुजारियों के निवासस्थान आदि उचित है या अनुचित?

समाधान– यहाँ पर दोनों पक्षों से विचार करना आवश्यक है। ऐसे स्थान जहाँ पर मंदिर एवं घरों के बीच की दूरी 5-10 किमी से अधिक है तथा पूजा के वस्त्र पहनकर आना संभव नहीं है वहाँ बाथरूम का निर्माण आवश्यक है। किन्तु आजकल जगह की अल्पता के कारण मंदिरों के बाजु में ही स्नानघरों का निर्माण होने लगा है जो कि सर्वथा अनुचित है एवं असभ्य भी। जिसप्रकार स्थान की अल्पता में भी हम अपने घरों का सुनियोजित निर्माण करते हैं, वैसे ही मंदिर निर्माण से पूर्व भी समस्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सभी स्थानों का नियोजन करना चाहिए। यदि कुछ असुविधा हो तो मंदिर का निर्माण सबसे ऊपरी मंजिल पर किया जाना चाहिए एवं शेष स्थानों का निर्माण नीचे करना चाहिए।

इसी प्रकार आजकल पुजारियों के आवास स्थान भी मंदिरों में ही बनने लगे हैं। कई बार वे इतने नजदीक बना दिए जाते हैं कि मंदिर दर्शनार्थियों एवं पूजा करने वालों को उससे विघ्न उपस्थित होता है। उनके द्वारा मंदिर परिसर में रात्रि भोजन, अभक्ष्य भोजन आदि भी किया जाता है। अत: श्रावक वर्ग को सचेत होते हुए ऐसी सामान्य आशातनाओं से बचने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

शंका– इस आधुनिक युग के मंदिरों में Lift,Cooler, आधुनिक China Lighting आदि का प्रयोग होना चाहिए या नहीं?

समाधान– आज के सुविधावादी दृष्टिकोण एवं जीवनशैली के कारण मंदिर परिसर भी आधुनिक सुख सुविधाओं से युक्त बनाए जाने लगे हैं। शास्त्रोक्त नियमों का पालन तो नहीवत ही होता है। जहाँ घर से मंदिर तक पैदल आने का विधान है वहाँ अब बिना संकोच के वाहनों का प्रयोग एवं मंदिर में भी ऊपर चढ़ने हेतु लिफ्ट का प्रयोग होने लगा है यह उचित नहीं है। वृद्ध, बीमार या ऊपर चढ़ने में असक्षम वर्ग की अपेक्षा यह सुविधाएँ उचित भी हो तो भी इसका प्रयोग आने वाले हर व्यक्ति के द्वारा लगभग किया जाता है। अत: इस विषय में औचित्य-अनौचित्य का विचार आप स्वयं करें। ऐसी सुविधाओं का यदि कोई चार्ज रख दिया जाए तो उनका दुरूपयोग होने से बचा जा सकता है।

मंदिर का वातावरण जितना शांत एवं भौतिक ताम-झाम से रहित हो वह उतने ही अधिक शुभभावों की उत्पत्ति में सहायक बनता है। China Lights आदि के प्रयोग से वातावरण दूषित होता है तथा Short Circuit आदि का भय भी बना रहता है। अधिक सुविधाओं के द्वारा भक्ति में वृद्धि नहीं होती अपितु प्रमाद बढ़ता है अत: ऐसे साधनों का प्रयोग नहीं करना ही अधिक लाभकारी है।

शंका– बड़े-बड़े मंदिरों में जहाँ दो-तीन तल्ले के मंदिर होते हैं वहाँ प्रत्येक भाग में अलग-अलग स्नात्र पूजा करनी चाहिए या एक सामूहिक स्नात्र पूजा करनी चाहिए? इसी के साथ सामूहिक भक्ति आयोजनों के समय भी अपनी क्रिया को प्रमुखता देना कितना उचित है?

समाधान– यदि मंदिर में आने वाले श्रावकों की संख्या अच्छी हो तथा अलग-अलग स्नात्र पूजा करने से एक-दूसरे को व्यवधान उपस्थित नहीं होता हो तो अलग-अलग स्नात्र पूजा करने में कोई हर्ज नहीं है। यदि मात्र अपने-अपने स्थान के राग से या अहंभाव की पुष्टि के लिए भिन्न-भिन्न स्नात्र पूजा की जाती है तो वह गलत है। एक ही मंदिर में एक साथ तीन चार जगह स्नात्र पूजा होने से अन्य दर्शन करने वालों को व्यवधान उपस्थित होता है। जो जहाँ की स्नात्र पूजा करते हैं वे वहीं की करेंगे अन्य जगह की नहीं। यदि कोई यह सोचे कि हम अपना स्थान क्यों छोड़ें? तो यह आग्रह बहुत गलत है। यदि कभी कोई महोत्सव या सामुदायिक आयोजन हो तो अपना काम पहले या बाद में करके

सामूहिक आयोजन में सम्मिलित होना चाहिए।

शंका– कई मन्दिरों में पंच धातु की प्रतिमाएँ मूलनायक प्रतिमाजी के नीचे पबासन पर रखी जाती हैं। यदि पूजा करने वाले बच्चों के वहाँ पैर आते हों या घुटने लगते हों तो क्या करना चाहिए?

समाधान– यदि पंचधातु की प्रतिमाएँ अधिक हों तो उनके लिए अलग से जगह बना देनी चाहिए। यदि अलग से स्थान न हो तो भी उन्हें इस प्रकार रखना चाहिए कि वहाँ पर किसी का पैर आदि न लगे तथा पूजा करने वाले बार-बार उन्हें इधर-उधर न करते रहें।

शंका– मंदिर में चढ़ाया हुआ चावल, फल आदि निर्माल्य, पुजारी को देना या उसे देवद्रव्य की वृद्धि के लिए बेचना चाहिए?

समाधान– परमार्थत: तो निर्माल्य द्रव्य बेचकर उससे देवद्रव्य की वृद्धि करनी चाहिए। किन्तु यदि बहुत पहले से पुजारी आदि को देने की परम्परा चल रही हो तो उसमें विक्षेप सोच समझकर करना चाहिए। क्योंकि यदि इससे पूजारी वर्ग के मन में खेद या अश्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाए तो मंदिर को अधिक हानि होने की संभावना रहती है। पुजारी को समझा सकें तो समझाकर पूर्व प्रचलित परम्परा में अवश्य परिवर्तन करना चाहिए। अन्यथा उसे वैसे ही चलने देना चाहिए। नव निर्मित मंदिरों में प्रारंभ से ही उचित व्यवस्था रखनी चाहिए।

शंका– पुजारी के पास यदि कम दाम में अच्छी बादाम-मिश्री आदि मिलते हो तो उन्हें खरीदने में क्या दोष है?

समाधान– पुजारी के द्वारा सस्ते दाम में मिलने वाली बादाम-मिश्री आदि मंदिर में चढ़ाए हुए निर्माल्य द्रव्य ही होते हैं। शास्त्रकारों ने निर्माल्य द्रव्य का उपयोग श्रावकों के लिए निषिद्ध किया है। परमात्मा के लिए सस्ती या हल्की Quality के द्रव्य प्रयोग की भावना भी श्रावक को नहीं करनी चाहिए। श्रावक स्वआश्रित कर्मचारी वर्ग को भी निर्माल्य द्रव्य नहीं दे सकता तो फिर परमात्मा को निर्माल्य द्रव्य का अर्पण कैसे किया जा सकता है? अत: जो कार्य श्रावक के लिए निषिद्ध हैं वह करना दोषपूर्ण है।

शंका– कुछ लोगों के मन में यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि पालीताना, शंखेश्वर आदि तीर्थ स्थानों में निर्माल्य चावल-बादाम आदि बेचने के लिए रखे जाते हैं वहाँ जाने वाले यात्रीगण एवं नव्वाणुं-चातुर्मास आदि करने

वाले श्रावक प्राय: उनका प्रयोग करते हैं, वह कितना उचित है?

समाधान– कोई द्रव्य तीर्थ स्थल पर मिलने से शुद्ध या निर्दोष नहीं हो जाता। इस प्रकार निर्माल्य द्रव्य की सरेआम बिक्री जैन संघ के लिए विचारणीय विषय है, क्योंकि यदि तीर्थ कमेटी या पेढ़ी इस विषय में जागरूक रहे तो इन दोषों से सहजतया बचा जा सकता है। कई बार गृहस्थ द्वारा इनका उपयोग अपने लिए भी कर लिया जाता है। नव्वाणु एवं चातुर्मास वालों के लिए यदि घर से उतना द्रव्य ले जाना संभव नहीं हो तो Market में पूर्ण जानकारी करके फिर शुद्ध द्रव्य खरीदा जाना चाहिए।

शंका– जिनपूजा से आठ कर्मों का नाश कैसे होता है?

समाधान– शास्त्रकारों के अनुसार जिनपूजा सम्बन्धी विविध क्रियाएँ आठों कर्मों का क्षय करने में सक्षम है। प्रभु पूजा राग-द्वेष का नाश करती है और राग-द्वेष ही कर्म बंधन का मुख्य हेतु है। अत: राग-द्वेष के क्षय से आठों कर्मों का क्षय स्वयमेव ही हो जाता है। परमात्मा का चैत्यवंदन एवं गुणगान करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय। प्रभु दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय। जिनपूजा में जयणा का पालन करने से अशाता वेदनीय कर्म का क्षय। अरिहंत एवं सिद्धों के गुणों का स्मरण करने से मोहनीय कर्म का क्षय। अक्षय स्थिति युक्त अरिहंत के पूजन एवं आत्मा के अविनाशी गुण के चिंतन से आयुष्य कर्म का क्षय। अनामी प्रभु के नामस्मरण एवं अरिहंत आदि के स्मरण से नाम कर्म का क्षय। अरिहंत परमात्मा की वंदन-पूजा एवं उन्हें स्वामी रूप में स्वीकार करने से गोत्र कर्म का क्षय। विधिपूर्वक पूजन आदि करने एवं प्रभुभक्ति में शक्ति का प्रयोग करने से अन्तराय कर्म का क्षय। इस प्रकार जिनपूजा करने से आठों कर्मों की आंशिक या सर्वांश निर्जरा होती है।

शंका– 'प्रभु प्रतिमा परमात्म स्वरूप है' ऐसा कहा जाता है किन्तु परमात्मा का जीव एक है और प्रतिमाएँ हजारों है तो फिर एक जीव की हजारों-लाखों प्रतिमाओं में स्थापना या प्रतिष्ठा कैसे संभव है?

समाधान– जब परमात्मा की प्रतिमा पर अंजनशलाका का महाविधान संपन्न किया जाता है तो उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा होती है जीव की नहीं।

परमात्मा तो सिद्ध हो चुके उनका संसार में पुन: लौटना असंभव है। परन्तु तीर्थंकर पर्याय में परमात्मा ने जिन दस प्राणों को धारण किया था उनके जड़

पुद्गल इस वायुमण्डल में बिखरे हुए है। प्रतिष्ठा विधान में मंत्रोच्चार एवं विधि-विधान द्वारा उन पुद्गलों को आकर्षित करके प्रतिमा में आरोपित किया जाता है। इन शुभ पुद्गलों से ही प्रतिमा अतिशयवान बनती है और जीव को शिव बनाती है।

शंका– मंदिर के बाहर हाथी की आकृति क्यों बनाई जाती है?

समाधान– हाथी एक श्रेष्ठ प्राणी है। मंदिरों के बाहर हाथी बनाने के अनेक हेतु हैं। सर्वप्रथम हाथी अभिमान का प्रतीक है और परमात्मा के दरबार में मान गलाकर जाना चाहिए। दूसरा तथ्य है कि पूर्वकाल में राजा-महाराजा हाथी पर बैठकर अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ मन्दिर जाते थे। हमें भी वैसे ही अपने सामर्थ्य के अनुसार एवं सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ जिनमंदिर जाने की प्रेरणा मिलती है। तीसरा तथ्य है कि हाथी जब अपनी मस्ती में चलता है तो उसके पीछे सौ कुत्ते भौकें तो भी उसे कोई फरक नहीं पड़ता वैसे ही परमात्म भक्ति करते समय दुनिया के किसी भी अन्य कारण या लोगों से हमें कोई फरक नहीं पड़ना चाहिए।

शंका– भगवान मोक्ष चले गए है तो फिर मंदिरों में अमीवर्षा आदि के चमत्कार कैसे होते हैं?

समाधान– भगवान तो संसार एवं राग-द्वेष से मुक्त हो गए अत: वे चमत्कार नहीं करते। भक्त की परमात्म भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान के अधिष्ठायक देवी-देवता चमत्कार करते हैं।

शंका– चैत्यवंदन आदि भावपूजा सम्पन्न करके पुन: द्रव्यपूजा कर सकते हैं?

समाधान– जिनपूजा एक क्रमिक अनुष्ठान है। प्राचीन विधि के अनुसार द्रव्यपूजा सम्पन्न करके भावपूजा करनी चाहिए। तीसरी निसीहि के बाद द्रव्यपूजा का ही त्याग कर दिया जाता है तो फिर वापस द्रव्यपूजा कैसे कर सकते हैं? यदि कारण विशेष से द्रव्यपूजा में समय हो और समय की अल्पता हो तो अपवाद रूप में भी क्रम परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। मूलत: आरती, आंगी चढ़ाना आदि समस्त द्रव्य क्रियाएँ सम्पन्न करने के बाद ही भावपूजा करनी चाहिए।

शंका– मन्दिर में ग्रुप बनाकर सामूहिक भक्तामर आदि के पाठ करना चाहिए या नहीं?

समाधान– जैन क्रिया अनुष्ठानों में सामूहिक आयोजनों का एक विशेष महत्त्व है। जिनमंदिर में भक्तामर आदि सामूहिक पाठ अनुष्ठान भक्ति का माहौल बनाते हैं अत: सामूहिक क्रियाएँ अवश्य करनी चाहिए। परंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इनका आयोजन किसी भी समय कर सकते हैं। वस्तुत: यह आयोजन एक निश्चित समय में ही करना चाहिए। जिस समय पूजा-दर्शन करने वालों की संख्या अधिक रहती है उस समय ऐसे आयोजन नहीं रखने चाहिए। इससे दर्शन करने वालों के मन में विक्षेप उत्पन्न हो सकता है।

शंका– मानव सेवा, मन के शुभ परिणाम, सदाचरण आदि करना भी धर्म है तो फिर पूजा आदि करना आवश्यक क्यों?

समाधान– आज के अधिकांश युवा वर्ग का मानना है कि धर्म का हेतु मन के परिणामों को सात्त्विक बनाना ही है वह तो ऐसे भी हो सकता है तो फिर मंदिर क्यों जाना? किसी अपेक्षा से उन्हें सही मानें कि धार्मिक क्रियाओं का मुख्य हेतु मन के परिणामों को सुधारना है किन्तु पूरा दिन संसार में रचे-पचे व्यक्तियों में ऐसे कितने लोग हैं जो बिना किसी आलंबन के अपने परिणामों को हर परिस्थिति में निर्मल रख सकते हैं। व्यवहार या लौकिक कथन ओघ या समुदाय की अपेक्षा किया जाता है तथा मानव को स्वभावत: बाह्य वातावरण प्रभावित करता है। दूसरा तथ्य यह है कि हमारे सामने जैसा आदर्श होता है हमारा जीवन भी वैसा ही बनता है। जीवन में हम अच्छा या सदाचारी व्यक्ति बनना चाहते हैं तो हमारे लिए परमात्मा से अधिक अच्छा इंसान कौन हो सकता है जिनके हृदय में समस्त जीव राशि के प्रति समान भाव है– Universal Love ऐसे वीतरागी परमात्मा का पूजन हमें अच्छे व्यक्ति बनने की बार-बार प्रेरणा देता है। परमात्मा की पूजा मानव को महामानव बनाने से पूर्व उसे नैतिक इंसान बनने की प्रेरणा देती है अत: पूजा आदि क्रियाएँ अवश्य रूप से करनी चाहिए।

शंका– पूजा, सामायिक, मंदिर दर्शन आदि क्रियाओं में मन स्थिर नहीं रहता तो फिर उन्हें करने से क्या लाभ?

समाधान– पूजा आदि आध्यात्मिक क्रियाओं का हेतु है मन को स्थिर करना। जब मन स्थिर ही हो जाएगा तो इन क्रियाओं की क्या आवश्यकता रहेगी अत: मन को स्थिर करने के लिए ही इन क्रियाओं को किया जाता है।

जैसे कि दवाई तब तक ही ली जाती है जब तक रोग का निवारण न हो। रोग समाप्त हो जाए तो दवाई की क्या आवश्यकता? बच्चों को स्कूल ज्ञानार्जन के लिए भेजते हैं पर स्कूल भेजने से पूर्व यदि यह कहे कि ज्ञान तो है नहीं फिर स्कूल जाने से क्या फायदा तो कभी ज्ञान प्राप्त हो भी नहीं सकता। वैसे ही पूजा, सामायिक आदि क्रियाओं के द्वारा ही मन को स्थिर किया जा सकता है अत: यह क्रियाएँ आवश्यक है।

शंका– मंदिर में भीड़ अधिक हो और मूलनायक परमात्मा के दर्शन भी अच्छे से न होते हो तो फिर वहाँ चैत्यवंदन आदि करना चाहिए या नहीं?

समाधान– जैनाचार्यों ने गृह मन्दिर का जो विधान बनाया है उसका एक कारण यही है कि व्यक्ति स्वेच्छा से मन मुताबिक परमात्म भक्ति कर सकें। परंतु वर्तमान में तो गृह मंदिरों का ही प्राय: लोप हो चुका है। अत: व्यक्ति मन को संतुष्ट कैसे करें? उपरोक्त परिस्थिति में मूलनायक प्रतिमाजी के समक्ष क्रिया करने का आग्रह छोड़कर यदि आजु-बाजू में अन्य जिनबिम्ब हों तो वहाँ पर चैत्यवंदन आदि करना चाहिए। यद्यपि मूलनायक की अपनी महत्ता होती है परंतु अन्य अरिहंत बिंब का आलम्बन लेने में भी कोई दोष नहीं है। यदि ऐसा करना संभव न हो या अन्य स्थान पर जिनबिम्ब न हों तो अपनी पूजा का समय बदल देना चाहिए अथवा मन को और अधिक एकाग्र बनाकर परमात्मा के स्वरूप को अपने मन-मस्तिष्क में स्थापित कर देना चाहिए। तब चैत्यवंदन आदि करते समय स्वयमेव ही परमात्मा की छवि हमारे समक्ष उभर जाती है।

शंका– धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनकर परमात्मा की पूजा कर सकते हैं ?

समाधान– पूजा के वस्त्र अलग रखने चाहिए। उनमें खाने-पीने आदि की क्रिया नहीं कर सकते और यदि की जाए तो उन वस्त्रों में पूजा नहीं करनी चाहिए ऐसा वृद्ध परम्परा से सुना जाता है। जिनपूजा अर्थात साक्षात परमात्मा को स्पर्श करने की क्रिया और परमात्मा को स्पर्श ऐसे-वैसे या नित्य प्रयोग के वस्त्रों में कैसे कर सकते हैं?

दूसरा तथ्य यह है कि वस्त्रों आदि का हमारे मन पर भी एक अलग प्रभाव पड़ता है। स्कूल जाते हुए स्कूल Uniform, ऑफिस जाते समय ऑफिस का Dress या पुलिस आदि की Dress क्यों रखी जाती है? इसका कारण यही होता है कि वह पहनने के बाद हमारा मन उन क्रियाओं के लिए सहज एवं तीव्र

गति से तैयार हो जाता है। वैसे ही पूजा की एक नियत ड्रेस होने से उसे पहनने के बाद प्रभु पूजा सम्बन्धी विचार ही चलने लगते हैं और व्यक्ति के लिए वही क्रिया प्रमुख हो जाती है। जबकि रोज के धुले हुए वस्त्र पहनने से मन में वैसे भाव उत्पन्न नहीं होते। रोज पहनने के वस्त्रों में अन्य शारीरिक क्रियाएँ एवं घर-गृहस्थी के काम भी किए जाते हैं जिससे उनके अशुद्ध होने की संभावना रहती है। अन्य लोगों को भी यह ज्ञान नहीं होता कि हम पूजा करने जा रहे हैं। ऐसे ही अनेक कारणों से जिनपूजा हेतु अलग से ही वस्त्र रखने का विधान है।

शंका– आजकल गुरुभगवंत कहते हैं कि पूजा करने के पश्चात मुँह में पानी डालना चाहिए। वहीं प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार मुखशुद्धि करने के बाद पूजा करनी चाहिए। इनमें से क्या करना चाहिए?

समाधान– प्राचीन ग्रन्थों में मुखशुद्धि करने का उल्लेख उन श्रावकों के लिए है जो त्रिकाल पूजा करते थे। ऐसे श्रावक प्रात:कालीन पूजा में वासक्षेप पूजा एवं परमात्मा दर्शन कर लेते थे और मध्याह्नकालीन पूजा में मुख्य रूप से अष्टप्रकारी पूजा करने से पूर्व मुखशुद्धि का विधान था। इसके दो कारण थे एक मध्याह्न पूजा से पूर्व नाश्ता हो जाता था इस कारण मुखशुद्धि आवश्यक थी। दूसरा मुखशुद्धि करने से मुख की दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है। परंतु वर्तमान में त्रिकाल पूजा का विधान प्राय: समाप्त हो चुका है। एक ही बार में समस्त पूजाएँ सुबह कर ली जाती है। परमात्मा के दर्शन किए बिना श्रावक को अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसी कारण वर्तमान में पूजा करने के बाद ही मुख में पानी डालने का विधान है।

यदि संभव हो तो प्रात:काल में दर्शन करके मुखशुद्धि कर लेना चाहिए और फिर पूजा करने जाना चाहिए।

शंका– एक बार परमात्मा के दर्शन ही मंगल कर सकता हैं तो फिर त्रिकाल दर्शन की क्या आवश्यकता?

समाधान– जीवन में दो ड्रेस से काम चल सकता है, खाने में सिर्फ रोटी हो तो भी पेट भर सकता है और स्कूल में एक ही कॉपी में नोट किया जा सकता है फिर अधिक क्यों रखते हैं? हमारे मन में जो भी शंकाएँ उठती है वह अध्यात्म जगत के विषय में ही होती है व्यवहार जगत में नहीं। क्योंकि वहाँ हमें सब कुछ आवश्यक प्रतीत होता है।

परमात्मा के दर्शन तो एक बार में भी मंगलकारी हो सकते हैं। परंतु हमारा मन और जीवन पूरा दिन भौतिक जगत में उलझा रहता है। भौतिकता आदि वैभाविक संस्कार आत्मा पर अनंतकाल से जमे हुए हैं। उन्हें हटाने के लिए बार-बार उन पर चोट करना आवश्यक है। परमात्मा के त्रिकाल दर्शन आत्मा की शुद्ध अवस्था का बार-बार ध्यान करवाते हैं। डॉक्टर की दवाई दिन में तीन बार लेने पर जिस तरह रोग का शीघ्र निदान करती है, वैसे ही परमात्मा के त्रिकाल दर्शन जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोग का निवारण कर शीघ्र आत्मा को मोक्ष नगरी में विश्राम करवाती हैं।

शंका– अष्टमी-चौदस आदि को हरी सब्जी, फल आदि क्यों नहीं खानी चाहिए? जब खा नहीं सकते तो परमात्मा को कैसे चढ़ा सकते हैं?

समाधान– अष्टमी चौदस आदि पर्व तिथियों के दिन हरी सब्जियों का त्याग आध्यात्मिक एवं शारीरिक दोनों दृष्टियों से लाभदायक है। आध्यात्मिक दृष्टि से पर्व तिथियों को विशेष रूप से आयुष्य का बंधन होता है। इसका एक तथ्य यह भी है कि आयुष्य का बंधन जिंदगी के 2/3 भाग में होता है। जैन दर्शन में 2,5,8,11,14 ये मुख्य पर्व तिथियाँ मानी गई हैं। यह सब तिथियाँ भी 2/3 भाग में ही आती हैं जैसे दूज के बाद तीज और चोथ जाने पर पंचमी, फिर दो दिन बीतने के पश्चात अष्टमी, फिर दो दिन के बाद ग्यारस इस तरह अन्य पर्व तिथियों के विषय में समझना चाहिए।

शारीरिक दृष्टि से अष्टमी-चौदस आदि के दिन सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी एक ही रेखा में होते हैं। इस वजह से उस दिन समुद्र की लहरों में विशेष उफान आता है। हमारे शरीर में भी 70% जल तत्त्व है। हरी सब्जियाँ शरीर में जल के प्रमाण को अधिक बढ़ाती है। इससे मन में चंचलता बढ़ती है और साथ ही साथ क्रोध आदि कषाय एवं रोग भी बढ़ते हैं।

पर्व तिथि के दिन कम से कम जीवों की हिंसा करना भी इसका एक मुख्य उद्देश्य है। इसी कारण जैनाचार्यों ने पर्वतिथि में हरी का निषेध किया है। परन्तु कहीं भी मंदिर में फल आदि चढ़ाने का निषेध प्राप्त नहीं होता। नहीं खाने के पीछे मुख्य रूप से हिंसा एवं आसक्ति त्याग की भावना रही हुई है। वहीं परमात्म के दरबार में चढ़ाते हुए उन्हें अभयदान देने एवं उनके प्रति आसक्ति को न्यून करने के भावों का वर्धन ही होता है। एक बार जिन फलों को परमात्मा के चरणों

में समर्पित कर दिया जाता है हम उनकी हिंसा से हमेशा के लिए विरत हो जाते हैं। अत: पर्व तिथि के दिन फल आदि का त्याग होने पर भी मंदिर में फल चढ़ा सकते हैं।

शंका– जिन प्रतिमा पर लंछन क्यों और कब से?

समाधान– जिन प्रतिमाओं पर लंछन अंकित करने का एक मुख्य कारण है उनकी पहचान क्योंकि प्राय: सभी प्रतिमाएँ लंछन के आधार पर ही पहचानी जाती है। जिस प्रतिमा पर जो लंछन होता है वैसा ही लंछन परमात्मा के देह पर था, ऐसा शास्त्रकारों का मानना है। ऐतिहासिक शोधों के अनुसार लगभग चौथी-पाँचवीं शती की प्रतिमाओं पर लंछन नहीं बनाए जाते थे। यह एक परवर्ती परम्परा है। डॉ. सागरमलजी जैन के अनुसार पूर्वकाल में मुख्य रूप से चार प्रतिमाएँ ही बनाई जाती थी। आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी। आदिनाथ भगवान की प्रतिमा के कंधे पर केश दिखाए जाते थे। नेमिनाथ की प्रतिमा के परिकर में कृष्ण और बलराम चित्रित होते थे। पार्श्वनाथ की प्रतिमा में फण होते थे और महावीर स्वामी की प्रतिमा में कोई अन्य चिह्न नहीं होता था। इन्हीं के आधार पर मूर्तियाँ पहचानी जाती थी। 24 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ पूर्वकाल में इतनी अधिक नहीं बनाई जाती थी। जिस प्रतिमा को जिसका नाम दिया जाए वह उसी रूप में पूज्य बन जाती थी। तदनन्तर प्रतिमाओं की बढ़ती संख्या में उनकी पहचान के लिए लंछन की आकृति बनाई जाने लगी जो कि वर्तमान में भी प्रवर्त्तमान है।

शंका– पूजा के वस्त्र कैसे होने चाहिए सूती या रेशमी?

समाधान– प्राचीन उल्लेखों के अनुसार पूजा के वस्त्र रेशमी होने चाहिए। रेशम को उत्तम कोटि का वस्त्र माना गया है। परमात्म पूजा हेतु उत्तम वस्तुओं का प्रयोग ही करना चाहिए। दूसरा तथ्य यह भी है कि रेशम अशुद्धियों को ग्रहण नहीं करता अत: इससे शुभ भावों की शृंखला अधिक समय तक बनी रहती है।

पूजा के लिए अहिंसक रेशम के नाम से प्रसिद्ध मटका सिल्क का प्रयोग करना चाहिए। अधिकांश आचार्य रेशमी वस्त्र पहनने का ही समर्थन करते हैं। सूती वस्त्र की Mercerised करते समय प्राणीज पदार्थों का उपयोग होता है। अत: यथासंभव उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

शंका– स्नात्र पूजा में पंचतीर्थी प्रतिमा ही क्यों रखी जाती है?

समाधान– स्नात्र पूजाकार श्री देवचंद्रजी महाराज ने स्नात्र पूजा में पाँच तीर्थंकरों की कुसुमांजलि करने का ही वर्णन किया है। पंचतीर्थी प्रतिमा में ये पाँचों प्रतिमाएँ होती हैं अत: स्नात्र पूजा में पंचतीर्थी प्रतिमा ही रखी जाती है। त्रिगड़े में पाँच अलग-अलग प्रतिमाजी रखना संभव भी नहीं है। पंचतीर्थी प्रतिमा इन पाँचों का सर्वोत्तम Substitute है। 24 तीर्थंकरों में यह पाँच तीर्थंकर विशेष प्रसिद्ध एवं जनश्रद्धा का केन्द्र होने से देवचंद्रजी महाराज ने इन पाँचों का ही उल्लेख किया होगा। पंचतीर्थी में मुख्य बिम्ब शांतिनाथ भगवान का होता है। इसका कारण यह है कि स्नात्र पूजा के द्वारा विश्व मंगल, विश्व शांति की कामना की जाती है। शांतिनाथ भगवान उपसर्ग निवारक एवं शांति प्रदायक माने जाते हैं।

शंका– कुछ मंदिरों में अभिषेक जल के निर्गमन स्थान पर मगरमच्छ आदि प्राणियों की मुखाकृति क्यों बनाई जाती है?

समाधान– भारतीय संस्कृति में मंदिरों को कला का श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है। इनका प्रत्येक भाग कला एवं सौंदर्य से परिपूर्ण होता है। अभिषेक निर्गमन स्थान पर मगरमच्छ, सिंह, गाय आदि की मुखाकृति कला का ही एक नमूना है।

इसी प्रकार मंदिरों के बाहर हाथी, सिंह आदि भी कला का ही एक रूप है। इसी के साथ जिस प्रकार राजा-महाराजाओं के महलों के बाहर हाथी आदि उनके वैभव के प्रतीक माने जाते हैं। वैसे ही ये परमात्मा की महिमा एवं वैभव के प्रतीक हैं।

शंका– प्रक्षाल करने के बाद न्हवण जल का क्या करना चाहिए?

समाधान– न्हवण जल यह निर्माल्य द्रव्य है। निर्माल्य का प्रयोग स्वेच्छा एवं व्यवस्था अनुसार किया जा सकता है। कई स्थानों पर इसे गंगा आदि नदियों में प्रवाहित किया जाता है। कहीं पर इसे बगीचे में डाल दिया जाता है तो कुछ मन्दिरों में न्हवण जल पूजारी को दिया जाता है या पशु-पक्षियों को भी पिलाया जाता है। निर्माल्य द्रव्य आदि का वर्णन आगमों में कहीं भी प्राप्त नहीं होता। यह एक परवर्ती परम्परा है। अत: इस विषय में किसी एक परम्परा का आग्रह नहीं रखना चाहिए। वैष्णव परम्परा की भाँति जैन परम्परा में निर्माल्य जल का

आचमन नहीं किया जाता क्योंकि श्रावक वर्ग के लिए निर्माल्य का उपभोग निषिद्ध है। कुछ आचार्य बगीचे में निर्माल्य जल के परिष्ठापन का निषेध करते हैं। उनके अनुसार जिस पौधे को निर्माल्य जल से सिंचित किया गया हो उसके पुष्प परमात्मा को चढ़ाए नहीं जा सकते।

शास्त्रानुसार निर्माल्य जल को ऐसे स्थान पर परिष्ठापित करना चाहिए जहाँ पर किसी के पैर नहीं आते हो तथा जीवोत्पत्ति भी न होती हो। कुछ ग्रंथों में 8 फुट गहरी और 3 ×4 फुट लंबी चौरस कुंडी बनाकर एवं उसमें मिट्टी आदि डालकर न्हवण जल परठने का निर्देश है। उसकी मिट्टी को ऊपर-नीचे करते रहना चाहिए। थोड़े-थोड़े समय के बाद उसे बदलते रहना चाहिए।

मानव मन का स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। वह गलत कार्य में शंका करे या न करे किन्तु अच्छे कार्य में उसे हजारों शंकाएँ उत्पन्न होती है। इन शंकाओं के कारण भक्त का मन भक्ति से पूर्ण रूपेण जुड़ नहीं पाता। मन में दबी हुई छोटी सी शंका रूपी चिनगारी श्रद्धा रूपी भवन को जलाकर खाक कर देती है।

एक घटना के विविध पहलू होते हैं और उनमें से किसी एक पक्ष का आग्रह या अन्य पक्षों के विषय में अज्ञेयता भी कई बार सत्य को जानने में बाधक बनती है। यह अध्याय ऐसी ही भ्रमित मान्यताओं एवं शंकाओं के निवारण में सहायक बनेगा। सही और गलत में भेद रेखा उत्पन्न करते हुए जिनपूजा के उत्कृष्ट मार्ग पर गति करवाएँ यही प्रयास है।

●

अध्याय-11

जिनपूजा सम्बन्धी विषयों की विविध पक्षीय तुलना एवं उनका सारांश

जिनपूजा के संदर्भ में यदि जैन वाङ्मय का अध्ययन किया जाए तो प्राचीन काल से अब तक अनेकश: अंतर परिलक्षित होते हैं। यदि तीनों काल की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करें तो पूर्वकालीन राजप्रश्नीय सूत्र, ज्ञाताधर्मकथासूत्र, जीवाभिगमसूत्र, जंबुद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र, आवश्यकसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, सूत्रकृतांग निर्युक्ति, बृहत्कल्पभाष्य आदि में जिनपूजा एवं तीर्थंकरों के जन्माभिषेक आदि का वर्णन स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। इनमें भी मूल आगमों में प्राप्त वर्णन लगभग समान है। इसके अतिरिक्त अन्य आगमों में भी किसी न किसी रूप में जिनप्रतिमा या जिनपूजा से सम्बन्धित कोई न कोई उल्लेख प्राप्त हो जाता है।

मध्यकालीन साहित्य में जिनप्रतिमा एवं जिनपूजा के सम्बन्ध में ठोस एवं बृहद्स्तरीय कार्य हुआ। यद्यपि इस युग में किया गया वर्णन आगमिक वर्णन से अपेक्षाकृत भिन्न है। मध्यकाल में जिनपूजा श्रावकों का एक नित्य आवश्यक क्रम बन चुकी थी किन्तु जल अभिषेक को अष्टप्रकारी या नित्यकर्म में स्थान नहीं मिला था। तत्कालीन ग्रन्थों में प्ररूपित पूजाविधियों में भी बहुत सी भिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं। मध्यकालीन ग्रन्थों में पूजा के तीन, पाँच, आठ, सत्रह, इक्कीस आदि अनेक भेद किए गए हैं, तथा उनमें भी मतांतर दृष्टिगम्य होता है।

अर्वाचीन काल की रचनाओं का अवलोकन करें तो इसमें मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा कुछ परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। मुख्य रूप से जो एक परिवर्तन हुआ वह था अष्टप्रकारी पूजाओं में नित्य स्नान या प्रक्षाल क्रिया का सम्मेलन। इससे पूर्व तक अष्टप्रकारी पूजा में जिन अभिषेक को स्थान प्राप्त नहीं था। उस समय अष्टोपचारी पूजा में जलपूजा का आठवाँ स्थान था और जिसमें

भी मात्र भरे हुए जल का कलश रखने का ही विधान था। उससे अभिषेक करने का वर्णन कहीं भी नहीं है। जबकि अर्वाचीन परम्परा में जलपूजा का प्रथम स्थान है।

यदि जिनपूजा में प्रयुक्त उपकरण एवं उपादानों का विकास एवं ह्रास विषयक अध्ययन करें तो आगमकाल में इनका वर्णन ज्ञानाधर्मकथासूत्र, राजप्रश्नीय सूत्र, जीवाभिगमसूत्र और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र में प्राप्त होता है। इनमें भी तीर्थोदक, तीर्थमृतिका, सर्वौषधि, सिद्धार्थक आदि का प्रयोग सिद्धायतन की प्रतिमाओं के लिए नहीं होता था। मध्यकालीन पूजा सामग्री में यक्षकर्दम, गोरोचन, सर्वौषधि, सिद्धार्थक, तीर्थोदक, पदार्थ, तीर्थ मृत्तिका का उपयोग प्रतिष्ठा प्रसंग पर होता था। क्षणैः क्षणैः विक्रम की आठवीं शती से सिद्धार्थक, गौरोचन आदि का प्रयोग सर्वोपचारी पूजा में होने लगा। कुछ आचार्यों ने पंचामृत प्रयोग का भी समर्थन किया किन्तु सामान्य जनता इससे सहमत नहीं थी। अर्वाचीन काल में अनेकशः नए उपकरणों का समावेश हुआ तो कई प्राचीन उपकरण एवं सामग्री का प्रयोग नहीवत या लुप्त ही हो गया। जैसे कि मध्यकाल में वासक्षेप पूजा नियमित रूप से होती थी। वहीं अर्वाचीन काल में इसका आचरण नहींवत रह गया है।

पूर्वकाल और मध्यकाल में प्रसंग विशेष पर होने वाली मूर्ति स्नान में जहाँ प्रक्षाल हेतु केसर, कस्तूरी, कपूर आदि पदार्थों को मिलाकर सुगन्धित जल तैयार किया जाता था वहीं अर्वाचीन काल में शुद्ध जल एवं पंचामृत तक यह प्रक्रिया सीमित हो गई है। मध्यकाल में अंगलुंछन हेतु भी शुद्ध, सुगन्धित एवं नूतन वस्त्रों का प्रयोग होता था जो अर्वाचीन काल में तीन अंगलुंछन वस्त्र एवं वालाकुंची में परिवर्तित हो गया है।

आगमकालीन पूजा विधानों में आरती, मंगलदीपक का उल्लेख देखने में नहीं आता। इनके उल्लेख मध्यकालीन ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। राजप्रश्नीय, जीवाभिगम आदि आगमों में चौदह प्रकार की पूजाओं का ही उल्लेख है। वही मध्यकाल में सत्रह प्रकार की पूजा के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

सत्रह भेदों के अतिरिक्त मध्यकाल के प्रारंभ में पंचोपचारी, अष्टोपचारी एवं सर्वोपचारी पूजन का प्रारंभ हुआ हो ऐसा भी ज्ञात होता है। आचार्य हरिभद्रसूरि रचित पूजाविंशिका, पंचवस्तुक आदि में इन तीनों का निर्देश एवं निरूपण

मिलता है। सर्वोपचारी जहाँ पर्व प्रसंग एवं विशेष अवसर पर किया जाने वाला पूजा विधान था। वही पंचोपचारी एवं अष्टोपचारी पूजाएँ नित्य कर्तव्य पूजाएँ रही होगी।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने पूजाष्टक प्रकरण में अष्टपुष्पी पूजा का निरूपण किया है जिसमें प्रारम्भिक चार में द्रव्यपूजा के रूप में जाई आदि के पुष्प चढ़ाने का नियम है वही अन्तिम चार पूजाओं में अहिंसा आदि नियम रूप भावपुष्प चढ़ाने का उल्लेख है। इससे ऐसा प्रतिभासित होता है कि उस समय में पुष्प पूजा मुख्य एवं विशेष प्रचलित रही होगी। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने इसकी टीका में सुवर्ण आदि पुष्प चढ़ाने का उल्लेख किया है जिसके अनुकरण रूप ही वर्तमान में मूर्तियों पर सोने-चाँदी की गोल टिकिया लगाई जाती है।

सत्रहभेदी पूजा का निरूपण शास्त्रोक्त माना जाता है एवं मध्यकालीन अनेक ग्रंथों में इसका वर्णन प्राप्त होता है। यद्यपि कुछ ग्रंथों में इस पूजा के प्रकारों को लेकर अंतर भी परिलक्षित होता है। अचलगच्छीय मुनि मेघराज एवं खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनलाभसूरि ने दीपक, नैवेद्य, फल, आरती, मंगलदीपक आदि को सत्रहभेदी पूजा में समाविष्ट नहीं किया है। संबोधप्रकरण एवं श्राद्धविधि में वर्णित सत्रहभेदी पूजा में भी एकरूपता नहीं है। सत्रहभेदी पूजा के अतिरिक्त इक्कीस प्रकार की पूजा का वर्णन भी जैन पूजा विधानों में परिलक्षित होता है। इक्कीस प्रकारी पूजा के संस्कृत पद्य वाचक उमास्वातिजी कृत माने जाते हैं। किन्तु यह पूजा प्रकरण तेरहवीं शती के किसी चैत्यवासी विद्वान की कृति होनी चाहिए। पूजा प्रकरण में प्राप्त विधि के आधार पर अर्वाचीन काल के उपाध्याय सकलचंद्रजी ने भी इक्कीस प्रकार की पूजा बनायी है जिसमें मूल पूजा विधि से कुछ अंतर परिलक्षित होते हैं। इसमें पत्र, पूग, वारि, स्तुति एवं कोशवृद्धि पूजा को अन्तर्भूत नहीं किया है। इसके अतिरिक्त अन्य पूजाएँ भी आगे-पीछे अस्त व्यस्त रूप में प्राप्त होती है। इन पूजाओं के अतिरिक्त कुछ नैमित्तिक पूजाएँ भी वर्तमान में प्रचलित है जैसे अष्टोत्तर शताभिषेक, अष्टोत्तरी स्नात्र, शान्ति स्नात्र, अर्द्धाभिषेक आदि। इसमें से अष्टोत्तर शताभिषेक विक्रम की बारहवीं शती की अर्द्धाभिषेक से भी पूर्वकालीन है तथा अष्टोत्तरी स्नात्र एवं शान्तिस्नात्र क्रमशः सोलहवीं और सत्रहवीं सदी की रचनाएँ हैं।

यदि दिगम्बर परम्परावर्ती बीसपंथी एवं तेरह पंथी उपपरम्परा की तुलना करें तो दोनों परम्पराओं के मुख्य मतभेद निम्न हैं–

बीसपंथी परम्परा जहाँ पंचामृत से जिन प्रतिमा के अभिषेक को महत्त्व देती है वहीं तेरहपंथी परम्परा में गीले कपड़े से पोंछकर तथा एक थाली में चावलों का स्वस्तिक बनाकर तीर्थंकरों का आह्वान एवं स्थापना करते हुए एक कटोरी में कलश से जलधारा देकर अभिषेक पूजा करने का विधान है। बीसपंथी परम्परा चंदन, केशर आदि सुगन्धी द्रव्यों के मिश्रित रस से प्रतिष्ठित मूर्ति के चरण युगल पर तिलक और विलेपन से चंदन पूजा करते हैं वहीं तेरहपंथी परम्परा चंदन आदि से मिश्रित द्रव्य घोल से स्थापना वाली थाली में धारा देते हैं।

बीसपंथी परम्परा में सचित्त पुष्प आदि जिन प्रतिमा पर चढ़ाते हैं वहीं तेरहपंथी केसरिया लवंग मिश्रित चावल थाली में चढ़ाते हैं। धूप एवं दीप जलाकर दोनों परम्परा में पूजा की जाती है। बीसपंथी परम्परा संध्या आरती आदि को भी मान्य करती हैं। अक्षत पूजा हेतु अक्षत की पाँच ढेरियाँ करने का विधान दोनों में मान्य है परन्तु नैवेद्य, फल, नृत्य, गायन आदि बीसपंथी परम्परा में ही स्वीकृत है। तेरहपंथी के अनुयायी वर्ग स्थापित थाली में गरी-गोले के टुकड़े चढ़ाकर नैवेद्य एवं फल पूजा करते हैं।

यदि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा की तुलना की जाए तो श्वेताम्बर परम्परा एवं बीस पंथी परम्परा के पूजा विधानों में प्राय: समानता है। दोनों ही परम्पराएँ पुरुषों के समान स्त्रियों को भी पूजा का अधिकारी मानते हैं। पूजा सम्बन्धी विधि-विधानों को हिंसा या आडंबर नहीं मानते। वर्तमान में दिगम्बर परम्परा तीर्थंकर की मात्र केवलज्ञान और सिद्धावस्था को ही पूज्य मानकर शेष अवस्थाओं का निषेध करती है तथा परमात्मा की अंगरचना आदि भी इस परम्परा में नहीं की जाती। यद्यपि उनके ग्रन्थों में उक्त विषय सम्बन्धी वर्णन प्राप्त होते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में स्थानकवासी एवं तेरहपंथी के समान दिगम्बर परम्परा में तारणपंथ जिनपूजा एवं जिनमूर्ति को स्वीकार नहीं करता है।

परिवर्तन के परिणाम

परिवर्तन यह सृष्टि का शाश्वत नियम है। प्रत्येक द्रव्य में सतत पर्याय परिवर्तन होता रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक एक जीव में सैकड़ों दृष्टिगम्य परिवर्तन होते हैं वहीं प्रतिपल होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों की तो कोई गिनती ही

नहीं है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में देश-काल-भाव आदि के कारण अनेक फेर-बदल देखे जाते हैं। यदि आगमकाल से अब तक प्रवर्तित पूजा पद्धति का अनुसंधान किया जाए तो अनेकविध परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। जिनमें से कुछ लाभदायक है तो कुछ हानिकारक भी। अधिकांश परिवर्तन प्राकृतिक न होकर मनुष्यकृत या परिस्थिति कृत है।

पूर्वकालीन पूजा पद्धति सुगम एवं सर्वजन साध्य थी, क्योंकि वहाँ किसी भी प्रकार की सामग्री, नियम या पद्धति का बंधन नहीं था। परन्तु जब से सर्वोपचारी पूजा का अधिक प्रचार बढ़ने लगा तब से ही जिनपूजा अधिक व्यय साध्य एवं श्रमसाध्य होने के साथ-साथ भावहीन होने लग गई। नित्य स्नान एवं विलेपन पूजा का जैसे-जैसे वर्चस्व बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसमें प्राणतत्त्व रूप रही सहजता एवं सुसाध्यता घटती गई। ऐसा नहीं है कि इनके मात्र दुष्परिणाम ही है। कई सुपरिणाम भी है परंतु वर्तमान जीवनशैली एवं मानसिकता में पनप रहे अभावों के कुछ मुख्य कारण निम्न हो सकते हैं। जैसे–

• पूर्वकाल में जब प्रसंग विशेष उपस्थित होने पर मूर्तिस्नान करवाया जाता था तब उसकी विशेष तैयारियाँ की जाती थी। अभिषेक योग्य जल को विविध सुगंधित पदार्थों से सरस गंधयुक्त बनाया जाता था किन्तु वर्तमान में नित्यस्नान हेतु शुद्ध सादे जल एवं ताजे दूध की व्यवस्था भी भारी लगती है।

• पर्व विशेष में स्नान होने के पश्चात विलेपन हेतु भी उत्तमोत्तम पदार्थों का संकलन किया जाता था। उन द्रव्यों की सुगंध से मात्र मन्दिर ही नहीं अपितु आस-पास का क्षेत्र भी कई दिनों तक महकता रहता था एवं दर्शनार्थियों एवं पूजार्थियों को एक विशेष आनंद की अनुभूति करवाता था। वर्तमान में नित्य विलेपन द्रव्यों से सुगन्धित पदार्थ तो प्रायः विलुप्त हो ही चुके हैं तथा बढ़ती महंगाई एवं कृत्रिम पदार्थों के चलन के कारण शुद्ध केसर, बरास एवं चंदन मिलना भी मुश्किल हो गया है। सर्वांग विलेपन का स्थान नवांग तिलक तक सीमित रह गया है।

• जिनबिम्ब की स्नान क्रिया इन्द्र द्वारा कृत परमात्मा के जन्माभिषेक का प्रतीक एवं अनुकरण है। पूर्व काल में स्नानादि के प्रसंग पर साधु-साध्वी एवं गृहस्थ दूर-दूर से हजारों की संख्या में उपस्थित होते थे। भक्तगण प्रक्षाल एवं अंगलुंछन करने के लिए कतार में प्रतिक्षारत रहते थे वहीं आज इसके विपरीत

प्रक्षालन एवं अंगुलंछन कब हो और किस तरह विलेपन आदि आगे की पूजाओं को निपटाएँ इसकी प्रतिक्षा करते हैं। यह व्यवहारगत तथ्य है कि जो वस्तु जितनी दुर्लभ होती है, व्यक्ति उसे पाने हेतु उतना ही लालायित रहता है वहीं अनमोल सुलभ वस्तु का मूल्य वह नहीं समझ पाता। इसी प्रकार प्रक्षाल आदि नित्यक्रिया होने से उसके प्रति रुचि एवं आदरभाव कम हो गए हैं।

• कुछ समय पूर्व तक प्राय: सभी जिन उपासकों के घरों में गृह मंदिर होता था। प्रात:काल में शुद्ध होकर गृह चैत्य में परमात्मा की गंध, पुष्प आदि से पूजा कर ली जाती थी तथा समय होने पर नगरस्थित भक्ति चैत्य में भी पूजा-भक्ति आदि की जाती थी। किन्तु नित्य स्नान आदि के बढ़ते उपक्रम एवं वर्तमान व्यस्त भाग-दौड़ की जीवनशैली के कारण घर मन्दिरों की संख्या नहीवत रह गई है।

उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो अणहिलपुर पाटण में 19वीं सदी तक जहाँ 500 गृह मन्दिर थे वहाँ आज मात्र 25-30 गृह मन्दिर भी नहीं बचे हैं।

• पूर्वकाल में जिनमंदिर सम्बन्धी देख-रेख का कार्य श्रावक वर्ग के द्वारा किया जाता था। प्रत्येक जिनालय की व्यवस्था हेतु एक गोष्ठी मंडल की स्थापना की जाती थी जैसे वर्तमान में ट्रस्ट या कार्यकारिणी का गठन किया जाता है। इससे जिनालय की देख-रेख सम्यक प्रकार से होती थी। परंतु वर्तमान श्रावकों की व्यस्त दिनचर्या एवं नित्यप्रक्षाल के कारण मंदिरों में बढ़े हुए कार्यभार की वजह से वेतनभोगी कर्मचारियों को नितांत आवश्यक कर दिया है। मंदिर खोलने से लेकर पूजा, प्रक्षाल, साफ-सफाई, आरती आदि सब उन्हीं की जिम्मेदारी है। श्रावक एवं ट्रस्टीगण तो समय मिलने पर कदाच Inspection करने चले जाते हैं।

• पहले के समय में अधिकांश प्रतिमाएँ परिकरयुक्त बनाई जाती थी जिन्हें देखकर परमात्मा का प्रातिहार्यमय अरिहंत स्वरूप सहज मानस पटल पर उपस्थित हो जाता था परन्तु वर्तमान में नित्य प्रक्षाल का विधान होने से परिकरों की सफाई रोज-रोज करना कठिन प्रतीत होने लगा और इस कारण आजकल ज्यादातर प्रतिमाएँ परिकर रहित ही बनाई जाने लगी है। इस वजह से परमात्मा की प्रातिहार्य युक्त अवस्था भी स्मृति में नहीं आती।

• नित्य प्रक्षाल के साथ श्रावक वर्ग की बढ़ती असावधानी एवं प्रक्षाल

आदि क्रियाओं को फट-फट निपटाने के भावों ने प्रतिमाओं को बहुत क्षतिग्रस्त किया है। कितनी ही प्रतिमाएँ अविवेक के कारण खंडित हो जाती है, तो अनेक पंचतीर्थी, चौबीसी आदि अपने परिकर से ढ़ीली होकर निकल जाती है। आजकल की नई प्रतिमाओं का हाल पुरानी प्रतिमाओं से ज्यादा खराब है। वालाकुंची के अतिप्रयोग से भी प्रतिमाएँ जल्दी घिस जाती है। मथुरा के जैन स्तूप से निकली कुषाण कालीन प्रतिमाएँ दो हजार वर्ष प्राचीन एवं 1400 वर्ष तक पूजित होने के बाद भी यथावत है उनकी नासिका का अग्रभाग या नाखून तक खण्डित नहीं है। वहीं आजकल की प्रतिमाओं की चमक अशुद्ध केसर आदि के कारण कम होती जा रही है तथा वालाकुंची के अतिप्रयोग एवं अंगलुंछनों के घिसारे लगने से कई बार छोटी प्रतिमाओं के चेहरे पर आँख-नाक आदि दिखाई भी नहीं देते। वसंतगढ़ के भूमितल से निकली हुई वि.सं. 749 में बनी हुई धातु प्रतिमाओं के छोटे से छोटे अंग-उपांग भी आज तक यथावत है। ये प्रतिमाएँ भी 600 वर्ष से अधिक समय तक पूजी गई हैं।

• यद्यपि मूर्तिपूजा के विरोध में कई बार स्वर उठे। जैसे कि आचार्य हरिभद्र के समय में मूर्तिपूजा निमित्त सामान्य हिंसा को लेकर ऊहापोह हुआ था परन्तु आचार्य हरिभद्रसूरि एवं अनेक श्रुतधर आचार्यों ने अपने ज्ञानबल, तर्कबल आदि के आधार पर उसे संभाल लिया। इसी प्रकार विक्रम की तेरहवीं शती में अचलगच्छीय आचार्यों ने फल-नैवेद्य-धान्य और दीपक पूजा का विरोध किया था किन्तु उसका भी कोई विशेष परिणाम नहीं देखा गया। परंतु नित्य स्नान एवं विलेपन की पद्धति का उद्भव होने के बाद धीरे-धीरे सामान्य जन मानस के भीतर विरोध का बीजारोपण हो रहा था। धनवानों की पूजा विषयक अति प्रवृत्तियों से आम जनता उब चुकी थी और इसी कारण जब लोकाशाह ने जिनपूजा एवं जिनमंदिर सम्बन्धी आडंबरों का विरोध किया तो सामान्य जनता यथार्थ तथ्य समझे बिना ही इसका समर्थन करने लगी। ऐसा नहीं था कि लोकाशाह बहुत बड़े विद्वान थे या जन मानस उनकी वाणी से अति प्रभावित था केवल जिनपूजा विषयक व्यय साध्य क्रिया-अनुष्ठानों से ऊबे हुए जनमानस के लिए यह एक नया मार्ग था और इसी कारण अनेक लोग मूर्तिपूजा विरोधी आम्नाय से जुड़ते गए। इससे एक बहुत बड़ा वर्ग आज मूर्तिपूजा का विरोधी बन चुका है।

आज भी कई प्राचीन तीर्थों में जहाँ जिनप्रतिमाएँ बहुत अधिक संख्या में है वहाँ प्रक्षाल क्रिया बहुत ही असावधानी पूर्वक की जाती है। कई बार तो पुजारी मात्र गिले वस्त्र से पोंछकर केशर की टीकी लगा देते हैं। अधिकांशत: देखा जाता है कि दर्शनार्थी वर्ग भी मुख्य रूप से मूलनायक प्रतिमा को ही प्रमुखता देता है शेष प्रतिमाओं की पूजा छोड़िए दर्शन करना भी उन्हें आवश्यक प्रतीत नहीं होता। इन परिस्थितियों में उनकी नित्यपूजा आदि अवश्य विचारणीय है?

उपर्युक्त तथ्यों के माध्यम से हम वर्तमान प्रचलित नित्य प्रक्षाल का विरोध कदापि नहीं कर रहे हैं। वर्तमान जीवनशैली को देखते हुए पूजा सम्बन्धी नियमों की नित्यता एवं नियमबद्धता अत्यावश्यक है। वरना हर कोई स्वेच्छा से मनमर्जी अनुसार जिनपूजा करने लगेगा। अत: जहाँ श्रावक वर्ग रुचिवंत हो, जागरूक हो एवं सम्मानपूर्वक जिनभक्ति-पूजा का कार्य सम्पन्न करता हो वहाँ जिनपूजा-भक्ति रोज करनी ही चाहिए परंतु ऐसे स्थान जहाँ मात्र परम्परा के निर्वाह के रूप में यह कार्य जैसे-तैसे पुजारियों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं एवं प्रतिमाओं को मात्र नुकसान पहुँचाकर आशातना की जा रही है वहाँ परिस्थितिवश आए परिवर्त्तनों के हार्द को समझते हुए सम्यक निर्णय लेना चाहिए।

आज की भौतिक भोगवादी विचारधारा में व्यक्ति का झुकाव जहाँ सांसारिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति और भोग की ओर बढ़ रहा है। वहाँ पर जिनपूजा प्रक्षाल आदि का नित्यक्रम व्यक्ति को त्याग मार्ग पर अग्रसर करता है। रागात्मक प्रवृत्तियों से हटाकर वीतरागत्व के पथ पर बढ़ाता है। प्रभु पूजा कर्मबंध में हेतुभूत बन रहे द्रव्य को कर्ममुक्ति में सहायक बनाती है। इसी के साथ आज व्यक्ति का अधिकांश समय जहाँ सिर्फ 'भजकलद्वारम्' के कार्य में जाता है वहाँ नित्य जिनपूजा आदि का नियम उसे पुन: पुन: अपने स्वरूप का भान करवाकर उसे संसार के दल-दल से बाहर निकालती है।

आज आवश्यकता है तो प्रत्येक क्रिया के पीछे रहे हार्द को समझने की तथा परम्परा के नाम पर आई रूढ़िवादिता को दूर करने की। इसी के साथ श्रावक वर्ग को भी क्रिया-विधियों के प्रति जागरूक एवं ज्ञान समृद्ध बनना चाहिए जिससे मनोभावों का अधिक से अधिक जुड़ाव पुण्यमयी क्रियाओं में हो

सके तथा आज के भौतिक संसाधन युक्त जीवन में भी सुज्ञ वर्ग अध्यात्म मार्ग पर प्रगति कर सकें।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जिनपूजा एवं जिनप्रतिमाओं का इतिहास आगमकालीन है। आगम ग्रन्थों में इनका विवरण एवं पुरातत्त्व विभाग के शोध में प्राचीन जिन प्रतिमाओं के शिलालेख आदि की प्राप्ति इसकी शाश्वतता एवं प्राच्यता के स्पष्ट प्रमाण हैं।

आगमकाल में प्रसंग विशेष उपस्थित होने पर सर्वोपचारी पूजा करने के उल्लेख आगम एवं व्याख्या साहित्य में प्राप्त होते हैं। इनके आधार पर यह प्रतिभासित होता है कि सामान्य पूजा नित्यक्रम के रूप में की जाती होगी तथा सर्वोपचारी पूजा प्रसंग या पर्व विशेष में। मध्यकाल में सर्वोपचारी, अष्टोपचारी एवं पंचोपचारी पूजाओं का वर्णन प्राप्त होता है तथा संभवतया पंचोपचारी या अष्टोपचारी पूजा नित्यक्रम के रूप में की जाती होगी। पूर्वकालीन विधियों में कोई विशेष परिवर्तन मध्यकाल तक परिलक्षित नहीं होता है।

बारहवीं शती में जब अंचलगच्छ का उद्भव हुआ तब नित्य-स्नान एवं विलेपन का प्रवर्त्तन होने से अनेकविध मुख्य परिवर्तन पूजा-विधानों में प्रविष्ट हुए होंगे ऐसा प्रतीत होता है।

यदि पूजा विषयक साहित्य के विषय में अध्ययन करें तो मध्यकाल में आचार्य हरिभद्र एवं चैत्यवासी आचार्यों ने अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों की रचनाएँ कर जैन साहित्य को समृद्ध किया। यद्यपि उस काल में चैत्यवास की प्रधानता होने से जैन मुनियों के आचार पक्ष में काफी पतन हुआ परंतु जैनों का साहित्यिक एवं तार्किक पक्ष काफी मजबूत भी हुआ था और वैदिक धर्म आदि के प्रभाव से क्रियानुष्ठानों में भी काफी वृद्धि हुई थी।

मध्यकाल के अंतिम पड़ाव में यद्यपि पूजा विधियों में अनेकशः परिवर्तन आए, परंतु उनकी मौलिकता यथावत थी। अष्टोपचारी पूजा में मात्र स्नान का वर्धन हुआ था और सर्वोपचारी पूजा का प्रचलन कम होता जा रहा था। उसके स्थान पर लोक भाषा में लघु स्नात्र पूजाएँ प्रचलन में आ रही थी। यदि सत्रहवीं शती के परवर्ती अर्वाचीन काल में प्रवर्तित पूजा विधियों का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि आठवीं पूजा के रूप में प्रचलित जल पूजा अपना प्रथम स्थान बना चुकी थी। सर्वोपचारी पूजाएँ जो कि मूल रूप से संस्कृत या प्राकृत भाषा

में रचित थी, गायन हेतु उनकी रचना लोकभाषा में होने लगी और वे सुगम होने से अधिक प्रचलित भी हुई। इस प्रकार की पूजा कृतियों में सकलचंद्रजी कृत सत्रहभेदी पूजा एवं इक्कीस प्रकारी पूजा प्राचीनतम है। अठारहवीं एवं उन्नीसवीं सदी में इस प्रकार की अनेक पूजाएँ रची गईं परन्तु उनकी शब्द संरचना, कवित्व गुण, शास्त्रीय रागबद्धता आदि पूर्व रचनाओं से न्यून है। इसी के साथ अनेक परम्पराओं में स्व-स्व परम्परा के मुनियों की रचनाएँ ही गाई जाती है।

यदि वर्तमान में प्रचलित पूजा पद्धति की समीक्षा करें तो आजकल प्रयुक्त हो रहे द्रव्यों की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। कृत्रिम द्रव्यों के रासायनिक प्रभावों से जिन प्रतिमाओं को क्षति पहुँच रही है। साथ ही वालाकुंची आदि के बढ़ते प्रयोग से प्रतिमाएँ खंडित एवं क्षतिग्रस्त हो रही है। लोगों के मन में भी जिनपूजा के प्रति पूर्ववत अहोभाव नहीं रहा है एवं कई स्थानों पर स्वार्थानुसार परम्पराएँ अपनाई जा रही है।पूजारियों के भरोसे मंदिर के हर काम को छोड़ने से जिनाज्ञा पूर्वक वे कार्य सम्पन्न भी नहीं हो रहे हैं। अत: श्रावक वर्ग को जागृत बनते हुए कोई सार्थक कदम उठाना चाहिए। वरना लोगों की बदलती विचारधारा एवं जीवनशैली के कारण जिनमंदिर मात्र ऐतिहासिक कलाकृतियों के उदाहरण बनकर न रह जाएं और अन्य धर्मों की भाँति जैन धर्म भी समाप्ति की कगार पर न आ जाए।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	अरिहंत परमात्मानी ओलखाण अने परमात्म भक्तिनां रहस्यो	आ.विजय भुवनभानु सूरि	दिव्यदर्शन ट्रस्ट, 39 कलिकुंड सोसायटी, धोलका अहमदाबाद-387810	वि.सं. 2061
2.	गुडनाईट	गणि रश्मिरत्न विजय	आध्यात्मिक शिक्षण केन्द्र 44, खाडिलकर रोड, मुंबई-4	
3.	पूजन कैसे करूँ	गणि श्री हेमचन्द्र सागर	श्री आगमोद्धारक प्रतिष्ठान छाणी, बड़ौदा	वि.सं. 2048
4.	धार्मिक विधानो अने भावनाओं	साधु ज्ञानेश्वरदास	स्वामिनारायण अक्षपीठ, शाहीबाग रोड, अहमदाबाद	2002
5.	शाश्वत धर्म (श्री संभवनाथ जिनालय विजयवाडा प्रतिष्ठा विशेषांक)	संपा.सुरेन्द्र लोढा	अ.भा.श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद गुरु राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद गुरु राजेन्द्रसूरि शताब्दी मार्ग धानमंडी, मन्दसौर (म.प्र.)	2009
6.	चैत्यवंदन आदि त्रण भाष्य (अर्थ सहित)	श्री देवेन्द्रसूरि	श्री जैन श्रेयस्कर मंडल, महेसाणा	1930
7.	चलो जिनालय चलें	श्री हेमरत्न विजयगणि	अर्हद धर्म प्रभावक ट्रस्ट दिल्ली दरवाजा, शाहीबाग रोड, अहमदाबाद	
8.	श्री जिनपूजाविधि संग्रह	पं.कल्याणविजयगणि संपा.पं.शोभाचन्द्र-भारिल्ल	श्री कल्याणविजय शास्त्र संग्रह समिति,जालोर(राज.)	1966

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
9.	जिनपूजा		श्रीमद राजचंद्र आश्रम, धरमपुर, जि. बलसाड, गुजरात	2002
10.	तत्त्वज्ञान प्रवेशिका	प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी	श्री ऋषभदेव मंदिर ट्रस्ट सदर बाजार, रायपुर	2001
11.	कर्मकांड क्यों और कैसे?	श्री रामशर्मा आचार्य	युग निर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा	2008
12.	श्रावक विधि संग्रह	संपा.आ.राजयश सूरि	श्री लब्धि विक्रम सूरीश्वरजी संस्कृति केन्द्र T/7 A शांतिनगर, अहमदाबाद	
13.	प्रीत प्रभु से कीजिए	साध्वी विज्ञांजना श्री	भाईजी प्रकाशन, श्रीजिन-कान्तिसागरसूरि स्मारक जहाज मंदिर, मांडवला, जालोर	
14.	पूजा का उत्तम आदर्श (जैन परम्परा में)	पानमल कोठारी	सुमेरमल कोठारी, 20 मल्लिक स्ट्रीट कलकत्ता-7	
15.	मंगलं जिनशासनम्	आ.विजयमित्रानंदसूरि संपा.मुनि भव्यदर्शन विजयजी	पद्मविजयजी गणिवर जैन ग्रंथमाला ट्रस्ट, एच.ए. मार्केट, तीसरा माला कपासिया बाजार, अहमदाबाद	वि.सं. 2053
16.	षोडशक प्रकरण (भा.2)	आचार्य हरिभद्रसूरि संपा.मुनि यशोविजयजी	श्री अंधेरी गुजराती जैन संघ, 109, एस.वी. रोड, इर्ला, ब्रीज, अंधेरी (वेस्ट), मुंबई-59	वि.सं. 2052

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
17.	पंचाशक प्रकरण	आ.हरिभद्रसूरि अनु.डॉ.दीनानाथ शर्मा	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई. टी.आई. रोड, करौंदी वाराणसी-5	1997
18.	द्वात्रिंशद द्वात्रिंशिका (भा.2)	उपा.यशोविजयजी संपा.मुनि यशोविजयजी	दिव्य दर्शन ट्रस्ट, 39, कलिकुंड सोसायटी, मफलीपुर चार रास्ता, धोलका	वि.सं. 2092
19.	जैनधर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य	पं.हीरालाल दुग्गड जैन	जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मंदिर, शाहदरा, दिल्ली	1984
20.	जिन मंदिर व्यवस्था निर्देशिका	मुनि पीयूष सागरजी	श्री जैन श्वेतांबर कैवल्यधाम तीर्थ, कुम्हारी, दुर्ग	
21.	प्रतिमा पूजन	गणि भद्रंकर विजयजी संपा. मुनि रत्नसेन-विजयजी	दिव्यसंदेश प्रकाशन 4, मेरी विला बिल्डिंग, पहला माला मांडरैकर वाडी, मथरादास वसनजी रोड, अंधेरी(पूर्व), बम्बई	1997
22.	आवश्यक पूजा संग्रह	श्री दीपचंद नाहटा	श्री जैन साहित्य प्रकाशन समिति कोलकाता	
23.	प्रवचनसारोद्धार	श्री नेमिचंद्रसूरि अनु.साध्वी हेमप्रभाश्री	देवेन्द्रराज मेहता, प्राकृत भारती अकादमी 13-ए मेन, मालवीय नगर, जयपुर-3	1999
24.	ललित विस्तरा	आचार्य हरिभद्रसूरि	–	–
25.	धर्मरत्न करण्डक	–	–	–

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
26.	सत्य की खोज (भा.1-2)	मुनि जयानंद विजयजी	श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल, राजस्थान	
27.	देव द्रव्यमीमांसा	उपाध्याय मणिप्रभसागर	—	—
28.	धार्मिक वहीवट विधान	आ. कीर्तियशसूरि,	सन्मार्ग प्रकाशन, जैन आराधना भवन रीलीफ रोड अहमदाबाद	
29.	संवेग रंगशाला	आचार्य जिनचंद्रसूरि	शास्त्र संदेश गोपीपुरा, सूरत	2009
30.	भगवती आराधना विजयोदया टीका		सखाराम दोशी, सोलापुर	1935
31.	ज्ञानपीठ पूजांजलि	संपा.पं.फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1957
32.	संबोध प्रकरण	आचार्य हरिभद्रसूरि	विराट ग्रन्थ प्रकाशन, दौलत नगर, मुंबई	1973
33.	उत्तराध्ययनानि		श्री विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रन्थमाला, बेणप	1940
34.	व्यवहारसूत्र (त्रीणि छेदसूत्राणि)	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2006
35.	उपासकदशांगसूत्र	संपा. मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2006
36.	प्रश्नव्याकरणसूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2000
37.	चैत्यवंदन महाभाष्य	संपा.धर्मशेखरजी	श्री अरिहंत आराधक ट्रस्ट, भिवंडी	1999

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
38.	अष्टक प्रकरण	संपा.धर्मशेखरविजय	श्री अरिहंत आराधक ट्रस्ट, भिवंडी	वि.सं. 2061
39.	स्वाध्याय सौम्य सौरभ (चैत्यवंदनभाष्य)		कपूरचन्द आर.वारैया, पालीताणा	वि.सं. 2026
40.	श्राद्धविधि प्रकरण	गुज.भावानुवाद सुमति शेखरविजय	श्री अरिहंत आराधक ट्रस्ट	वि.सं. 2063
41.	धर्मसंग्रह गुजराती भाषान्तर भा.1	मानविजयजी	अमृतलाल जेसींगभाई शाह कालुपूर, अहमदाबाद	वि.सं. 2012
42.	जीतकल्पसूत्रम् सभाष्य	संपा.मुनि पुण्यविजय	बाबलचंद्र केशवलाल मोडी, अहमदाबाद	वि.सं. 1994
43.	जीतकल्प सभाष्य	अनु.समणी कुसुमप्रज्ञा	जैन विश्व भारती, लाडनूं	2010
44.	बृहत्कल्प सूत्रम् (भा.2)	संपा.मुनि पुण्यविजय	जैन आत्मानंद सभा, भावनगर	1936
45.	निर्युक्ति पंचक (आचारांग सूत्रकृतांग निर्युक्ति)	अनु.मुनि दुलहराज	जैन विश्व भारती, लाडनूं	1999
46.	ललितविस्तरा (पंजिका टीका)	टीका मुनिचन्द्रसूरीश्वर	दिव्यदर्शन साहित्य समिति अहमदाबाद	1963
47.	विंशतिविंशिका	आचार्य हरिभद्रसूरि	सदाशिव पेठ, पूना	1932
48.	योगशास्त्र	हेमचन्द्राचार्य	चुन्नीलाल हकमचन्द, झवेरीवाड, अहमदाबाद	वि.सं 1973
49.	व्यवहारभाष्य	संपा. समणी कुसुमप्रज्ञा	जैन विश्व भारती, लाडनूं	1996

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
50.	योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका			
51.	उपदेशतरंगिणी		हरखचन्द्र भूरा भाई निजधर्माभ्युदय प्रेस बनारस	वी.सं. 2437
52.	जैन धर्म और जिनप्रतिमा पूजन रहस्य	हीरालाल दुग्गड़	जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मंदिर शाहदरा, दिल्ली	1984
53.	स्थानांगसूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2001
54.	औपपातिक सूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2000
55.	राजप्रश्नीय सूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2001
56.	ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2005
57.	व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र)	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2002
58.	जीवाजीवाभिगम सूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2002
59.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र	संपा.मधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	2002
60.	प्रतिमा पूजन	भदंकर विजयजी	दिव्यसंदेश प्रकाशन, अंधेरी मुंबई	1997
61.	व्रततिथिनिर्णय	आ.सिंहनन्दी	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1956

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
62.	महापुराण	–	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1951
63.	वसुनन्दि श्रावकाचार	–	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	वि.सं. 2007
64.	अमितगति श्रावकाचार	–	–	–
65.	धर्मबिन्दु	आचार्य हरिभद्रसूरि	–	–
66.	श्राद्धविधि प्रकरण	अनु.तिलक विजय पंजाबी	आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटी, पूना	1929
67.	उपदेशमाला सटीका	रत्नप्रभसूरि	धनजीभाई देवचन्द्र झवेरी मुंबई	1958
68.	कल्पसूत्रम्	–	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वे. संस्था, रतलाम	1936

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

विधि संशोधिका का अणु परिचय



डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।



सज्जन वाणी की अद्भुत रश्मियाँ

- प्रभु दर्शन कैसे करें ?
- कहीं आप आराधना के स्थान पर विराधना तो नहीं कर रहे ?
- अष्टमंगल के रहस्य एवं उनके विशिष्ट प्रभाव ?
- जिन पूजा में बरख का प्रयोग करना चाहिए या नहीं ?
- आज की 9 to 5 life style में त्रिकाल पूजा प्रासंगिक कैसे ?
- जिनबिम्ब के नौ अंगों की ही पूजा क्यों करें ?
- 'जिन पूजा शास्त्रोक्त है' इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण कहाँ मिलते हैं ?
- प्रक्षाल आदि पूजा विधानों की सार्थकता कब ?
- जिनालय एवं जिन प्रतिमा आत्मोत्थान में सहायक कैसे ?

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XIII)